अथ दयानन्दछलकप

दयानन्द छल कपट ———
यथा शक्ति अति खोज कर दिखलाऊ घर मीत ॥ १ ॥

प्रस्तावना प्रारम्भ

आज कल बहुधा मनुष्योंको यह कहते हुये देखा और सुना है कि "नवीन मत मतान्तरोंका प्रचार थोडे ही दिनोंसे है" परन्तु यह समझ उनकी यथार्थ नहीं है इतिहास विद्याके जानकर जानते और मानते हैं कि कालचक्र की सदा मर्यादासे यही चाल है जो एक धर्म्मकी प्रबलता और दूसरेकी न्यूनता होती रही है, जैनधर्म्मके ग्रन्थोंमें लिखा है कि पहले इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर जैनधर्म्मही था *जिसके कठिन नियमोंको देख शिथिलाचारियोंने प्रतिकूलता ग्रहण कर समय २ पर स्वकपोल कल्पित नवीन मत प्रचलित कर दिये और इसको तो सम्पूर्ण हिन्दूगण मुक्त कठसे स्वीकार करते हैं कि वैदिक मत सबसे पुराना है परन्तु यह कथा कहानी तो बाल वृद्ध सबहीके याद है कि क्षत्रियोंसे विमुख हो परशुरामने अनेक वार उनका वध किया वैदिक लोगोंने उत्तरसे लेकर दक्षिण तक बौद्धोंको नष्ट किया अग्नि पूजक (आतिशपरस्त) और यहूदीईसाईयोंमें घोर संग्राम और प्रजाका नाश हुआ मुहम्मदी तुर्कोंने भी इस भारत वर्षको अटकसे कटक तक लूटा, कन्या कुमारीसे हिमालय पर्यंत ऊजड किया सोमनाथसे विश्वनाथके मन्दिर तकको तोड डाला दुग्धपायी बालकसे लेकर गार्भिणी अबला तककोवध (कतलआम) किया भारतवर्षसे गजनी तक गुलामोंको भर मारा रामानुज व वल्लभाचार्यके समय वैश्नव कुलकी वृद्धि नानक साहिबके समय उनपर हिन्दू मुसलमान दोनोका विश्वास और गुरु गोबिन्द सिंहके समय बादशाही फौजसे शिष्योंका बिगाड, इत्यादिक प्रथम हीसे क्या क्या न हुआ जो अब हम किसी बातको नवीन समझें, हां! यह अवश्य मान लिया जायगाकि जैसे छोटा बालक स्वान बाराह गर्दभादिक सबहीका

* इस विषयमें मेरा छपा हुआ वह व्याख्यान देखो जो मैंने मुनिपतके मेलेमें दियाथा।

अच्छा और प्यारा मालूम होता है नवीन आधुनिक धर्म्मकी एक बारतो अधिक उन्नति हो जाती है परन्तु "मभीघासमलजायगी दूसरहैगी खूब" इस वाक्यानुसार सदा सर्वदासे जो सनातन धर्म्म चला आया है, उसपर कितनेही उपद्रव क्यों नहों नाना प्रकारके विघ्न सहकरभी सदा सास्ता प्रकाशमान रहैगा, आज कल जैसी प्रबलसमाजी आर्य्य समाजी ईसाई लोगोंकी अधिकता और प्रबल चर्चा है, थोड़े दिन पहिले कबीर गोरख गरीब दादू आदिक पन्थियोंकी थी (जो अब दिनो दिन घटती परही है,) और नानकी घसीटा सत्यनामी आदिक अनेक नवीन पन्थ अब वर्तमान कालमें भी प्रचलित हैं, और सबसे अधिक आर्य्य समाजियोंकी धूम है इस लिये हमको यह प्रकट करनेकी परमावश्यकता है कि " आर्य्य समाज क्या वस्तु है ? इसका प्रचारक स्वामी दयानन्द सरस्वती कौन था ? इसके जाति कुल गोत्र तथा जन्मके नगरका नाम क्या था ? जन्म दिनसे लेकर अंत समय तक चलन व्यवहार कैसा रहा ? किस धर्म्म पर यह चलता और दृढ विश्वास रखता था ?" यद्यपि इस विषयमें अनेक समाचार पत्र तथा पुस्तकोंमें प्रकाशित लेख विद्यमान हैं और दन्त कथामें जितने मुख उतनी ही जाति स्वामीजीकी सुनाते हैं परन्तु यह सर्व ही दन्त कथा द्वेष भावसे भरी और प्रमाण योग नहीं हैं, जो जिस्के मनमें आता है अट्टसट्टबक देता है, और जितने लेख इस विषयमें विद्यमान हैं उन सबके लिखने वालेभी बहुधा ऐसे ही मनुष्य हैं जिन्होंने पक्षपात रूपी धूलसे निर्मल इतिहास जल गदला (मलीन) कर दियाहै कि जिस्से वह विद्वान पुरुषोंमें सराहनीय नहीं रहा॥

इस विषयमें हमने जो कुछ लिखनेका साहस किया है उसका एक एक अक्षर नाना प्रकारके प्रमाण सहित बड़े परिश्रमसे एकत्रित और अनेक साक्षीद्वारा सिद्ध किया तब लिखा है, और इतना ही नहीं किंतु इसके लिये हमको बम्बई, गुजरात, काठियावाड़, मालवा आदिक देशोंमें भी घूमना पड़ा है, और इस सग्रहसे पहिले यह विषय भारतके अनेक हिन्दी उर्दू अंग्रेजी समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हो चुका है, परन्तु हमने जो इसका विशेष भाग स्वामी दयानन्द सरस्वतीके स्वहस्त लिखित जीवन चरित्रसे लिया है, और यह चरित्र नवीन रचना वा कल्पना नहीं है, जो कुछ इसमें लिखा गया है वह स्वामी दयानन्द सरस्वतीके समपक्षीसे प्रकाश मानो और अनेक आर्य्य समाजियोंका

देखा भाला तथा सुना हुआ है, यद्यपि यह जीवन चरित्र ‡ कुछ बड़ा पुस्तक अथवा कोइ धर्म्म ग्रन्थतो नहीं है परन्तु हमको इसके सग्रह करनेमें स्वामी दयानन्द सरस्वती रचित ३८ पुस्तक और एकसौसे अधिक अन्यमहाशयोंके रचे पुस्तक व समाचार पत्रोंसे सहायता लेनी पड़ी जिनके नाम इस पुस्तकके अंतमें दिये गये हैं, और इस हमारे लेखका विशेष भाग तो समय समयपर आर्य्य पत्रिकामें भी प्रकाशित होता रहा है, परन्तु पक्षपात भयकर उक्त सम्पादक जीकी लेखनी यथार्थ न लिखसकी इस लिये यथार्थ लिखनेका परिश्रम हमको ही उठाना पड़ा। यहां कोई यह तर्क करेकि जब आप दयानन्दके मतमेंही नहीं फिर आपको उनके जीवन चरित्र लिखनेका क्या अधिकार है? उसका उत्तर यह है कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीने अपने " सत्यार्थ प्रकाश " के द्वादश समुल्लासमें जैनी लोगोंपर झूठा दोषारोपण कर अपनी योग्यता दिखलाई तो हमको ऐसा करनेकी अत्यतावश्यकता हुई कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीका यथार्थ हाल लिखकर भारतमें प्रकाशित कर सत्यासत्यका न्याय

‡ स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रथम बार जब लाहोरमें आये और डाक्टर रहीमखां साहिबकी कोठीमें उतरेथे तो अपना जीवन चरित्र व्याख्यानकी रीति पर वर्णन कियाथा और उनके विश्वासियोंने उसको पुस्तकाकार लिखाथा जब करनल अल्काट (Colonel Alcott) और (H. P Madam Blavatski) योग विद्याके सीखनेको भारत वर्षमें आये और उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वतीको संस्कृतका अच्छा पंडित और योगी समझकर अपना गुरु मान लियाथा तब स्वामी दयानन्द सरस्वतीने अपने योगी होनेकी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिये निज जीवन चरित्र लिखवाकर मादम ब्लवास्की सम्पादक थियासोफिस्ट (Editor of theosophical) को पठाया और वह रिसाला मास नवम्बर, दिसम्बर, सन् १८७९ व रिसाला मास नवम्बर सन १८८० में छपा था जिसमें स्पष्ट रूपसे यह प्रकाश किया गया था कि यह जीवन चरित्र स्वामीजीका स्वहस्त लिखत है, तथा उक्त रिसाला संख्या ७ मास अप्रेल सन् १८८० ई० में स्वामीजीका यह लेख छपा है 'यद्यपि मुझको अत्यंत हर्ष और उमंग है कि मेरा स्वहस्त लिखित जीवन चरित्र जिसको आप छापकर प्रकाशित कर रहे हैं शीघ्र समाप्त हो परन्तु क्या करिये मुझको यथार्थ अवकाश नहीं मिलता जो इस तरफ ध्यानदूं। तब भी जहां तक होगा अब में शीघ्र अपना इतिहास आपके निकट लिख पठाऊंगा' ॥

हालमें एक लाला हरूपतरायने उन रिसालोंसें लेख संग्रह कर एक पुस्तक छपाई है और उसके ऊपर मोटे २ अक्षरोंसे यह लिखा है कि यह जीवन चरित्र स्वामीजीका हाथका लिखा (खुदनविस्त) है, इसके अतिरिक्त यह कथा सम्पूर्ण आर्य्य समाजोंमें प्रसिद्ध भी हो रही है, और दयानन्द दिग्विजय तथा मेरठ अजमेर फर्रूखाबाद, लाहोरके आर्य्य समाचार पत्रोंसे लेकर अनेक मनुष्योंने पुस्तकाकार जीवन चरित्र भी लिखे हैं ॥

विद्वान मनुष्योंपर छोड़ दें, और निज बुद्धि विद्यानुसार अपना मतव्य भी लिखदें

इस पुस्तकके प्रकाशित होनेपर जो जो कोलाहल मचैगा उसको हम खूब समझे हुए है, परन्तु यह पुस्तक हमारे हजार हा भोलेभाले भाईयोंको अज्ञान कूपमें पडनेसे बचावेगी इस लिये देशोपकार करते हमको कोई बुराभी कहे, या किसी प्रकारकी हानि पहुचावे तो उसका हमको कुछ भय नहीं है ॥

और यहभी हम भले प्रकार जानते हैं कि असत्यकी जड नहीं होती अब असत्यवादी मनुष्यको सत्यवक्ता रूपी भास्करका साम्हना होता है तो अमावस्यके चन्द्रमाकी समान अदृश्य होना पडता है, और सत्यकी जय असत्यका क्षय यह जक्त प्रसिद्ध कहलावत है, फिर हमारे सॉचको भी आच न होगी ॥

अन्तमें हम यह लिखनाभी परमावश्यक समझते हैं कि यदि हमारे इस सग्रह का कोई भाग किसी समाजी भाईको असत्तव दीख पडे और वे प्रमाण सहित इसके प्रतिकूल कुछ लिखनेका यत्न रखते होंतो हमारे पास पत्र द्वारा लिखभेजें, हम धन्य वाद सहित स्वीकार कर दूसरी वार छपनेके समय इसका सशोधन करेंगे, क्योंकि हम स्वामी दयानन्द सरस्वतीके समान कहमुकरने वाले नहीं ६ जैसाकि उन्होंने कई स्थानों पर कहमुकरनेका वर्ताव किया है, हम यहभी नहीं चाहते कि जो पत्र व्यवहार लाला ठाकुरदास भावडे गुजरान्वाल निवासीका और स्वामी दयानन्द सुरस्वतीका होकर "दयानन्द मुख चपेटिका" पुस्तक छपी, हमारे इस "दयानन्द छलकपट दर्पण" नाम संग्रहको देख हमारा और किसी समाजी पुरुषकाभी छपकर व्यर्थ समज व्यतीत होय

आज कलके लोगोंने यह चाल ग्रहण करली है कि अब वह किसी पुस्तक अथवा लेखके खडनका उद्यम करना चाहैं और अपनी बुद्धिकी मन्दता अथवा दूसरेके पुस्तक तथा लेखकी सत्यताके कारण उसका खडन न बन पडे तो उस पुस्तक वा लेख लिखनेवालेको गालिया देने लगते हैं, और इतना करने परही अपना परिश्रम सफल मानते हैं, जैसे भाई जवाहरसिंह लाहोरीने एक पुस्तक समाजियोंके प्रतिकूल लिखी तो राधा कृष्ण महता एक समाजी पुरुषने एक "ग्रंथीफोबिया" नामक पुस्तक रच गुरु नानक साहिब आदिक अनेक शिक्खोंके गुरु लोगोंको भला बुरा लिख मारा, तथा साधु आत्माराम

६ इसकी पुस्तक दयानन्द मुख चपेटिका ।

(आनन्द विजय) जीने जो पुस्तक "अज्ञान तिमिर भास्कर" लिखा उस्को देख प्रयाग नगरसे प्रकाशित होने वाले "आर्य्य सिद्धान्त" पत्रके सम्पादकने उक्त साधुजीकोही अनेक अनुचित शब्द लिख दिये † हम ऐसे उत्तरदाताओंकी कुछ प्रशंसा नहीं करते, सराहनीय पुरुष तो वही होंगे जो लिखे लेखका सर्षमान उत्तर देनेकी शक्ति रखते हों ॥

इस लिखनेसे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हमारी लिखी इस पुस्तकका कोई उत्तर न लिखे, परतु जो लिखनेका परिश्रम करे उसको उचित है कि हमारे लिखे प्रमाणोंका खंडन करे, और खंडन करना छोड आज कलकी भेड़िया धसानमें पड़कर हमको या हमारे इष्ट देवको कुवचन कहना ही अपनी विद्वानी समझेगा उसको हम क्या सब कोई मूर्ख और बुरा कहेंगे ॥

यह पुस्तक २५ मार्च सन १८८७ ई० को बिल्कुल तैयार होगईथी, परंतु छपनेका समागम न हुआ इस लिये २४ मई सन् १८८७ ई० कोपुनः घटा बढ़ाकर शुद्ध किया और अब मुद्रित कराया जाता है ॥

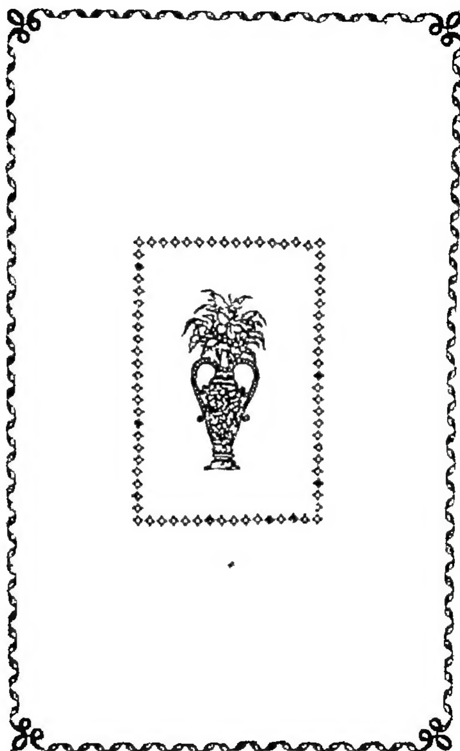
इस पुस्तकमें जो जो लेख हम स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी स्वहस्त लिखित पुस्तकसे लेवेंगे उसकी आदिमें (द) और जो अन्य पुस्तक वा समाचार पत्रसे लिया जायगा उसकी आदिमें (स) और जहां हम अपनी युक्ति प्रमाणसे कोई लेख लिखेंगे वहा (क) ऐसा चिन्ह कर देवेंगे सो पाठक गण इस पुस्तकके पढते समय उक्त सूचना चिन्हको अवश्य ध्यानमें लावें, किं बहुना ॥

(जीयालाल)

फर्रुखनगर जिला गुरगाँवः
तारीख २४ मई सन् १८८७ ई०

† देखो आर्य्य सिद्धान्त पत्र खंड १ संख्या १ पृष्ठ ३ ॥





॥ अथ श्रीदयानन्द छल,कपट दर्पण लिख्यते ॥

॥ श्री जिनधर्म्मो जयति ॥

॥ दोहा ॥

प्रथम नमहु आदीश जिन । आदिधर्म्म रवि मान ॥
जिन मुख किरण प्रकाश में । लखा यथारथ ज्ञान ॥ १ ॥
अब दिखलाऊं जक्त को । दयानन्द का भेद ॥
न्याय वंत निर्णय करें । सठ मानें मन खेद ॥ २ ॥

॥ प्रथम एक नवीनजातिकी उत्पति का वर्णन करतेहै ॥

किसी समय दक्षिण के देशों में यह रिवाज था कि बहुधा भोले भाले मनुष्य धर्म्म समझ अपनी लघु अवस्था की कन्या को देवमंदिर में चढ़ाकर देवदासी बना देते थे, और जिस दिन से वह कन्या देवदासी बनाके मंदिर में चढाई जाती थी माता पिता से उसका सम्बन्ध बिल्कुल छूट जाता था, और मंदिर का पुजारी ही उसका लालन पालन करता रहता था, बाल अवस्था में उसको गीत, नृत्य आदि संगीत विद्या सिखलाई जाती थी और तरुण होने पर वह मंदिर की नृत्यकारिणी कहलाती थी जब नृत्य करणे का समय होता था तो वह नाना प्रकारके पट,आभूषणों से अलंकृत हो षोडस शृंगार कर कज्जल, बिन्दी, वैना लगा निर्लज्ज भाव बता, नगर, परिवार, माता, पिता, भ्रात, भगिनी आदि सबके सन्मुख नृत्यकारिणी बणी मंदिर के देवता की मूर्ति को अपना स्वामी समझ नृत्य करती थी, और जब वह योवन अवस्थामें काम चेष्टाकर व्याकुल होती और मैथुन कर्म्म की उसको आवश्यकता होती सो रजस्वला होने के पश्चात स्नान कर जिस किसी पुरुषका हाथ पकड़ निजस्थान पर लेजाती वह पुरुष उसके संग विषय भोग करता था, परंतु एक

दिन से अधिक ऐसा करने का अधिकार उसको नहीं था यदि एक दिनसे अधिक ऐसा होता तो प्रजा के मनुष्य दोनोका वध (कत्ल) करदेते थे ✽ जब यह नृत्य कारिणी जिनका दूसरा नाम मक्तिनी भी है जार (यार) पुरुष को लेकर देशांतर को भागने लगी (+) तो यह देवदासी का प्रचार क्रमशः बहुधा स्थानों में बन्द होगया, उस समयपर कुछ जाति तित उदिच्य गोत्री अनेक ब्राह्मणों में से बहुधा मनुष्यों ने अपने छोटेछोटे लड़कों को गीत नृत्य विद्या में प्रवीण कर उनको मंदिरों की नृत्यकारिणी बणाया, जब यह लड़के स्त्रियों के समान पट आभूषणोंसे शृंगार कर भाव बता कल्पित कुच लगा नृत्य करते थे तो देखने वालों को उन लड़कों में और नृत्यकारिणी स्त्रियों में बहुतही कम अंतर मालूम होता था, क्योंकि यह लड़के शिर पर केश भी स्त्रियों के सदृश लम्बे २ रखते थे ॥

अब यह लोग सब देशों में पाये जातेहैं (‡) और पखावज, ढोलकी, सारंगी, भेर, तबला, इत्यादिक बजाना लड़के नचाना भिक्षामागनी कपड़े सीना रहस्यलीला करना इत्यादिक इनके मुख्य काम हैं और यह लोग तपस्वी, भोजगी जाजगी, बहुआ या बरुआ भोजपुरहा, राय, कापड़ी, इपु, भट, पारिप, आदिक नामों से प्रसिद्ध और विख्यात हैं, ॥

हमारे फर्रुखनगर में भी इनके दस बारह घर है इन लोगों की यह कहलावत प्रसिद्ध है कि हम सब प्रकार के काम करसकतेहैं किसीभी कार्य्यको करते लज्जा नहीं मानते और कहते हैं कि हमारे पुरुषाओं ने परमेश्वर से यह प्रार्थना की थी कि हे भगवान "इकबार बनादो कापड़ी फिर तुमः हमारी क्या पड़ी" बस हम ईश्वर के भरोसे पर नहींहैं अपने परिश्रम द्वारा जोकुछ कमातेहैं उसीपर संतुष्ट रहतेहैं ॥

अब यह लोग अन्यजातीय शूद्र स्त्रियोंसे कराव भी करने लगेहैं, और राह चली वर्ण भिन्नकेघर की रोटी कपड़ों सहित खालेते हैं ॥

॥ अथ दयानन्दोत्पत्ति लिखतेहैं ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र भी इन्द्रजाल का ख्यालहै जिस में नाना प्रकार के गुप्त भेद और गूढार्थ प्रकट होते हैं किजिनका समझनाभी

✽ न्यूनाधिक अबभी यह रिवाज उस देशमें पाया जाता है देखो मदरास हाईकोर्ट रिपोर्ट मिन्ददोयम अप्रैल सन् १८७७ ई०

(+) पहाड़ों में रहने वाली रामजनी इनमेंसे ही निकली हैं

(‡) दक्षिणदेशके रहने वालों के अतिरिक्त हमयह नहींकहसके किसब एकही जाके लोग हैं

किसी विद्वान पुरुष का ही काम है परंतु यह कहलावत प्रसिद्ध है कि "जिनढूंढा तिन पाइयाँ" तथा (जोयन्दः – यायन्दः) ([illegible]) बस ऐसे मनुष्य भी संसार में विद्यमान हैं, जो अपनी बुद्धिमानी और ढूंढ द्वारा ऐसे २ गूढ मार्गों में पैठ कर उनका यथार्थ भेद खोजलेते हैं और यही उनकी बुद्धिमानी और दीर्घदर्शिता का अनुपम चिन्ह है ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती कौन थे ? किस नगर कुल गोत्र में उनका जन्म हुआ ? यह स्पष्ट रूप से आज तक इस भारत वर्ष में किसी ने भी नहीं जाना और न उक्त महाशय ने अपने मुख सेही किसी को बतलाया किंतु पूछने पर भी यही उत्तर दिया कि मैं जो आजकल दयानन्द सरस्वती के नाम से पुकारा जाता हू सम्वत् १८८१ वैक्रमी में काठियावाड़ प्रान्त की राजधानी मोरवी के इलाके में एक उदिच ब्राह्मण के घर जन्मा और प्रथम दिवसही से जो मैंने अपने पिता का नाम और कुटुम्बियों का पता नहीं बतलाया उसका यही कारण है कि यदि उनको मेरे समाचार मिल जायँगे तो वे मुझको उलटा घर पर ले जाकर उस संसारिक झगड़े में फँसा देंगे जिस्से मेरा मन घृणा कर रहा है, और मुझको यह भी सम्भव होता है कि घर पर जाऊँगा तो फिर द्रव्य छूना पड़ेगा, इसी कारण मैं उनका ठीक २ पता नहीं देता हूं ॥

॥ स्वामी जी के इस कहने पर हमारी अनेक शंका हैं ॥

(प्रथम) जिस समय स्वामी जी ने अपना जीवनचरित्र वर्णन किया उनकी ५० वर्ष की अवस्था थी क्या उस समय तक माता पिता विद्यमान थे ? जो खबर पाकर उक्त स्वामी जी को पकड़ कर घर पर ले जाते ॥

(द्वितीय) यदि यह मान भी लिया जाय कि उस समय तक माता पिता विद्यमान भी थे तो स्वामी जी ऐसे छोटे बालक नहीं थे जो माता पिता गोद में उठाकर ले जाते, किंतु हिंदू लोगों में तो यह मर्य्यादा है कि जिनका पुत्र सन्यासी होजाता है, वह माता पिता कुछ नहीं कह सकते, और हमको बहुत बड़ा आश्चर्य्य तो इस बात का है कि स्वामी जी को उनके माता पिता के समाचार क्योंकर मिलते रहते थे ? क्या कोई गुप्त दूत अथवा तार लगा हुआ था ? इस कहने से तो यही सिद्ध होता है कि स्वामी जी को अपने माता पिता का जीवित रहना भी दुःख का कारण था, और वे रात दिन परमेश्वर से यही

प्रार्थना करते होंगे कि हमारे माता पिता और कुटुम्बी शीघ्र मरजाय जिस्से हमारा सदैव का खटका मिटजाय, बस जबतक यह नहीं मान लिया जायगा जैसा हमारा पूर्वोक्त विश्वास है तब तक यह सिद्ध नहीं हो सकेगा कि पचास वर्ष की अवस्था में भी स्वामी दयानन्द सरस्वती को अपने कुटम्बियों के हाथ से पकड़ा जाकर घर पर ले जाने का भय लगा हुआ है ॥

(तृतीय) स्वामी जी कहते हैं कि घर पर जाकर द्रव्य छूना पड़ता सो क्या छापा खाना खोलने पुस्तक बेचने चन्दा इकट्ठा करने में जो द्रव्य आपको छूना पड़ा वह किसी गणना में नहीं था ? अथवा निज घर छोड़ पराया अनेक घरों से मांगा द्रव्य छूने में नवीन वेद भाष्य के लेखानुसार कोई दोष व प्रतिज्ञा भंग नहीं थी ? हा ! किसी कवि ने सत्य कहा है ॥

पर उपदेश कुशल बहुतेरे। आप करैं ते नर न घनेरे॥

स्वामी जी निज माता पिता को तो अपने समाचार तक देने से रुके और " सत्यार्थप्रकाश " में निम्न लिखित उपदेश लिखते हैं ॥

मानोवधी पितरंमोतमातरम् १ यजु ०

" प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवता " अर्थात् संतानों को तन मन धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करनी, दूसरा पिता सत्कर्तव्य देव उसकी भी माता के समान सेवा करनी ॥

मातृ देवो भव पितृ देवो भव आचार्य देवो भव अतिथि देवो भव ॥ ६ ॥ तैतिरीयनि०

यह पांच मूर्ति मानदेव जिनके संग से मनुष्य देह की उत्पत्त पालन सत्य शिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है, येही परमेश्वर को प्राप्ति होने की सीढ़ियाँ हैं, इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं, वे अतीव वेद विरोधी हैं, *

धन्य महाराज धन्य अजी स्वामी जी महाराज यदि आप के माता पिता को इस समय के ठीक समाचार मिल जाते तो वे फूले अंगो न समाते और आप का उच्चकुल गोत्र में जन्म लेना सर्वसाधारण पर विदित भी होजाता ॥

---

* तृतीय बारके छपेहुवे सत्यार्थप्रकाश के समुल्लास ११ पृष्ट ३१० । ३१८ कोदेखो.

(चतुर्थम्) संसार में प्रचलित मर्य्यादा यह है कि पिता अपने पुत्र की उन्नति का अभिलाषी रहता और सदैव यही चाहता है कि मेरा पुत्र मेरे नाम को चढ़ावे परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस के विरुद्ध निज पिता के नाम को उलटा छिपाया इसका कोई गुप्त भेद है, इधर यह माता पिता के वियोग में ध्रुव के समान दुखी थे तो सुनीता और उत्तानपाद से न्यून दशा इन के माता पिता की भी न होगी यदि स्वामीजी की आज कल की प्रतिष्ठा प्राप्त करने के समाचार उनके माता पिता को मिलते तो वे अत्यन्त हर्षमान ईश्वर का धन्यवाद करते, परन्तु इनका पता न लगने पर अपने मनमें यह विचारते रहते होंगे तो आश्चर्य्य ही क्या है कि हमारा पुत्र कहीं डूब कर मर गया अथवा मुसल्मान, ईशाई, या साधु होगया, हा! न मालूम अब उसकी क्या दशा है? और उसपर क्या२ गुजरती है?

(पाचवें) यदि स्वामीजी के कुटुम्बी जन विद्यमान थे (जैसाकि स्वामी जी का विश्वास दृष्टि पड़ताथा) और उनको अपने पढ़े लिखे पुत्र की अत्यन्त ढूंढ (तलाश) थी (जैसा कि लौकिक रीत्यानुसार होनी भी चाहिये) तो जब स्वामी जी ने अपना बहुत कुछ पता ठिकाना, जन्म का सम्वत्, राजमोरवी का इलाका, जाति ब्राह्मण, उदिच गोत्र, इत्यादिक ठीक ठीक बतला दिया था तब घर वालों को पता मिलना कुछ कठिन नहीं था, आज पुलिस प्रबन्ध ऐसा प्रबल महकमः है कि नाम मात्र के सहारे पर ही अपने चोर को पृथिवी पर से खोज लेती है जब स्वामी जी कहते है, मेरा पिता बड़ा धनाढ्य, जमींदार, था मेरे भागने पर उसने फौज के सिपाही ढूंढने (तलाश) को भेजे थे, तो विश्वास होता है कि पुलिस में तो अवश्य खबर दी गई होगी, परन्तु यह बड़े आश्चर्य्य की बात है कि यदि आज लाट साहब का बेटा खोया जाय तो फौज नहीं चढ़े, और किसी की चार आने की अगूठी ले कर कोई भाग जाय तो पुलिस मारी मारी फिरे, लेकिन स्वामी जी के ढूंढने को पुलिस नहीं गई फौज चढी ॥

यह बनावट स्वामी जी महाराज की ठीक नहीं बन पड़ी किंतु उलटा उनके वचनों का विश्वास नष्ट करती है ॥

(छठे) यदि स्वामी जी के माता पिता वास्तव में कंगालही थे तो उनके यथार्थ हाल कह देने में स्वामी जी का कुछ बिगाड़ नहीं था वरन, यश, कीर्ति की उन्नति थी सब यही कहते कि स्वामीजी ने निज पुरुषार्थ से भारत वर्ष में प्रसिद्धता

पाकर भी पिछली हीन दशा को नहीं छिपाया और जो स्वामी जी के पिता यथार्थ में धनाढ्य थे तो फिर उसके गुप्त करने में क्या लाभ था ?

(सातवें) स्वामीजीने अपने जीवन चरित्र को निज मुख से कहने में जो कुछ छूट रख छोड़ी है उससे यही सिद्ध होताहै कि अवश्य कुछ दालमेंकाला है नहीं तो थोड़ासा पता देना और थोड़ासा छिपाना इस में क्या चतुराईथी? यह प्रसिद्ध है कि आर्य्य समाजी मनुष्यों ने स्वामी जी का यथार्थ जीवन चरित्र सग्रह कर मुद्रित कराने का प्रण किया है और इस काम के लिये एक "पण्डित लेखूराम" नामी समाजी, पुरुष नियत किये गये हैं हम आशा करते हैं कि उक्त लेखूराम महाशय स्वामी जी के गुप्त समाचारों के ढूंढने में छूट नहीं करेंगे और हमको यह भी विश्वास होता है कि जब वे ढूंढेंगे तो वह गुप्त भेद भी उनको अवश्य खुल जायगा जिस को हम जान बूझ कर भी लिखना नहीं चाहते * और जो उन्हों ने ढूंढने में प्रमाद किया अथवा समाचार मिलने पर उनको छिपाया तो यह जीवन चरित्र अधूरा रह जायगा ॥

(क) अब न्याय शील स्वतः विचारलें कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का कथन कहाँ तक सत्य है जो मनुष्य अपना जन्म कुल गोत्र बताकर उसका कुछ भाग छिपाता है चाहे वह उच्च कुल गोत्र का ही क्यों नहो सर्व साधारण के सन्मुख विश्वास करने योग्य अथवा प्रमाणीक नहीं है ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म सम्वत् १८८१ वैक्रमी शाकः १७४६ सन् १८२४ ईस्वी में मिती भाद्रपद शुक्ला ०६ गुरु वार को दिन के मध्यान में हुआ था इस का ब्यौरा हमको उनकी जन्म पत्री ‡ द्वारा (जो हमारे एक परम मित्र ने कुछ दिन हुये चिट्ठी द्वारा भेजी थी) निश्चय हुआ था

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती की जन्म पत्रिका ॥

सम्वत् १८८१ शाकः १७४६ तत्र भाद्रपद शुक्ला ०६ गुरुवासरे कलादि ०१।३६ मूल नाम नक्षत्रे कलादि ३६।४१ प्रीति नाम योगे कलादि—

---

* यह समाचार प्रगट रूपसे तो नहीं परन्तु किम्बदन्ती (अफवाह) केतौर पर जोकुछ हमने सुनेहैं वह दूसरे भागके अंतमें लिखेंगे ॥

‡ यह जन्मपत्रिका गुजराती अक्षरों में उस देशके लेखानुसार थी जिसको हमने स्वदेश रीतिके अनुसार करलिया है ;

१४ । ०३ कौलव नाम कर्णे कलादि ०१ । ३६ उपरांति तै तिलै चन्द्र तारीख ०६ एव तिथि पञ्चाग शुद्धौ तत्र दिन प्रमाण ३१ । ३२ रात्रिमान २८ । २८ अहोरात्रिमान ६० । ०० तत्र सिंहार्क गतांशाः १७ । ५४ । २५ तत्र श्री सूर्य्योदियादि एम् १५ । १० तदा ०७ । ०७ । ४० । ५८ । ५४ लग्नोदय जन्मः मूल नक्षत्रे तृतीय चरणे राशि धन स्वामी गुरु गण राक्षस वर्ण क्षत्री इत्यादि

घर	तन	धन	सहज	जाया	सुत	अरि	भार्या	मृत्यु	धर्म्म	कर्म्म	आय	व्यय
लग्न	८	६	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७
ग्रह	०	चं रा	०	०	०	०	श	के	बृ	सू शु	बु	मं

देश काठियावाड़ राजधानी महाराज मोरवी में रामपुरा नाम एक छोटा सा ग्रामहै उस ग्राम में एक भजनहरि नाम कापडी रहताथा उसके केवल एक कन्या के अति रिक्त कोई पुत्र नहीं था इस लिये रात्रि,दिवस उसको पुत्रका मुख देखने की प्रचुर महालशा लगी रहती थी । एकदिन किसी महात्माने उसको उपदेश दिया कि यदि तू एक सौ एक (१०१) दिन महादेव जी के मंदिर में गऊ घृतका दीपक जलाया करे तो शिवजी की कृपासे तेरे भी कुल का दीपक पुत्र उत्पन्न होवे

भजनहरि की वृद्धावस्था होगई थी पुत्रोत्पत्तिकी उमंग में मदोन्मत्तथा इस के एक छोटा भाई सीताराम हरि नाम और था उस के भी कोई पुत्र नहीं था, धर्म्म कार्य्य में भजनहरि की बुद्धि सदा सर्वदा से उत्तम थी, महात्मा जी का उपदेश मान हर्ष सहित शिव मन्दिर में दीपक धरने लगा और थोड़े ही दिनों में शिवजी की कृपा से तथा होनहार कर्म्मकाण्ड के योग्य से भजनहरि की स्त्रीको गर्भ रहा सम्वत् १८८१ भाद्रपद शुक्ला ०६ गुरुवार के दिन पुत्र का जन्म हुआ * भजनहरि के सकल परिवार में प्रचुर आनन्द भया, शिवभजन इसका नाम धरा † दसवें दिन बालक को उसी शिव मन्दिर में लेगये जहाँ भजन हरि दीपकजलाया करता

* तिथि वार महीना जन्मपत्री के अनुसार लिखागयाहै, और जन्मपत्री का फल दूसरे भाग के भसमें लिखा जायगा, तथा देखो उर्दू धर्म्म जीवनपत्र लाहौर तारीख १७ जून सन् १८८८ ई०

† स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना जन्मका नाम मूलजीकर बतलायाथा, जैसा कि इस श्लोकसे पाया जाताहै (श्लोक) धीणींभार्द्दीन्दुर्भिरामपुतेवैक्रमे वत्सरेयः । प्रादुर्भूतो द्विजवरकुले दक्षिणेदेश वर्य्ये ॥ मूलेनासौजननविषये चक्रेणा परेणाप्स्पार्द्धि प्राप्तव्यम प्रपासिनी विदावज्ञनानाम ॥ १ ॥ देखो तिलकुधार्यम प्रेस गढ की छपी, दिनचर्य्या कामतम् १२ ॥

था। और भज्जन हरि हाथ जोड़ शिर नमाय शिवजी की मूर्ति [पिण्डी] के सन्मुख खड़ा हो कहने लगा, हे बाबा भोले नाथ मैं तो महा मन्द भागी हूं यह जो कुछ है आपही का अनुग्रह और प्रताप है मैं आजही से इस बालक को आपका नृत्यकार समझ कर प्रथम इसको यही विद्या पढ़ाऊंगा। आप कृपा कर इस के जीव को सर्व प्रकार के कष्टों से निर्भय रखना, मेरे बुढ़ापे की टेक आपही के हाथ है, तथा मेरी आपसे वारम्वार यही प्रार्थना है। इत्यादिक शिव जी की भक्ति कर बालक को घर पर लाया और लालन पालन करने लगा ज्योतिषियों से ग्रह पूछे गये, तो उन्होंने उत्तर दिया कि बालक होन हार है परंतु इसका जीवित रहना कुछ कठिन भी है, क्योंकि इसके ऐसे उत्तम ग्रह तुम्हारे घर योग्य नहीं हैं, और यदि यह बालक जीवित भी रहा (जैसा एक दो ग्रहों के फल से दृष्टि भी आता है) तो सुनलो भाई यह लड़का बड़ाही प्रताप वान और प्रसिद्ध पुरुष होगा। यह सुन भज्जन हरि बहुत खुश हुआ, यत्न सहित बालक का पालन पोषण करने लगा शनै शनै शिवभजन पांच वर्ष का हुआ, पिता ने विद्या रम्भ करांया, बालक पन से ही बुद्धि इसकी उत्तम थी, इधर गुरु जी का अनुग्रह भी अधिक हुआ तो थोड़े ही दिनों में बहुत कुछ विद्या पढ़ली, जब पाठ शाला से कुछ समय बचता था तो भज्जनहरि इस को गीत नृत्य आदि अपने पुरुषाओं का कार भी सिखलाया करता था, जब शिवभजन आठ वर्ष का हुआ उचित रीति से उपनयन (यज्ञोपवीत) कराया गया * तेरह चौदह वर्ष की अवस्था में इसने अक्षर शब्द विद्या और गीत नृत्य विद्या दोनों में अच्छा अभ्यास कर लिया था, और रंग रूप उज्वल होने के व्यतिरिक्त इस ने नृत्य कला में वो ऐसा कमाल पैदा किया और यह ऐसा विख्यात हुआ कि दूर दूर के मनुष्य इस का नृत्य देखने आते थे।

एक इस के रामपुरा ग्राम से निकट के "बांकानीर" नाम उत्तम ग्राम का रहने वाला जमीदार का लड़का सो इस के नृत्य पर मोहित हो निज घर त्याग रात्रि दिन इसी के घर पड़ा रहने लगा ‡ एक दिन शीत काल में शिवरात्रि का व्रत आया भज्जनहरि अपनी सम्पूर्ण मंडली और साज बाज लेकर शिवभजन सहित शिवालय में गया, यह वही शिवालय है कि जहां भज्जनहरि ने घृत के दीपक जलाए थे, शिवभजन को नृत्य कारणी बना कर नाचने के लिये खड़ा किया, तब शिवभजन बोला हे पिता जब हम किसी और मन्दिर में जाते हैं तो

* कापड़ी लोगोंमें भी उपनयन कराया जाता है,

‡ आज कल भी अनेक रूप रसिक मनुष्य रासधारियों के उज्वल वर्ण लड़कों पर रागी होजाते हैं

पुजारी आदिक बहुधा मनुष्य हमको माल, धन, देतेहैं ? परंतु यह जंगल शून्य स्थान है, यहाँ केवल उन मनुष्यों के अति रिक्त जो राह, बाट चलते हमारा तमाशा देखने को खड़े होगये हैं और कोई दातार पुरुष तो हैही नहीं फिर किस आशा पर यहाँ जागरण करते हो ? तब भजनहरि बोला हे पुत्र यह शिवजी महाराज सब की आशा पूर्ण करते हैं और मैंतो इनका उपकार जन्मांतर भी नहीं भूलूंगा। शिव भजन ने निज पिता के मुख से जब महादेवजी की इतनी बड़ाई सुनी बड़ा हर्ष माना, और मन में विचार किया जिस शिव जी की पिता इतनी बड़ाई करते हैं, उस्से कुछ मैंभी तो माँगू। यह विचार मनही मन में प्रार्थना करने लगा हे शिव जी मैं तेरे द्वार पर आज उस भावना से नृत्य करूंगा जो शास्त्र में इन्द्र की अप्सराओं ने भगवान के सन्मुख किया लिखा है। और अपने मन और वाणी की शुद्धता से आपके वे गुणानुवाद गाऊंगा जो नारद देव किन्नर वा गन्धर्वादिक ने भी न गाये हों। इस सेवा का मुझ को यथार्थ फल देना तेरेही हाथ है। इतना विचार मन खोलकर ऐसा नृत्य किया जैसा पार्वतीजी के आगे महादेवजी ने स्वतःभी नहीं किया होगा। अर्द्ध रात्रि तक जागरण होता रहा, और महादेव जी ने भी जो कुछ वर देना था दे दिया * परन्तु शिवभजन उस समय इसी आशामें जागता रहा कि शिवजी महाराज मेरी सेवा का फल प्रकट होकर देवेंगे † और सब मनुष्य सो गये तब तो शिवजी की मूर्ति पर चढ़ी हुई वस्तु फल फूल मिठाई आदि को मूसे (चूहे) उठा २ कर ले जाने लगे। और कितनोहीं ने तो शिवलिंग अर्थात् मूर्ति पर मींगन (बीट) भी करदई, तब तो शिवभजन को अत्यन्तही आश्चर्य हुआ मन में विचारने लगा जिस शिवने अपने द्रव्य की ही रक्षा नहीं की वह मेरी क्या आशा पूरेगा यह विचार निराश हो आप भी सो गया। प्रात काल के समय जब सब मनुष्य सोते उठे भजनहरि ने शिवभजन को जगाया और कहा उठ बेटा महादेव जी को नमस्कार कर अपने घर चलें। तब शिवभजन बोला हम नहीं नमस्ते यह शिवभी कोई पदार्थ है, जो अपने द्रव्य को चूहों से न बचा सका हमारा क्या उपकार करसक्ता है॥

---

* हमारे विश्वास कोई कृपा माने महादेव जी ने शिवभजन के नृत्य से सुप्रसन्न होकर यह वर दिया कि हे बालक तू प्रसिद्ध पुरुष होगा; परन्तु तेरे पिता ने अपने वचन का यथार्थ पालन नहीं किया अपनी आजीविका के आधीन हो आजसे पहिले तेरा नृत्य अनेक स्थानों पर कराके टके कमाये इसलिये उसको तेरा सुख न होगा,

† आगे चलकर स्वामीदयानन्द सरस्वती (शिवभजन) को महादेवजी स्वप्नमें दर्शन देंगे॥

"भजनहरि बोला हे पुत्र"

"मायातुप्रकृतिविद्यान्मायिनन्तुमहेश्वरम्"

अर्थात् प्रकृत का नाम माया है, और प्रकृत्यऽवच्छिन्न जो चैतन्य उसी का नाम महेश्वर वा परमेश्वर है, (यह श्वेताश्वतर उपनिषदि की श्रुति है)

"और देखो"

"तंयथायथोपासतेतदेवभवति" तद्धैनान्भूत्वाऽव तितस्मादेनमेववित्सर्वरूपैरूपासीतसर्वछ्हैत द्भवतिसर्वछ्हैनमेतद्भूत्वाऽवति श०मं०ब्रा०२० *

इसका अर्थ यह है कि उस परमेश्वर की जो जैसे रूप से उपासना करता है, वह तद्रूपही होजाता है, और उसही रूप से अपने उपासक का संरक्षण करता है, इसलिये जो लोग एवं विधि गुण सम्पन्न ईश्वर को जानते हैं उन्हीं को चाहिये कि वे उक्त सभी रूपों से उसकी उपासना करें। वह सर्व स्वरूप हो जाता है और तद्रूपहो के इन सभी का रक्षण करता है। इसी प्रकार महादेव जी भी हैं ॥

शिवभजन बोला मैं अब आप की एक बात भी नहीं मानूंगा ‡ मेरा विश्वास धातु पाषाण की प्रतिमाओं पर नहीं रहा, इनसे कोई फल की प्राप्ति नहीं। इनका पूजना सर्वथा व्यर्थ है, मैं आप की और सब बात मानूंगा परन्तु मूर्ति पूजा तो मैं बिल्कुल नहीं करूंगा, यह सुण भजनहरि को बड़ा कष्ट हुआ, क्रोध में आन कर पुत्र को बुरा भला कहने लगा, इस समय शिवभजन का मित्र जिमीदार का लड़का भी उपस्थित था, भजनहरि शिवालय से अपने घर आया, पुत्रसे ऐसा अप्रसन्न हुआ

---

* कोई यह शंका न करे कि कापड़ी को इतनाज्ञान सम्भव नहीं ? गुजरात देशके अनेक शूद्र लोग भी अच्छे व्याकरणी होते हैं और भजनहरि तो अच्छा जानकार पुरुष था।

‡ इससमय तो यह कहदिया कि नहीं नमस्ते परन्तु जब कुछ दिनों बाद ज्ञान हुआ तो पश्चात्ताप किया और सम्पूर्ण समाजियों को नमस्ते ही कहने का उपदेश किया। तथा कुछ पीछे जब सम्वत् १९५४ में पुस्तक आर्योद्देश्य रत्नमाला बनाकर छपाई तो उस में भी नमस्ते शब्द को मानरूप इसकाअर्थ यह लिखा है कि मैं तुम्हारा मान्य करता हूं देखो पृष्ठ १००

कि मुख से बोलना भी छोड़ दिया अब शिवभजन का गीत नृत्य तो बिल्कुलही छूट गया केवल दादी, माता, भगिनी, चाचा, चाची, के सहारे से यह व्याकरण विद्यार्थी पढ़ता रहा, जब इसकी अवस्था पन्द्रह सोलह वर्ष की हुई तब इसकी प्यारी भगिनी और प्यारे चाचा का परलोकवास होगया ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती आपकहते हैं कि एक रात्री को मैं अपने किसी मित्र के स्थान पर बैठा हुआ नाच देख रहा था, कि मेरे घर से एक मनुष्य ने आन कर कहा तुम्हारी भगिनी अत्यंत बीमार मरणांत को पहुची है, यद्यपि उसकी चिकित्सा और बचनेके अनेक उपाय किये गये परन्तु वह हमारे निज गृह पहुंचने के दो घंटे के भीतर भीतर ही मृत्यु को प्राप्त होगई ॥

'इस पर' भाई जवाहरसिंहजी अपनी संग्रह * में लिखते हैं कि यह लिखना स्वामी जी का असम्भव जान पड़ता है कि घर में प्यारी भगिनी को भरणांत छोड़ कर भाई नाच, तमाशा देखने चलाजाय। हाँ यह विश्वास होसक्ता है कि कापड़ी लोग जो नाचने,गाने का काम करते है,लालच में आकर या किसी देवमन्दिर में बुलाये जाने पर निज आजीविका भंग होने का भय मान घर के रोगी को छोड़ भ दली ले बहुधा चले जाते हैं ॥

भगिनी और चाचा के मरजाने पर शिवभजन को बहुत कष्ट हुआ, जो कुछ नाममात्र घर में मीठा बोलनेका सहारा था सो दादी माता के व्यतिरिक्त बिल्कुल नहीं रहा। इधर पिता ने विचारा कि जब तक इसका विवाह न करूंगा यह मेरे काम का हर्गिज़ न होगा बस, इसका पिता विवाह की तयारी करने लगा यह देख शिवभजन के मित्र ने इस्से कहा क्यों मित्र अब क्या करोगे? हमारा तुम्हारा बहुत दिनों से यह वचनालाप होचुकाहै कि विवाह के बखेड़े में नहीं पड़ेंगे। अब यही विचार उत्तम दीख पड़ता है कि किसी बहाने से भाग चलें, इस को शिवभजन ने स्वीकार कर निज माता पिता से कहा मैं राजकोट पाठशाला में मित्र सहित पढ़ने जाऊंगा परंतुमातापिता ने आज्ञानहीं दी इधर इस के मित्र का विवाह आगया सब सो इस का मित्र जमींदार का लड़का बाईश (२२) वर्ष की और शिवभजन सोलह (१६) वर्ष की अवस्था में गुप्त रूप गृह, ग्राम, परिवार, त्याग देशांतर को चल दिये।

(क) एक मनुष्य से मित्रता का होना (जिस का स्थान इन के गृह से छ मील था) स्वामी जी ने स्वतः स्वीकार कियाहै, और यह भी निश्चय होताहै कि उसके

*यह स्वामी दयानन्द की उर्दू बयानहज़रत इस्लामियसलाहोरसंब० १८८९ई० कीछपी देखो ए० २४

साथ भागने का हाल भी बहुधा अपने विश्वासी समाजियों को स्वामीजी ने गुप्त रूप से अवश्य कह दिया है अब वे अपनी निन्दा के भय से नहीं कहता उन की इच्छा, परंतु सत्य बात अधिक दिन गुप्त नहीं रहती, पुस्तक "अन्धी फोबिया" में जिसने यह लिखा कि अपनी जाय पैदायश के जिले का नाम बतलाने से स्वामी साहिब पकड़े नहीं जा सक्ते थे। क्यों कि इस बात का किसी को यक़ीन नहीं कि सिवाय उस के बेटे या किसी और रिश्तेदार के उस जिले से जहाँ उस की रहायश है और कोई शख्स नहीं भागा होगा, व नीज़ दयानन्द सरस्वती नाम स्वामी साहिब का वालदैन का रक्खा हुआ नहीं है। और असल उर्दू में भी देखो *

اپنی جائے پیدائش کے ضلع کا نام بتلانے سے سوامی صاحب
پکڑے نہیں جا سکتے تھے کیونکہ اس بات کا کسی کو یقین نہیں
کہ سوائے اس کے بیٹے یا اور رشتہ دار کے اس ضلع سے جہاں
اسکی سکونت ہے اور کوئی شخص نہیں بھاگا ہوگا۔ و نیز دیانند
سرسوتی نام سوامی صاحب کا والدین کا رکھا ہوا نہیں ہے ۔

ऊपरोक्त प्रमाण से स्पष्ट है कि जो मनुष्य दयानन्द सरस्वती के साथ घर से भागा उसको बहुधा समाजी मनुष्य जान बूझ कर निज निन्दा के भय से प्रकट नहीं करते उलटा उसको गुप्त करते अर्थात् छिपाया चाहते हैं ॥

शिवभजन ने माता पिता को अपने वियोग का महान कष्ट देकर अपना जन्म कृतार्थ किया तब घरसे निकलने का एक सचा और छोटा सा बहाना यह किया कि मैं अपने मित्र से मिलने जाता हूं वहाँ से शीघ्र चला आऊंगा। परन्तु यह केवल माता पिता से झूठा बहानाही था मन में तो मित्र के संग भागनेही की थी॥

(द) स्वामी दयानन्दसरस्वती जी लिखते हैं कि जब मैं अपने घर से चला सन्ध्या का समय सम्वत् १९०३ विक्रमी था, पहिली रात आठ कोश के अन्तर पहुंच कर एक नगर के निकट जा रहा। और दूसरे दिन १० मील के अन्तर पहुचा, तीसरे दिन मैने एक सरकारी नौकर की जुबानी यह सुणा कि कुछ घोड़ों के सवारों सहित फौज के मनुष्य मेरे नगर के किसी तरुण पुरुष को ढूंढते फिर रहे हैं और कहते हैं कि वह मनुष्य निज गृह त्याग कर भाग गया है, मैं यह समाचार पाकर शीघ्र आगे बढाही था कि कुछ मंगते भिक्षुक मनुष्यों ने मेरे बहु मूल्य

---

* यह लेख उर्दू की किताब अन्धी फोबिया अरोड़वंशप्रेस लाहौर की छपी बाबत १८९५ पंक्ति ९ से और रदबुतलाम पृष्ट ७९ से लियागया है॥

पट आभूषण कंठा अगूठी कड़े इत्यादिक सब छीनलिये। और में स्याही नामा ग्राम में पंडित लाला भक्त के पास पहुंचा, वहाँ मुझको एक ब्रह्मचारी मिला जिसने मुझको ब्रह्मचारी बनाकर मेरा नाम "शुद्धचेतन" रखलिया, और में रंगदार कपड़े बदल कर अहमदाबाद के निकट एक कोट का गढ़ नाम नगर में आया, वहाँ मुझको एक वैरागी मिला जो मेरे कुटुम्बियों को भले प्रकार जानताथा। मैंने अपने घर से निकलने का सारा वृतांत उसको कह सुनाया, तब उसने मुझको बुरा भला कह कर पूछा अबतू कहाँ और किधर जायगा, तब मैंने शीघ्रतासे कहदिया कि इस वर्ष जो सिद्धपुर का मेला कार्तिक में होने वाला है उसमें जाता हूं, और इतना कहकर में सिद्धपुर में जाकर नीलकंठ महादेव के मन्दिर में ठहरा, उस वैरागीने यह बड़ा छल किया कि मेरे पिता को समाचार देदिये और मेरा पिता मुझको पकड़ने के लिये बहुतसी फौज लेकर सिद्धपुर के मेलेहीमें चला आया था,

(क) यह कथन स्वामीजी का ठीक नहीं है, सत्य समाचार नीचेसंग्रह में देखो।

(ख) जब स्वामीजी और उनका मित्र घर से चले सम्वत् १८६७ वै० था

और यह कहना भी स्वामीजी का झूठ है कि भागने के समय मेरी उमर २२ वर्ष की थी, * क्यों कि यदि यह इतनी अवस्था के होते तो मंगते भिखारियों के हाथ से लूटे नहीं जाते, और एक वैरागी से बुरा भला सुन अपना गुप्त भेद नहीं देते, जो पट आभूषण दोनो के पास थे भीलों ने छीन लिये और शिव भजन का मित्र भी इस्से जन्मांतर के लिये जुदा होगया † और यह विचारा अकेला ही रहगया और इसने योगी सन्यासियों के सहारे दो तीन महीने व्यतीत किये और उनके साथ साथ ही एक स्याही नाम नगर में पहुंचा और विद्योपार्जन का यत्न वा भोजन का प्रबन्ध न हुआ तो आगे बढ सीतापुर पहुंचा यहाँ भी योगियों के साथ ही में कुछ दिन रहकर फिर आगे बढा, इधर इसके मित्र के पिता के चार मनुष्य जो ढूंढते फिर रहेथे एक साधु के पत्रद्वारा समाचार पाकर यहीं आये और सिद्धपुर में योगियों समेत इसको घेर लिया, तब शिवभजन ने डर के मारे यह कहा कि मुझको यह साधु बहकाकर ले आये और अब कोई मुझको मेरेपिता के घर पहुंचादे तो मैं घर जाने को तैयारहूं। इधर योगी कहने लगे महाराज

* आर्य्या वर्त्त पत्र कलकत्ता खंड १ संख्या ४९ में स्वामीजी की भागने के समय १९ वर्ष की ही अवस्था लिखी है,

† यह कुछ गुप्त भेदहै जिसको हम बिना दूसरे प्रमाण के नहीं लिखते ॥

इसको हम नहीं लाये स्याही ग्राम में मांगता फिरता था हमारे संग हो लिया हम नहीं जानते यह कहाँ का रहने वाला कौन है। उन चार मनुष्यों ने शिवभजन से पूछा अमुक तुम्हारा मित्र कहाँ है, तब कहा मित्र का हाल मुझे मालूम नहीं * वे मनुष्य शिवभजनको पकड़ कर लेचले और मार्गमें अनेकप्रकार की घुरकियाँ दे कर भी पूछा परंतु इसने अपने मित्र का कोई पता नहीं दिया इसका पिता बुला या गया और उसको भी समझाया गया परंतु कुछ कार्य्य सिद्ध न हुआ तब यह दोनों पिता पुत्र छोड़ दिये गये भञ्जनहरि शिवभजन को लेकर निज घर पर गया, बहुत कुछ बुरा भला कहा विश्वास बिल्कुल जाता रहा इधर शिवभजन अपने भागने की घात में लगा रहा कि ऐसा न हो जो गुप्त भेद खुलजाय। भञ्जनहरि को भी इसके भागने का भय हुआ इसको कई आदमियों के पहरे रखने लगा, एक दिन शिवभजन ने कल्पित निद्रा में खर्राटे लगा लगा कर पहरेदारों को यह विश्वास दिलाया कि शिवभजन अवश्य सोगया, जब पहरेदारों ने इसको सोया जाना आप भी सबसोगये, इस समय रात्रि के १ बजे थे तबतो शिवभजन भी चुपके चुपके उठकर चला और एक पीतल का लुम्या इसलिये हाथ में ले लिया कि यदि किसी ने चलते हुए टोक लिया तो कह दूंगा कि पायखाने जाता हूं॥

(क) पाया जाता है कि इस समय तक इसको विद्या और बोध उत्तम न था क्योंकि जो मनुष्य अपने माता पिता को ऐसा दुःख देवे जिसका नाम पुत्र वियोग है, उससे बढ़कर और दुराचारी कौन होगा, तुलसीदासजी ने सत्य कहा है

दोहा तुलसी या संसार में। बड़े दुःख यह चार॥
भौम छुटन या ऋणि बधन। मरे पुत्र या नार॥१॥

तथा देखो।

श्लो० परंक्षिपातिदोषेण वर्तमान स्वपंत्था।
यश्वकुध्यत्यनीशान सचमूढतमोनर ॥ १ ॥

(श्लोक का अर्थ) जो आप तो दोष रूपी सिन्धु में निमग्न हों परन्तु औरों को दोष लगाकर दूषित करता है, तथा जो दुर्बल और निर्धीरप होकर अत्यन्त क्रोध कर्ता है, वह पुरुष तम अर्थात् अतीव मूढ़ है॥

* असल में इसका मित्र प्रथम दिन से ही इसके साथ नहीं था दो चार दिन पीछे घर से चला था।

(द) स्वामीजी लिखते हैं कि जब मैं एक मील तक चला गया तो लोगों को मेरे चले जाने का हाल मालूम हुआ, मैंने मार्ग में एक बहुत बड़ा वृक्ष देखा जिसकी शाखा चारों ओर दूर दूर फैली हुई थी, और एक देव मन्दिर (शिवा लय) उन शाखाओं से ढका हुआ था, मैं उस वृक्ष पर चढ़ गया और उसकी शाखाओं में जो मन्दिर केऊपर आई हुई थी छुप गया, एक घण्टे का समय भी व्यतीत न हुआ था कि मैं क्या देखता हूं कि कितनेही सिपाही मुझे ढूंढते फिर रहे हैं, मैं उनको देखकर पाषाण वत स्थिर होगया, तब वे सिपाही देख भाल कर चले गये, और मैं सम्पूर्ण दिवस वृक्ष में छुपा रहकर रात्रि होतेही निकल भागा, न किसी से मिला और ना मार्ग पूछा सीधा अहमदाबाद पहुंच कर बड़ोद्रा को हो लिया, यहाँ वेदांतियों से मिला और मेरा निश्चय वेदांतपर होगया, और मैंने समझा कि ब्रह्म मैं हीहूं। इस बड़ोद्रे में मुझको एक काशी की रहने वाली स्त्री मिली जिसने बतलाया कि अमुक स्थान पर विद्वान पण्डितों का समारोह होने वाला है, मैं उसी ओर चला गया, वहाँ पर सच्चिदानन्द नामी एक परमहंस मिले, उन्होंने कहा चानूडाकन्याणी में बहुत से साधु रहते हैं तब मैं उधर चला गया, और एक सत्य-शीलवान दीक्षित ब्राह्मण से मिला जिस्से कुछ वादानुवाद हुआ, फिर मैंने परम हंस परमानन्दजी से विद्योपार्जन आरम्भ कर थोड़ेही समय में वेदांत समाप्य और कई पुस्तक देख ली, मैं उस समय ब्रह्मचारी बना हुआ था, और अपने हाथ की बनाई हुई रसोई खाता था, सो इससे छुटकारा पाने के लिये मैंने चतुर्थ श्रेणी के सन्यासी होने का विचार किया, और एक ऐसा विचार करने की अधिकता इस-लिये थी कि ब्रह्मचारी रहने से ऐसा न हो पकड़ा जाऊं, क्योंकि मेरे कुटुम्बियों की प्रसिद्धता से मुझे पूरा पूरा भय था * और अभीतक मेरा नाम वही प्रसिद्ध था जो घर में माता पिता और परिवार के मनुष्य बोला करते थे ‡ इसलिये मैंने यही विचार उत्तम समझा कि सन्यासी होकर निडर और स्वतंत्र होजाऊंगा, सो मैंने अपने एक मित्र दक्षिणी पण्डित से प्रार्थना करी कि आप मेरे सन्यासी होने के लिये सब से बड़े विद्वान दीक्षित से कहदें, उस समय मेरे मित्र ने तो मेरे विषय में बहुत कुछ कहा परन्तु दीक्षितजी ने मैं सन्यासी नहीं किया ॥

(क) ऊपर के लेख पर पाठकगण ध्यान देवें कि ९ बजे प्रातःकाल के समय

* मैं मर्द करते जो खोट कर्म करके भागे थे उनका भय था।

‡ अर्थात घिमगर्न।

स्वामीजी सूते चढ पीतल का तुम्बा लेकर भाग पड़े और जब मन्दिर पर चढ़ बुध में छुपे हुये देख रहे थेकि सिपाही ढूंढते फिर रहे हैं, तो एक घंटा भी न हुआया, आचार्य चार भी नहीं बजे थे, क्या खूब ! एक घंटेही मे सब कुछ होगया, और खैर जो कुछ उनका लिखा हुआ सत्यही समझ लिया जाय तो उनकी बहुत बड़ी कृतघ्निता है कि घर से भागने पर मन्दिर का सहारा लिया और उसमें छुपकर छुटकारा पाया, फिर थोडे दिनों पीछे मूर्ति पूजा और मन्दिर की बुराई करने लग गये, काशी निवासनी स्त्री ने जिस स्थान का पता दिया उसका नाम भी गुप्त रक्खा और अपने सन्यासी होने का कारण भी जैसा कुछ बतलाया पाठक वृन्द समझ सकेंगे। स्वामीजी की सचाई का यह हाल है कि कभी कहतेहैं, मेरा नाम बदल कर शुद्ध चेतन रक्खा गया, कभी कहते हैं जो नाम घर पर पुकारा जाताथा वही था इस लिये सन्यास लेना पड़ा। पाठक गण जब तक स्वामी जी के माता पिता परिवार के मनुष्य तथा उनके मित्र के (जो साथ भागा था) माता पिता जीवित रहे इन्होंने अपना वृत्तांत गुप्त ही रक्खा, परन्तु जब सब के मर खप जाने के समाचार मिल गये तो निज मित्र के बदले आप ही जमींदार के पुत्र बनगये, और भागने का साल सम्वत् भी झूठ सच मन माना सोही प्रसिद्ध किया, यह भेद—किताब उर्दू "फसाना अजायब" (जिसका नाम नागरी में मोहिनी चरित्र है) की बन्दर वाली कहानी से पूरा २ मिला हुआ है, यथार्थ जो कुछ है आगे चल कर लिखेंगे। अभी तो स्वामी जी की स्वहस्त लिखित कहानी और हमारा शंका समाधान ही बराबर देखते चले जाओ !

(द) स्वामीजी लिखते हैं जब सन्यासियों ने मुझको चेला न बनाया तो मैं प्रसन्न न हुआ, किंतु थोड़े ही समय पश्चात दो महात्मा दक्षिण की ओर से आये, जिन में एक स्वामी दूसरा ब्रह्मचारी था, और दोनो एक जंगल में जहाँ मेरी विश्राम कुटी थी दो मील के अंतर पर ठहरेथे, मेरा मित्र दक्षिणी पंडित जो बड़ा वेदान्ती और विद्वान पुरुष था उनसे मिलने गया, मैं उसके साथ गया, उन के पास जाकर हमारा वादानुवाद शास्त्रार्थ हुआ। उन्होंने कहा हम दक्षिण देश के उस स्थान से आये हैं जहाँ शंकराचार्य्य का शृंगी मठ है, और अब द्वारिका को जावेंगे उनमें जो स्वामी था उसका नाम पूर्णानन्द सरस्वती था, मैंने अपने मित्र दक्षिणी पंडित से कहा, मुझको इनसे ही कहकर सन्यासी करादो ? तब मेरे मित्र ने पूर्णानन्द सरस्वतीजी से कहा, वे जाति के महाराष्ट्री ब्राह्मण थे, कहने लगे

हम नहींकरते किसी गुजरातीसे जाकरमिलो तब मेरे मित्रने बहुत कुछ कह सुनकर में सन्यासी करादिया और मेरानाम "दयानन्द" होगया, और गुरुने मुझको एक दण्ड देकर उसकी विधि बतलादी, परंतु मेरेसे नहीं बनपड़ी क्यों कि विद्योपार्जनमें विघ्न होताथा, वे मुझे सन्यासी बनाकर द्वारिकाकीओर चलेगये।

(क) प्यारे पाठकगण प्रथम बारकेछपे पुस्तक "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ठ १६१ पंक्ति ६ मेंस्वामीजी लिखतेहैंकि "जिस पुरुषको विद्या ज्ञान वैराग्य पूर्ण जितेन्द्रियता होय और विषय भोगकी इच्छा नहोय उसीको सन्यास लेना उचितह, अन्यको नहीं" बस इस लिखने से यह प्रकट होताहैकि जिस समय आपने सन्यास लियाथा यह ज्ञान नहींथा कि जिस पुरुषको विद्या ज्ञान वैराग्य पूर्ण जितेन्द्रियता होय और विषय भोगकी इच्छा नहोय उसीको सन्यास लेना उचितहै अन्यको नहीं, नहींतो कदापि सन्यास नलेते, क्योंकि आपमें अबपर्यंत विद्या ज्ञान वैराग्य पूर्ण जितेन्द्रियता नहींथी, और विषय भोगकी इच्छा पूर्णथी, विद्या और ज्ञान यथार्थ होतातो परस्पर विरुद्ध शास्त्रप्रतिकूल युक्ति-रहित लेख क्यों करते, वैराग्यके विरुद्ध धनादि पदार्थोंमें रागक्योंहोता, पूर्ण जितेन्द्रियताका लक्षण जो आपनेही प्रथम बारके छपे "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ठ ५८ पंक्ति २१ में लिखाहै, उसका कुछभी चिन्ह पायाजाता, विषय भोगकी इच्छा नहोती तो उत्तमोतम बस्त्रों और भोजनोंसे क्या प्रयोजनथा, अच्छा किया जोआपने सन्यासका अर्थमें त्याग करदिया, क्योंकि पूर्ण जितेन्द्रियता होने और विषय कषाय भोगोंकी इच्छा घटनेमें आपके अंतसमयतक त्रुट थी।

(द) फिर कुछदिन तक में उसीस्थानपर रहा परतु जब मैंने सुना कि व्यास आश्रममें स्वामी योगानन्द रहतेहैं, उनके पास योग विद्या सीखने चला गया, और वहां जाकर बहुत कुछ योगाभ्यास विद्या सीखतारहा।

(क) प्यारे पाठकवृन्द कहाँतक लिखाजाय दयानन्द सरस्वतीने अपनी प्रतिष्ठा बढाने तथा दूसरेमनुष्योंको अपना सचा योगाभ्यासी विदित कराने के लिये निज जीवनचरित्रमें मनमाना अट्ट सट्ट भरमारा, परन्तु खेद इसबात काहै कि फिरभी कुछ लाभ न हुआ, हम संग्रहमें केवल वही समाचार लिखेंगे जिनकी आवश्यकताहै, स्वामीजी ने अपने जीवनचरित्र में छोटीसी बातको भी इतना बढाकर लिखाहै जिस्से बहुधा व्यर्थ कागज कालेहुए, अबहम केवल उनके जीवनचरित्रसेभी संक्षेपरूप लेतेहैं, क्योंकि विस्तारसे हमाराक्याप्रयोजन है।

(द) स्वामीजी लिखतेहैंकि मैं सन्यासी होकर जब संस्कृत विद्याका पण्डित होगयातो चिर्णाड़के आस पास कृष्णशास्त्री रहता था वहाँ गया और उससे व्याकरण विद्याका औरभी अभ्यास किया, फिर चालूद्दा कन्यार्थीमें आया तब ज्वालानन्द शिवानन्द योगियों से मिल कर कुछकाल उनके संग रहा और उनसे योगाभ्यासमें निपुण होगया, तब अहमदाबाद के निकट दूधेश्वर महादेव आबू पहाड़ीकी चोटीपर इत्यादिक स्थानों में जो जो योगाभ्यासी मिले उनसे इसी विद्याको सीखता हुआ सम्वत् १९११ में प्रथम ही कुंभके मेले पर हरिद्वार पहुंचा, वहाँसे हृषीकेश होकर टिहरी तथा टिड्डी में आया, राज पंडितोंसे मिला, वाममार्गका भेदजाण श्रीनगर केदारघाट रुद्रप्रयाग होताहुआ अगस्त मुनिकी समाधिपर पहुंचा, वर्षा ऋतु वहाँही पूरीकर केदारघाट, तुंगनाथ ज्योती मठ, बद्रीनारायण आदि स्थानोंमें घूमा, अलकनन्दानदीके तट २ कहिये किनारे २ फिरता सतपथ तीर्थमें आया, मार्गके कष्टोंसे खेदखिन्न होकर एक समय मैंने अत्यंतही पश्चाताप कियाकि, हा! मैंने घरपर रहकरही विद्या क्यों न पढ़ी जो इस महान कष्टमें न पड़ता, फिर मैंने एक मनुष्यकी जान बचाई, और लौटकर बद्रीनारायण पहुंचा, रात्रिको रावलजीके स्थानपर भोजनकर सो रहा, प्रातःसमय चिलकिया घाटीसे उतरकर रामपुर में आया तो एक महात्मा रामगिरी नामीके दर्शन हुए, यह रामगिरी कभी सोतानहींथा, मैं उससे आज्ञा ले काशीपुर और वहाँसे द्रोणीसागर पहुंचा जहाँ शीतकाल काट मुरादाबाद सम्भल हो गढ़मुक्तेश्वरके पार पहुंचा, उस समय मेरेपास "शिव संधित प्रदीपका" "योग बीज" "कबीरानन्द संहिता" यह तीन पुस्तकभीथीं, जिनको मैं कभी कभी देखाभी करताथा, इनमें "नाड़ीचक्रांति" और "नाड़ीचक्र" उत्तम विषयथे, जिस्से मनुष्यके शरीरके भीतरीभागका भेद खुलताथा, परन्तु उसका जानना बड़ा कठिनथा, एक समय मुझे यह भ्रम उत्पन्न हुआकि कहीं यह पुस्तक अशुद्धतो नहींहैं, और इस भ्रम मिटानेके लिये मैंने अनेक यत्न किये, एकवार गंगानदीमें कोई मृतकशरीर बहा जाताथा, उसको देख मैं जलमें घुस (पैठ) किनारेपर पकड़लाया, और तीक्षण चर्द (तेज चाकू) से काटफाड़कर खूब ही देखा परन्तु कुछ दृष्टिनहींपड़ा तब लज्जित हो पुस्तकोंसहित मुर्दाजलमें पटकदिया, और आगेको चलदिया, कुछदिन गंगाके तटपर रहकर फर्रुखाबाद आया, * फिर कई स्थानोंपर फिरकर कानपुरमें गया, यह समय ठीक

* प्रथमतःजब फर्रुखाबाद गये बिल्कुल नंगे थे गुमान सरकारही बोलता थे ॥

सम्वत् १६१७ वैक्रमी के व्यतीत होनेकाथा, कानपुरसे इलाहाबादतक के बहुधा बड़े २ स्थान देखताहुआ में भादोंके महीने में मिर्जापुर पहुंचा, और यहाँ काकाराम राजाराम शास्त्रियोंसे मिला फिर चायकालगढ़ में पहुंचकर दुर्गा खोह के मन्दिर में दसदिन गुजारे, और चावलखाना छोड़दिया पर यहाँ मुझको भंग पीनेकी वाँण [आदत] पड़गईथी, चांडालगढ़ के बाहर एक शिवजीका मन्दिरथा, एक दिन में उस मन्दिर में जा रहा तो एक पिछले समय का बिछड़ा मनुष्य मुझको मिला परंतु में भंगके नशेमें अचेत होरहाथा, शीघ्र सो गया तब स्वप्नमें क्या देखताहूं कि महादेव और पार्वतीजी आपसमें वार्ता कर रहे हैं। पार्वतीजी शिवजी से कहरहीथी दयानन्दका विवाह होजायतो बड़ी श्रेष्ट बातहै * परन्तु शिवजीने स्वीकार नहींकिया, उस समयजो मेरी आंख खुलगईतो बड़ाक्लेश मास हुआ † वृष्टि लगातार होरहीथी, मन्दिर में एक वृषभकी मूर्ति खड़ीथी, मैंने अपने कपड़े और पुस्तक उसकी पिष्टपर धरदिये और बैठगया तोक्या देखताहूं कि एक मनुष्य उस वृषभके शरीरमें घुस रहा है, मैंने अपना हाथ बढ़ाकर पकड़ना चाहातो वह निकल भागा, और में उस के स्थान मूर्ति में घुसकर सोगया। प्रातःकाल एक स्त्रीने आनकर वृषभकी पूजा करी औरमुझको देवता समझके गुड़ और दही दिया औरकहा महाराज भोजन करलो, मैंने उसका कहनामान भोजन करलिया जिस्से भंगका नशा उतर गया और में आगेको चलपड़ा, परन्तु मैंने कभी किसीसे मार्ग नहींपूछा, में नर्बदा नदीके निकास की ओर सघन वनों को अविगाहन करताहुआ एक ऐसे स्थानमें पहुंचा जहाँ अनेक बनचर दुष्ट जीव रहतेथे, एक काले रीच्छ(भालू) से मेरा सामना हुआ, परन्तु वह मेरे सोटेसे डरकर भागगया, मुझको नर्बदा नदीके निकाशके देखनेकी बड़ी उत्कंठा लगरहीथी,इसलिये निर्भय हुआमें आगे हीको बढ़ाचलागया, कुछ मार्ग मुझको वृक्षोंकी सघनताके कारण सर्पके समान पेटकेबल चलकर काटना पड़ाथा, बस इसी प्रकारके अनेक कष्ट सहन करता हुआ चला २ में एकग्रामके निकट पहुंचा, यहाँके सरदारने मुझे दुग्धपिलाया,परंतु उसकाभोजन मैंने इसलिये स्वीकार नकियाकि वह प्रतिमा पूजनेवालाथा। इत्यादि०

* पार्वतीजी का कहना महादेवजी स्वीकार करलेते तो स्वामीजी बड़े प्रसन्न होते,

† क्लेश क्यों मानो जिस शिवजीको बालकपनमें स्त्री बनकर नृत्य दिखलाया उसने ब्याह की मनाही करदी, यदि शिवजी इससमय विवाहकी मनाही नकरतेतो सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी एक स्त्री को ११ पति की आज्ञा न देते,

[क] प्यारे पाठकवृन्द विचारकरना चाहिये स्वामीजीका स्वहस्त लिखित जीवनचरित्र कहाँतक विश्वास करने योग्यहै, इसमें जोकुछ लिखा है उसमें स्वामीजीने अपने योगाभ्यासी होनेका सिद्धांत दिखलायाहै, परन्तु हम कहते हैं कि स्वामीजीको योगाभ्यासका नामतक यादनहींथा, योगीपुरुष दुबले पतले निर्बल शरीरके होतेहैं, स्वामीजी तो हृष्टपुष्ट मोटेताजेथे। उनके शरीरपर योगाभ्यासका कोईभीचिन्ह नहींथा, समाधिका लगाना गुफा गढे आदिक में बैठकर कुछ समयतक स्थिर होजाना दुनियाँ दिखलाव औरकेवल भानमतीथा, इस्से कुछ फलकी प्राप्ति वा योगविद्याका सम्बन्ध नहींथा, और यह स्वामीजीका लिखना औरभी उनके मिथ्याभाषणका पतादेताहै कि- आत्मानन्दसे आत्म विद्या और योगानन्दसे योगाभ्यास सीखा, तथा रामपुर में रामगिरी आदिक साधुओंसे कार्य सिद्ध किया।

प्यारे पाठकवृन्द देखोतो सही क्या २ गुरु मिलाईहैं, अनेक स्थानोंका भ्रमण जिताकर स्वामीजी यह सिद्धकिया चाहतेहैंकि उनका यहभ्रम केवल योगियोंके ढूंढनेहीकाथा। आपलिखतेहैंकि मैंने एक मनुष्यकी जानबचाई, परन्तु पूरा पता लिखते लज्जा उत्पन्नहुई जो नहींलिखा, जानपड़ताहै यहाँ भी कोई गुप्तभेद अवश्यहै। आहा! यह कितन आश्चर्यकी बातहै आपको जो मिला महात्माही मिला, स्वामीजी लिखतेहैं किसी स्थानमें मेरे पास कपड़े तक नहींथे कहीं लिखतेहैं रंगेहुये कपड़े और पोथी पुस्तकभी मेरेपासथे उनकी परीक्षाके लिये मैंने एक मुर्दा नदीमेंसे निकालकर चीरडाला और तीक्ष्ण कर्द [तेज़ चाकू] भी मिलगया और बिना गुरोपदेश उन पुस्तकोंके शुद्धाशुद्ध का ज्ञानभी भेभेवही होगया, और सर्व पुस्तकें मुर्दे सहित जलमें डालदीं फिर आगेचले महादेवके मन्दिरमें जोवृषभथा उसकी पीठपर धरनेको अन्य पुस्तक कहाँसे आई? वृषभके शरीरमें स्वामीजी मुखसे घसे या गुदासे? यह स्पष्ट नहीं लिखा! क्योंकि मूर्तिमें केवल दोनोंहीमार्ग खुले होंगे, और जिस मूर्तिके उक्त दोनोंमार्ग ऐसे बड़ेहोंकि जिसमें मनुष्य घुससकताहै वह मूर्ति न मालूम कितनी बड़ी होगी? और जिसशिवालयमें यह मूर्तिथी उसके विस्तारकातो क्या ठिकानाहै * प्यारेपाठक गण ख्याल करनेकी बातहै यह गप्पनहींतो और क्या है! फिरदेखो महात्मा पार्वतीजीका वार्तालापभी स्वामीजीहीने सुना, और

* यहसब भंगके नशेकी लीला और मनकल्पना है.

उनको आतेहुयेभी स्वामीजीनेही देखा, औरजोमनुष्य वहाँथे सब सोगयेथे अथवा अन्धे थे। मालूम होता है कि जब महादेव और पार्वतीभी सगुणरूप संसारमें विद्यमानथे स्वामीजीने अवश्य देखेहोंगे जो शीघ्रतासे पहचानलिये नहींतो स्वप्नेमें देखीवस्तु बिना पूर्वज्ञानके पहचानीनहींजासक्ती। और जोयह मानलियाजाय कि स्वामीजीने महादेव पार्वतीजीको उनकी मूर्तिके सहारेपर सदृशहोनेसे पहचानाथा तोइस्से मूर्तिपूजा सिद्धहोगई, फिर स्वामीजी उसका खंडनकरते लज्जित नहींहोते यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै। और यहभी असम्भवहै कि बड़े २ भयानक और सघन वनोंमें जहाँ पेटके बलभी चलनापड़ा आपको एक चूहीका बच्चाभी नमिला, किंतु बस्तीके निकट एक भालू (रीच्छ) ने घेरलिया। हा! ऐसी २ झूठी गप्प लिखकर सत्यवक्ता अथवा "सत्यार्थप्रकाश" कर्ता बना स्वामीजी कोही आवाया। जोस्त्री पूजाका सामान लेकरआई उसको आप भूखमरते खागये जो महानिर्धन गरीबलोगोंका भाग है, और वहभी केवल गुड़ और दहीथा, कोई उत्तम भोजन नहींथा, परन्तु जिस मनुष्यने दुग्ध पिलाया उसका भोजन इसलिये नहीं खाया कि वह मूर्तिपूजकथा, कितने आश्चर्य्यकी बातहै। अबहम स्वामीजीकी स्वहस्त लिखित व्यर्थ कहानीको छोड़के जोकुछ यथार्थहै वही लिखेंगे। आगेचलकर इस पुस्तकमें हमारी युक्तिप्रमाण अन्यग्रन्थलेखादिकका संग्रह यहीहोगा विशेष औरकुछ नहोगा।

(स) अब पिछलीबारभी शिवभजन छलकपटहीसे भागातो मातापिता नेभी संतोषधार कुछ पीछानहींकिया, इधर यह महात्माभी दबते छुपते साधुओंके संगमें नानाप्रकारके कष्ट सहनकरते अनेक स्थानोंमें घूमे। जहाँ किसीप्रकारका सहारा मिला उसी सहारेपर विपत्तकेदिन काटे। जिसको विद्वान देखा उसीकीसेवा चाकरी कर विद्याकालाभ उठाया, जहाँ किसीमहात्माका पतालगा उसीकी ढूंढ़ पुरूप समझी, निदान इसदेशाटनके समयहीमें एक पूर्णानन्दसरस्वती (जिसका दूसरानाम आनन्दगिरी भी है) नाम सन्यासी मिला, कुछदिन उसके पासरहकर विद्यापढी तब "सरस्वती" इतना पुछल्ला अपनेनामकेसाथ लगा मातापिताकादिया पिछला शिवभजन * नाम छोड़ दयनन्दसरस्वती नयानाम पाया, यह पूर्णानन्द सरस्वती क्रोधीपुरुष था, अब स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी गुरुसे नहींबनी तो फिर

* गुजरातदेशमें पिताकेनामको मिलाकरबोलाजाताहै असलनामशिवथा और पिताकानाम भजनथा। दादाकानाम हरिथा इसलिये भजनहरेकापुत्र शिवभजन पुकारागया और शिवही का नाम मूल बाकर्है।

यहाँसे इनके देशाटनका आरम्भ हुआ; और देश देश नगर ग्राम घूमते यह पूर्वको चले यहसमय ठीक २ इनकी२६ वर्षकी अवस्थाकाहै,उससमय सम्वत् १६१०था, जब यह पूर्णानन्द के पाससे चले किसी भी धर्म्मपर विश्वास नहींरखतेथे, किंतु इनके चित्तकी चंचलता दिनोंदिन नये २ विश्वासोंमें डाल भ्रम उपजारहीथी, यद्यपि इनको संस्कृत विद्याका अच्छा बोध होगयाथा, परन्तु इससमय इनकाचित्त जो किसीधर्म्मका अनुरागी नहींथा इसलिये यह चारोंवेदोंकोभी भ्रमदृष्टिसेही देखतेथे। इनके इस चित्तकी चंचलताने घरघर की भिक्षासे गुजरानकरा, इनको सम्वत् १६११ के कुम्भके मेलेमें हरिद्वारपर पहुंचाया जहाँ देशदेशान्तरके आयेहुये साधुसंत और गृहस्थी लोग कईलक्ष एकत्रितथे। स्वामीजीने गुप्तरूपसे भेदपाया कि इसमेलेमें कुछमनुष्य ऐसेभी आयेहैं जोमेरे पिछलेकार्य्यसे भेदूहैं, बस तत्काल भयमान जङ्गलका मार्गलिया और हृषीकेश,बद्रकाश्रम, केदारघाट आदि अनेक विकट और भयानक मार्गोंको देखते विचरते राजधानी टिहरीमें आये औरयहाँ अच्छेअच्छे कर्मेष्टी विद्वानोंकी अधिकतादेख मसन्नतासहित कुछदिन रहकर उनसे मेल बढ़ाया,परन्तु जब अनेकपंडितोंसे अधिक प्रीतिहोगई तो यहभी स्पष्टरूपसे सिद्ध होगया कि यहसब वाममार्गीहैं, जो माता,भगिनी,पुत्री प्रभृतीसे विषयसेवने मांस खाने मदिरापीने आदि नीचकार्य्योंहीमें धर्म्म समझतेहैं। जब स्वामीजीको वाम मार्गियोंकी पोलखुली तबतो इनसे अत्यन्त घृणाहुई,तत्पश्चात् स्वामीजीने उत्तराखंड की विषमभोमिका अविगाहनकर जोशीमठ पहुंच कुछदिनकेलिये आसनजमाया, इसपरिभ्रमणके समय यह बैरागी, योगी, दण्डी, सन्यासी, ब्रह्मचारी, आदि अनेक महात्माओंसेमिले, और उनकेसंग अपने संस्कृत विद्यासीखनेके उमंगमें और उद्यमको पूराकरनेमेंरहे,परंतु किसीधर्म्मसे इनको शांतिनहींमिली, । जिसवेदमें यह परमेश्वरके व्यतिरिक्त दूसरेकी पूजाकरनेकी आज्ञानहीं बतलाते उसवेदको यह उस समय पढ़तोचुकेथे,परंतु फिरभी उसकेलेखसे अविश्वासी होकर कभी शैवी,कभीवैष्णव कभी वेदान्ती, कभी कुछ कभी कुछ गुप्तभावसे रहते रहे, इससे यहभी सिद्धहोताहैकि जब मतमतान्तरके देख भाल और व्यर्थ झगड़े में पड़कर इनको कल्याणकारी मार्ग नहीं मिला और सन्स्कृत विद्याने इनकी बुद्धि में अपना चमत्कार फैलाया तो यह विशेष विद्योपार्जनके अभिलाषी हुये पुनः देशाटन नहींमनमें, और सम्वत् १६१६ व १६१७में जब कुछ दुर्भिक्ष सम्भव हुआ यह मथुराजी में आये और जोशीबाबा के धर्म्मक्षेत्रमें डेराजमाया,और इसीक्षेत्र में रसोई खाते और अपने आपको गुजराती

आमण मसिद्धकरतेथे, यहाँ स्वामीजीने सुजानन्द नामी अन्येसासुसे (जिसने इन को पुस्रवनालियाया) पिक्लापढा लौटाकर बहुत समयतक औरमीपढा, क्योंकि यहसुजानन्दजी अच्छे विद्वानपुरुषथे। अब दुर्भिक्षकालहुआ और साधारणसमय हुआ तब पुनः कुंभकेमेलेका आगमन हुआ यह मथुराजी * से चलकर आगरेमेंआये बाबूसुन्दरलाल डाकविभागकेप्रधानके मकानपर कुछदिन आरामकिया, क्योंकिउक्त बाबूजीको योगाभ्यासका अत्यन्तप्रेमथा, और स्वामीजीको वह योगाभ्यासी समझे हुयेथे। फिर स्वामीजी, भरतपुर करौली, अलवर, जयपुर, आदिक रजवाड़ोंमें घूमते फिरतेरहे, परंतु इसदेशाटनमें कुछ विशेषलाभ नहींहुआ, हां! यह लाभतो अवश्य हुआकि जिसग्रयसे यह अबतक गुप्तरहे उसका अब नाममात्रभी खटका रहगयाथा, और यही इनको निश्चयभी होगयाथा, सम्वत् १९२१ के चैत्र कृष्णपक्षमें एक सन्यासियोंकी सजत रजवाड़ेसे आनकर फर्रुखनगरकेपास एकबागमें ठहरी † इनमें स्वामी दयानन्द सरस्वती भीथे, नगरमेंघूमते विद्वानोंको ढूंढते स्वामीदयाचन्द ‡ जैन ढूंढियापंथीके मकानपरआये, वादानुवाद करके चलेगये, स्वामीदयाचन्द ढूंढियेकी जितनी प्रसिद्धतायी उतनीविद्यानहींथी, इसलिये स्वामी दयानन्दसरस्वतीको इनसे मिलकर विशेष आनन्द नहींहुआ, और अगलेदिन सबसन्यासीगण देहलीको चलेगये, § और सम्वत् १९२४ के हरिद्वारकुम्भके मेलेमें आमिले, कर्मयोग इस मेलेमें विशूचिकारोग ऐसाप्रचंडहुआ कि असंख्य मनुष्य, स्त्री, बाल, वृद्ध मृत्युको पागये, उससमय उक्त स्वामीजीभी शीघ्रतापूर्वक आनबचाकर उत्तराखण्डको चले गये तथा तनपरजोवस्त्रादिकथे, वे त्यागकर केवल कोपीनधारी विचरनेलगे, और पहाड़ोंमें रहकर कुछसमय व्यतीतकिया, परन्तु फिर मनमेंविचार आया कि एकस्थान पर रहना उचितनहीं अभीतो बहुतकुछकरनाहै, जोविद्यापढीहै उससेभीतो कुछलाभ उठाऊँ, यहविचार अलीगढ, मतूपशहर, होतेहुए कानपुर पहुंचे। यहाँके पण्डितलोगोंमें लक्ष्मण शास्त्री और हलधर ओझासे शास्त्रार्थहुआ जिसकेमध्यस्थ 'टबस्यूथेअर्स'

---

* मथुरामेंभि रहकर स्वामीजी बल्लभकुलके गोस्वामियोंको देखतेथेतो उनकीविधिचलीलापर मन]मनमें अनेककुतर्क विचारे परंतु द्रव्यकी सहायताबिना कुछनहुआ

† यहसब सन्यासी हरिद्वार को जातेथे ॥

‡ फर्रुखनगरके ढूंढिये जैनियोंमें स्वामीदयाचन्दनामी और प्रतिष्ठितपुरुषथे गोमार्गोंविर्ष सम्वत १९२९ में गये ॥

§ यहां दयानन्दसरस्वती सन्यासी नयेहुयेथे परंतु सबहमने इनको सन् १८७७ ई० में दिल्लीदरबारके अवसरपर देखातो पूरे अमीर बनेहुयेथे ॥

असिस्टैंट कलक्टर हुएथे। सो यद्यपि कानपुर के पण्डित लोगों को स्वामीजी के कहने पर सन्तोष और विश्वास तो न हुआ, लेकिन मध्यस्थ महाशय ने अपनी निम्न लिखित अंग्रेजी चिट्ठीमें स्पष्टरूपसे स्वामीदयानन्द सरस्वती की जीत दिखलाई है *

TRUE COPY

CAWNPORE

GENTLEMEN

At the time in question I decided in favour of Daia Nand Sarasswati, Fakir, and I believed his arguments in accordance with the Veds I think here on the day If you wish it I will give you my reasons for my decision in a few days

Yours Obediently,

(Sd) W. THAIRC;

अंग्रेजी चिट्ठीका अनुवाद (तर्जुमा)

मैंने इससमय दयानन्द सरस्वती फकीरकी जीतका निश्चयकिया मेरेयकीनसे उसकासबकहना वेदानुकूलहै, इसलिये मैंकहताहूं कि अवश्य उसकीजीतहुई। यदि किसीको मेरेकियेनिर्णयका प्रमाण अपेक्षित होतो मैंथोड़ेदिनोंमें अपनी सब दलीलें लिखदूंगा जिनसे मैंने स्वामीजीकी जीत प्रसिद्धकीहै ॥ †

स्थान कानपुर खास }
ता० १७—८—१८६६ ई० }

{ द० आपका सेवक "डबल्यू थेअर्स"
{ असिस्टैंट कलक्टर कानपुर

* अनुरागाहरमें एकवैरागीने स्वामीजीको गालीदी तोउनकेरागियोंने इसकी मातादिना उसे अदालतमेंमदारीमें कैदकराटियाथा जो अपीलमें बरीहुआ

† देखो दयानन्ददिग्विजय भागदूसरा पृ० १५७ ॥

जबस्वामीजी को असिस्टैंटकलक्टर कानपुरने सराहातो अपनेमनमें आप ब दे खुशहुये अत्यत हर्षमाना, और अबतो आप अष्टादश पुराणोंको उच्चेस्वरसे मिथ्या और कल्पित स्वार्थी पण्डितोंके बनाये कहनेलगे, और केवल इक्कीश २१ शास्त्रोंही को ईश्वरकारचा माननेलगे। जिन २१ शास्त्रोंको उन्होंने सत्य और ईश्वरकारचा माना उनका संस्कृत विज्ञापन निज अपनी लेखनीसे लिखकर स्वामीजीने कानपुर के "शौलेतूर" छापेखानेमें छपवायाथा, सो ज्योंकात्यों नीचे लिखाजाताहै *

श्रीरस्तु ॥ ऋग्वेद १ यजुर्वेद २ सामवेद ३ अथर्ववेद ४ एतेषु चतुर्षु वेदेषु कर्म्मोपासना ज्ञानकाण्डानानिश्चयोमि ॥ तत्र सन्ध्या वन्दनादिरश्वमेधान्त कर्म्म काण्डो वेदितव्य यमादि समाध्यन्त उपासना काण्डश्च बोधव्य । निष्कर्म्मादि परब्रह्म साक्षात्कारान्तो ज्ञान काण्डो ज्ञातव्य ॥ आयुर्वेद ५ तत्रचिकित्साविद्यास्ति ॥ तत्र चर्कसुश्रुतौद्वो ग्रंथौ सत्यौ विज्ञातव्यौ ॥ धनुर्वेद ६ तत्र शस्त्रास्त्र विद्यास्ति ॥ गंधर्ववेद ७ तत्र गानविद्यास्ति ॥ अथर्बवेद ८ तत्र शिल्प विद्यास्ति ॥ एतेचत्वारोवेदानामुपवेदा यथासंख्यंवेदितव्य ॥ शिक्षावेदस्था ९ तत्र वर्णोच्चारण बिधिरस्ति ॥ कल्प १० तत्रवेद मंत्राणामनुष्टान विधिरस्ति ॥ व्याकरणम् ११ तत्रशब्दार्थ सम्बन्धाना निश्चयोस्ति तत्रद्वौग्रंथौवष्टाध्यायी व्याकरण महाभाष्याख्यौ सत्यौवेदितव्यौनैरुक्तम् १२ तत्रवेदमंत्राणा नि

---

* एक पेएकाड हमारे पास दफ्तर देवधर्म्म विधान आफिस लाहौर स भ था जिसमें लिखा है कि उक्त सम्हत मोठस सन् १८७० ई० का छपा हुआ म लूम पडता है क्योंकि कुन्हीं दिनों में हमको मिलाथा,

रुक्तंय संति ॥ छन्द १३तत्रगायत्र्यादिछन्दसां लक्षणानि संति ज्यौतिपम् १४ तत्रभूतभविष्यद्वर्तमानाना ज्ञानमस्ति ॥ तत्रैकाभृगुसंहिता सत्यावेदितव्या ॥ एतानि षटवेदाङ्गानि वेदतव्यानि ॥ इमाश्चतुर्दशविद्याश्च॥ ईश केन कठ प्रश्न मुण्ड माण्डुक्य तैतर्य्यैतरी छान्दोग्य वृहदारण्यक श्वेतास्वतर्कैवल्योपनिषदो द्वादश१५अत्र ब्रह्मविद्यैवास्ति॥ शारीरकसूत्राणि १६तत्रोपनिषन्मन्त्राणा व्याख्यानमस्ति कात्यायनादीनिसूत्राणि १७ तत्र निषेकादिस्मसानान्ताना सस्काराणांव्याख्यानमास्ति ॥ योगभाष्यम् १८ तत्रोपासनाया ज्ञानस्यच साधनानिसंति ॥ वाको वाक्यमेको ग्रन्थ १९ तत्रवेदानुकूला तर्कविद्यास्ति ॥ मनुस्मृति २० तत्रवर्णाश्रम धर्म्माणाव्याख्यान मस्ति ॥ वर्णसकर धर्म्माणाञ्च महाभारतम् २१ तत्र शिष्टाना जनाना लक्षणानिसंति ॥ दुष्टानाजनानाञ्चएतान्येकविंशति शास्त्राणि सत्यानिवेदितव्यानि ॥ एतेष्वेकविंशतोशास्त्रेष्वपिव्याकर्ण वेद शिष्टाचार विरुद्धम् यद्वचनं तदप्यसत् एतेभ्य एकविंशतिशास्त्रेभ्योये भिन्नाग्रथा संतिते सर्वे गप्पाष्टकारयावेदितव्या गप्ट मिथ्यापरिभाषणे ॥ तस्मात् प्रत्य गप यतेयतद्गप्पम् ॥ अष्टौगप्पानियत्रास्पुर्गप्पाष्टक तद्विदुर्बुधा अष्टौ सत्यानि यत्रैवतत्सत्याष्टकमुच्यते का न्यष्टौ गप्पानीत्पत्राह मनुष्य कृता सर्वे ब्रह्म वैवर्त पुराणाद्या

ग्रंथा प्रथमं गप्पम् १ पाषाणादिपूजतं देवबुद्या द्वितीयं गप्पम् २ शैव शाक्त वैष्णव गणपत्यादय संप्रदाया स्तृतीयं गप्पम् ३ तंत्र ग्रन्थोक्तो वाममार्गश्चतुर्थं गप्पम् ४ भंगादि नशा करणं पञ्चमं गप्पम् ५ परस्त्री गमं षष्ठं गप्पम् ६ चौरीति सप्तमं गप्पम् ७ कपट छलाभिमानास्टतभाषाणमष्टम गप्पम् ८ एतान्यष्टौ गप्पानि त्वक्तव्यानि॥ कान्यष्टौ सत्यानीत्यत्राह। ऋग्वेदादीन्येकविंशति शास्त्राणि परमेश्वर रचितानि प्रथमं सत्यम् १ ब्रह्मचर्य्याश्रमेण गुरुसेवा स्वधर्म्मानुष्टान पूर्वकं वेदाना पठनं द्वितीयं सत्यम् २ वेदोक्त वर्णाश्रम स्वधर्म्म सध्या वन्दनाग्निहोत्राद्यनुष्टानं तृतीयं सत्यम् ३ यथोक्तदाराधिगमनं पंचमहायज्ञानुष्टान मृतुकाल स्वदारोप गमनम् श्रौतस्मार्ताचाराद्यनुष्टानं चतुर्थं सत्यम् ४ समदमुतपश्चरण यमादि समाध्यन्तोपासना सत्संग पूर्वक वानप्रस्थाश्रमानुष्टानं पंचमं सत्यम् ५ विचार विवेक वैराग्य परा विद्याभ्यास सन्यास ग्रहण पूर्वकं सर्व कर्म फल त्यागाद्यनुष्टानंषष्टंसत्यम्॥६॥ज्ञान विज्ञानाभ्यासर्वानर्थ जन्म, मरण, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, संरादीषत्यागानुष्टानं सप्तमं सत्यम् ७ अविद्यास्मिता रागद्वेषाभिनिवेश तमो रज सत्व सर्व क्लेश निवृति पंचमहाभुतातीत मोक्ष स्वरूप स्वाराज्य प्राप्ति अष्टम सत्यम् ८ एतान्यष्टोसत्यानि ग्रहीतव्यानि ॥ इति ॥

{ दयानन्दसरस्वत्याख्येनेदम्पत्र रचितमुत्तमं }
{ तत्सज्जनैर्वेदितव्यम् "शोलेपूर" मध्यपा * }

(इसका भावार्थ) ऋग्वेद १ यजुर्वेद २ सामवेद ३ अथर्ववेद ४ इनचारों में कर्मउपासना और ज्ञानकाण्डका निश्चयहै, सन्ध्या उपासना से लेकर के अश्वमेधयज्ञतक कर्मकाण्ड समझना चाहिये, और यमनियम से लेकर समाधितक उपासनाकाण्ड जानना चाहिये, निष्कामकर्म से लेकर ब्रह्मके साक्षात्कारान्त ज्ञानकाण्ड जानाचाहिये, पांचवें आयुर्वेद यह चिकित्साविद्या है, इसविद्यामें चरक सुश्रुत दो सर्वग्रन्थ मानेचाहियें, छठा धनुर्वेद इसमें शस्त्र और अस्त्रविद्याहै, सातवां गन्धर्ववेद इसमें गानेकीविद्याहै, आठवें अथर्ववेद इसमें शिल्प (कारीगरी) विद्या है, यह चारोंउपवेद समझने चाहियें,और नव (९) शिक्षाग्रन्थहैं जिनमें अक्षरोंके पढ़नेकी रीति वर्णितहै, दसवें कल्पशास्त्र इसमें वेद, मंत्रो को किस किस कार्य में पढ़ना इसकी विधि लिखीहै, ग्यारहवें व्याकरण इसविद्यासे शब्दोंके अर्थोंका संबंध निश्चयहोताहै, इसमें दो ग्रन्थहैं, अष्टाध्यायी, औरमहाभाष्य औरयहीसत्यहैं, बारहवें निरुक्ति, इसमें वेदमंत्रोंकी निरुक्तियाँ अर्थात् वेद, मंत्रों के शब्दोंकी विवेचनाहै, तेरहवें छन्द इसमें गायत्र्यादि छन्दों का सविस्तरवर्णन है, चौदहवें ज्योतिष् इसमें भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालों का ज्ञान है,इसमें एकपुस्तक भृगुसंहिता सत्य है, यह छह वेदांग समझने चाहियें, और चौदः विद्याभी इनही को कहतेहैं, ईश १ केन २ कठ ३ प्रश्न ४ मुण्ड ५ माण्डूक्य ६ तैत्तर्य ७ ऐतर्य ८ छान्दोग्य ९ बृहदारण्यक १० श्वेता ११ सत्य १२ केवल बारहउपनिषदहैं, इनमें ब्रह्मविद्याहीहै, सोलहवें शारीरक सूत्राणि इनमें उपनिषदोंके मंत्रोंके भेदाभेद लिखे हुयेहैं, सतरहवें कात्यायनादिसूत्रहै, इसमें गर्भाधान से लेकर मरने तकके जोकुछ आचार व्यवहार हैं सोलिखेहैं, अठारहवें योगाभ्यास इसमें उपासना और ज्ञानके साधनहैं, उन्नीसवें मीमांसक ग्रन्थ इसमें वेदानुसार तर्कविद्याहै, और तर्ककरनेकी रीतिहै,बीसवें मनुस्मृतिः इसमें वर्णाश्रम धर्म्मका वर्णन और वर्णसंकरोंका व्याख्यानहै,इक्कीसवें महाभारत इसमें भले बुरे मनुष्योंके लक्षणोंका वर्णनहै, यह इक्कीसशास्त्र ‡ सत्यहैं, इन ग्रंथों

---

* इस विज्ञापन के संस्कृत में जो अशुद्धियां रहगई हैं, हम नहीं कहसके कि स्वामीजीसे रहगई या छपने में होगई हों !

‡ यहां स्वामीजीने स्पष्टरूप से २१ शास्त्रोंको परमेश्वरके रचेमानाहै, परन्तु आर्य— समाज स्थापित करने समय सतरह (१७) को छोड़ केवल चारही वेद और उनमें से भी केवल मन्त्र भागहीको ग्रन्थ कहनेलगे यह। क्या कहते हैं .

में भी व्याकरण वेद शिष्टाचारसे जो विमुख है सोभी मिथ्याहै, और इनके उपरांति और सच गपाष्टकहै, गप्लृरी धातु वाक्यार्थ है, उस्से प प्रत्यः होताहै, सो गप्प बन भावाहै, अष्ट गप्प जिसमेंहों उसको गपाष्टक कहतेहैं, अष्टसत्य जिसमेंहों उसको सत्याष्टक कहतेहैं, अब आठों गप्पोंका वर्णनहै, मनुष्योंके रचित ब्रह्म वैवर्त पुराणादि ग्रन्थ पहिलीगप्प १ देवता समझकर पाषाणादि प्रतिमाँ पूजना दूसरीगप्प २ शिव शक्ति विष्णु गणपत्यादि सम्प्रदाय तृतीयगप्प ३ तंत्रग्रन्थोंमें लिखाहुआ वाममार्ग चौथीगप्प ४ भंगआदि नशा करणा पांचवीं गप्प ५ परस्त्री गमन † छठी गप्प ६ चोरी सातवीं गप्प ७ कपट छल अभिमान इत्यादि ‡ आठवीं गप्पहै, ८ आठ सत्य यहहैं, पूर्वोक्त ऋग्वेदादि इक्कीशशास्त्र परमेश्वरके रचेहुयेहैं यह पढ़नासत्यहै, १ ब्रह्मचर्य्याश्रम से गुरुसेवा और अपने धर्म्मपर चलकर वेदोंका पढ़ना दूसरा सत्यहै, २ वेदोक्त वर्णाश्रम धर्म्म सन्ध्यावन्दना अग्निहोत्रादि तीसरासत्यहै, ३ विवाहिता स्त्रीकेपास ऋतुकेसमय गमनकरना और पांच महायज्ञोंका अनुष्ठान करना श्रुति स्मृतिमें कहीहुई बातोंको यह चौथासत्य है, ४ सम, दम, तप, यम, और समाधितक उपासना सत्संग वाणप्रस्थाश्रम अनुष्ठान यह पांचवाँसत्यहै, ५ विवेक वैराग पराविद्याओंको पढ़ना और सन्यास ग्रहणकरके सम्पूर्ण कर्म्मोंके फलको छोड़देना यह छठासत्यहै, ६ ज्ञान और विज्ञानसे सारी बुराई जन्म, मरण, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, संग दोषोंको छोड़देना सातवाँ सत्यहै, ७ अविद्या, अभिमान, रागद्वेष, अभिनवेश, तम, रज, सत, ℍ आदि बाधाओं से बचना और पांच महाभूतों से परे मोक्षस्वरूप जो अपनाराज है उसको प्राप्तिकरना यह आठवाँसत्य है, ८ यह आठसत्य ग्रहणकरने चाहियें ॥

(दयानन्द सरस्वतीने यह पत्ररचाहै सबसज्जनों के जानने के लायक)

बस स्वामीदयानन्द सरस्वती पूर्वोक्त २१ शास्त्रों केही सहारेपर देशदेशान्तर के पंडितों से वादानुवाद करते और झगड़ते फिरे, परन्तु इसके सिवाय और कुछ फलप्राप्त नहुआकि उनका नाम समाचारपत्रोंद्वारा भारतमें प्रसिद्ध होनेलगा, तथा अनेक सभाओं में इनकी चर्चाहोनेलगी । अबतो इनको यह खयाल पैदाहुआकि जबतक कोई ऐसा कार्य्यनहो जिसमें पावटेकनेका सहारा नहो मेरी गुप्त आशा

† यहांतो आपने परस्त्रीका निषेधकिया परन्तु 'सत्यार्थप्रकाश' में नियोगकी आज्ञादेदई

‡ क्या स्वामीदयानन्द सरस्वतीने चोरी छल कपट झूठ आदिक त्यागदियेथे ?

ℍ यहांआपने सतोगुणभी त्यागनेयोग्य कहदिया हां क्याअच्छोनुदिहै जब सतोगुणही त्यागदिया फिर रहाक्या बिनागुणभी कोई पदार्थ होसकाहै ?

मनोकामना फलितहोनी कठिन है, पस इसी ध्वनिमें निमग्न होकर आपने सेठ साहूकारोंकी सहायतासे पाठशालाओंके प्रचारका बीड़ाउठाकर प्रथम पाठशाला सम्वत् १९२६ के प्रवेशमें फर्रुखाबादमें स्थापितकरी और कुछ दिन यहीं ठहरेभीये ॥

और उनको यहभी खयालया कि भारतवर्षमें काशीकी विद्वत्ता अधिक प्रसिद्धहै, सो जबतकमें काशीके पंडितोंसे विजयमाला नकरलूं मेरीमतिष्ठा नहींबढ़ेगी पस इसी विचाराधीन होकर काशीपहुंचे, और कार्तिकशुक्ला १२ भौमवार सम्वत् १९२६ को स्वामीविशुद्धानन्द वा बालशास्त्री आदि अनेक पंडितोंसे वादानुवाद किया परन्तु प्रकट पणे विजय किसी पक्षकीभी नहींहुई,दोनोंदल अपनी२ विजय मान बैठरहे, इसविषयमें भारतेन्दु बाबूहरिश्चन्द्रजी ने अपनी बनाई "दूषणमालिका" नाम पुस्तककी भूमिका में प्रथमही यह लिखाहै ॥

अब दयानन्द नामी क्या जाने कौनजाति वा किस आश्रमके कोई नग्नपुरुष सब देशोंमें भ्रमणकरतेहुए, सनातन धर्मरूपी सूर्यको राहुकी भांति ग्रास करते हुवे, मूर्खों और आलस्यसेभरेहुए जीवोंके हृदय बरको अपने रंगमें रंगतेहुए, इसी बहाने से अपनानाम लोगोंमें विदितकरतेहुए, और अपने वाक्य बाणके आडम्बरसे साधुलोगोंका हृदय दहन करतेहुए काशीमें आये इत्यादि । इत्यादि ० ॥

सन् १८७० ई० काशी] (हरिश्चन्द्र)

तथा मित्रविलास पत्र संख्या १७ खण्ड १२ तारीख १२ नवम्बर सन् १८८८ ई० पृष्ठ ४ पंक्ति २२ में यह लिखाहैकि"

पिशाचगमें रहनेवाले मुरलीधरने काशीनरेशकी सभामें भस्मी रंगमरे ऊपर बनारस रामबागमें पौषके महीने में सम्वत् १९२६ में दयानन्दको पराश कियाथा, और रात्रि के नौ (९) बजे महादुर्दशा कीनीथी * ॥

इत्यादिक लेखोंसे तथा स्वामीजीके स्वत छपायेहुये शास्त्रार्थ काशी से यही सिद्धहोताहै कि प्रथमवार काशीजानेसे स्वामी दयानन्दसरस्वती को कुछभी लाभ न हुआ, और यह घूमतेहुये कलकत्ते पहुंचे, वहां बाबू केशवचन्द्रसेन † से इनकी मुलाकात हुई, और उक्त बाबूजीने स्वामीजीको समझायाकि यदि आप पंडितलोगोंसे वादानुवाद न करके अपना अभिप्राय लेकचर (व्याख्यान) के तौरपर किसी मुख्य

* इनके मुख्य ... पंडितोंने अपनी विजयपताका उर्ध्व करने के लिये ... दयानन्दसरस्वती ... "दयानन्दपराभूति" "दुर्जनमतमर्दन" नामक दोपुस्तक ... मासमें ... छापाखानेमें छपवाई थी

† बाबू केशवचन्द्रसेन ... ब्रह्मसमाजी ... पुरुष थे

स्थानपर बैठकर वर्णन कियाकरो तो उत्तम हो, श्रोतागण प्रीतसहित सुणने को आवैं और किसीसे द्वेषभीनहोय, और न ऐसा करना किसीको बुरालगे। यह उपदेश स्वामीजीको अत्यन्त प्यारालगा, और इसीके सहारे चलपड़े, कल कत्ते से लौटकर आपने मिर्जापुर, छलेश्वर, कासगंज * मेंभी पाठशाला स्थापित करी जिनमें मुख्यविद्या व्याकरणथी, और किसी अध्यापक का १०) रुपया मासिक और किसीका २०) रुपया नियतकरदियाथा, और एक एक मास दो दो मास में दौरा करके आपभी इनकी सार संभाल स्वतः करते फिरते रहतेथे ॥

इसीप्रकार जब अधिकसमय व्यतीत होगया तो आपने फिर विचार किया कि केवल पाठशालाओं के स्थापित करनेहीसे मनोकामना सिद्ध नहीं होसक्ती, अब कुछ नवीन ग्रन्थभी लिखेजावें तोठीकहो,परन्तु ग्रन्थ लिखेभी जायँ और छपने केलिये द्रव्यकी सहायता नमिले तोभीठीकनहीं,वस इसीविचारमें फिर देशाटनको उद्यमीहुये, और सम्वत् १९२८ हीसे पुस्तक "सत्यार्थप्रकाश" का प्रारम्भकर थोड़ा २ लिखतेरहतेथे। सो जबउसकापूर्वार्द्ध पूराहोगया तो कानपुरकेरईस राजा— जयकृष्णदास इसकेसहायक बनगये, और अपनी चिट्ठीसहित स्वामीजीको काशी भेज पुस्तकछपनेका प्रारम्भ करादिया, इसमें द्रव्य राजाजयकृष्णदासजी का लगताया, और प्रूफसीटवा संशोधनकाकाम स्वामीजी आपकरतेथे, इधर इसीकार्य्य के सहारेपर काशीके विद्वानोंसे वादानुवाद शास्त्रार्थभी करतेरहतेथे, ।

यहाँ इतना और लिखाजाना उचितहैकि जिन २१ शास्त्रोंको स्वामी दयानन्द सरस्वती ईश्वरका रचा मानकर कानपुरमें उसका छपाहुआविज्ञापन बाँटचुकेथे,पुस्तक "सत्यार्थप्रकाश" लिखतेसमय उनकाभी विश्वास त्यागचुकेथे, क्योंकिउन्होंने विचारकियाकि व्याकरण और महाभारत और मनुस्मृति आदि ग्रन्थोंको ईश्वररचित कहनेसे कामनहींचलता, और यहसत्यभीहैकि जब महाभारत और मनुस्मृति और उपनिषधादि ग्रथही ईश्वररचितनहीं, तो अन्यशेष ईश्वररचित क्योंकर होसक्तेहैं, परंतु स्वामीजीने विचाराकि जोहम सम्पूर्णशास्त्रोंका विश्वास त्यागदेंगे तोब्रह्मसमाजियोंमें गणनाकियेजावेंगे, और फिरउनलोगोंको जो शास्त्रोंकेवचनोंपर विना विचारे अज्ञानहठकर श्रद्धारखतेहैं हम अपनीतरफ खैंच नहींसकैंगे, भावार्थ उनका स्वाधीनकरना कठिनहोजायगा, इसखयालसे अब स्वामीजीने प्रगटरूपसे वेदोंकी चारसंहिताओंहीको ईश्वररचित वर्णनकिया, और पश्चमोत्तरीय भारतवर्षमें घूमकर

* कासगंजमें दयानन्दसरस्वतीकी पाठशाला ज्यष्ठ सम्वत् १९२ में स्थापितहुईथी ॥

व्याख्यान देनेलगे, सम्वत् १९२९में स्वामीजी पुनः कलकत्ते पधारे, पंडित ताराचरण गाँव भाटपाड़ेके रहनेवालेहैं, जो हुगलीकेपारहै, परंतु यह महाशय काशीनरेशके निकट बनारसमें रहतेहैं, आजकल अपनेदेशमें आयेथे, और कलकत्तेमें राजाज्योतिन्द्र मोहन ठाकुर के मकानपर ठहरेथे, यद्यपि इनसे स्वामीजीका शास्त्रार्थ कार्तिकशुक्ला १२ सम्वत् १९२६में काशीके पण्डितोंसहित होतारहा लेकिन जब स्वामीजीने सुना कि उक्त ताराचरणजी कलकत्तेमेंभी आयेहैं, तो इस प्रसिद्धनगरमें अपनानाम प्रसिद्ध करनेकी अभिलाषासे उनकेमकानपर जाकर शास्त्रार्थकी ठहराई, परंतु प्रणाम व्यर्थही रहा, यहाँभी दोनोदल अपनी २ विजयका डंकाबजातेरहे, यथार्थ हार जीत किसीकीभी नहींहुई, कलकत्तेसे लौटकर स्वामीजी फिर काशीमें आये और "सत्यार्थप्रकाश" का मूफसीट करनेलगे।

मंगलदेव पराजयके पृष्ठ ४ पंक्ति २४ में लिखाहै कि"

"जिसदिन स्वामीजी वनसे आयेथे भोजनका सहारा और शरीरपर वस्त्रवकमी नथा, खंडन मंडनहीकेद्वारा धनीबनगये और आनन्द भोगे"

सम्वत् १९२९ व १९३० में यह काशीकेनिकटही विचरतेरहे, जब कुछ द्रव्यकी सहायतामिली और उज्वलमनुष्योंकेपास पैठने उठनेका समागमहुआ, तो स्वामीजीने लंगोटीबाँध नंगाफिरना छोड़कर अच्छे २ वस्त्र और बहुमूल्य जूता व छत्ता स्वीकारकिया, और खानपानभी शनैः शनैः ऐसा बदलगयाकि स्मूणारमाल खानेलगे, पिछलेसमय सन्यासधर्म्ममें जो कुछकालतक उत्तम पदार्थोंसे वञ्चितरहेथे उसकीभी कसर निकालनेलगे, और यहकहलावत प्रकट सिद्धकरदिखलाई,

"अबतो आरामसे गुजरतीहै, आक़बतकी ख़बर खुदाजाने"।

(شعر) ——— (اب تو آرام سے گذرتی ہے — عاقبت کی خبر خدا جانے)

राजोंकेसमान सुखभोगनेलगे, सहस्रों मनुष्योंपर हुकूमत करनेलगे, लक्ष्मीकीप्राप्ति और अधिकता दिनोंदिन होनेलगी, निवाड़के पलंगपर सोनेलगे बड़े २ तकिये लगायेजानेलगे, सैकड़ों पुरुष चरणछूनेलगे, रसोईमें षटरसभोजन पकनेलगे, हाथपाँव धुलवानेको कहार खड़ा रहनेलगा, लेखक लोग निरन्तरकाराम करनेलगे, इत्यादि॥

जब सन १८७५ ईस्वी मुताबिक सम्वत् १९३२में प्रथमवार "सत्यार्थप्रकाश" छपकर प्रचारहोगया तो स्वामीजी बड़े खुशहुये॥ *

---

* सत्यार्थप्रकाशका कुछ समालोचना आगेचलकर लिखेंगे और यह पुस्तक पूर्णरूपसे छप करके सन् १८७५ ई० में तय्यारहुईथी परंतु मूफसीटआदि कार्य्योंसे स्वामीजीने सन् १८७४ ई० में पूराकरलियाथा॥

इसपुस्तकमें प्रथमहीप्रथम ६ पृष्टतो शुद्धाशुद्धपत्रके लगायेहैं ॥

फिर पृष्ट ७ से २६ तक प्रथम समुल्लासहै जिसमें ईश्वरके ओंकारादि नामोंके मनोक्तअर्थ मंगलाचरण आदि लेखहैं ॥

पृष्ट २७ से पृष्ट ३६ तक द्वितीय समुल्लासहै इसमें बालशिक्षाविधान तथा भूतप्रेतादि निषेध जन्मपत्र सूर्य्यादि ग्रहोंकी मनोक्त समीक्षा करीहै ॥

पृष्ट ३७ से पृष्ट ६३ तक तृतीय समुल्लासहै, इसमें ऽध्ययनाध्यापन विधिकी स्वकपोलकल्पित आलोचनालिखीहै, ॥

पृष्ट ६४ से पृष्ट १५३ तक चतुर्थ समुल्लासहै, इसमें समावर्तन विवाह गृहाश्रम विधि के नामसे व्यर्थझगड़ा भरदियाहै ॥

पृष्ट १५४ से पृष्ट १७४ तक पंचम समुल्लासहै, इसमें वानप्रस्थ सन्यास विधिहै ॥

पृष्ट १७५ से पृष्ट २२० तक षष्टम् समुल्लासहै, इसमें राजधर्म्मका वर्णनहै, सो यहाँतकतो स्वकपोल कल्पना नाममात्र थोड़ीसीहीहै, परंतु फिर'

पृष्ट २२१ से पृष्ट २५२ तक सप्तम समुल्लासहै, इसमें ईश्वरविषय व्याख्याहै ॥

पृष्ट २५३ से पृष्ट २६६ तक अष्टम समुल्लासहै, इसमें सृष्ट्योत्पादादि विषयहै ॥

पृष्ट २६७ से पृष्ट २८७ तक नवम समुल्लासमें विद्याऽविद्या बंधमोक्ष विषयहै ॥

पृष्ट २८८ से पृष्ट ३०६ तक दशम समुल्लासहै, इसमें आचाराऽनाचार भक्ष्या ऽभक्ष्यका वर्णनहै, और यहाँतक इसपुस्तकका पूर्वार्द्ध समाप्तहुआहै ॥

पृष्ट ३०७ से पृष्ट ३६६ तक एकादश समुल्लासहै, इसमें भारतवर्षके अनेक मतमतांतर तथा धर्म्मग्रन्थोंका मनोक्त खंडन मंडन कियाहै ॥

पृष्ट ३६७ से पृष्ट ४०७ तक द्वादश समुल्लासहै, इसमें जैन तथा बौद्धधर्म्मपर कटाक्षकर खंडन मंडन कियाहै, और इतनेपरही ग्रन्थ समाप्त कियाहै ॥

इसपुस्तकके आरम्भका प्रथमपृष्ट निम्नलिखित लेख युक्तहै ।

"अथ सत्यार्थप्रकाश" श्री स्वामीदयानन्द रचित । श्री राजा जयकृष्णदास बहादुर सी, एस, आई, की आज्ञानुसार, मुन्शी हरिवंशलाल के अधिकारसे इस्टार प्रेस प्रस्थ रामपुरमें छापीगई, सन१८७५ ई०बनारस, पहलीबार१०००पुस्तक मोल फीपु ३)

फिर टाईटिलपेजके अन्दर निम्नलिखित १ विज्ञापन लिखेहैं ।

निवेदन १ ; यह पुस्तक श्रीस्वामीदयानन्दसरस्वतीने मेरेव्ययसे रचीहै,* और मेरे हीव्ययसे मुद्रितहुईहै, उक्त स्वामीजीने इसकारचनाधिकार मुझको देदियाहै, और उसका मैं अधिष्ठाताहूं, और मेरीओरसे इसपुस्तककी रजिष्ट्री कानून २० सन्

* इसपुस्तकको स्वामीजीने राजासाहबसे द्रव्यलेकर बनाया औरअपनानाम उनकोदेदिया ।

१८८७ ई० केअनुसारहुईहै, सिवायमेरे वा मेरीआज्ञाके इस पुस्तकके छापनका किसीकोअधिकार नहींहै ॥ (द० श्रीराजाजयकृष्णदास बहादुर सी एस आई)

निवेदन २ ; जिसपुस्तकके आदि और अंतमें मेरेहस्ताक्षर और मोहरनहीं वह चोरीकीहै, और उसका क्रयविक्रय नहीं होसक्ता, ।

(द० श्रीराजाजयकृष्णदास बहादुर सी एस आई)

निवेदन ३ ; इसपुस्तकके पाठकोंसे मेरीयह विनयपूर्वक प्रार्थनाहै कि इसग्रन्थको छपवानेसे मेराअभिप्राय किसीविशेष मतके खंडनमंडन करनेका नहीं, किंतु इसका मुख्यप्रयोजन यहहैकि सज्जन और विद्वानलोग इसको पक्षपातरहित होकर पढ़ें, और विचारें, और जिनविषयोंमें उनकी दयानन्दस्वामीके सिद्धांतोंसे सम्मति नहीं उनविषयोंपर अपनी अनुमतिप्रबल प्रमाणपूर्वक लिखें, जिस्से धर्म्मकानिर्णय और सत्यासत्यकी विवेचना हो, मुखसे शास्त्रार्थकरनेमें किसीबातका निर्णय नहींहोता, परंतु लिखनेसे दोनोंपक्षोंके सिद्धांत ज्ञातहोजातेहैं, और सत्यविषयका निर्णय हो जाताहै, इसलिये आशाहैकि सब पंडित और महात्मापुरुष इसकी यथावत समालोचनाकरेंगे, और यह नसमझेंगे किमुझको किसी विशेषमतकी निन्दा अभिप्रेत हो, छपानेमें शीघ्रताकेकारण इसग्रन्थमें बहुत अशुद्धता रहगईहै, आशाहै पाठकगण इस अपराधकोक्षमा करेंगे, ।

(क) यद्यपि स्वामीजीने यह "सत्यार्थप्रकाश" † यदेअमदाग रचकर प्रचलित करायाहै, परंतु इसमें जोकुछलिखाहै वह सत्शास्त्रोंके विरुद्ध मनोक्त गीत गाया और स्वकपोलकल्पित ढोल बजायाहै, प्रकृति और जीवोंकीउत्पत्ति का मन रा प्रयोजन कपसिरी निवृत्ति मार्जनकाफल आलस्यपूरकरना यज्ञोपवीतकी विद्यारुचि रहनानना पठनपाठन और संध्योपासना अग्निहोत्र और अतिथियोंका मा आपदो विधानकरना और फिर यहकहनाकि पैसयकर्म्म अविद्वानपुरुषोंका नाश्नैं, गी जहांसेमिले यहांसे लेलेनेकी आज्ञादेना सृष्टिके आदिमें अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिराके हृदयमें वेदोंका प्रकाशहोना और उनसे ब्रह्माजीकापढ़ना कहना, मुक्तिसे पुनरावृत्तिमानना, और उसको कारागार और फांसीकेसमान जानना दशपुरुषोंतकसे नियोगकरनेकी आज्ञादेना, और गर्भवती स्त्रीसे भी नरहा-जायतो विधिसे नियोगकरके उसकेलिये पुत्रउत्पन्निकरदे, ऐसा असमर्थ लेख सया

० सत्यार्थप्रकाश छपकर प्रकाशहुआ अब स.मीजीकी आज्ञा इसप्रकार(५१)र्थकीथी और इसकेबादके अनेक पढ़ेले अथात् मुद्रणादि करके स्वामीजी काई प्रसंगवेथ।

मासादिपदार्थोंसे प्रात' साय् दोनोकाल होम करनेकी आज्ञादेना, मांसभक्षणकी पुष्टिकरना, यज्ञमें वन्ध्यागाय और बैलआदि नरपशुओंके वधकी विधिकरना, स्वर्ग नर्क लोकोंका नमानना, प्रथम 'तिब्बत' में आर्य्योंकी उत्पति कहना, परमात्मा को विजातीय भेदशून्यलिखना, प्रत्यक्षादि आठप्रमाणमानना, इत्यादि विद्वान पुरुषों से क्कुछगुप्तनहींहै ॥

"सत्यार्थप्रकाश"के प्रकाशितहोनेसे संसारको लाभकेबदले जोकुछ हानिहुई वहतोहम दूसरेभागमें लिखेंगे, परंतु स्वामीजीको रोटीकमाखानेका उत्तमसहारा होगया, इसपुस्तकके लिखेजानेपीछे स्वामीजी बम्बईपधारे, और मनमेंयहउमंग उत्पन्नहुईकि विद्यमान चारोंवेदोंकी मनमानी टीका और भाष्यबनाकर संसारमें फैलाईजायँ तबही हमारी यथार्थ प्रसिद्धता होय ॥

बाबू नवीनचन्द्रराय लाहोरसे प्रकाशितहोनेवाली अपनी "ज्ञानप्रदायिनी" मासिक पत्रिका संख्या ११।१२ खण्ड ४ पृष्ठ २४ में लिखतेहैंकि"

स्वामीदयानन्दसरस्वती जब बम्बैगयेथे हमारेसाथमीउनकी मुलाकातहुईथी। हमलोगोंसे उन्होंने यहइच्छा प्रकाशकी, कि वे वेदोंकीनईटीका करनाचाहतेहैं, जिस में वे यह सिद्धकरेंगेकि अग्नि वायु इन्द्र प्रभृति शब्द ईश्वरवाचीहैं, औरवेदोंमें केवलईश्वरसेही प्रार्थनाहै, और हमलोगोंसेभी उन्होंने इसप्रकारके अर्थकरनेमें सहायताचाही। हमनेउत्तरदियाकि हमें यहबातठीकनहीं प्रतीतहोती, और ऐसा सम्भवभी प्रतीतनहींहोताकि वे इसप्रकारका अर्थ सर्व्वत्र लगासकेंगे। इसकेदृष्टान्तमें हमने उनसे कहाकि यजुर्वेदमें एकस्थानमें धान्यसे प्रार्थनाहै; सबकोईजानताहैकि धान्य खानेकीवस्तुहै, इसकाअर्थ वे ईश्वर क्योंकरबनावेंगे ? स्वामीजीने उत्तरदिया 'धान्य'शब्द धा धातुसे निकलाहै, धा धातुकाधारण और पोषणअर्थहै सर्व्वप्रभु रूप विशिष्टवाचलही प्रसिद्धहै; ईश्वर अर्थइसशब्दका किसीकोशमेंनहीं, इतने शास्त्रार्थ सेही हमने जानलियाथाकि स्वामीजी किसप्रकारका अर्थवेदोंका करनाचाहतेहैं ॥

बम्बईके बहुतसे भाटियेलोग जो वैभवसे अपनेगुरुकी बदचलनीसे तथा उसकी बदचलनी राजदरबारतक पहुंचनेकी लज्जासे अपना सनातनधर्म्म छोड़ने-को उद्यमीथे, और कुछअंग्रेजी विद्याकेनवशीक्षितविद्यार्थी जोमर्कटी [चपलबानरी] विद्यारूप मदिराके नशेमें मदोन्मत्तहुये अपने चलनव्यवहारको बदलना चाहतेथे, स्वामीजीके चिकने चुपड़े स्वार्थभरे व्याख्यानोंको सुनकर शीघ्र इसतर्फ झुके, फिरतो स्वामीजीनेभी समयकोविचार शीघ्रतासहित उक्तमनुष्योंकीसहायतासे अपना पहिला आर्य्यसमाज सन् १८७४ईस्वी मुताबिकसम्वत् १९३१में शहर-

बम्बईमें * स्थापितकिया। नवशीक्षित मनुष्यजो बहुधा समाचारपत्रोंद्वारा इनके ऊपरी चमत्कारके निततयेनाऽक सुण दर्शनाभिलाषी होनेलगेथे, बल्कि बहुधा नास्तिक विश्वासी तथा ब्रह्मसमाजविश्वासी (अर्थात् जो ब्रह्मसमाजको अच्छासमझ जाति बिरादरीके भयसे उसमें नहींमिलसक्तेथे) ऐसे अनेकमनुष्य स्वामीजीके आधीन होगये, और ऐसेमनुष्योंके आधीनहोनेसे स्वामीजीकी मनमानी होनेलगी †

स्वामीजीने यहभी समझाकि आजकलके नवशीक्षितमनुष्य जो बहुधा दें शोंमनि ? पुकारतेफिरतेहैं, जब उनसेयहभी कहदियाजायगाकि आपनाविचार ठीकठीक वेदकी आज्ञानुसारहै, [और ब्राह्मणोंको दानदेना धातु पाषाणादि म तिमाँ पूजना स्वार्थीमनुष्योंने स्वकपोलकल्पित मनघडत प्रचलितकरदियाहै, और यह कर्मसर्वथा वेदविरुद्धहै, ज्ञानवानमनुष्योंको भूलकरभी इसभ्रमजालमें पड़ना न चाहिये] तो ये मनुष्य अवश्य हमारे पक्षका ग्रहणकरेंगे। क्योंकि प्रथमतो स रकारीपाठशालाओंका उपदेशही उनको नास्तिकबनाचुकाहै, रहासहा अब हमारे उपदेशसे उनको प्रकटरूपसे रुपयेकीभी बचतनिकलआवेगी तो हमारे कार्यकी सिद्धिमें कोईभी विलम्ब नहोगा ॥

ऐसे ऐसे विचारोंकीसिद्धिहोनेपर स्वामीजीके समाजस्थापितहोनेमें विशेष प रिश्रम और किसीप्रकारका विघ्ननहुआ, और जबस्वामीजीका प्रथम आर्यसमाजबम्बई में स्थापितहोगया तो स्वामीजीने निम्नलिखित दश नियमरचाथे जो आजपर्यंत आर्यसमाजोंमें प्रचलितहैं, और हमउनको अपनी शंकाओंसहित नीचेलिखतेहैं ॥

---

* सत्यार्थप्रकाश को स्वामीजी इससमयसे पहिले बनारसमें मुद्रितकराके देखचुकेथे परन्तु यह पूर्णरूपसे उसका सन् १८७५ ई०में प्रकाशित हुआथा।

† केवल इतना ही नहीं किन्तु स्वामीजीने [illegible] और [illegible]ओंको अपने गुप्त [illegible] उनको [illegible] [illegible] और [illegible] प्रथम एक "[illegible]" नाम पुस्तक [illegible] प्रकाशितकिया [illegible] [illegible] १९२१में [illegible] उसके अन्तमें निम्नलिखित श्लोक [illegible],

॥ श्लोक ॥

भूमिरामाङ्क चन्द्राब्दे [illegible] सितेदले ॥ [illegible] [illegible] ॥ १ ॥ [illegible] [illegible] [illegible] ।

अथ आर्य्यसमाजों के दश नियम और उनपर हमारीशंका

(१) सबसत्यविद्या और जोपदार्थ विद्यासेजानेजातेहैं,उनसबका आदिमूलईश्वरहै॥

(शङ्का) इसनियमपर हमारीयहशंकाहै कि "जबसबका आदिमूलईश्वरहै" तोप्र माणु और जीवोंको नित्यमानना क्या इसनियमके प्रतिकूलहै ॥

(२) ईश्वरजो सच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकार सर्वशक्तिमान न्यायकारी द- यालु अजन्मा अनन्त निराकार अनादि अनुपम सर्वाधार सर्वेश्वर सर्वव्यापक अंतर्यामी अजर अमर अभय नित्य पवित्र और सृष्टि काकर्ताहै; उसकी उपासना करनीयोग्यहै ॥

(शङ्का) यहज्ञान ईश्वरस्वरूपका परोक्षहै, वा अपरोक्ष ? और परोक्षज्ञानसे संशय की निवृत्तिहोतीहै अथवा अपरोक्षसे ? परोक्षज्ञानसेतो कदाचित संशय की निवृत्ति नहींहोतीहै ॥

इसकारण जबतक ईश्वरस्वरूपका यथार्थज्ञान नहींहोगा उपासक उपास ना किसकीकरे ? यदि ईश्वरस्वरूपका साक्षात्कारनहींहोगा तो यहनाम ईश्वरके कैसे रक्खेगये ? ॥

(३) वेद सत्यविद्याओंका पुस्तकहै, वेदका पढ़नापढ़ाना और सुनासुनाना सबआर्य्योंका परम धर्म्महै ॥

(शङ्का) वेद मन्त्रभागमाना; उसीको ईश्वरोक्तकहा; ब्राह्मणभाग ईश्वरोक्तनहीं माना इसकी यथार्थसमीक्षा हम दूसरेभागमें लिखेंगे ॥

(४) सत्यग्रहणकरने और असत्यकेछोड़नेमें सर्वदा उद्यतरहना चाहिये ॥

(शङ्का) इसकानाम विवेकहै परन्तु जबतक सत्य और असत्यका विवेकनहोवे यह नियम कबपूरा होसक्ताहै ? कहिये ईश्वरसत्यहै या जगत्सत्यहै ? जो ईश्वरसत्यहै और जगत्भीसत्यहै तो दोसत्यनहींहोसक्ते; इसकारण ईश्वर सत्यहै ऐसा कहनाचाहिये । जबईश्वरसत्यहै तो जगत्स्वप्नसमान मानना पड़ेगा जबस्वप्नसमानहुआ तो इनपदार्थोंमेंसे कहो किसकाग्रहणकरें और किसकात्यागकरें ? ग्रहण और त्याग दूसरेपदार्थकाहोताहै; जबदूसरा प दार्थ असत्यहीहै तो त्यागकिसका ? इसनियममेंभी विचारकरनाचाहिये यह नियम केवल व्यवहारशुद्धिके लियेहै या परमेश्वरप्राप्तिके लियेहै, यदि व्यवहारशुद्धिके लियेहै तो खैर और जो परमेश्वरप्राप्तिके लियेहै तो जगत्स्वप्नसमानही माननापड़ेगा । इसके मिथ्यापदार्थोंका क्याग्रहण और

ययात्यागकरनाचाहिये ॥

(५) सबकाम धर्म्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्यकोविचारके करनेचाहियें,

(शङ्का) यहनियम ऊपरकेनियमसे मिलाहुआहै केवल "सबकाम धर्म्मअनुसार" इतनापद और विशेषहै, सो इसमें धर्म्मपरदृष्टिकरनीचाहिये, अर्थात् जिसका जोधर्म्महै उसीकेअनुकूल सत्य और असत्यको विचारकरके करनाचाहिये । प्रथमतो यहदेखनाचाहियेकि शरीरकाक्याधर्म्महै, और आत्माकाक्या ? शरीरजड़क्षणिक खरूपहै, धर्मइसका उत्पन्नहोना घटना बढ़ना नष्टहोनाप्रत्यक्षहै। आत्माऽष्टाहै, नित्यिकरसचैतन्य जन्ममरणसेरहित आनन्दस्वरूपहै, क्योंकि जोसत्यहै सोईनित्यहै जोनित्यहै सोईजन्ममरणसे रहितहै, जो जन्ममरणसेरहितहै सोईआनन्दहै । अतिआश्चर्यकीबातहै कि आत्मामें अनात्मा अभिमान और अनात्मामें आत्मअभिमान ! फिर कैसा धर्मअनुसार और सत्य असत्यका विचारकरके नियमका करनाकहाहै ? और यहभी आश्चर्यहै कि निरावयव चैतन्य आत्माको माना और भ्रमजनमाना, निरावयव आकाश जड़तो सर्वव्यापक, और निरावयव चैतन्यआत्मा अभंजन, कहोधर्मअनुसार यहसत्यका ग्रहणहै या असत्यका त्यागहै ? जब निरावयवहै तो वीनकीगाया ? हीस्वरूपमें कैसे होसक्ताहै ॥

(६) संसारका उपकारकरना इससमाजका मुख्यउद्देश्यहै अर्थात् शारीरक आत्मिक और सामाजिक उन्नतिकरना ॥

(शङ्का) जब कर्ताहर्ता ईश्वरकोही मानागया तो मनुष्यकौन जो उसके कार्य्योंमें हस्तक्षेपकरे, उपासकको उपास्यकी बराबरीउचितनहींहै ॥

(७) सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ॥

(शङ्का) प्रीति अनुकूलपुरुषोंमेंहोतीहै, यदि धर्मअनुसारपर दृष्टिहै, तो धर्मविरोधी इच्छारखनेवाले अभिमानी को शत्रुसमझनाचाहिये । फिर सबसे प्रीतिपूर्वक वर्तनाचाहिये यथायोग्यठीकहै । प्रीतिपूर्वक अशुद्धहै, इन्द्रियगणजो विषयोंमें आसक्तकरें परमशत्रुहैं, इसलिये उनकोशत्रुसमझकर विषयानन्दकी अभिलाषाकरनी नहींचाहिये अपनेआनन्दमें आनन्द रहनाचाहिये । यह बातदृष्टहै, जो सबसेप्रीतिपूर्वक या यथायोग्यवर्तनेकीशिक्षाहै, जबतक सबसे प्रीति या यथायोग्य अर्थात् न्यूनाधिकप्रीति को छोड़कर अन्तरदृष्टिनहींहोती तबतक कदाचित् कल्याणनहींहोता;

विनाइसके यह नियम वृथाहै ॥

(८) अविद्याकानाश और विद्याकीवृद्धि करनीचाहिये ॥

(शङ्का) विद्या यथार्थज्ञानकोकहतेहैं, और परमेश्वरपूर्णसजाति विजाति पशुगत भेदरहितहै, जक्त स्वप्नसमानहै, यदि जक्तमें सत्यबुद्धि और परमेश्वर पूर्णमें भेदबुद्धिहै सोईअविद्याहै, सो इसका नाशकरनाचाहिये, अर्थात् आपा अभिमानहटानाचाहिये, क्या इसीकानाम विद्याकीवृद्धिहै, जो वेदोंकेअर्थ मनमाने बनादिये ॥

(९) प्रत्येकको अपनीही उन्नतिसे सन्तुष्ट नरहनाचाहिये, किन्तु सबकीउन्नति में अपनीउन्नति समझनीचाहिये ॥

(शङ्का) जबतक भेदबुद्धिहै तबतक यहबातभी कदाचित् नहींहोसक्ती, यहबात केवल कहनेमात्रप्रतीतहोतीहै। ऐसा कोईपुरुष भेदवादीदृष्टिमें नहींआता कि जो अपनीअपेक्षा दूसरेकीमसशाको सहनकरे, ऐश्वर्यआदिकी तो क्याबाया, भेदबुद्धिके अभावहुये ऐसाहोगा ॥

(१०) सबमनुष्योंको सामाजिक सर्वहितकारीनियमपालनेमें परतंत्ररहना चाहिये, और प्रत्येकहितकारी नियममें सबस्वतंत्ररहें ॥

(शङ्का) जोसर्वहितकारीनियमहै सो प्रति २ कोलेकर सर्वकहलाताहै, आश्चर्य्य-हैकि पृथक्हितकारीनियममें स्वतंत्रता और सर्वहितकारीमें परतंत्रता कैसेहोसक्तीहै ! स्वतंत्रता और परतंत्रतामें परस्परविरोधहै, और सर्व हितकारी और पृथक्हितकारी एकहीबातहै, क्योंकि प्रति २ कोलेकर सर्वहोतेहैं। ऐसा कौननियमहैजो सर्वहितकारीहो और पृथक्हितकारी नहो ! यदि विषयादिकसुख अर्थात् मद्यमांसआदिकाखानपान सुख पृथक्हितकारीहै, सर्वहितकारीनहीं, और उसकेकरनेमें समाजकीस्वतंत्र-आज्ञाहै तो यह कैसीशिक्षाहै ! इसशिक्षाको कोईबुद्धिमान प्रमाणनहीं करेगा। समाजमें युक्तहोकरभी विषयकेसुखमें जो पृथक्हितकारीसुख है उसकी स्वतंत्रतावनीरहैतो बड़ाआश्चर्यहै ॥ *

प्यारेपाठकवृन्द स्वामीदयानन्दसरस्वती केवल सामाजिकसुधार और ऊ-परीटीपटापकोही देशोन्नति समझतेथे, और धर्म्मकोउन्होंने धर्म्मजानकरनहीं किंतु पूर्वोक्तकार्य्यका सहायकसमझकर अपने (परोग्राम) प्रबन्धमें शामिलकियाथा, उस

* ऊपरकेलेखमें १ से १० तक जोनियमहैं वे स्वामीजीके नियतहैं और शङ्कादमारीहैं,

आपकुछ विचारसक्तेहोंकि यहस्वार्थसाधना स्वामीजीकी धर्म्मसेकितनीप्रतिकूलथी ॥

धम्बईके एकदोवर्ष २ विद्वान और प्रतिष्ठितपंडितोंसे जबस्वामीजीने वेदोंके मनघडत अर्थोभाष्यकरनेमें सहायतामांगीतो उनलोगोंने धर्म्म और सत्यकापालन कर साफइनकारकिया, और कहदियाकि हमईश्वरकेउपासकतो अवश्यहैं परंतु वे दोंकी बनावटीटीकाकरनेमें सहायकनहींहोते, स्वामीजीने यहभीकहाकि इसमेंद्रेश-कीभलाईहै, परन्तु फिरभी उनमेंसे किसीपंडितने सहायतानहींकी ॥

आजकलके सैकड़ों नवशिक्षित अंग्रेजीविद्याकेरसिकोंकी समान स्वामीजीभी धर्म्मको केवलऊपरीआडम्बरही समझतेथे, और ईश्वर वा सत्यकासेवनभी कार्य्य कीसिद्धितकहीकरतेथे, नहींतो सत्यकेबदले बहुधाझूंठसेभी कामलेतेथे, यद्यपि जो मनुष्य धर्म्म और आत्मकल्याणको सर्वोत्तमसमझतेहैं, वे स्वामीजीके चलनव्यवहार को बुराजानें । परंतु जोमनुष्य सामाजिकउन्नतिको धर्म्म और आत्मकल्याणसेउत्त म समझतेहैं, वे स्वामीजीके कर्तव्यको बडाबुद्धिमानीकाकाम समझतेहैं, और स्वतं त्रधर्म्मीमनुष्यतो स्वामीजीजैसेपुरुषोंको अपनेसमयका महात्मा यहाँ अलौकिक मनुष्यमानतेहैं, चाहेभवमें सत्यासत्यकानिर्णयहीक्योंनाहोजाय । जैसाकि होहीगया ॥

बम्बईमेंजाकर स्वामीजीको यद्यपि अंग्रेजीलिखेपढे नवशिक्षितलोगोंसेही द्रव्य की अधिक सहायतामिलतीरही, परंतु स्वामीजीने मनमेंविचारकियाकि जबतक पुराणोंकेविश्वासी और संस्कृतविद्याकेमाननेवाले तथा वृषभीआदिक गैरशास्त्रकार-लोग हमारा आदरसत्कारनहींकरेंगे यथार्थ कामनहींचलेगा, बस पुरानीपुस्तकोंसे इधरउधरसे लेकरलिया और एक "सन्ध्योपासन" नामकीपुस्तक * छपादई, इस "सन्ध्योपासन" कालेख जितनाकुछ "सत्यार्थप्रकाश" से सम्बन्ध रखताहै, उतना ही पूर्वापरविरोधसेभराहुआहै । जिसकी यथार्थ समालोचना हम इस पुस्तकके दूसरे भागमें करेंगे ॥

जबबम्बईमें इसपुस्तककी मुद्रणहोरहाथा पंडित रामलालचन्द्रशास्त्री काशी केरामघुरका रहनेवाला (जोबम्बईमें रहताथा) यादकरनेसेलदहुआ, और उस नेसम्पूर्ण यादानुवादकिया, और उसकासारांश उक्त पंडित रामलाल ने—" "मूर्तिप्रकाश" † नामपुस्तकमें लिखनाआरम्भकिया, स्वामीजी सोदग्निबम्बईमें यह

* पुस्तक "सन्ध्योपासनादि" अर्थात् पंचमहायज्ञविधि प्रथमबार सम्वत् १९३१ में छपीथी और "सत्यार्थप्रकाश" के लेखसे विरुद्धहोनेमें सिद्धान्तकी बुरा बतलादिया,

† मूर्तिप्रकाश मराठीमें उसीसमय छपाजाताथा परंतु स्वामीजीके मृत्युपश्चात् गुजराती में दोबे भाग १९३२ में छपाया,

कर फिर धीरे २ मार्गमें घूमते आषाढ सम्वत् १६३२में पूनापहुंचे, और हिन्दुकल्बमें विश्रामकर लगातार १४ व्याख्यानदिये, जिसमें स्वकपोलकल्पनाही मुख्यथी। इससमयका पूरापूराहाल पंडितविष्णुशास्त्रीजी 'इन्दुप्रकाश' यंत्रालयके स्वामी अपनी 'निबन्धमाला' में यथार्थ लिखचुकेहैं * यहांकेपौराणिकब्राह्मणलोगोंने उक्त–स्वामीजीके व्याख्यानोंसेचिढ़कर एकधोबीकागधा पालकीमें सवारकर उसकानाम स्वामीदयानन्दसरस्वतीरख बाजेबाजेकेसाथ सारेनगरमेंघुमाया, और प्रकटकियाथा कि यहमनुष्य सनातनधर्म्म और सत्शास्त्र कथा पुराण मूर्तिपूजाका पूरा २ विरोधीहै ॥

स्वामीजीने पूनाआनेसे पहिले दोवेदोंसे कुछमंत्रमागलेकर चैत्रशुक्ला १० सम्वत् १६३२ से "आर्य्याभिविनय" नामकपुस्तक का आरम्भकरदियाथा, जो थोड़ेहीदिनोंमें मुद्रित होगई ॥

यद्यपि पूनाकेमतविपक्षीलोगोंने स्वामीदयानन्दसरस्वतीके बदनामकरनेमें कोईत्रुटतो नहींकी परंतु यह ईश्वरीयनियमहै कि जिसमनुष्यके अधिकद्वेषीहोजातेहैं और वह उनकाकुछ्रभयनहींकर्ता है सो अपनेकार्य्यमें शीघ्र सफलता प्राप्तकरताहै, अधिक मनुष्योंकेप्रतिकूलहोनेपरभी पूनाजैसेवड़ेनगरमें स्वामीजीने अपना आर्य्य–समाज † स्थापितकरहीदिया। और पूनासेलौटकर फिरबम्बईपहुंचे, और एक "संस्कारविधि" नामपुस्तकलिखकर छपनेकोदई, इसमें द्विजातीयपुरुषोंके १६ संस्कारोंकावर्णनहै। और यहपुस्तकभी "सत्यार्थप्रकाश"केलेखोंसकुछ२ प्रतिकूलहीहै॥

स्वामीदयानन्दसरस्वती इन्द्रजालविद्या और बुद्धिमानीमें अद्वितीय पुरुषथे, जबउनको द्रव्यकीसहायतामिली वो कितनेहीसंस्कृतकेपाठी ब्राह्मणनोकररक्खे और उनकीसहायतासे वेदोंकी मनमानीटीकाबनाकर वेदभाष्यभूमिकालिखनी आरम्भकरदई ‡ और वेदमें जहां २ अग्नि जल वायु सूर्य्यआदिकदेवताओंसे प्रार्थनाकरीहै उसकेबदले केवल ईश्वरहीसे प्रार्थना। और ईश्वरकीओरसे आत्मकल्याणोपदेशकेस्थान सांसारिकशस्त्र यंत्ररणसग्राम आदिक युद्ध वा तंत्र—क्रियाओंके उपदेश भरदिये ॥

श्रीमतीराजराजेश्वरी महाराणी विक्टूरियाने अपनेनामकेसाथ इम्प्रेसऑफइंडिआ (EMPRESS OF INDIA) नामकी उपाधि स्वीकारकरनेके

* देखो दयानन्ददिग्विजय भाग१

† भारतवर्षमें स्वामीजीका यह दूसरासमाजहै,

‡ वेदभाष्यभूमिका सम्वत् १९३४के प्रथमसे काशीके लाजरसप्रेसमें छपकर मासिक प्रकाशित होनी प्रारम्भहुइथी,

लिये एकनहुतनड़ा दर्बारकरनेकी हिन्दुस्थानके गवर्नरजनरलबहादुरको आज्ञाहुई थी, स्थानदेहली और दिन १ली जनवरी सन् १८७७ ईस्वीका नियतहोकर सम्पूर्णभारतवर्षके राजा महाराजा रईस अमीर बुलायेगयेथे। और यह दर्बार देखने और स्मरणरखनेही योग्यथा ॥

स्वामीदयानन्दसरस्वतीभी दर्बारकी धूमसुनकर चलपड़े, मार्गमें जहाँ २ ठहरनाहुआ अपने कार्य्यकोसिद्धिमेंलगेरहे महाराजहुलकर इन्दौरकीराजधानीमें भी १५ दिनठहरेथे, वहाँसेचलकर दर्बारने कुछसमयपहिलेहीसे शहर देहलीमें आनकर अपना डेराजमादियाथा ॥

ज्ञानप्रदायिनी मासिकपत्रिका लाहोरवेमालिक बाबू नवीनचन्द्रराय अपनीपत्रिका संख्या ११।१२ पृष्ठ २४ में लिखतेहैं कि स्वामी दयानन्दसरस्वती से हमारी मुलाकात देहलीकेदर्बार सन् १८७७ई०मेंहुई, यहाँ उन्होंने हमे, तथा बाबू केशवचन्द्रसेनजी और दक्षिणवासी रायबहादुर गोपालहरि देशमुखजी और श्रीयुत् हरिचन्द्रचिंतामणि, को निमन्त्रणकिया और हमलोगोंसे यह प्रस्तावकियाकि हम लोग पृथक् २ रीतिसे धर्म्मोपदेश नकरके एकताके साथकरें तो अधिकफलहोगा, इसविषयमें बहुत बातचीतहुई परंतु मूलविश्वासमें उनकेसाथ हमलोगोंका भेदथा, इसलिये जैसी वे चाहतेथे एकता नहींहोसकी और इससमय स्वामीजीका चलन व्यवहार पहलेकी अपेक्षा बिल्कुल बदलगयाथा और अपनोपर पूरेअधीर बनेहुयेथे ०

इसदर्बारके समय आनेपर स्वामीजीको नानाप्रकारके लाभहुये। अनेक अच्छे अच्छे योग्यपुरुषोंसे मिलनाभेटनाहुआ ॥

इन्हीदिनोंमें स्वामीजीकी "संस्कारविधि" बम्बईसे छपकरआगई, जिस को देख कुंवर ज्वालाप्रसादने उनसे कहाकि इसमें अमुक २ बात आपने बहुतबुरी लिखीहैं, इसको फिरयत्नसे धर्म्मोचितवातोंका प्रचार नहींकियै परंतु बहुतसी स्वार्थोंनि स्वीकार नहींकिया ॥†

देहलीसे स्वामीजी पश्चिमोत्तर प्रान्तमें चलेगये, और मुरादाबादस्थान इन्द्रमणि जीके साथ स्वामीजीने प्रीतिका प्रचारकिया ॥

मुरादाबादमें कुछदिन रहकर स्वामी दयानन्दसरस्वती और मुन्शीइन्द्रमणि दोनों महाशय चान्दापुरके प्रसिद्ध मेलेमें चलेगये ॥

---

० सर आपने हमको [illegible] लिये [illegible] अधिक [illegible] और [illegible] आप [illegible] थे

† देखो [illegible] १८।८ [illegible]

यहमेला मुन्शीप्यारेलाल कबीरपंथी कायस्थने अपना सईसौंरुपया लगाकर और साहिब जिलाधिपतिकी आज्ञालेकर करायाथा, और चांदापुरगाँव मुन्शी प्यारेलाल साहिबकाहीहै ॥

यहमेला चैत्रशुक्ला ०४।५ सम्वत् १८१४ मुताबिक १६।२०मार्चसन् १८७७ई०मेंथा॥

मेलेमें बाबू हरगोबिन्दसाहिब हेडकिलर्क शाहजहाँपुर, मौलवी मोतीमियाँ, लालारामप्रसाद ऑनरेरीमजिष्ट्रेट, लाला बनवारीलाल बाबू प्यारेलाल मुन्शी सोहनलाल मुहम्मद हैदरअली मुखतार मुहम्मद अलीशाह आदि अनेक प्रतिष्ठित तथा और और अनेक जातिके मनुष्य आयेथे। उनमें कई पादरी और कई मुसलमानभीथे सो स्वामी दयानन्दसरस्वती का नोबिल विस्काटसाहिब पादरी और मौलवी क़ासिमअली मुसलमानसे वादानुवाद आरम्भ होगया। प्रथम पादरी नोबिल विस्काटसाहिब फिरमौलवी क़ासिमअली फिर स्वामी दयानन्दसरस्वती और मुन्शी इन्द्रमणिजी वर्णनकरतेथे, और नियम यहथा कि प्रश्न दशमिनिटसे अधिक देरमें नकहाजाय और उत्तर १०मिनिटसे अधिक देरमें नहींदियाजायगा ॥

दूसरेदिन ७½बजे दिनके से लेकर ११बजेतक और १बजेसे लगाकर ४बजेतक वादानुवाद होकर मेला विसर्जनहुआ, ईसाई लोगोंने इसमेलेमें हारउठाई स्वामीदयानन्दसरस्वती और मुन्शीजीकी विजयहुई, विशेषहाल देखनाचाहोतो स्वामीदयानन्दसरस्वती रचित "मेलाचान्दापुर" नाम पुस्तकमें देखो ॥

तारीख़ २१व२२मार्च सन् १८७७ई०कोख़त मोतीमियाँ रईस शाहजहाँपुर ने मुन्शी इन्द्रमणि केनाम इसविषयके लिखेकि आप स्वामी दयानन्दसरस्वतीको साथ लेकर शाहजहाँपुर चलेआओ। आपसे मौलवी अहमदहुसैन साहिब पुनर्जन्मके विषयमें कुछ बहस कियाचाहतेहैं ॥

इनख़तोंके पहुंचनेपर दोनो महाशय २२मार्च सन् १८७७ई० दो पहरदिनचढ़े शाहजहाँपुर पधारे और डिपटी साहिब के मकानपर विश्रामकिया ॥

अगलेदिन २पहरदिनचढ़ेतक मौलवीसाहिबकी राहदेखी परन्तु जबमौलवीसाहिब नहींआये तो लाचार इनकोभी लौटआना पड़ा ॥

इस चान्दापुरके मेलेके समय स्वामीजीकेपास वेदभाष्यभूमिका प्रूफ़सीटहोनेकेलिये आया, उक्त प्रूफ़में लिखाथाकि सृष्टिकीआदिमें अग्नि वायु आदित्य और अंगिरा उत्पन्नहुए, उनके ज्ञानमें ईश्वरने वेदोंका प्रकाशकिया, मुन्शीजीने उसें देखकर स्वामीजीसेकहाकि "श्वेताश्वतरोपनिषत्" में लिखाहै—

लिये एकबहुतबड़ा दर्बारकरनेकी हिन्दुस्थानके गवर्नरजनरलबहादुरको आज्ञादईथी, स्थानदेहली और दिन १ली जनवरी सन् १८७७ ईस्वीका नियतहोकर सम्पूर्णभारतवर्षके राजा महाराजा रईस अमीर बुलायेगयेथे। और यह दर्बार देखने और स्मरणरखनेही योग्यथा ॥

स्वामीदयानन्दसरस्वतीभी दर्बारकी धूमसुनकर चलपड़े, मार्गमें जहाँ २ ठहरनाहुआ अपने कार्य्यकीसिद्धिमेंलगेरहे महाराजहुलकर इन्दौरकीराजधानीमें भी १४ दिनठहरेथे, वहाँसेचलकर दर्बारसे कुछसमयपहिलेहीसे शहर देहलीमें आनकर अपना डेराजमादियाथा ॥

ज्ञानप्रदायिनी मासिकपत्रिका लाहौरकेमालिक बाबू नवीनचन्द्रराय अपनीपत्रिका संख्या ११।१२ पृष्ट २४ में लिखतेहैं कि स्वामी दयानन्दसरस्वती से हमारी—मुलाकात देहलीकेदर्बार सन् १८७७ई०मेंहुई, यहाँ उन्होंने हमें, तथा बाबू केशव—चन्द्रसेनजी और दक्षिणवासी रायबहादुर गोपालहरि देशमुखजी और श्रीयुत हरिचन्द्रचिंतामणि, को निमंत्रणकिया और हमलोगोंसे यह प्रस्तावकियाकि हम लोग पृथक् २ रीतिसे धर्म्मोपदेश नकरके एकताके साथकरें तो अधिकफलहोगा, इसविषयमें बहुत बातचीतहुई परन्तु मूलविश्वासमें उनकेसाथ हमलोगोंका भेदथा, इसलिये जैसी वे चाहतेथे एकता नहींहोसकी और इससमय स्वामीजीका चलन व्यवहार पहलेकी अपेक्षा बिल्कुल बदलगयाथा और अबतोयह पूरेअमीर बनेहुयेथे ●

इसदर्बारके समय आनेपर स्वामीजीको नानाप्रकारके लाभहुये। अनेक अच्छे अच्छे योग्यपुरुषोंसे मिलनाभेटनाहुआ ॥

इन्हींदिनोंमें स्वामीजीकी "संस्कारविधि" यन्त्रसे छपकरआगई, जिस को देख कुमर ज्वालाप्रसादने उनसे कहाकि इसमें अमुक २ बात आपने बहुतबुरी लिखीहैं, इसको पिछ्छपकरके अनुचितबातोंका प्रचार नकीजिये परन्तु यहभी स्वामीजीने स्वीकार नहींकिया ॥†

देहलीसे स्वामीजी पश्चिमोत्तर प्रांतमें चलेगये, और मुरादाबादवाले मुन्शीइन्द्रमणि केसाथ स्वामीजीने प्रीतिका प्रचारकिया ॥

मुरादाबादमें कुछदिन रहकर स्वामी दयानन्दसरस्वती और मुन्शीइन्द्रमणि दोनो महाशय चान्दापुरके प्रसिद्ध मेलेमें चलेगये ॥

● अब आपने अपना वेदभाष्यभूमिका छपनेकेलिये आगरमेंजैस बनारसम भेजकर उसके मासिक प्रचलितकरनेका प्रारम्भकिया और टाइटिलपेजपर अपनेदेशाटन अर्थात जानेआने का प्रोग्राम छपानेलगे † देखो मेघखदेव पत्रमय पृष्ठ १८ पंक्ति १९

यहमेला मुन्शीप्यारेलाल कबीरपंथी कायस्थने अपना सईसौरुपया लगाकर और साहिब जिलाधिपतिकी आज्ञालेकर करायाथा, और चांदापुरगाँव मुन्शी प्यारेलाल साहिबकाहीहै ॥

यहमेला चैत्रशुक्ला ०४।५ सम्वत्१८३४ मुताबिक१६।२०मार्चसन्१८७७ई०मेंथा॥

मेलेमें बाबू हरगोबिन्दसाहिब हेडकिलर्क शाहजहाँपुर, मौलवी मोतीमियाँ, लालारामप्रसाद ओनरेरीमजिष्ट्रेट, लाला बनवारीलाल बाबू प्यारेलाल मुन्शी सोहनलाल मुहम्मद हैदरअली मुख्तार मुहम्मद अलीशाह आदि अनेक प्रतिष्ठित तथा और और अनेक जातिके मनुष्य आयेथे। उनमें कई पादरी और कई मुसलमानभीथे सो स्वामी दयानन्दसरस्वती का नोबिल बिस्काटसाहिब पादरी और मौलवी क़ासिमअली मुस्लमानसे वादानुवाद आरम्भ होगया। प्रथम पादरी नोबिल बिस्काटसाहिब फिरमौलवी क़ासिमअली फिर स्वामी दयानन्दसरस्वती और मुन्शी इन्द्रमणिजी वर्णनकरतेथे, और नियम यहथा कि प्रश्न दशमिनिटसें अधिक देरमें नकहाजाय और उत्तर१०मिनिटसे अधिक देरमें नहींदियाजायगा ॥

दूसरेदिन ७½बजे दिनके से लेकर११बजेतक और१बजेसे लगाकर४बजेतक वादानुवाद होकर मेला विसर्जनहुआ, ईसाई लोगोंने इसमेलेमें हारउठाई स्वामी-दयानन्दसरस्वती और मुन्शीजीकी विजयहुई, विशेषहाल देखनाचाहोतो स्वामी-दयानन्दसरस्वती रचित "मेलाचान्दापुर" नाम पुस्तकमें देखो ॥

तारीख़२१व२२मार्च सन्१८७७ई०कोरईस मोतीमियाँ रईस शाहजहाँपुर ने मुन्शी इन्द्रमणि केनाम इसविषयके लिखेकि आप स्वामी दयानन्दसरस्वतीको साथ लेकर शाहजहाँपुर चलेआओ। आपसे मौलवी अहमदहुसैन साहिब पुनर्जन्मके विषयमें कुछ बहस कियाचाहतेहैं ॥

इनखतोंके पहुंचनेपर दोनो महाशय२२मार्च सन्१८७७ई०दो पहरदिनचढ़े शाहजहाँपुर पधारे और डिपटी साहिब के मकानपर विश्रामकिया ॥

अगलेदिन२पहरदिनचढ़ेतक मौलवीसाहिबकी राहदेखी परंतु जबमौलवी-साहिब नहींआये तो लाचार इनकोभी लौटआना पड़ा ॥

इस चान्दापुरके मेलेके समय स्वामीजीकेपास वेदभाष्यभूमिका प्रूफसीटहोनेकेलिये आया, उसके प्रूफमें लिखायाकि सृष्टिकीआदिमें अग्नि वायु आदित्य और अंगिरा उत्पन्नहुए, उनके ज्ञानमें ईश्वरने वेदोंका प्रकाशकिया, मुन्शीजीने उसें देखकर स्वामीजीसेकहाकि "श्वेताश्वतरोपनिषत्" में लिखाहै—

योब्रह्मणं विदधाति पूर्वंयो वैवेदाँश्च प्रहिणोतितस्मै, इति,

इसकी पुष्टिमें औरभी अनेक वचनहैं, और अबपर्यंत सम्पूर्णविद्वानोंका यहीमतहै, कि परमात्माने सृष्टिकीआदिमें भीब्रह्माजीके हृदयमें वेदोंकाप्रकाशकियाहै, आपने सम्पूर्णकेविरुद्ध अग्नि वायु आदित्य और अंगिरा केध्यानमें कैसेलिखदिया ! इसपर बहुत वार्तालापरहा अन्तमें स्वामीजीनेकहाकि मुझको—

"अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञ सिद्धार्थ ऋग् यजु साम् लक्षणम्" -

मनुके इस श्लोकपर कुल्लूकभट्टके टीकेमें

"अग्नेर्ऋग्वेदो वायोयजुर्वेद आदित्यात् सामवेद"इति,

यहश्रुतिदेखकर धोखालगगया मैंने "सत्यार्थप्रकाश"मेंभी ऐसाहीलिखाहै अब आपकेकथनसे प्रकटहुआकि यहबात अशुद्धहै परंतु मैं अपने पहिले लेखके विरुद्ध नहींलिखसक्ता ॥ * ॥

आर्य्यसमाजवाले मिलनेकेसमय जो परस्पर नमस्तेकहतेहैं,इसविषयमें मुन्शीजीने स्वामीजीसे हरिद्वार,मलेश्वरआदिमें वार्तालापकियाकि परस्पर नमस्ते का करना अयोग्यहै । हरिद्वारमें स्वामीजीने पंडितभीमसेनको मध्यस्थकिया उन्होंने स्वामीजीकेसन्मुख स्पष्टकहदियाकि मुन्शीजीठीककहतेहैं, परस्पर नमस्ते का कहना अयोग्यहै, परंतु स्वामीजीको अपनेकथनका आग्रहहीरहा । फिर मुरादाबादमें इस विषयपर तीनदिनस्वामीजीसे मुन्शीजीका पूर्णवार्तालापहुआ, पंडितभीमसेनने बहुतमनुष्योंकेसन्मुख कहाकि हमस्वामीजीसे नमस्ते कहतेहैं, परंतु वे वरमें किसीको नमस्ते नहींकहते । अन्तमें स्वामीजीने मुन्शीजीसे कहाकि आपका कथन सर्वथा ठीकहै निःसंदेह परस्पर नमस्तेका कहनाअयोग्यहै ॥ † ॥

जबशाहजहाँपुरमें स्वामीजीका और मौलवी साहिबका मुकाबिलानहींहुआ,तो यह मुरादाबाद मथुरा आगरादि शहरोंमें घूमते और विद्वानपुरुषोंसे अपना मलयगाते फिरनेलगे, क्योंकि जिससमयसे यहअपनेआपको प्रकटकरना नहींचाहतेथे यह भय सर्वथा नष्टहोचुका जानाजाताथा ॥ ‡ ॥

* देखो भगमदेव पराग्म ६८ पंक्ति २१ सन् २९ पंक्ति १ तक

† मंगलदेव पराग्म ७८ पंक्ति ७ में

‡ सम्भतो निश्चय वेदभाष्यभूमिकाके टैटलपर मासिकछापनेसे कि अमुकमासमें हम अमुक स्थानपरहोंगे ।

बाबू नवीनचन्द्ररायने आगरेमें और बाबू ब्रजलालघोषनें मथुरामें स्वामीजीसे मिलकर मनमें विचारकियाकि इसमहात्माजीसे हमकोअधिकसहायता मिलनेकीआशाहै, यह दोनों बाबू ब्रह्मसमाजीथे ॥

बाबू नवीनचन्द्ररायने लाहोरके ब्रह्मसमाजियोंको आगरेसेलिखाकि यदि स्वामीदयानन्दसरस्वती लाहोरमेंपधारें तो ब्रह्मसमाजकीतरफसे इनका स्वागत्कर अच्छीतरह आदरसत्कार होनाउचितहै ॥

१९अप्रेल सन्१८७७ई को स्वामीदयानन्दसरस्वती लुधियानेसे लाहोरमें पधारे, मुन्शी हरसुखराय अखबार "कोहनूर"के मालिक और पंडित मनफूल साहिब मीरमुन्शी गवर्नमेंटपञ्जाबने इनकी रेलपरअगवानीकी। और रत्नचन्दयाढ़ीवालके बागमें इनका डेराजमा, और ब्रह्मसमाजियोंकीतरफसेही इनकेखानपानका प्रबंधहुआ ॥

सम्पादकधर्म्मजीवनपत्र लाहोर अपने१०जून सन्१८८७ई०के छपेहुये पत्र संख्या२४पृष्ठ४में लिखतेहैं कि जो मालतर पहिले कभीस्वप्नमेंभी मुश्किलसे देखे होंगे उनके भोग लगनेलगे, और उनलक्षणोंका केवल एक इसबातसे अनुमान होसक्ताहै कि पहिलेपहिल जब यह लाहोरमें आये तो चार वा पांच रुपया प्रति दिन केवल भोजनके खर्चको लियाकरतेथे ॥

उधर जिव्हाका स्वादजितनामिला उतनाचक्खा। इधर पौशाकका लालच इतनाथाकि नंगेरहनेके दिनोंकी कसर निकालनेकेलिये पशमीने रेशम कलाबतून आदिके अनेक वस्त्र बनेलगे ॥

आर्य्यसमाचार मेरठमें जो स्वामीजीकी पौशाककी फहरिस्त प्रकाशितहुई, उसकोदेखकर विद्वानपुरुष भलीप्रकार समझसकतेहैंकि यह सन्यासी स्वामी दयानन्दसरस्वती कहाँतकत्यागीथे ॥

पूर्वोक्त समाचारपत्रसे कुछवस्तुके नामलेकर यहाँ लिखेजातेहैं ॥

सुर्खदुशालाकामदार१ दुशालाज़र्दजोड़ा१ दुशालासुर्ख१ चादरपशमीनेकी१ चोगासफेद बानातका१ दुशालारेशमी१जोड़ा दोपटारेशमी धूपछाँहका१ चोगाज़रदोज़ीरेशमी१ चोगारेशमीइकहरा१ चोगासब्ज़१ कोटरेशमीदोहरा१ पेटीसुर्ख पोथियाँसुर्खरेशमी किनारेकी दोपटाकलाबतूनका१ इत्यादि० ॥

और स्वामीजीके मरनेपर जबउनकेद्रव्यकी संभालहुई तो परोपकारणीसभा केउपमंत्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्यानेर८दिसम्बर सन्१८८३ई०को अजमेरमें भरीसभाको यह दिखलायाकि चारहजारतीनसौ४३००) रुपयानक़द मौजूदहै, और ग्यारहहज़ार रुपया११०००) लोगोंकेसे लेनाहै, चारहज़ार४०००) का मेस

[४६]

और अड़तालीस हजार ४८०००) रुपयेकी पुस्तक मौजूदहैं ॥ *

प्यारे पाठकवृन्द यहलेख हमनेअपनीतरफसे कल्पनाकरके नहींलिखदिया किंतु आर्य्यसमाजहीके लेखोंसे लियागयाहै, अबहमपूछतेहैंकि क्या देशोन्नति के लिये भेटहोजाना इसीकानामहै ? क्या भूखीनंगीहालतसे निकलकर चैनकरनाही देशकेलिये भेटहोजानाहै ? ऐसाकरनेकेलियेतो हरकोई उद्यमीहोसक्ताहै, हमपूछतेहैं कि स्वामीजीने देशकेलिये क्याकुछखोया ? त्यागीहोनेसेपहिले क्याकुछपासरक्खाथा जो देशकीभेटकिया, अकेलीजानकेलिये परायेठगेहुयेद्रव्यसे आनन्दसुखभोगनेमें उन्होंने कुछभी कमीनहींकी खानेपीनेकीवस्तुओंको तथा शारीरक भोगविलासों को छोड़कर और यहभीविचारकर कि अबउनकोबड़ेबड़े राजामहाराजोंसे मिलनेका बहुधाकामपड़ा और उससमय नंगारहना कुछभलानथा, ठीकहै, और इसीको मानभीलियाजायतो कहसक्तेहैंकि एकसीधीसादीचोली(पौशाककाफी)बसथी । नाना रंगकेदुशाले और अनेक चरणोंमें कलाबतूनके बुन्दोंकी कौनसी आवश्यकताथी, प्रथमतो सन्यासधर्म्म दूसरे कलाबतूनी रेशमी ऊनी कपड़े और तरेपनवर्षसे अधिक अवस्था धन्यमहाराज! सच्चेसन्यासी ऐसेहीहोतेहैं, यदिस्वामीजी अपनेनिजद्रव्यसेभी ऐसाकरतेतो अयोग्यथा और यहतो वहधनथाजो एकएकपैसाकरके देशसुधारधर्म्म के नामपर या मुन्शी इन्द्रमणिके मुकद्दमे † आदिककेनामसे लियागयाथा, बहुधा आर्य्यसमाजी कहतेहैं कि यदि मुन्शी इन्द्रमणिके चन्देका कुछरुपया स्वामीजीने रखभीलियातो क्या वे अपनेसाथलेगये ? इसीदेशकेलिये छोड़गये अच्छा यही सही परंतु देखोतोसही औरमनुष्यजो छलकपटद्वारा द्रव्यजोड़तेहैं क्या वे सबअपने साथलेजातेहैं, हम सत्य कहतेहैंकि यदि महात्माजीके कोईआगेपीछे होता ‡ तो जिनसहस्रोंकीपूंजी वह छोड़मरे वह पिछलोंहीकी होती, जिसप्रकार बहुधापादरीलोग नौकरहुयेपीछे गप्पशप्प अज्ञानीअभागवर्ग लपालप्पसे कामलेकर चैनकरतेहैं, स्वामी दयानन्दसरस्वतीनेभी चैनउड़ाया, और समयानुसार चालचलकर सम्पूर्णभारत वर्षमें देशहितैषी जुदेकालागये परंतु काठकीहांडी बारबारनहींचढ़ती शनैःशनैः दुग्धकादुग्ध पानीकापानी होहीतोगया ॥

अबइनका चालचलनव्यवहार बदला सबउपदेशभीबदलगया लगेमनमाने शब्दबघारने, और अनेकनास्तिकवादियोंके समान मतमतांतरकेझगड़ोंको झूठा

* देखो दयानन्दचरित्रमय भाग २ और उर्दू पुस्तक रहनुमान पृष्ठ ५५

† मुन्शी इन्द्रमणिके मुकद्दमेकाहाल आगेमिलेगा ॥

‡ अगरकोई अगलापिछला स्वामीजीके था उसको प्रकटनहींकिया जानकरछिपाया ॥

समभ ससारमें जन्मधारनेकाफल [शरीरको नानाप्रकारके पटआभूषणोंसे अल-
कृतकरके] मन और इन्द्रियोंकी इच्छापूर्णहोनाही ऐसा निश्चयकरके जाननेलगे ॥

[क] सम्भवहोताहैकि इससमय इनको यहबहाभारी पश्चात्ताप हुआहोगा
कि मैने लौकिक मतमतांतरके बखेडेमेंपडकर क्यों अपना अमूल्यसमय बरवादकि
या और सांसारिक नानाप्रकारके शारीरकसुखोंको त्यागकर अथवा उनसेवञ्चितरह
कर तनपरविभूतिमल लंगोटीबांध नग्नकालिये कभी गंगाकेउरलेपार और कभी-
परलेपार क्यो मनभटकाया ॥

धनकीइच्छातो यहाँतकरहतीरहीहै कि आपमें वितैषणाका त्यागभीनहीं
पायाजाता धनकीप्राप्तिमें कैसेकैसे प्रयत्नकियेथे कि निजयंत्रालयजारीकिया,पुस्तकों
कामूल्य द्विगुणत्रिगुण नियतहुआ, हमारीपुस्तकोंकी कोईअस्ल या नक्ल नछापै इस-
लियेउनपर रजिष्ट्रीकराईगई, लोगोंसे धनआने और पुस्तकविक्रयकेव्यवहारसे क-
मानेपरभी व्याकरणकेपुस्तक छपवानेको समाजोंसे धनकीसहायताली और बहुत
पंडितनौकररखकर वेदभाष्यकी पूर्तिशीघ्रहोगी इसवहानेसे पृथक्याचनाकी उपदेश
कमंडलीकेनामसे १०००००) एकलक्षरुपया एकत्रकरनेमें यथाशक्ति प्रयत्नकियागया
परंतु अन्यमार्गियोंके विवादविषयके भ्रांतिकारकव्यवहारमें आपका विपरीतव्यवहार
प्रकटहोनेकेकारण वह मनोर्थपूर्ण नहींहुआ ॥ *

लाहोरमें जबस्वामीजीने हिन्दूलोगोंके मतविरुद्ध अपनेव्याख्यानदेनेमार
म्भकिये तो रत्नचन्दकेबागसे इनकोउठादियागया और डाक्टररघुजलालयोप राय
बहादुरकी और अन्यकईमहाशयोंकी सुफ़ारिशसे डाक्टर रहीमखाँ खान्बहादुरने
अपनीकोठी देदई और स्वामीजी इसकोठीमेंरहकर व्याख्यानदेनेलगे ॥ †

स्वामी दयानन्दसरस्वतीके आधुनिकमत प्रचलितहोनेसे जोजो हानि प्राणी
मात्रकोहुई उसकावर्णनकरनेसेपहिले हम उसदृष्टान्तकाहीलिखना भलासमझतेहैं,
जिस्से यह निश्चयहोसके कि जबतक स्वामीजीकाकाम पूरा२नहींचलाथा तो
उन्होंने क्या२ यत्नकिये ॥

जबतकलाहोरमें इनकाकामनहींचला यह ब्रह्मसमाजकेही पूरेशुभचिंतक और
सहायकबनेरहे जिसकेबदलेमें ब्रह्मसमाजियोंने इनकाखूबही आदरसत्कारकिया,
परंतु जबकुछमनुष्योंने इनके चिकनेचुपडेव्याख्यानोंसे संतुष्टहो इनका पक्षग्रहणकर
लिया तो स्वामीजी ब्रह्मसमाजियोंकोभी बुराकहनेलगे ॥

* देखो दयानन्द मतपरीक्षा पृष्ट ८ पंक्ति१०

† देखो इसी ब्रह्मकपटदर्पण पुस्तककी भूमिका ॥

सो सत्यभीहैकि जिसहांडीमेंखाना उसीमेंछिद्रकरना ॥ ‡

वैशाख सम्वत् १९३४में स्वामीजी अमृतसरगये तो बाबानरायनसिंह वकील अमृतसरवाले कोहनूर अखबार लाहोरमें लिखतेहैं कि—

जबस्वामी दयानन्दसरस्वती अमृतसरआयेतो उन्होंनेअपनीगर्जमे लैक्चरोंमें गुरुनानकदेव और गुरुगोविन्दसिंह महाराजकी और शिष्यमतकी बड़ीतारीफकी, शिष्यमतको अपनेखयालातकेमुताबिक ज़ाहिरकिया और हरएकमौकेपरबातचीतमें शिष्यमतकी तारीफकरतेरहे, लेकिन जिसवक्त अपनीगरजपूरीहोगईतो "सत्यार्थ प्रकाश"में II झूठमूठ गुरुनानक और गुरुगोविन्दसिंहमहाराज और शिष्यमतकी तौहीन (बुराई) छापदी और बहुधाबातें मनघड़त विनाप्रमाण लिखदीं, इत्यादि ॥

प्रथमही जब स्वामीदयानन्दसरस्वती लाहोरआयेतो अपनाजीवनचरित्र व्याख्यानकीरीतिपर कईदिन लगातार वर्णनकियाथा ॥

यहपंजाबकीयात्रा स्वामीजीको सफलहुई, और उनके यथपदेशउपदेशोंसे तुष्टमानहोकर लाहोर और अमृतसर * के पंजाबियोंने अपनेअपने स्थानोंपर— स्वामीदयानन्दसरस्वतीकी आर्य्यसमाज स्थापितकरादी ॥ †

इससमयभी जोमनुष्य विद्या और बुद्धि तथाद्रव्यकेकारण ब्रह्मसमाजमें प्रसिद्धथे उनको स्वामीजीने देशसुधारकेनाममें धोकादेकर अपनेसमाजमें मिलाने कायत्नकरा और एकविद्यावृद्धपुरुषको अपनेसमाजका प्रधानबनानेका प्रकटप्रयत्न रहा परन्तु उक्तमहाशयने स्वीकारनहींकिया, तबलाचार उन्होंने पंजाबयूनीवर्सिटीके एक-डिगरीपायेहुयेको (जोइससमयसेपहिले अपनाविश्वास नास्तिकतापर लाकर नास्तिक विद्यावहोरहये) अपनेढबका जानकर लाहोरआर्य्यसमाजका प्रधान नियतकिया ॥

यहजोलाहोरसमाजके प्रधाननियतकियगयेथे, निश्चयसे नास्तिकविश्वासीथे, सो जबयहसमाजकी उपासनामें आनेलगनेलगे और उसमें अपनीअरुचि विदित

‡ परन्तु यह सत्यमत जिसकी श्री उपदेशमयाथा स्वामीजीको अपनेप्रतिकूलमालूम दियाइस्से डाक्टरलोग स्वराजप्रकाशपुस्तकके पृष्ठ ७१पर रामाकृष्णमहिता लिखतेहैं कि जब समाजियोंने स्वामीजीसे यहदयाकि डाक्टरलोगोंको समझौ पासपासके स्वनको दियाथा तो दो चारमनुष्योंने चन्दाकरके अथमिथ्याभी देदिया ॥

II देखो अखबार कोहनूर लाहोर ता० ११ दिसम्बर सन१८८८ ई० ॥

* अबस्वामीजीकेलाहोरसमाजकोतोड़करपीछेअमृतसरसमाजको पीछाभागनआकाकिये ॥

† नवाबगौबामें अमृतसरकी समाजकीभोगातो माधुरजीको मूलतामारहतेहैं । भावार्थ— स्वामीजीपर विपत्तिपड़ बापधड़केमेंभी तब जाकरहो स्वामीजीको सरकारमें इसमें देकर जिसका माहलेसमेंभी पड़ाथा ॥

करी तब स्वामीजीने उनको गुप्तरीतिसे यहकहदिया कि यद्यपितुमको परमेश्वरपर विश्वासनहींहै, परंतु देशकी भलाईके लिये कुछसमयकेलिये आपको समाजमंदिर में आनकर नेत्रमूंदकरके बैठजानाठीकहै ॥

ब्रह्मसमाजके अनेकप्रतिष्ठितसभासदोंसे स्वामीजीने यह स्वीकारकरलियाहै कि मुझको वेदोंपर कुछभीविश्वासनहींहै, केवलअपनेकार्य्यकी सिद्धीकेअर्थ यह—एक सहारा बनालियाहै ॥

अभीजबकि कर्नेलअलकाटसाहिब और उनकीसुसायटीसे इनकीमित्रता भगनहींहुईथी तो पहिलीबार कर्नेलसाहिबने लाहोरमेंआकर आर्य्यसमाजकेमंदिरमें एकव्याख्यानदिया जिसमें अपनीसुसायटीके जन्मधारणकरनेका दृष्टांत कहकरयह वर्णन प्रारम्भकियाकि आर्य्यसमाज और उसके प्राणदातासे इससुसायटीका क्यों कर सम्बन्धहुआ और यहभीवर्णन उसीसमयकाहै कि मुझको आर्य्यसमाजियोंसे मित्रताकियेपहिले उनकेदशनियमोंका सारांश विदितनथा किंतु जबउनका अंग्रेजी उलथा मेरेपासआयातो उसमें ईश्वरके उनगुणोंको देखकर जो उसको पुरुषरूपमा नकर प्रकटकियेहैं, बड़ाआश्चर्य्यहुआ ! और यहशंकाउत्पन्नहुईकि स्वामीदयानन्द-सरस्वती ऐसेसाकारईश्वरको क्योंकरमानतेहोंगे। सो मैंने आर्य्यावर्तदेशमेंआकर उक्तस्वामीजीसे निजकेतौरपर एकांतमें प्रश्नकियातो यहउत्तरमिलाकि मेरागुप्तविश्वास जिसपरहै वहईश्वर औरहीहै, जिसकोमेंइसस्थानपर यथार्थ प्रकटकरना नहींचाहता और आर्य्यसमाजके दशनियमोंमें गर्भितईश्वरपरमात्मा औरहै ॥ *

[क] आहा ! कैसाउत्तमविषयहै जिनके स्वामीदयानन्दसरस्वतीजैसे गुरुहों उनकेविद्या और बुद्धितथाभाग्यकी बलिहारीजाइये। कहाहैकि

श्लोक { गुरुवो बहव सन्तिशिष्यवित्तापहारका
दुर्लभ सद्गुरुर्देवि शिष्यसंतापहारक ॥१॥ }

द्वितीयज्येष्ठ तथा आषाढकेमहीने सम्वत् १६३४में स्वामीजीका पंडित भया रामजी फिल्लौर जिला जालन्धर निवासीसे शास्त्रार्थहुआ ॥ ‡

इसी अवसरपर स्वामीजीको अखबार मकीलहिन्द और पंजाबयूनीवर्सिटीके लिखेलेखोंसे मालूमहुआकि वेदभाष्यकेप्रतिकूल कलकत्तेआदि अनेकस्थानोंके वि द्वानोंने लेखनीचलाई इसपर स्वामीजीने निम्नलिखितलेखको अंग्रेजीमें उलथा

* कमसवमकाटकीमथा यथार्थीचमकार लिखागयाहै ।

‡ पुस्तक सत्यासत्यप्रकाश जिसका पंडित भयारामजी नवीनसांख्यमतोंमें भिन्नोंमें स्वामी जीको पूर्व पक्षरक्त ।

कराकर उनकेपासपठाया ॥

कईएकसाहियोंने मद्रचित वेदभाष्यपर प्रतिकूल अनुमतिदीहै, इसलियेमैं उनकीशंकाओंका उत्तर क्रमसे निवेदनकरताहूं। प्रथम उनशंकाओंका उत्तरहै जो गिस्तर आर ग्रिफित एम ऐ प्रिन्सपिल बनारस कालिजने कीहै। पांचहजारबर्ष के लगभगसे वेदविद्याभातीरही महाभारतसे पहिले इसदशमें सबविद्याओंकाप्रच रितथी परंतु पीछेसे पढनेपढानेकेग्रन्थ और रीति बिल्कुलबन्दलगई जबसेअबतक वहीअशुद्ध प्रणालीप्रचरितहै, यद्यपि कहींकहींकेलोग वेदादिक सत्यग्रन्थोंको कंठस्थ लेतेहैं परंतु उसकेशब्दार्थको कोईभी नहींजानता न ऐसेकोईव्याकरणादिग्रन्थ अर्थ सहित पढायेजातेहैं जिनसे वेदोंकाअर्थठीकके आधुनिक जोमहीधरआदिके बनाये हुएवेदभाष्य देखनेमेंआतेहैं वे महाभ्रष्ट और ग्रन्थकारके पढानेवालेहैं उनकेदेखने वालोंको मद्रचितभाष्य ठीकसमझमेंनहींआता मेराभाष्यशुद्धवेदार्थबोधक और प्राचीनभाष्योंके ठीकअनुकूलहै वह तभीसमझमेंआवेगा जबलोग प्राचीन—भाष्यादिकग्रन्थोंकी सहायतास्वीकारकरेंगे मैंने प्रत्येकमंत्रकाअर्थ सत्यप्रतीतहोनेकेअर्थ बहुप्राचीन आप्त व्याख्यानकारोंका प्रमाण बहुतस्पष्ट पतेवारलिखदियाहै, यदि—ग्रिफिथसाहियने प्राचीनभाष्य वा मेरेलिखेप्रमाणों और उदाहरणोंको पढाहोताती कभी उनकी ऐसीविरुद्ध समति नहोती जैसीकि उननेहालमेंदीहै, उवट, माधव महीधर, रावण, आदिकेरचेहुए भाष्य प्राचीनभाष्योंसे समस्तस्थानोंमेंविप रीतहैं, केवलइनटीकाभाष्योंका उल्था अंग्रेजीमें 'विलसन' और 'माक्समूलर' आदि प्रोफेसरोंनेकियाहै, इसलिये इनकेभाष्योंकोभी शुद्ध और न्यायमार्गीनहीं कहस कता इसीप्रयोजनकेकारण ग्रिफिथसाहिब आदिलोगभी संदेहमार्गमेंपड़ेहैं, औरमुझ को यहदूषणलगातेहैं, कितुमलोगोंने अर्थपलटकर आपलेप्रयोजनकेलियेयही—इसकेहीअर्थ नियतकियेहैं, परंतु उनकायहतर्क सर्वथानिर्मूलहै, मैंने सदैव 'ऐतरेय' और शतपथादि नामक ब्राह्मणग्रन्थ और निरुक्त तथा पाणिनीयव्याकरणादि सत्यग्रन्थोंका प्रमाणदेकर प्रत्येकमंत्रका सत्य अर्थलिखाहै यदि ग्रिफिथसाहिब उसकोविचारते तो कभीऐसा नलिखते, विचारकरताहूं कि उनने मेराभाष्यबिना देखेहुएकाले अपनी मनमानीअनुमति प्रकाशितकरदीहै ॥

मैनहींसमझसकताहूं कि क्यों ग्रिफिथसाहिब मेराभूगाभ्रमसमझतेहैं यद्यपि मेरे भाष्यमेंनेबाल इत्यादिमें प्रत्येक पदके सत्पुरुषहैं और प्रत्यक्षनवीनजनोंकानिवेदनपत्र मेरी पुस्तकमें नेनकेविषयमें पगाडपलेखामेंहै, मेरेभाष्योंमेंसे बहुतसमभच्छे सगुनाः

और बहुतेरे अंग्रेजी और संस्कृतमें पूरे विद्वानहैं मिफियसाहबका यहअन्तिम लेख कि वेदोंकी ऋचाओंसे बहुतसे देवताओंकेनाम प्रकाशितहोतेहैं, सोउनकी यहबात मुझकोतअज्जुबदिलातीहै और विद्वानोंकेसमीप प्रमाणीकठहरे जबवे उससमतलब की कोईऋचा मुझकोलिखभेजें ॥

(A) यद्यपि वेदोंको शीघ्रदृष्टिसे देखनेसे देवताओंकेनाम उतनेहीदिखपड़तेहैं जितनेकिस्तुतिकरनेवालोंकेहैं, परन्तु पुरानेव्याख्यात ग्रन्थोंकेअनुसार (किजोठीक आर्य्यधर्म्मकेविषयकेहैं)* वे अनेकनाम देवता वा मनुष्यों और वस्तुओंके नहीं ठहरसकते, अर्थात् वेसब तीनदेवताओंहीकेनामसे सम्बन्ध रखतेहैं और फिर वे तीनों नामोंकेदेवताभी पृथक् र नहींहैं, अर्थात् वे तीनोंनाम एकही परमेश्वरकेहैं निघंटु अर्थात् वेदोंके शब्दकोशके अन्तमें तीननामावली देवताओंकीहैं ॥ उनमेंसे पहिलीमें अग्निके दूसरीमेंवायुके तीसरीमेंसूर्य्यके पर्य्यायवाचीनामहैं, निरुक्तके अन्तभागमें जिस मेंकेवलदेवतोंकावृत्तान्तहै यहदोबारकथनकियागयाहैकि देवता केवलतीनहैं (तिस्र एवदेवता) इनसे अधिकतर अनुमान सिद्धान्त यहनिकलताहैकि केवलएकहीदेवताहै यहबातवेदके अनेकवाक्योंसेभी सिद्धहोतीहै, और यहीआशय निरुक्त और वेदके प्रमाणके अनुसार अतिसुगम और संक्षेपरीतिसे ऋग्वेदके सूचीपत्रमें वर्णनकियाहै इससे यह निर्णयहोताहैकि आर्य्योंके पुरानेधर्ममार्गकी पुस्तकें केवलएकहीब्रह्मको गातीहैं, और सूत्रोंसेभी ऐसाहीसिद्धहोताहै ॥

(B) वेदोंसेप्रगटहोताहैकि आर्य्यऋषियोंकाधर्ममार्ग केवलएक वडेब्रह्मके पूजन और श्रद्धावभक्तिमेंथा जिसकोवे सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ और सर्वव्यापक जानतेथे, और जिसके सम्बन्धीगुणोंको वेअत्यन्तपूजनीय वाक्योंमें प्रगटकरतेथे, और वे सबअतिगुण उसकी तीनप्रकारकीशक्तियाहैं, उनमेंसे प्रथम उत्पादक दूसरी पालक तीसरी संहारक नामसेवर्णनकीजातीहैं ॥

(C) इनअसिसत्यव्याख्यानोंसे मुझेपूर्णविश्वासहोताहै कि चारोंवेद एकहीब्रह्मको गातेहैं, जोसर्वशक्तिमानचिरस्थाई स्वयंभु संसारका द्योतक और पालकहै, मैं इसके संग एक औरऋचालिखताहूं जिससे एकहीब्रह्म निश्चितहोताहै, उससे आपकी शङ्कानिवृत्तिहोगी, खूबजानियेकि आर्यलोग स्वाभाविकबुद्धिसे सर्वत्र अद्वैतसेवी अर्थात् केवलएक ईश्वरहीको मानतेथे ॥

* पादरीसाहबवेदोंकेव्यतिरिक्त औरकिसीको प्रमाणनहींमानते फिर यह पुस्तकप्रमाणिक क्यों नहींहैं ? ॥

(D) उसीउक्तऋचाका एकचरणयहहै जिससे निस्सन्देह केवलएकईश्वरका निरूपणहोताहै यद्यपि हमलोग उसकोअनेकनामसे आवाहनकरतेहैं, ऋग्वेदकीभी ती और १६४ और ४६ वीं ऋचाकोदेखो स्पष्टलिखाहै कि-उसीएक परब्रह्म कोज्ञानवान इन्द्र मित्र वरुण और अग्निके नामसे पुकारतेहैं, कोईकहतेहैंकि यह आकाशमें सपक्षगरुत्मानहै, और कोई२ बुद्धिवान् उसीके अग्नि यम मातरिश्वा आदिअनेकनाममानतेहैं ॥

ऋग्वेदमेंजो प्रथममंत्रआयाहै उसमें अग्नि शब्दआयाहै, उसका उल्था सी एच टानी साहब एम ए प्रिंसिपल प्रेसीडेन्सी कालिज कलकत्ताने आमकेअर्थमें अपने उस प्रथमोक्तव्याख्यानसे कियाहै कि अग्निभी एकपदार्थ अविद्याकावेदमेंहै, परन्तु अग्निको तत्वमानकर किसी प्राचीन ऋषि मुनिने पूजन व आवाहन नहींकिया और अग्नि शब्दका जो स्वाभाविक अर्थ आगहै वह केवल उनवाक्योंमें लिया जाताहै जिनमें लौकिक संबन्धी बातेंहैं परन्तु ऐसे वाक्योंमें जहांईश्वरकी स्तुति प्रार्थना निवेदन आदिका प्रसंग होताहै वहां अग्नि शब्दका अर्थ परमेश्वरका घटित कियाजाताहै, यह अर्थ कुछ मैंने मिथ्याकल्पित नहींकिया इस प्रकारके शुक्लार्थ ब्राह्मण और निरुक्त नामीग्रंथोंमें बराबर वर्णन होआयेहैं ॥ अंतपर टानीसाहिब की जो यह सम्मतिहैकि मैंनेजो भाष्यबनायाहै, वह इसकारणसे है क्योंकि सायन और अंग्रेजी उल्थाकारोंके भाष्य कटजावें अर्थात् अशुद्धठहरें सो इस विषयमें मैं कभी दूषित नहींहोसक्ताहूं, अगर सायनने भूलकीहै और अंगरेजोंने उसको अपना मार्ग प्रदर्शक मानकर अंगीकारकरलियातो भलेहीकरो परन्तु मैं जानबूझकर भूलका काम नहींकरसक्ता परन्तु मिथ्यामत बहुतकालतक नहींठहरसक्ता केवल सत्यही ठहरताहै और असत्य सत्यताके सन्मुख शीघ्रधुंधलाहोजाताहै, पण्डित गुरुप्रसाद हेडपण्डित ओरियंटल कालिज लाहौरने पक्षपातकरकरके स्वामीजीके भाष्यमें कोई अशुद्धिछापेकी कसर नहीं, मेरे प्रत्येक आशयको दूषित ठहरायाहै यद्यपि मैं उनको धन्यवाददेताहूं उनने मेरे भाष्यके छापनेवालेका निरक्षरमाना परन्तु थोड़ीमानते * परन्तु मैंकहताहूंकि उसकाभी दोष वे मेराहीमानें ॥ लेकिन थोड़ा मुंहखोलकर कहैंतो कैफियत खुलेनहींतो क्यामानपड़े और जो वे मुझे दूसरेस्थल पर यह दोषलगातेहैंकि अपनेईश्वरका प्रचारकियाचाहताहै, सोमैं ऐसीबातोंको सुन

* पण्डित गुरुप्रसादका छापेवालेको निर्दोषकहना ठीकहै क्योंकि वस्त्रारंभप्रायश्चि और पिछला प्रायश्चित कामोंको छापेमें दोषभेदालेको भूलसे लिखागया वर्तें ।

प्रतिपक्षाचापसे करता और समझताहूंकि ये वेदविद्यासे बिल्कुलअजानहैं। यदि उन्होंनें प्राचीनभाष्योंका अवलोकनकियाहोता तो कभीऐसानकहते ॥ और तीसरा कलंकजो वे मुझे यहलगातेहैंकी इन्द्र मित्र और स्वप्न आदिशब्दोंके अर्थ स्वामीजी ने अपनी ओरसेगढेहैं, सोउनकी इस शंकाके उत्तरमें में उनको वेदभाष्यके विज्ञापन का प्रमाणदेताहूं और एकप्रति साथही इसउत्तरके ऐसी लगायेदेताहूंकि जिनमें उनशब्दोंका यथावतवर्णनहै, फिरभी इनसबबातोंके परिणाममें मुझेनिस्संदेहहो यही कहनापड़ताहैकि उनमें पुरातन संस्कृतविद्या अत्यन्तहीकमहै ॥

चौथादोषजो वे मेरेव्याकरणमें यहआरोपणकरतेहैंकि परस्मैपदकेस्थानमें आत्मने पदलियाहै सो अबमें इसबातका निश्चय करानेको कि मुदर्पंडितजी व्याकरणका ज्ञाननहींरखते कैयट और नागेश आदि ग्रन्थोंके कईएकप्रमाणिक उदाहरण पृथक् लिखताहूं और उनस्थलोंकी नकलभी इसहू उनकोभेजसकाहूं जिसमें मेरा किया प्रयोग कैसाशुद्धहै प्रतीतययेच्छहोजावेगी और मैनेमौकेपर पाणिनीयव्याकरणके प्रथमाध्यायके तीसरेपादका४७ वां सूत्रभीलिखाहै, परन्तु विनाव्याकरणबोध क्यों कर उनकेसमझमेंआवे,

पांचवीं शंकाउनको मेरेएकछन्दके प्रयोगपर उपस्थितहुई, वह अत्यन्तहीहास्य जनकहै जो मैंउसका इससंक्षिप्तउत्तरमें कुछवर्णनकरूं तो असारविस्तारहोगा, रहा उनकासमाधान सो उसकेलिये पैङ्गल सूत्र और उसकेभाष्यकार हलायुधभट्टका एकसत्यप्रमाण पृथक्लिखताहूं उसेदेखशान्तहोवें ॥

ज्ञातहोताहैकि पंडित हृषीकेशभट्टाचार्य्य द्वितीय पण्डित ओरियंटल कालिज लाहौर सर्वत्रपण्डित गुरुप्रसादजीके ही अनुगामीहुएहैं, इससे उनकीशंकाओंका उत्तरवहीसमझनाचाहिये जोपीछे लिखआयेहैं, (उपचारक) शब्दमें उनकी एक शंका पृथक्है, सो उन्हें यहबातसुझानेकोकि मेराअर्थबहुतहीनिर्मलहै में उन्हें केवल पाणिनीयव्याकरणके प्रथमाध्यायके तीसरेपादके १२ वें सूत्रका प्रमाणदेताहूं उस कोदेखतुष्टहोवें ॥

अबरहे पण्डित भगवानदास असिस्टैंट प्रोफेसर संस्कृत गवर्नमेंट कालिजलाहौर सो उनकीकोई नवीनशंकानहींहै इसलिये जोकुछमैंने ऊपरकहावहीवहुतहै वेभी इसी लेखपर संतुष्टहोवें ॥ इति ॥

पूर्वोक्तलेखकी अनेकप्रति अंग्रेजीछपाकर स्वामीजीने वितरणकरदी स्वामीजीलिखतेहैंकि " मैंनहींसमझसक्ताहूंकिक्यों ग्रिफियसाहब मेराइयाभमसमझ

धर्म्मविमुखहोनाअनुचितहै ; धर्म्मविषयमें चाहेऔरकुछकिसीकामतहो परन्तुदेशहितमें सबको एकमत होजानाचाहिये ॥

{ आपका मित्र
{ राधाचरण गोस्वामी

——)(०)(——

पूर्वोक्तपत्रकाउत्तर, मित्रविलास पत्र संख्या१०खंड८ तारीख१७—६—१८७५ई०

श्रीयुत मित्रविलास सम्पादकेषु,

महाशय !

जोपिछ्लेसप्ताहमें आपनेलिखाथाकि, लाहौर और अमृतसरमें साधु दयानन्दसरस्वतीने "आर्य्यसमाज" स्थापनकियेहैं, इनसे लोकोंकीउन्नतिहोगी, उसपरहमलिखतेहैं कि यहसमाज देशके ह्रासकासाधनहैं, उन्नतिकी सम्भावनाभी कहाँ। लोगोंके धर्म्मकानाशकरनाही इनमें मुख्यउद्देश्यहै, वेद स्मृति इतिहास पुराणोंमें जोधर्म्मप्रतिपादितहै, उससे विचारे शास्त्रानभिज्ञ लोगोंको हटानाही उन सभाओंका मुख्यप्रयोजनहै; और श्रीराम श्रीकृष्णादि अवतारोंकी निन्दा श्रीगङ्गादि तीर्थ और परमपावन देवक्षेत्रोंका अपवाद तथा ब्राह्मण निन्दाद्वारा देवताओंसे और परमेश्वरसे विमुखकरनाही, वेदवाक्योंके उलटेअर्थकरके यहाँनिश्चितहै। वेदका अर्थतो उलटाकियाहै, निरुक्तादिकोंकाअर्थभी विपरीतही समझायाजाताहै ॥

जबधर्म्मशास्त्रादिकोंकोही अप्रमाणकहा, तो वर्णाश्रमधर्म्मकहाँ जबवेदके— "येरुद्रानुरोधि" अर्गलअर्थकिये, तो फिरभलायह आध्यात्मिककर्म्मकहाँहुए। जबधर्म्म मेंही च्युतहुए, उन्नतिकीआशाहोसक्तीहै, पुरुषकीउन्नति यहिक, पारलौकिक फलोंसिद्धी पुरुषकी उन्नतिहै, ईश्वरीयज्ञानकासाधनकर्म्महै; जबअन्तःकरणशोधक धर्म्म ही नहुए, तो भला ईश्वरकायथार्थज्ञान कब और किसप्रकारसेहोसक्ता। क्योंकि उपाधिना उपेयकी प्राप्तिकाहोनातो सर्वप्रकारअसंभवहै। अतः हमपरमेश्वरसे यही— मांगतेहैं कि, हे परमेश्वर ! तू ऐसी २ कल्पितसभाओंकोनष्टकर; और श्रुतिस्मृत्युक्त सनातनधर्म्मनिरूपक सभाओंकी रचनामें हमारेबन्धुओंके मनकोलगा जिससे वे अपनेधर्म्मपर सदैव स्थिररहैं ॥

हमारा किसीकेसाथविरोधनहीं, केवल श्रुति स्मृति पुराण विरुद्ध मत लोगोंके भ्रामकग्रन्थोंसे ये दयाईहोकर, इनलोगोंकोकहताहूं। इसीसेसनातनधर्म्मकी उनकी परमप्रथाहै' जबसबदेशमें, और मतोंमेंयथायोग्यताहै किएकदूसरेके मतकी और उस के प्रवर्तकोंकी निन्दाकरताहै, तो देशोपकारीकार्य्योंमें एकमत्यकबहोसकताहै। यही देशहितैषीहोना बहुतकठिनहै, परन्तु जब ऐसी२ धर्म्मनाशकसभायें स्थापितहुईंतो ५०

मत्यहोना बहुतहीकठिनहै। धर्म्मसेअधिक कोईदेशोपकारीकामनहीं, इसवास्ते मथम यथार्थ निरुक्तानुसार, श्रीमाधवाचार्य्यादिकृत वेदार्थकोविचारकर सनातनधर्म्ममें स्थितहोनाचाहिये, पश्चात् देशहितैषीकार्य्योंमेंभी स्थितिहोगी। हमप्रार्थनाकरतेहैंकि हे परमात्मन‌ः इसदयानन्दसरस्वतीमणीत सर्वथानिषिधमतसे लोगोंकीबुद्धिकोहटा, और सद्धर्म्ममेंमवृत्तकर ॥ अलम्।

लवपुर वासी } { आपकामित्र पं० मथुराम

मित्रविलास संख्या११खण्ड१तारीख२४सितम्बर सन्१८७७ई०में लिखाहैकि,

॥ आर्य्यासमाज ॥

——:)(०)(:——

"सत्यबोलो" और "जोतुमकोसत्यमतीतहोवाहै,वहीकरो" ऐसाकहना सहजहै, परंतु करनाकठिन। हमसबकिसीको यहीशिक्षाकरतेरहतेहैंकि,"भाइओ! झूठबोलनाबुराहै, मद्यपान तथा वैश्यागमन मभृतिकर्म्म मनुष्यकोडजाडदेतेहैं,"पर हमारा औरोंकोऐसाकहना किसकाम जबहमआपही इनकुकर्म्मोंमें ग्रसितहैं। आर्य्यसमाजीलोग ब्राह्मणोंकी और मूर्तिपूजा तथा श्राद्धादिककी निन्दा और भ्रम ऐसा मुंहसेतोकरतेहैं, परतु शोचकीबातयहहै कि फिरभी अपनेनियमोंसे व्यतिरिक्त चलतेहैं जानबूझकर असत्य और मिथ्याकरना कैसापापहै! परतोभी वे ऐसाकरतेहैं॥

सुनागयाहै कि, अभीकुछदिनहुए, उक्तसमाजके एकशिरोमणिसभासद का विवाहथा और यद्यपि वह ऐसाथा, तथापि उसने उन्हींब्राह्मणोंसे विवाह कराया जिनको वह सर्वदा पोपकहाकरताथा,उन्हींमूर्तियोंका पूजनकिया जिनकीवह निन्दा कराकरताथा, और सारांश उसनेवहीं२ कर्म्मकिये, जो उसकीसमझमें पापयुक्तकर्म्मथे। वाह! स्पष्टहैकि ये लोगकहतेकुछहैं और करतेकुछ। ह ह ह ह! हमको उचित नहींहैकि, एकहीअपराधसे किसीको अपराधी बनावें, अतः हम यही योग्य समझतेहैंकि इनकन्यागतके१५ दिवसोंतक ठहरें और देखेंकि ये लोग अपनेनियमोंपरचलतेहैं या नहीं और श्राद्धकरतेहैंकिनहीं॥

॥ दूसरालेख इसीपत्रमें ॥

यहांकेपंडितलोग दयानन्दसरस्वतीके मतकोखंडनकरनेकेहेतु स्थान२ पर सभायें कररहेहैं। आशाहै कि इसबीजकाअंकुर शीघ्रही निकलेगा,

बनालाल

पद्दिमुखहोनाअनुचितहै , धर्म्मविषयमें चाहैजोकुछकिसीकामतहो परन्तुदेशहितमें सबको एकमत होजानाचाहिये ॥

{ आपका मित्र
{ राधाचरण गोस्वामी

———)(०)(———

पूर्वोक्तपत्रकाउत्तर, मित्रविलास पत्र संख्या१०खंड१ तारीख१७-६-१८७७ई०

श्रीयुत मित्रविलास सम्पादकेषु,

महाशय !

जोपिछलेसप्ताहमें आपनेलिखाथाकि, लाहौर और अमृतसरमें साधु दयानन्दसरस्वतीने "आर्य्यसमाज" स्थापनकियेहैं, इनसे लोकोंकीउन्नतिहोगी, उसपरहमलिखतेहैं कि यहसमाज देशके ह्रासकासाधनहैं, उन्नतिकी सम्भावनातो कहाँ। लोगोंके धर्म्मकानाशकरनाही इनमें मुख्यउद्देश्यहै, वेद स्मृति इतिहास पुराणोंमें जोधर्म्मप्रतिपादितहै, उस्से विचारे शास्त्रानभिज्ञ लोगोंको हटानाही उन सभाओंका मुख्यप्रयोजनहै; और श्रीराम श्रीकृष्णादि अवतारोंकी निन्दा श्रीगंगादि तीर्थ और परमपावन देवक्षेत्रोंका अपवाद यह ब्राह्मण निन्दाद्वारा देवताओंसे और परमेश्वरसे विमुखकरनाही; वेदवाक्योंके उलटेअर्थकरके बहाँनिश्चितहै। वेदका अर्थतो उलटाकियाहै, निरुक्तादिकोंकाअर्थभी विपरीतही समझायाजाताहै ॥

जबधर्म्मशास्त्रादिकोंकोही अप्रमाणकहा, तो वर्णाश्रमधर्म्मकहाँ जबवेदके— स्वेच्छानुरोधि अनर्गलअर्थकिये, तो फिरभलायह श्राद्धादिककर्म्मकबहुए। जबधर्म्म मेंही च्युतहुए, उन्नतिकीआशाहोसक्तीहै; पुरुषकीउन्नति एहिक, पारलौकिक कर्म्मोंसेही पुरुषकी उन्नतिहै, ईश्वरीयज्ञानकासाधनकर्म्महै; जबअन्तःकरणशोधक कर्म्म ही नहुए, तो भला ईश्वरकायथार्थज्ञान कब और किसप्रकारप्राप्तहुआ। क्योंकि उपायबिना उपेयकी प्राप्तिकाहोनातो सर्वप्रकारअसंभवहै। अतः हमपरमेश्वरसे यही— मांगतेहैं कि, हे परमईश्वर ! तू ऐसी२ कल्पितसभाओंको नष्टकर; और श्रुतिस्मृत्युक्त सनातनधर्म्मनिरूपक सभाओंकी रचनामें हमारेबन्धुओंके मनकोलगा जिस्से- वे अपनेधर्म्मपर सदैव स्थिररहैं ॥

हमारा किसीकेसाथविरोधनहीं, केवल श्रुति स्मृति पुराण विरुद्ध भ्रम लोगोंके भ्रामकमतकोदेख में दयार्द्रहोकर, इनलोगोंकोकहताहूं। इसमेंशत्रुधासमझेंतो उनकी परमअज्ञताहै। जबमतद्वेषहै, और मतभेदभीऐसाहै किएकदूसरेके मतकी औरउस के प्रचार्य्योंकी निंदाकरताहै, तो देशोपकारीकार्य्योंमें एकमत्यकबहोसकताहै। यद्यपि देशहितैषीहोना बहुतश्रेष्ठहै, परंतु जब ऐसी२ धर्म्मनाशकसभाऐं रचितहुईतो एक-

मत्यहोना बहुतहीकठिनहै । धर्म्मसेअधिक कोईदेशोपकारीकामनहीं, इसवास्ते प्रथम यथार्थ निरुक्तानुसार, श्रीमाधवाचार्य्यादिकृत वेदार्थकोविचारकर सनातनधर्म्ममें स्थितहोनाचाहिये, पश्चात् देशहितैषीकार्य्योंमेंभी स्थितिहोगी। हमप्रार्थनाकरतेहैंकि-हे परमात्मन् इसदयानन्दसरस्वतीप्रणीत सर्वथानिर्मितमतसे लोगोंकीबुद्धिकोहटा, और सद्धर्म्ममेंप्रवृत्तकर ॥ अलम् ।

लवपुर वासी } { आपकामित्र पं० नथूराम

मित्रविलास संख्या११खण्ड१तारीख२८सितम्बर सन्१८७७ई०में लिखाहैकि,

॥ आर्य्यासमाज ॥

—)(०)(—

"सत्यबोलो" और "जोतुमकोसत्यमतीतहोताहै,वहीकरो" ऐसाकहना सहजहै, परन्तु करनाकठिन । हमसबकिसीको यहीशिक्षाकरतेरहतेहैंकि,"भाइओ ! झूठबोलनाबुराहै, मद्यपान तथा वेश्यागमन प्रभृतिकर्म्म मनुष्यकोउजाडदेतेहैं,"पर हमारा औरोंकोऐसाकहना किसकाम जबहमआपही इनकुकर्म्मोंमें ग्रसितहैं । आर्य्यसमाजीलोग ब्राह्मणोंकी और मूर्तिपूजा तथा श्राद्धादिककी निन्दा और प्रशंसा मुंहसेतोकरतेहैं, परन्तु शोचकीबातयहहै कि फिरभी अपनेनियमोंके व्यतिरिक्त चलतेहैं जानबूझकर असत्य और मिथ्याकरना कैसापापहै ! परतौभी वे ऐसाकरतेहैं ॥

सुनागयाहै कि, अभीकुछदिनहुए, उक्तसमाजके एकशिरोमणिसमासद का विवाहथा और यद्यपि वह ऐसाथा, तथापि उसने उन्हींब्राह्मणोंसे विवाह कराया जिनको वह सर्वदा पोपकहाकरताथा,उन्हींमूर्तियोंका पूजनकिया जिनकीवह निन्दा कराकरताथा, और सारांश उसनेवहीवह कर्म्मकिये, जो उसकीसमझमें पाखण्डकर्म्मथे । वाह ! स्पष्टहैकि ये लोगकहतेकुछहैं और करतेकुछ । ह ह ह ह ! हमकोउचित नहींहैकि, एकहीअपराधसे किसीको अपराधी बनावें, अत हम यही योग्य समझतेहैंकि इनकन्यागतके१५ दिवसोंतक ठहरें और देखेंकि ये लोग अपनेनियमोंपरचलतेहैं या नहीं और श्राद्धकरतेहैंकिनहीं ॥

॥ दूसरालेख इसीपत्रमें ॥

यहाँकेपंडितलोग दयानन्दसरस्वतीके मतकोखंडनकरनेकेहेतु स्थान२ पर सभाएं कररहेहैं । आशाहै कि इसबीजकाअंकुर शीघ्रही निकलेगा ,

बृपालताल

फिर मित्रविलास खंड १ संख्या १२ तारीख ११।१०।१८७७ई०मेंयहलिखाहै॥

श्रीयुक्ति मित्रविलास सम्पादकेषु,

महाशय !

मैंनेजो १०सितम्बरकेपत्रमें आर्य्यसमाजकेविषयलिखाथा, उसपर आप केनगरनिवासी पण्डितनत्थूराम तर्ककरतेहैं, और कहतेहैंकि यहसमाज देशकेह्रास-साधकहैं। कदाचितपंडितजीकाकथनसत्यहो, पर यह हमभलीभांतिजानतेहैं किइन समाजोंकेअनुग्रहसे देशभक्ति, शास्त्रानुराग ज्ञानालोचन, अवश्य होसकताहै, जिससे हमारेदेशके अतीवउपकारहोनेकी संभावनाहै। धर्मकेविषय प्रथम ऐकमत्यकरक पुनःदेशोन्नतिकरना भारतवासियोंसे असाध्यहै, क्योंकि इसदेशमें इतनेमतमतांतरहैंकि उनकीइयताहोना अत्यन्तकठिनहै, और यदिइयताभीहोजायतो फिरउनमें किसी एकमतको उत्कृष्टकहकर उसमें सबकामवेशकरानाभी असम्भवहै, क्योंकि शताब्दियों से परस्पर मतोंका विवादचलाआताहै, परन्तु उसमेंआजतकभी कुछ निर्धारित नहुआ; और न सबमतनष्टहोकर किसीएकमतकी प्रवृत्तिही प्रधान्यरूपसेहुई तो यह कौनकहसक्ताहैकि हमइसकाभारलेतेहैं, और शीघ्रही सबको एकधर्मकरसक्तेहैं। यदि हमारेपण्डितजी इसविषयमें प्रतिज्ञाकरतेहोंतो देशका बड़ासौभाग्यहो, परन्तु बड़े विद्वान्आचार्य्यही न करसके तोयहविचारे क्याकरसक्तेहैं? किंच इससमयमें जबकि हमलोगोंसेअधिक अन्यान्यजन धर्मप्रचारमें सयत्नहैं॥

आर्य्यसमाजके सभ्योंसे विनाकिसीमतकाविचारकिये देशोपकारीकर्म्ममेंमिलना, और निरर्थकवादविवादमें गालागालीनकरना, अथच और मतानुयायियोंकेसमान इनसेभीकार्य्यमात्र संबंधरखना, एवं परस्पर विरोधछोड़देनाही मेराआशयहै कुछ यहनहीं कि धर्म्मसंबंधी विवादकरना और नित्यशः असम्यवनकर मारकूटतक पहुंचना। यदिहमारेपंडितजी विरोधाग्निको समयप्रतिसमय प्रज्वलितकरने और वाग्यज्ञकेप्रहारसेही धर्मकी पराकाष्ठा अथच देशकाउपकार सोचतेहैं तोहम खेदकरतेहैं।

श्रुति स्मृति पुराण विरुद्धलोगोंके भ्रामकमतका निराकरणही यदि पंडितजी का उद्देश्यहै, तोयहउसमतकी निन्दाक्योंकरतेहैं जिसमें निस्सन्देह श्रुति स्मृतिका प्रमाणमानाजाताहै? क्या स्वामीदयानन्द वेद और मन्वादिशास्त्रनहीं मानते? हम यहनहींकहतेकि यह सबकर्म्म वेदिकहीकरतेहैं, परनहीं वह वेदके प्रायःअनुयायीहैं। किन्तु सफलवेदोक्त कर्म्मके करनेवालेतो चाहे हमारे पंडितजीहोंगे॥

हमारेपंडित महाशय स्वामीदयानन्दको अज्ञकहतेहैं, इसकी विवेचना पाठक (करचाहे, प्र)

[illegible]थेषुहै, परंतु अब ऐसा ~

जनहीकरलें, अर्थात् इन दोनोंमें कौनविश, और कौनभ्रष्टहै, इमसे स्पष्ट नकहावें ॥

{ आपका मित्र
} राधाचरण गोस्वामी।

फिरदेखो मित्रविलासपत्र खण्ड१संख्या१४तारीख१५।१०।१८७७ई० ॥

श्रीयुत मित्रविलास संपादकेषु,

महाशय !

आपके पत्रमें पंडितनत्थूरामका एकपत्रछपाहै, जिस्सेदेखकर मैंअत्यन्तआनंदितहुआहूं। कारणयहहैकि, हमारेपरममित्र श्रीयुत राधाचरणगोस्वामी, यद्यपि लिखतेहैंकि, दयानन्दके "समाज" से हम देशकेहितका साधनसमझतेहैं, परन्तु हमारीदृष्टिमें यह उक्त महाशयका केवल भ्रममात्रहै; क्योंकि "आर्य्यसमाज" वाले केवल देशकोभ्रष्टकरनेमात्रहीपर बद्धपरिकरहैं। उनकीदृष्टि देशहितैषिताकी ओरनहींहै। यादिहम दयानन्दीय, मतके मत्यक्षरकाखंडनकरैं तो, महाभारतसरीका एक ग्रंथबनजाय; परन्तु हमस्थूलविचारका आरम्भकरतेहैंकि, प्रथम उक्तसन्यासी क्याप्रमाणमानताहै ? वेदेतिहासमें अमुकामुकस्थलमचुरहै, और अमुकप्रमाणहै, इसमेंक्याप्रमाणहै ? ॥

उक्तसन्यासी जबयहांआयाथा तबमैंनेभीउससे आलापकियाथा। वहकिसी पक्षपर आरूढ़नहींरहता। जबउससे कुछ्उत्तरनहींबनता, तबवह हाहाकर हंसताहै। फिरदेसेमनुष्योंसे कुछसहायतापावेंगे, यहकेवल बुद्धिविपर्य्यासहै। अलम् ॥

वृन्दावन ॥] [छबीलेलाल गोस्वामी

मित्रविलासपत्र संख्या१५ खण्ड१ तारीख२२। १०। १८७७ई० में सम्पादकनेलिखाहै,

इनदिनोंलाहोरमें दयानन्दसरस्वती आयेहुएहैं और शास्त्रोंके विषयमें प्रतिसन्ध्याको आर्य्यसमाजमें, व्याख्यानकियाकरतेहैं। हम आशारखतेहैं कि, लवपुरीय पंडितलोग अवइनसे शास्त्रार्थकरके अपनीमनोकामनायें पूर्णकरनेकी अवश्य चेष्टाकरेंगे॥

फिरदेखो मित्रविलासपत्र संख्या१६ खण्ड१ तारीख२६। १०। १८७७ई० में लिखाहै ॥

श्रील श्रीयुक्तमित्रविलाससंपादक महोदयेषु।

महाशय।

आपके १५अङ्कके पत्रमें हमारेमित्र छबीलेलालगोस्वामीने हमपर

यहींकृपाकीहै । और उसकाविशेषकारणयहहैकि हमने आर्य्यसमाजको देशहितैषी बतलाया। इमठनसे अतीवनम्रहोकर जिज्ञासाकरतेहैं कि क्या आपने कोईआर्य्यसमाजकी ऐसीनियमावली देखीहै, जिसमें देशके भ्रष्टकरनेकीप्रतिज्ञाहै ? वा आपनेघरमेंबैठेबैठेही अनुमानमात्रसे सबतत्व निश्चयकरलिया ? और अपनेनीचस्वभावसे निष्प्रयोजन सत्पुरुषोंकी निन्दामें प्रवृत्तहोगये ? हमआपसेही पूंछतेहैंकि यदि स्वामी दयानन्द देशहितैषीनहींहैंतो क्यों भारतवर्षके चतुर्दिक्में वभिभित पर्य्यटनकरतेहैं ? और लोगोंको उसीभांतिका उपदेशदेतेहैं ? अथच नूतननूतनग्रन्थप्रचार, पाठशालास्थापन, समाजनियोजन, सविस्तृतवक्तृता वितरण प्रभृतिउन्नतिसाधक उपायोंमें संयत्न रहतेहैं ? हा ! क्या स्वामीदयानन्द अनेकअज्ञोंके इतनेदुराचार और यन्त्रणा सहनेपरभी देशहितैषी पदकेयोग्यनहीं ? वा वह अष्टप्रहर देशमंगलार्थ अविचल श्रम,और लोकोत्तरउत्साहकरनेपरभी उसके तबदेशभक्तिसे मुक्तनहीं ? मित्रमहाशय! आर्य्यसमाजकेतो यह मुख्यनियमहैं जिन्हें आपकेसदृश दोचारदोषैकदर्शी और कलुषितान्तः करणोंके नि+++++* (अपराधक्षमा) आपने अपनेपवित्रशरीरसे कितना देशोपकारकिया ।

दयानन्दीयमतके प्रत्यक्षरका खंडनकरनेको कौनअवरोधकरताहै, यदि आपको कुछविद्या और बुद्धि और बलहैतो सबछोटे और बड़ेपर प्रकटकीजिये । परन्तुहमें यहसोचकर बड़ाहास्यआताहैकि आपप्रथम दयानन्दका मततोजानतेहीनहीं खंडन क्याधूलकीजियेगा ? ॥

दयानन्दीयमतके प्रत्यक्षरकाखंडनतो एकओररहा आपअपनेतरफसेतो खंडनकरचुके इत्यादि, आपको इतनीशक्तिनहींहै, जैसाकि इरादाकरतेहो । दयानन्दीयमतके प्रत्येकअक्षरका खंडनकरना, महाभारतकेसमान ग्रन्थबनाना अभिमानोक्ति और मूर्खताहै । कुछ दयानन्दकामत स्वतन्त्रनहींहै, वहतो उक्त ग्रन्थोंको हीं आश्रयकरके उपदेश, वक्तृताइत्यादिकरतेहैं ॥

स्वामीदयानन्द उनग्रन्थोंको प्रमाणमानतेहैं जिन्हें परस्पर विवदमानभी आर्य्यगण समस्वरसे अत्यादरसहित स्वीकारकरतेहैं, और जिनकेप्रामाणिकहोनेमें किसीप्रकारकासंदेहनहीं । परन्तुयदिआप उनग्रन्थोंकोनमानतेहोतो निस्संदेह साधुसमाजबहिष्कार्य्य,नास्तिक, औरवेदनिन्दकहो।वेदेतिहासमें प्रक्षिप्तस्थलोंके विषयजो आप प्रमाणचाहतेहैंसोप्रथम यहतोबतलाओकि वह किसकिसस्थलको प्रक्षिप्तबतलातेहैं ?

* यथार्थहै। + +ऐसे चिन्हप्रमादियोंगयेहैं यहांका कुछअंश भ्रष्टहोनया सिचानहीं ॥

स्वामीदयानन्द अपनेपक्षपर कैसेआरूढ़हैं, इसबातोंको प्रायः सबलोगजानतेहैं, और विशेषतः उनका क्रियाकलापही सम्प्रतिसाक्षीदेताहै। परआपके किसी प्रश्नकाउत्तरनदेकर वहहसनेलगे, यह कदापिसत्यनहीं। क्योंकि कहांउनकादेश-विदितपाण्डित्य, और कहाँ आपकी अल्पसारबुद्धि? किम्ब उनसे जो कुछदेशको सहायमिलाहै, और आगेमिलेगा, उसकेलिये इसकृतघ्न और हताशनहींहोसक्ते, आपचाहेंजितना शोककीजिये॥ [राधाचरण गोस्वामी†]

मित्रविलासपत्र संख्या१७ खंड१ तारीख५।११।१८७७ई०मेंफिरयहलिखाहै,

श्रीयुत श्रीमित्रविलास सम्पादकेषु,

महाशय!

आपके अक्टूबर२६के पत्रमें श्रीराधाचरणगोस्वामी कहतेहैंकि दयानन्दसरस्वती नूतन ग्रन्थनिर्माणकर भारतवर्षमेंफिरतेहैं। और उपदेशकरतेहैं, इसमेंहमारा विचार यहहैकि, उनकादेशोपकार किसीप्रकार सिद्धनहींहोता; क्योंकि वे ग्रन्थ
५ और उन्काउपदेश केवल जगत्के भ्रष्टकरनेकोहीहै। आपहीबताइये क्यामन्वादि
६ स्मृतियोंमें इन्द्रादिदेवताओंका पूजननहींलिखा? अथच वेदोंमें नहींलिखा? आप कौसमझमेंभी क्या जीवितमातापिताकाही श्राद्धादिविदितहै? यह सन्यासी अप
७ ने "सत्यार्थप्रकाश" में तो लिखचुकाहैकि, मृतपित्रादिकोंका श्राद्ध तर्पण करना तथा देवता पूजनकरना मनुष्यकोयोग्यहै। परंतु अबवही सन्यासी अपनेपूर्वकथनको आपही तर्ककरकेलिखताहै कि मृतोंकाश्राद्ध सर्वथाअयोग्यहै, और देवताकोईनहीं विद्वानमनुष्यहीदेवताहैं। इसविषयमें सहस्रोंश्रुतियें उसकीउक्तिको तिरस्कृतकरतीहैं। यद्यपि विद्वानमनुष्यको देवतासदृशकहाहै, परन्तु इससे यहनहीं निकसताकि, देवताहैहीनहीं। भला यदि ऐसाहीहै,तो "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" इस श्रुतिके अनुसार उसकेमतमें परमेश्वरकाभी "अभाव" ही कहनाचाहिये॥

उक्तसन्यासी जिस सायण माधवाचार्य्यको कहताहै वेदनहींआता, उस्के तुल्य सौ शतजन्मपढतारहे, तो भी संभावितनहीं उनजैसाहोजावे। दयानन्द वेदोंकानाम लेताहै, परन्तु निस्सन्देह उस्कोवेदार्थनहींआता। कुछव्याकरण यद्वातद्वा अवश्य पढाहै, किन्तु पंडित हमउसकोनहींकहते। वहतो केवल भेद्भोजनाच्छादनवाहनादि

---

† अबतक स्वामीदयानन्दसरस्वती जीवितरहे यहगोस्वामीजी,इनकेप्रथमचिन्तकरहे, लेकिन स्वामीदयानन्दकेमरतेही उनके सेवकहोगये, देखो देशहितैषीपत्र संख्या५खंड४ पृ६१८ भाद्रपद सम्वत्१८४२॥

अथच अपनी प्रसिद्धिकेवास्तेहीफिरताहै । कोईविद्वानसो उसकेमतको स्वीकारनहीं करता; आपकेबिना । जो अंग्रेजीपाठकहोकर अपनेसच्छास्त्रोंसे सर्वथाविमुखहैं अव च मद्यमांसादि राक्षसभोजनोंके इच्छकहोकर अपनेधर्म्मको सुष्टप्रकार छोड़बैठेहैं, ऐसेमनुष्य उसकेमतको ग्रहणकरतेहैं । उसके उपदेशसेपहिलेही उन्कायहीमतहै, उन कुछआश्रयमिला, सो फिरक्या !

पंडितजी ! जलपवनकीशुध्यर्थ अग्निहोत्रादिकहाँवेदमेंलिखितहै ? श्रीगंगादि तीर्थ और ब्राह्मणदेवताओंकीनिन्दा कहाँवेद स्मृति रामायण भारतादिग्रंथोंमें लिखीहै ? इससेस्पष्टहैकि वहनिरुक्तकार और वेदोंके ब्राह्मणभागोंसेविरुद्धवेदोंका अर्थ लोगोंकोसमझाताहै । उक्तसन्यासीसे शास्त्रार्थकरके उस्कोसत्यपथपरलानेकेहेतु लाहौर तथा अमृतसरमें पंडितलोगोंने मिलकरसभाएंभीकी और नोटिसभीबांटे परन्तु वहउनमेंसे एकसभामेंभी न आया ॥ इसजगहभी फ़ुगवाड़ानगरनिवासी पंडित गोविन्दराम, जोयहाँकी सरकारी पाठशालाके अध्यापकहैं, उन्होंनेभी "दयानन्द मतमर्दन" ग्रन्थरचाहै । पंडितजी उस्कोशीघ्रही मुद्रितकराके प्रकाशितकरेंगे । आशाहैकि उस्कोपढ़ और सोचकर आप अवश्यमानजायेंगे कि दयानन्दमतवास्त वमेंही निषिद्धहै । यदिआपको उसकाउत्तर कुछदेनाहो और गालीप्रदानपर न आनाहोतो हमउस्का कोईथोड़ासाविषय लिखभेजतेहैं, न्यायकरना विद्वानलोगोंका कामहै, यहविद्या किसीपाठशालामें पढ़ाईनहींजाती जहाँसे हमभीसीखलेवे । गोस्वामी छबीलेलाल सचकहतेहैं, कि सबविद्वानलोग उसकेमतको खण्डनकरतेहैं, देखो । संस्कृतज्ञ अंग्रेजोंने दयानन्दके ग्रथकातिरस्कारही लिखा, तथा काशीके प्रोफेसर ग्रिफिथसाहिबने तथा इस्कोछोड़ कलकत्ता और बम्बईके किसी पंडित नेइसकेमतको भलानहींकहा । यहाँभी अनेकपुस्तकें इनके खंडनमेंछपीहैं । आपउन् कोदेखसक्तेहैं । दयानन्द शास्त्रार्थमें मध्यस्थ नहींमानता । यदि आप कृपाकरके कोईऐसाउपायकरें जिस्से वह मध्यस्थको अंगीकारकरले तो, उसकेसाथ हम शास्त्रार्थ करनेकोउद्दितहैं । और ऐसाकरनेसे सत्यासत्य बिनाकिसीअनायासके प्रगटहोजावेगा ।

महाराज गोस्वामीजी ! अबकलिकालहै । इससे पाखण्डधर्म्म बहुतप्रचलितहोतेहैं। श्रीमद्भागवतके ? • स्कन्धमें लिखाहै कि'

निशामुखे मुखद्योता- स्तमसा भान्तिनग्रहा ।
यथापापेन पाखण्डा नहिवेदा कलौयुगे ॥ १ ॥

(लवपुर) (आपकामित्र पं० नत्थूराम)

फिर देखो मित्रविलासपत्र संख्या२०खण्ड१तारीख२६।११।१८७७ई०मेंलिखाहै॥

श्रीयुत मित्रविलास सम्पादक महोदयेषु ।

महामहिम !

आपके २६अक्टूबरकेपत्रमें परममित्र श्रीराधाचरण गोस्वामीने जोकोपप्रकट किया यहवचनका सर्वथा अनुचितहै हम दयानन्दकेमतका खण्डनकरतेथे कुछ आपके मतकानहीं। जो आपइतनेचिढ़े आपतो खासेवैष्णव कंठी माला ऊर्द्ध्वपुंड्रधारीहैं, परन्तु आपकेइसचिह्नसे ज्ञातहुआकि, आपवसमतमेंनहीं जिसमें आपकेपिताहैं क्योंकि देशहितकरना सबअच्छाजानतेहैं परंतु धर्म्मभ्रष्टहोकर देशहितकोईनहींचाहता यदिवा अबकेलोकोंकी परिपाटीयहीहैकि देशहितैषिताको कलंकलगातेहैं, आपभीतो देशहित करतेहैं दिनरात कागजखराबकरतेहैं क्योंनहो दयानन्द अकेलवदेशभक्तहै तुमभीतो निष्कपटदेशहितकरतेहो श्रीमधुसूदनगो०पन्नदेना श्रीसोमनगो० कविवचनलिखदेना यहनिष्कपट देशहितैषीलोग करतेहैं तुम दयानन्दकेमतमेंहोकर जैसे निष्कपटहो तुमारेआचार्यभी ऐसेनिष्कपट देशभक्तहोंगे। हमतो नीचबुद्धिहैं परआपतो गंभीरबुद्धिहैं जोसत्पुरुषोंकी निन्दानहींकरते कौनजाने आपकिसवंशमेंहैं वहअसद्देशहोगा आपके दादाजीभी दयानन्दकेनामसे कर्णमून्दके राधेराधेकरतेहैं नजानेचनकोतुम आर्य्यधर्म्म क्योंनहींबताते हमतोखल "आभास" उनके उदाहरणहैं परआपतो 'घरपूतक्वारेडोलैं पारोसीकेफेरे' इसकाबनतेहैं, ॥ दोहा ॥पंडितजन काअममरम जानतहैं मतधीर ॥ जैसें बाँझन जानती तनमसूतकीपीर ॥ १ ॥ हमनेतो ग्रंथदेखेभीनहीं परआपनेतो सबपढ़ेहैं इत्यादि०

(वृन्दावन) (श्रीछबीलेलाल गोस्वामी)

——:)(०)(:——

सम्वत्१६३४के भादोंमासमें स्वामीजीकी पंचमहायज्ञविधि भावार्थ सन्ध्योपासनादि दूसरीबार काशीलाजरस प्रेसमें मुद्रितहुई, और स्वामीजी रावलपिंडीमें पधारे। और कलकत्ता संस्कृतकालिजकेप्रधानाध्यक्ष पंडितमहेशचन्द्र न्यायरत्ननामी विद्वानने जो स्वामीजीकी वेदभाष्यभूमिकादि पुस्तकोंपर तर्ककियेथे उनके उत्तरमें "भ्रांतिनिवारण" नाम पुस्तकलिखी जिसके प्रारम्भकादिन कार्तिकशुक्ला२ सम्वत्१६३४है॥

रावलपिंडी रहतेरहते ही वेदभाष्यभूमिका पूरीहोगई तवस्वामीजीने मार्गशिर्षशुक्ला०६भौमवारसे ऋग्वेदभाष्यका आरम्भकिया जैसाकि इसनिम्नलिखितश्लोकसे विदितहोताहै॥

॥ विद्यानन्दं समवतिचतुर्वेदसमस्ता वताया संपूर्य्येशंनिगमनिलयं संप्रणम्याथकुर्वे । वेदत्रयङ्केविधुयुतसरेमार्गशुक्लेऽङ्कभौमे ऋग्वेदस्याखिलगुणगुणिज्ञानदातुर्हिभाष्यम् ॥१॥*

स्वामीजी रावलपिंडीमें सभाप्रस्थापनकरके मजीराबादमें चलेगये ॥ पौषशुक्ला १३ बृहस्पतिवारसे यजुर्वेदभाष्यका आरम्भहुआया । देखोश्लोक

योजीवेषुदधातिसर्वसुकृतज्ञानं गुणैरीश्वरस्तं नत्वा क्रियतेपरोपकृतयेसद्य सुबोधायच॥ऋग्वेदस्यविधायवैगुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरं भाष्यंकाम्यमथोक्रियामययजुर्वेदस्यभाष्यंमया ॥१॥ चतुस्त्रयष्टैरङ्केरवनिसहितैर्विक्रमसरे । शुभेपौषे मासेसितदलभविश्वोन्मिततिथौ ॥ गुरोर्वारे प्रात प्रतिपदमतिष्टंसुविद्वुषा । प्रमाणैर्निर्बद्धं शतपथनिरुक्तादिभिरपि ॥ २ ॥

वेदभाष्यभूमिका अंक११ जो माघसम्वत् १९३४में प्रकाशितहुई उसके टाईटिलपेजपर निम्नलिखित विज्ञापन मुद्रितकरायेथे ॥

॥ विज्ञापनपत्र पहिला ॥

सबसज्जनोंको विदितहोकि आगेभूमिकाके अंकनम्बर १२।१३।१४।छपनेको शेषरहेहैं,सो फाल्गुण चैत्र और वैशाखमें छपचुकेंगे।इसकेआगे ज्येष्ठमहीनेसे लेकर अंक१ ऋग्वेद और अंक१ यजुर्वेदके वेदभागके छपाकरेंगे,इसमें एकएक अंकका एक वर्षमें डाकमहसूलसहित रुपये४) देंगे,जो एकऋग्वेदका अंक लियाचाहै सो४) रुपये लाजरसकम्पनीकाशी या स्वामीदयानन्दसरस्वतीजीकेपास भेजदेवें । और जोकोई

* ऋग्वेदभाष्यके छपनेका आरम्भ संवत् १९३५से [illegible] छपाया ॥

यजुर्वेदकाही अंकलियाचाहै सो ८) रुपये गतवर्षके और ४) रुपये अगलेवर्षके भेजदेवें। उनको आरम्भसे आजपर्यन्त और विक्रमसम्वत्१९३५के माघपर्यन्त प्रतिमास एकएकअंक मिलताजायगा, और जोदोनोवेदकोलियाचाहैं वे ८) रुपयेभेजदेवें । परन्तु जो ऋग्वेदका अंक लेतेहैं और दूसरे यजुर्वेदकाभी भूमिकासहितलियाचाहैं वे १२) रुपये आगेकेवर्षके भेजदेवें, ऐसेही जोदोअंकवेदके नवीनग्राहकहों वेभी ८) रुपये दोनोंवर्षकेभेजें । और जो भूमिका एक तथा मंत्रभाग दोनोंलेवें वे ११) रुपये भेजदेवें । और जो दोभूमिकासहित दोनोअंक लियाचाहैं वे दोनोवर्षके १६) रुपये भेजें । और जो केवलभूमिकामात्रलियाचाहैं वे ४॥=) देकर लेवें, ऋग्वेदके १० सूक्तपर्यन्त और यजुर्वेदके एकअध्याय पर्यन्त का भाष्यसम्वत् १९३४ महीनामाघकृष्णा११ गुरुवारतक बनचुकाहै, और भूमिकाभी बनकरतय्यारहोगई आगेप्रतिदिन मंत्रभाग बनायाजाताहै॥

॥ विज्ञापन दूसरा ॥

जिनग्राहकोंने पुस्तकलेकर अबतकदामनहींभेजेहैं उनकोउचितहै कि शीघ्र भेजदेवें नहींतो उनकेपास दामलेनेकेलिये पत्रवाला मनुष्यभेजके लियाजायगा । और उसका मार्गखर्चभी उनसेलियाजायगा, इससेउचितहैकि वे शीघ्रभेजदेवें। आगे जैसा कागज़भाष्यमें अबलगायाजाताहै। इससेभी उत्तममंत्रभाष्यमें लगायाजायगा॥

इसीवेदभाष्यभूमिका पृष्ठ२५२में स्वामीजीनेलिखाहैकि "तर्पणादिकर्म्म विद्यमान अर्थात् जीतेहुएजो मत्यहैं उन्हींमें घटताहै मरेहुओंमेंनहीं,, *

अजीराबादसे गुजरातहोतेहुए स्वामीजी मुलतानपहुंचे । और चैत्रके महीनेमें निम्नलिखित विज्ञापन छपवाकर वेदभाष्यभूमिका अंक१२के टाईटिलपेजपर प्रकाशितकराया ॥

---

* स्वामीजीने यहलेखप्रथमवारके छपे 'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ४२में प्रतिकूलप्रकाशितकियाहै और पाठकगणको स्मरणरखनाचाहियेकि स्वामीजीने प्रथमवारके छपे "सत्यार्थप्रकाश" में मरे पितरोंकेश्राद्धकरनेका जो उपदेशदियाथा उसकोछापनेवालोंकीभूलबतानेऔरउसके मिथ्याकरनेका साहसकर अपनीओरसे एकविज्ञापन बनाबैठेथे। और उसका कुछसारांश सो वेदभाष्यभूमिका अंक११ पृष्ठ २५२ पर और पुराने ऋग्वेदभाष्य अंक२के टाइटिल पेजपर मुद्रितकरायाथा । और यह अंक वेदका माघफाल्गुन सम्वत्१८३५में प्रकाशित हुआथा । परन्तु पश्चात्गिनाती प्रतिकूलमनुष्योंको स्वामीजीने फुसलानेकेलिये इसविज्ञापनका प्रारंभकरदियाथा जिसका भावार्थ पंडित लक्ष्मणरामजीके पत्रमें प्रगटकरता है उसको विज्ञापन अपने उचित स्थानपर प्रकाशित कियाजायगा ॥

॥ विज्ञापन पत्र ॥

एकविज्ञापन जोगतमासके अंक११में मंत्रभाष्यके नियमविषयमें दियाग या उसमें कुछभाष्यभूमिकाके नियमथे। परन्तु उससे बहुधा सज्जनोंको भ्रमस वेलोग इसभाष्यकारके आशयसे विरुद्ध कुछकाकुछहीसमझगयेथे।अर्थात्यज के यजुर्वेदकीभूमिका पृथक् दूसरीहोगी, इसशंकाके निवारनकरनेकेअर्थ यहवि पन फिरदियाजाताहै, कि भूमिकाचारोंवेदोंकी एकहीहै, जोकिछपकर ११अंक ग्राहकोंकिपास पहुंचचुकी । और शेषरहीहुई आगेमैंशाखतक छपकर सम्पूर्णहा यगी।इसएकभूमिकाको कदाचितकोई नवीन वा पुरानाग्राहक फिरलियाचाहै अ किसीदूसरेविचारसे अथवा दोनोवेदोंमें अलगअलगलगानेको तो उनकेलिये मूल्य • नियमआगेको बदलदियागयाहै, दूसरी भूमिका नवीन कोई नहींबनतीहै, शेषनि जैसेअंक११के विज्ञापनमें छपेहैं वैसेही ठीकठीक समझलेना ॥

सम्वत्१९३४में लाहौर, अमृतसर, लुधियाना, शाहजहान्पुर आदिकोंमें ध्यसमाज स्थापितहोगये, पंजाबदेशमें स्वामीजी परमप्रसिद्धहोगये। वेदभाष्यकेसा यक द्रव्यवानपुरुषभी मिलगये।च्यारोंवेद्भाष्यकीभूमिका लाजरसकम्पनीमेंसबन रसमें छपनीमारम्भहोकर ११अंक मासिकपत्रके तौरपर प्रकाशितभीहोगये, औ इसीपंजाबदेशकी यात्राकरते समय आठदशदिनस्वामीजीमेरठमेंभी रहगयेथे ॥

अब स्वामीदयानन्दसरस्वतीजीके स्वकपोलकल्पित वेदभाष्यका नमूना औ उसपर वर्तमानसमयके विद्वानोंकी जोकुछसम्मतिहै कुछथोड़ीसी नीचेप्रकाशकरते सो प्रथम हम स्वामीदयानन्दसरस्वतीके स्वकपोलकल्पित वेदोंके अर्थभाष्यका न नेकेतौरपर कुछभाग उनके ऋग्वेदसे उद्धृत करतेहैं ॥

॥ देखोऋग्वेदभाष्यका पृष्ठ८७ ॥

अश्विनायज्वरीरिषोद्रवत्पाणी। शुभस्पती॥पुरुभुजाचनस्यतम् १

स्वामीजीकाकियाहुआ इसमंत्रका कल्पितअर्थ इसप्रकारहै,

हेविद्याके चाहनेवाले मनुष्यों तुमलोग (द्रवत्पाणी) शीघ्रवेगकानिमि पत्रयविद्याके व्यवहारसिद्धकरनेमें उत्तमहेतु (शुभस्पती) शुभगुणोंके पालने और (पुरुभुजा) अनेकखानेपीनेके पदार्थोंके देनेमें उत्तमहेतु (अश्विना) मर्थात् जल और अग्नि तथा (यज्वरीः) शिल्पविद्याका सम्बन्धकरानेवाली (इ

अपनीचाहीहुई अन्नआदिपदार्थोंकी देनेवाली कारीगरीकी क्रियाओंको (वनस्यत) अन्नकेसमान अतिप्रीतिसे सेवनकरो ॥

॥ इसपर हमारी शंका और तर्क ॥

वेदकाकर्ताईश्वरहै, सो ईश्वरविना ऐसाउपदेश सामाजिकमनुष्योंको क्योंकर मिलसक्ताहै, और ऊपरलिखेमंत्रका और उसकेउसअर्थका जो (स्वामीजीका किया हुआ ज्यूंकात्यूं हमने) मंत्रकेनीचे लिखदियाहै । जोकुछअंतरहै, बुद्धिमानोंसे छुपा हुआनहींहै ॥ फिरदेखो !

॥ ऋग्वेदभाष्यका पृष्ठ४६ ॥

अश्विनापुरुदंससानराशवीरया धिया ॥ धिष्ण्यावनतंगिरः २

स्वामीजीकाकियाहुआ इसमंत्रका अर्थइसप्रकार निम्नलिखितहै ॥

हेविद्वानों तुमलोग (पुरुदंससा) जिनसेशिल्पविद्याकेलिये अनेककर्म सिद्धहोतेहैं (धिष्ण्या) जोकिसवारियोंमें वेगादिकोंकी तीव्रताकेउत्पन्नकरने प्रबल (नरा) उसविद्याके फलकोदेनेवाले और (शवीरया) वेगदेनेवाली (धिया) क्रियासे कारीगरीमें युक्तकरनेयोग्य अग्नि और जलहै वे (गिरः) शिल्पविद्या गुणोंकीबतानेवाली वाणियोंको (वनतं) सेवनकरनेवालेहैं, इसलिये इनसे अच्छीप्रकार उपकार लेतेरहो ॥

॥ इसपर हमारीशंका और तर्क ॥

वैदिकपरमेश्वर एकमंत्रमें अग्नि जल वायु आदिककेसहारेसे शिल्पविद्याका उपदेशकरके संतुष्टनहीहुआ जोवारवार इसीवातको दुहरायेजाताहै, असलमें इनमंत्रोंमेंपूर्वऋषियोंने केवल अग्नि जल वायुकोभी देवतासमझकर उनसे प्रार्थना कीथी], परन्तु स्वामीजीने अग्नि अरुजलको शिल्पविद्याकेसंग मिश्रतकरदिया । परन्तु कहलावतप्रसिद्धहै झूठकेजड़नहीं, यहनसमझेकि इसमंत्रमेंजब परमेश्वर हेविद्वानों ऐसाकहताहै तोयहसिद्धहोताहैकि जबईश्वरने यहवेदरचे तबविद्वानमनुष्य विद्यमानथे जिनकोपरमेश्वरने "हे विद्वानों" ऐसा कहा, परंतु दूसरीओर स्वामीजीका यहउपदेशहैकि सृष्टिकीआदिमें मनुष्यमात्र केवलअज्ञानी वनचरहीथे, उससमय ईश्वर नेवेदरचेथे, और इसग्रंथसे पहिलेपहिले दसवारहमंत्र जो परमेश्वरसुणाचुकाथा उनकेसुन्नेसे कोईविद्वान कहलानहींसक्ताथा ॥ फिरदेखो ॥

॥ ऋग्वेदभाष्य पृष्ठ १०१ ॥

देवयन्तोयथामतिमच्छाविदद्वसुंगिरः ॥ महामनूषतश्रुतम् ॥ ६ ॥

स्वामीजीकाकियाहुआ इसमन्त्रकाअर्थ निम्नलिखितहै ॥

जैसे (देवयन्त) सबविज्ञानयुक्त (गिरः) विद्वानमनुष्य (विदद्वसुम्) सुखकारकपदार्थ विद्यासेयुक्त (महाम्) अत्यन्तबड़ी (मतिम्) बुद्धि (श्रुतम्) सबशास्त्रोंकेश्रवण और कथनको (अच्छा) अच्छीप्रकार (अनूषत) प्रकाशकरतेहैं, वैसेही अच्छीप्रकार साधनकरनेसे वायुभीशिल्प अर्थात् सबकारीगरीको (अनूषत) सिद्धकरतेहैं ॥

॥ इसपर हमारीशंका और तर्क ॥

स्वामीजीपरमेश्वरने केवलयोदेहीमंत्र चारऋषियोंकोसुनायेथे- यहइतनेविद्वान सर्वशास्त्रोंकेकथन तथाप्रकाशकरनेवाले और कहाँसेउत्पन्नहोगये ? और "सबशास्त्र" ऋग्वेदकेयोहेसेहीमंत्र प्रगटहोतेही कहाँसेआगये ? फिरदेखो ॥

॥ ऋग्वेदभाष्य पृष्ठ १२८ ॥

ऐन्द्रसानसिंरयिंसजित्वानंसदासहम् ॥ वर्षिष्ठमूतयेभर ॥ १ ॥

स्वामीजीकाकियाहुआ इसमंत्रकाअर्थ निम्नलिखितहै ॥

हे (इन्द्र) परमेश्वर आपकृपाकरके हमारी (ऊतये) रक्षापुष्टि और सबसुखोंकीप्राप्तिकेलिये (वर्षिष्ठं) जोअच्छीप्रकार वृद्धिकरनेवाला (सानसिं) निरन्तरसेवनेकेयोग्य (सदासहं) दुष्टशत्रु तथाहानि वा दुःखोंकेसहनेकामुख्यहेतु (सजित्वानं) और तुल्यशत्रुओंका जितानेवाला (रयिं) धनहै उसको (आभर) अच्छीप्रकार दीजिये ॥

॥ इसपर हमारीशंका और तर्क ॥

धर्मोन्नति और संसारकेसम्पूर्णसुखकेदेनेमें द्रव्य (धन) भी मुख्यहै इसलिये स्वामीजीने वेदपरमेश्वरकेमुखसेभी धनकीप्रशंसा और प्रार्थनाकरादी क्योंनहो, रुपयाऐसीहीवस्तुहै, जिसकी दीपिमालिकाकेदिन भारतवर्षमें प्रचुरपूजनहोतीहै, धन्यमहाराज, धन्य! धन्य!! धन्य!!! ॥फिरदेखो॥

॥ ऋग्वेदभाष्य पृष्ठ १२६ ॥

इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि ॥ जयेम सं युधि स्पृधः ३

स्वामीजीकाकियाहुआ इसमंत्रकाअर्थ निम्नलिखितहै ॥

हे (इन्द्र) अनंतबलवान् ईश्वर (त्वोतासः) आपके सकाशसे रक्षाआदि औरबल कोमाप्तहुए (वय) हमलोग धार्मिक और शूरवीरहोकर अपनेविजयकेलिये (वज्रं) शत्रुओंकेबलका नाशकरनेकाहेतु आग्नेयास्त्रादि अस्त्र और (घना) श्रेष्ठशस्त्रोंकासमूह जिनकोकिभाषामें 'तोप' 'बन्दूक' तलवार और धनुष्यबाण आदि करके प्रसिद्धकहते हैं, जोयुद्धकीसिद्धिमेंहेतुहैं उनको (आददीमहि) ग्रहणकरतेहैं, जिसप्रकारहमलोग आपकेबलकाआश्रय और सेनाकीपूर्णसामग्रीकरके (स्पृधः) ईर्षाकरनेवालेशत्रुओंको (युधि) संग्राममें (जयेम) जीतें ॥

॥ इसपर हमारीशंका और तर्क ॥

स्वामीजीउनकीइच्छा इसलियेकरतेहैंकि उससेघोड़ोंकेरिसाले हाथियोंकेतोपखाने ऊटोंकीफौज (सेना) भरतीकर शत्रुओंपरविजयपावें। इसीअभिप्रायसे उक्तमंत्र में तोप बन्दूक तलवार और धनुषबाणकेलिये प्रार्थनाकीगईहै ॥

सृष्टिकीआदिमें सचमुच तोप और बन्दूक अवश्यबननेलगगईहोंगी । नहीं तो मंत्रदेतेसमय आपईश्वरने मंत्रोंकेअनुसार आपही तोप बन्दूक आदिकभी बना कर और आपधारणकरके निर्भय चारों ऋषियोंको उनकेस्वरूपका दर्शनकरा बनानेकीक्रियाभी अवश्य बतलादईहोगी। और आश्चर्यनहीं जो कुछदारूभी बना कर उनकाभरना चलानाभीबतादियाहो, और वृणादन तोपचला कुछमनुष्योंको वध करकेभीदिखलायाहो किइसभांति शस्त्रचलाकर शत्रुओंको माराकरतेहैं ॥

आहा ! वे परमेश्वरकी अपनेहाथकीबणाई तोप आजकलकी योरप अमरीका चीन आदिककी बणीहुई तोपोंसे कैसीविलक्षणहोंगी, हमाराविचारहैकि पर्वतोंकी गुफाआदिकमें खोजकरावेंगे और यदिपरमेश्वरकीबनाईहुई कोईभी तोप मिलगईतो स्वामीजीकापक्ष हर्षसहित ग्रहणकरेंगे ॥

क्याआजकलके अनेकमूर्खमनुष्य, शीतला, मारायी, सेढ, शीली आदिकसे उपरोक्तप्रार्थनानहींकरते, परंतु क्याउनकीप्रार्थनाको कोईईश्वरकामंत्रकहसक्ताहै, ? बिल्कुलभूलकरभीनहीं ॥

प्यारेपाठकगण यह वेदमन्त्रोंका कल्पितअर्थबनाकर" स्वामीजीने अपनी इन्द्रजालविद्याका क्याहीउत्तमनमूना दिखलायाहै, यदियहीमानालियाजावेकि प्रथमसमयके आचार्योंकाकियाहुआ वेदभाष्यतोअसंभव और स्वामीजीका कियाहुआ यथार्थहैतो उससर्वशक्तिमान परमेश्वरकी अपारमहिमा और निर्मलगुणोंको जोकलंकलगताहै वहबुद्धिमानोंसे कुछछिपाहुआनहींहै ॥

योरपदेशके सुप्रसिद्धविद्वान महामान्य डाक्टरमोक्षमुलरनेजोचिट्ठी बम्बईके मिस्टरमलाबरीकेनामभेजी और तारीख२फेब्रवरी सन्१८८२ई० में जो चिट्ठी ए क्सफोर्डसे रवानाहुईथी, उसमें और२ समाचारकेअतिरिक्त यहभी लिखाथाकि*

"मैं आपको दो प्रकारके उपद्रवोंसे बचायाचाहताहूं"

प्रथमयहकि पिछलेसमयसे जोसनातनधर्मप्रचलितहै उसकाअनादरकरना या उससेघृणाकरना जैसाकि आजकलके बहुधा उनवरुणहिन्दुस्थानियोंकाहालहै जो आपेयारोपियनबनगयेहैं ॥

द्वितीय धर्म्म और धर्म्मग्रन्थोंका आदरसत्कारभी अधिकतासहितकरना अथवा उनकेअर्थबदलकर ऐसाअर्थसिद्धकरना जिसका उनकेकर्त्ताको स्वप्नेमेंभीध्यानथा । और जिसकाउदाहरण अत्यंतहानिकारक दयानन्दसरस्वतीका कियाहुआ वेदभाष्यविद्यमानहै ॥

वेदोंकोएकपुराचीन और ऐसामनोहरइतिहास स्वीकारकरोकि जिसमें वे विषयमुद्रितहैं जो पुराचीनसमयके समदृष्टि और भोलेभालेमनुष्योंके आचरणोंसे मिलतेहैं, और फिरतुम उनकीयथार्थ प्रशंसा करसकोगे । और उनमेंविशेषकर उपनिषदोंका पठनपाठनवर्तमानसमयकेलिये प्रचलितरखसकोगे । परंतु इसकेअतिरिक्त यदिइसमेंसे धुआंके अंजन वार तोप बन्दूक आदिक अंग्रेजीशिल्पकामावाअर्थलोगे तो उनकीविख्यातता और सत्यताकानाशकरोगे । और ऐसाकरनेसे इतिहासकी वहअपूर्वीस्वच्छिदताहोतीहै, जिसकेद्वारा भूतकालकासम्बन्ध वर्तमानसेहोरहाहै, भूतकोसत्यसमझकरस्वीकारकरो और उसकाखोजकरो, समझनेकापरिश्रमउठाओ जिससे भविष्यतके पहचाननेमें अधिककठनाई नपड़े ॥

स्वामीदयानन्दसरस्वतीकेशिष्य गोपालशास्त्रीजीने जो दयानन्ददिग्विजयार्क

* देखो उर्दू धर्मजीवनपत्र लाहौर तारीख ६ मई सन् १८८८ ईस्वी नम्बर १८ जिल्द१ पृष्ट १४० में

पुस्तकछपवाई उसकेद्वितीयखंडके पृष्ठ४०में यहलिखाहै ॥

अबवेदोंके नित्यत्वविचारकेउपरान्त वेदोंमें कौन२ विषय किस२प्रकारकेहैं इसकाविचारकियाजाताहै वेदोंमें अवयवरूप विषयतोअनेकहैं परंतु उनमें चार मुख्यहैं (१)एक विज्ञान अर्थात् सबपदार्थोंको यथार्थजानना(२)दूसराकर्म(३)तीसरा उपासना और (४)चौथा ज्ञानहै विज्ञानउसकोकहतेहैं किजोकर्मउपासना और ज्ञान इनतीनोंसे यथावत्उपयोगलेना और परमेश्वरसेलेके तृणपर्य्यन्तपदार्थोंका साक्षात्बोधकाहोना उनसेयथावत्उपयोगकाकरना इस्मेयहविषय इनचारोंमेंभी प्रधानहै, क्योंकि इसीमेंवेदोंकामुख्यतात्पर्य्यहै सोभीदोप्रकारकाहै, एकतोपरमेश्वरकायथावत्ज्ञान और उसकीआज्ञाकाबराबरपालनकरना और दूसरायहहैकि उसकेरचेहुए सबपदार्थोंके गुणोंको यथावत्विचारके उनसे कार्य्यसिद्धकरना अर्थात् ईश्वरने कौन२पदार्थ किस२प्रयोजनकेलियेरचेहैं, और इनदोनोंमेंसेभी ईश्वरकाजो प्रतिपादनहै सोहीप्रधानहै इसमें आगेकठवल्लीआदिके प्रमाणलिखतेहैं, [सर्वेवेदायत्पदमामनन्तितपांसिसर्वाणिचयद्वदन्ति । यदिच्छन्तोब्रह्मचर्य्यं चरन्तितत्तेपदंसंग्रहेणब्रवीम्योमित्येतत् ॥ कठोपनी० वल्ली२ मं०१५॥] परमपद अर्थात्उसकानाममोक्षहै, जिसमें परब्रह्मकोप्राप्तहोके सदासुखमेंहीरहना जोसबआनन्दोंसेयुक्त सबदुःखोंसे रहित और सर्वशक्तिमान् परब्रह्महै, जिसकेनाम (ओं) आदिहैं, उसीमें सबवेदोंकामुख्यतात्पर्य्यहै, इसमेंयोगसूत्रकाभीप्रमाणहै (तस्यवाचक प्रणव"योगशास्त्रे । अ०१पा०१सू०२७)परमेश्वरहीका ओंकारनामहै, (ओं खंब्रह्मयजुः०अ०४०) तथा (ओमितिब्रह्मतैत्तिरीयारण्यके । प्र०७अनु०८॥)ओं और ब्रह्म ये दोनोंब्रह्मकेनामहैं और उसीकीप्राप्तिकरानेमें सबवेदप्रवृत्तिहोरहेहैं, जिसकीप्राप्तिकेआगे किसीपदार्थकीप्राप्तिउत्तमनहींहै क्योंकि जगत्कावर्णनदृष्टान्त और उपयोगादिकाकरना ये सर्वपरब्रह्मकोहीप्रकाशितकरतेहैं तथासत्यधर्म्मकेअनुष्ठान जिनकोतपकहतेहैं वेभी परमेश्वरकोहीप्राप्तिकेलियेहैं तथा ब्रह्मचर्य्यगृहस्थवानप्रस्थ और संन्यासआश्रमके सत्याचरणरूपजोकर्महैं वेभी परमेश्वरकीहीप्राप्तिकरानेकलियेहैं जिसब्रह्मकीप्राप्तिकीइच्छाकरकेविद्वानलोग प्रयत्न औरउसीकाउपदेशभीकरतेहैं ॥ नचिकेता और यम इनदोनोंका परस्परयहसंवादहैकि हेनचिकेत जोअवश्यप्राप्तिकरनेकेयोग्य परब्रह्महै उसीकामें तेरेलिये संक्षेपसे उपदेशकरताहूं और यहाँयहभीजाननाउचित हैकि अलंकाररूपकथासे नचिकेतानामसे जीव और यमसेअन्तर्यामी परमात्माको समझनाचाहिये (तत्रापराऋग्वेदोयजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेद"शिक्षाकल्पोव्याकरणंनिरुक्तंछन्दोज्योतिषमिति । अथपरायथातदक्षरमधिगम्यते ॥ १॥ यत्तदद्रश्यन

ग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रंतदपाणिपादंनित्यं विभुंसर्वगतंसुसूक्ष्मंतदव्ययं यद्भूत योनिं परिपश्यन्तिधीराः ॥ ७ ॥

[मुण्डके १खण्डे १मं०५।६॥] वेदोंमें दो विद्याहैं एक अपरादूसरी परा इन मेंसे अपरा यहहैकि जिससेपृथ्वी और तृणसेलेके प्रकृति पर्य्यन्त पदार्थोंके गुणोंके ज्ञानसे ठीक२ कार्य्य सिद्धकरनाहोताहै, और दूसरी परा कि जिससे सर्वशक्ति मान् ब्रह्मकी यथावत् प्राप्तिहोतीहै, यह परा विद्या अपरा विद्यासे अत्यंतउत्तमहै, क्योंकि अपराकाही उत्तमफल पराविद्याहै ॥ और भी इसविषयमें ऋग्वेदका प्रमाणहैकि (तद्विष्णोः परमंपदंसदापश्यन्तिसूरयः ॥ दिवीवचक्षुराततम् ॥ १ ॥ ऋग्वेदे।अष्टके१अध्याये२वर्गे७मन्त्रः५॥अस्यायमर्थः)(विष्णु अर्थात्व्यापकजोपरमे श्वरहै उसका (परम)अत्यंतउत्तम आनन्दस्वरूप (पदं) जोप्राप्तिहोनेकेयोग्य अर्था त् जिसकानामयोक्षहै उसको (सूरयः) विद्वानलोग (सदापश्यन्ति) सबकालमें देखतेहैं वह कैसाहैकि सबमेंव्याप्तहोरहाहै, औरउसमें देशकाल औरवस्तुकाभेद नहींहै, अर्थात् उसदेशमेंहै, और इसदेशमेंनहीं तथाउसकालमेंथा औरइसकालमें नहीं उसवस्तुमेंहै, औरइसवस्तुमेंनहीं इसीकारणसे वहपदसबजगहमें सबकोप्राप्ति होताहै क्योंकिवहब्रह्म सबठिकानेपरिपूर्णहै, इसमेंयहदृष्टान्तहैकि (दिवीवचक्षुरा ततम्) जैसेसूर्य्यकाप्रकाश आवर्णरहित आकाशमेंव्याप्तहोताहै और जैसेउसप्रका शमें नेत्रकीदृष्टिव्याप्तहोतीहै, इसीप्रकार परब्रह्मपदभी स्वयंप्रकाश सर्वत्रव्याप्तवान् होरहाहै, उसपदकीप्राप्तिसेकोई भी प्राप्तिउत्तमनहींहै, इसलिये चारोंवेद उसीकी प्राप्तिकरानेकेलिये विशेषकरके प्रतिपादनकररहेहैं इसविषयमें वेदांतशास्त्रमें व्यास मुनिकेसूत्रकाभीप्रमाणहै (तत्तुसमन्वयात्)सबवेदवाक्योंमेंब्रह्मकाहीविशेषकरकेप्रतिपा दनहै कहीं२साक्षात्रूप और कहीं२ परंपरासे इसीकारणसे वहपरब्रह्म वेदोंका परमअर्थहै, तथाइसविषयमें यजुर्वेदकाभीप्रमाणहैकि (यस्मान्नजा०) जिसपरब्रह्म से (अन्यः) दूसराकोईभी (पर) उत्तमपदार्थ (जातः) प्रगट (नास्ति) अर्थात्नहीं है (यआविवेशभु०) जोसबविश्व अर्थात् सबजगतमेंव्याप्तहोरहाहै, (प्रजापतिःप्र०) यहीसबजगत्कापालनकर्ता और अध्यक्षहै जिसने (त्रीणिज्योतींषि) अग्नि सूर्य और बिजली इनतीनज्योतियोंको प्रजाकेप्रकाशहोनेकेलिये (सचते) रचके संयुक्तकियाहैऔरजिसकानाम(षोडशी)हैअर्थात्(१)ईक्षणजोयथार्थविचार(२) प्राण जोकिसबविश्वकाधारणकरनेवाला(३)श्रद्धासत्यमेंविश्वास(४)आकाश(५)वायु(६) अग्नि(७) जल (८) पृथ्वी (९) इन्द्रिय (१०) मन अर्थात्ज्ञान (११) अन्न (१२) वीर्य्य अर्थात् बल और पराक्रम (१३) तप अर्थात् धर्मानुष्ठान सत्याचार

(१४) मंत्र अर्थात् वेदविद्या (१५) कर्म अर्थात् सबचेष्टा (१६) नाम अर्थात् दृश्य और अदृश्य पदार्थोंकी संज्ञा येही सोलहकला कहातीहैं, ये सबईश्वरहीकेवीचमेंहैं इससे उसको षोडशी कहतेहैं, इनषोडशकलाओंका प्रतिपादन प्रश्नोपनिषद्के ६छठेप्रश्नमें लिखाहै इससेपरमेश्वरही वेदोंका मुख्यअर्थहै, और उससेपृथक् जोयहजगतहै सोवेदोंका गौणअर्थहै और इनदोनोंमेंसे प्रधानका ही ग्रहणहोताहै, इससे क्याआयाकि वेदोंका मुख्यतात्पर्य्य परमेश्वरहीके प्राप्ति कराने और प्रतिपादनकरनेमेंहै उसपरमेश्वरके उपदेशरूप वेदोंसे कर्म उपासना और ज्ञान तीनों काण्डोंका इसलोक और परलोकके व्यवहारोंकेफलोंकी सिद्धि और यथावत् उपकार करनेकेलिये सबमनुष्य इनचार विषयोंके अनुष्ठानोंमें पुरुषार्थकरें, यही मनुष्यदेह धारणकरनेके फलहैं ॥

अगाड़ी इस्के श्रीस्वामीजीमहाराजने वेदोंका दूसराविषय कर्मकाण्ड (जोअग्निहोत्रसे लेकर अश्वमेधतक सकाम व निष्कामदो प्रकारका होताहै) वेदादिके अनेक प्रमाणोंसे सिद्धकरके भूमिकाके पृष्ठ४६से लेकर७१तक वर्णनकियाहै निवेदनकारने उसपर कुछतर्क वितर्क नहींकिया इसलिये हमने उसकी नकलनहींकी परन्तु वह परमोपकारी होनेकेकारण सबमनुष्योंके देखने व समझने और अवश्य करनेकेयोग्यहै ॥

इसकर्मकाण्डमें जहाँतहाँ अग्न्यादिकई देवताओंका ग्रहणकियाहै उनमें कोई जड़ कोई चेतनहैं वे सबव्यवहारिक देव या देवता कहातेहैं उनका ठीक२ वैसाही व्यवहारिक १०प्रकारकाअर्थ किसीमेंएक किसीमेंदो वा अधिकव्याकरण रीत्यादि व धातुसे सिद्धहोताहै जैसाकि गुणभिन्नमेंहै ॥ इसलिये इनकादेवतात्व सबको वैसाही समझनाउचितहै जैसाकि जिससे व्यवहारका कामनिकलताहै अर्थात् इनमेंसे कोई उपासनाकेयोग्यनहींहै, सबलोगोंको उपास्य और परमपूज्य केवलवही परब्रह्मपरमेश्वरहै जिसने इनसब देवतादिक पदार्थोंको निर्माण व प्रकाशित कियाहै, और उसीमें दिवधातुके ठीक२ दसोंअर्थ कि जिनमेंसे पांचजो केवल व्यवहारिक अर्थ बोधकहैंव्यापकताके कारण और शेषपांचजोकि परमार्थबोधक हैं वे द्योतकताके कारण संघटितहोतेहैं ॥

ऐसा वेदोंका सिद्धांत स्पष्ट विद्यमान होते जिनको अल्पबुद्धिताके कारण विदितनहींहुआ उन्होंने वेदोंकेविषयमें जोजीमेंआया सोलिखदियाहै उनके सन्देहनिवृत्त्यर्थ महाराजजीने पृष्ठ७२से ८०तक बहुतसे वेदादिक प्रमाणलिखकर उनका अर्थ संस्कृत और भाषामें विस्तारपूर्वक प्रकाशितकियाहै, उसका सारांश नीचे लिखकर पीछे वेदसंज्ञा विचार ज्योंका त्यों नकलहोगा ॥

कितनेहीआर्य्य और अंग्रेजकहतेहैंकि वेदोंमें पृथिव्यादिक भूतपूजालिखीहै आर्य्यलोगोंने बहुदिन उनकोपूजसे पीछेसे परमेश्वरकोजाना यहउनकाकहना (इन्द्र मित्र वरुण मग्नि मग्नुरथोदिव्यः ससुपर्णोगरुत्मान् ॥ एक सद्विप्राबहुधा वद न्त्यग्निंयम मातरिश्वानमाहु) इत्यादिक अनेक वेदमंत्रोंकाअर्थदेख मिथ्यासिद्ध होताहै और साबितहोताहैकि आर्य्यलोग सृष्टिकेआरम्भमे इन्द्र सूर्य्य वरुण अग्नि कुवेर ईश आदिनामोंसे उसीएक परमेश्वरको पूजतेआएहैं ॥

डाक्टर मोक्षमुलर साहबने अपने संस्कृत साहित्य नामकग्रन्थमें लिखा हैकि आर्य्यलोगोंको वहुतकालपीछे ईश्वरकाज्ञानहुआ और वेदोंके प्राचीन होनेमें एकभीप्रमाण नहींमिलता परंतु उनके नवीनहोनेमें अनेक प्रमाणपायेजाते हैं उनमेंसे एकहिरण्यगर्भ शब्दका प्रमाण दियाहै और कहाकि छन्दोभागसे मंत्र भाग दोसौवर्ष पीछेबनाहै और दूसरी यह बात कहीहैकि वेदोंमेंदोभागहैं, एकछन्द दूसरामंत्र उनमेंसे छन्दोभाग ऐसाहै जोसामान्य अर्थकेसाथ सबधरग्वताहै और दूसरेकी प्रेरणासे प्रकाशितहुआ मालूमपड़ताहै किजिसकी उत्पत्ति बनानेवाले की प्रेरणासे नहींहोसक्ती और उसमें कथन इसप्रकारकाहै, जैसे अज्ञानीकेमुखमे अकस्मात् वचननिकलाहो उसकी उत्पत्तिमें (३१००) इकतीससौ वर्षव्यतीतहुएहैं और मंत्रभागकीउत्पत्तिमें(२९००)उनतीससौ वर्षहुएहैं उसमें (अग्नि पूर्वेभि०) इस मंत्रकाभी प्रमाणदियाहै, सोउनका यहकहना ठीकनहींहोसक्ता क्योंकि उन्होंने (हिरण्यगर्भ ०) और (अग्निपूर्वेभि ०) इनदोनों मंत्रोंकाअर्थ यथावत् नहींजानाहै तथा मालूमहोताहैकि उनको हिरण्यगर्भ शब्द नवीनजानपड़ाहोगा इसविचारसे कि हिरण्य नामहै सोनेका वह सृष्टिसे वहुतपीछे उत्पन्नहुआहै। अर्थात मनुष्योंकी उत्पत्ति राजा और प्रजाके प्रबन्धहोनेके उपरान्त पृथ्वीमेंसेनिकालागयाहै, सोयह बातभी उनकी ठीकनहींहोसक्ती क्योंकि इसशब्दकाअर्थ यहहैकि ज्योतिकहतेहैं वि ज्ञानको सोजिसकेगर्भ अर्थात् स्वरूपमेंहै ज्योति अमृत अर्थात् मोक्षहै, सामर्थ्यमें जिसके, और ज्योतिजोप्रकाशस्वरूप सूर्य्यादिलोक जिसके गर्भमेंहैं, तथा ज्योति जो जीवात्मा जिसकेगर्भ अर्थात्सामर्थ्यमें तथा ज्योतियश सत्कीर्ति जोधन्यवाद जिसके स्वरुपमेंहै इसीप्रकार ज्योतिशब्द अर्थात् सूर्य्य वायु और अग्नि ये सब जिसके सामर्थ्यमेंहैं ऐसाजोएकपरमेश्वरहै उसीको हिरण्यगर्भकहतेहैं, इसहिरण्य गर्भशब्दके प्रयोगसे वेदोंकाउत्तमपन औरसनातनपनता यथावत्सिद्धहोताहै परन्तु इससे उनका नवीनपन सिद्धकभीनहींहोसक्ता इससे डाकुर मोक्षमुलर साहबका कहनाजो वेदोंकेनवीनहोनेके विषयमेंहै सोसत्यनहींहै, और जोउन्होंने(अग्निपूर्वभि०)

इसकाप्रमाण वेदोंके नवीनहोनेमें दियाहै सोभीअन्यथाहै क्योंकि इसमंत्रमें वेदों केकर्ता त्रिकालदर्शी ईश्वरने भूत भविष्यत् वर्तमान तीनोंकालोंके व्यवहारोंको यथावत्जानके कहाहै कि वेदोंकोपढके जोविद्वानहोचुकेहैं, वा जोपढतेहैं वे प्राचीन और नवीन ऋषिलोग मेरीस्तुतिकरें, तथा ऋषिनाम मंत्र प्राण और तर्कका भीहै, इनसेही मेरीस्तुतिकरनीयोग्यहै, इसीअपेक्षासे ईश्वरने इसमंत्रकाप्रयोग कियाहै, इससे वेदोंका सनातनपन और उत्तमपन तोसिद्धहोताहै किंतु उनहेतुओंसे वेदोंका नवीनहोना किसीप्रकारसे सिद्धनहींहोसक्ता। इसीहेतुसे डाक्टर मोक्षमूलर साहिबका कहनाठीकनहीं ॥

इसमें विचारना चाहिये कि वेदोंके अर्थको यथावत् बिनाविचारे उनके अर्थमें किसीमनुष्यको हठसे साहसकरना उचितनहीं क्योंकि जोवेदसबविद्याओंसेयुक्तहैं अर्थात् उनमें जितनेमंत्र और पदहैं वे सबसम्पूर्ण सत्यविद्याओंके प्रकाशकरनेवालेहैं और ईश्वरने वेदोंका व्याख्यानभी वेदोंसेही कररक्खाहै क्योंकि उनकेशब्द धातुअर्थकेसाथयोगरखतेहैं इसमें निरुक्तकाभी प्रमाणहै जैसाकि यास्क मुनिनेकहाहै (तत्प्रकृतीत०) इत्यादि वेदोंके व्याख्यान करनेके विषयमें ऐसा समझनाकि जबतक सत्यप्रमाण सुतर्क वेदोंके शब्दोंका पूर्वापर प्रकरणों, व्याकरण आदिवेदांगों, शतपथ आदि पूर्वमीमांसा आदिशास्त्रों और शाखांतरों का यथावत् बोधनहो और परमेश्वरका अनुग्रह उत्तमविद्वानोंकीशिक्षा उनकेसंगसे पक्षपातछोडके आत्माकी शुद्धिनहो तथा महर्षिलोगोंके कियेव्याख्यानोंको नदेखें तबतक वेदोंके अर्थका यथावत् प्रकाश मनुष्योंके हृदयमें नहींहोता। इसलिये सब आर्य्यविद्वानोंका सिद्धान्तहैकि प्रत्यक्षादिप्रमाणोंसेयुक्त जोतर्कहै वही मनुष्योंकेलिये ऋषिहै इससे यहसिद्धहोताहै किजो सायनाचार्य्य और महीधरादि अल्पबुद्धि लोगोंके झूठव्याख्यानोंकोदेखके आजकलके आर्य्यावर्त और यूरुपदेशके निवासीलोग जोवेदोंकेऊपर अपनी२ देशभाषाओंमें व्याख्यानकरतेहैं वे ठीकर नहीं है और उनअनर्थयुक्त व्याख्यानोंके माननेसे मनुष्योंको अत्यन्त दुःखप्राप्त होताहै॰ इससे बुद्धिमानोंको उनव्याख्यानोंका प्रमाणकरना योग्यनहीं तर्कका नाम ऋषि होनेसे सबआर्य्यलोगोंकासिद्धांतहैकि सर्वकालोंमें अग्निजोपरमेश्वर वही उपासना करनेकेयोग्यहै

तथा उसी दिग्विजयके पृष्ट२४ परदयानन्दजी वेदोंकी उत्पत्तिकासमय इस प्रकार लिखतेहैं कि

एकवृन्द छाणवेंकरोड़ आठलाख बावनहजार नवसौ छहत्तर अर्थात् (१९६०८५२९७६) वर्ष वेदोंकी और जगत्की उत्पत्तिमें होगयेहैं, और यहसम्वत् १९३३सतहत्तरवाँवर्ष वर्तरहाहै,

(प्रश्न) यह कैसे निश्चय होयकि इतनेही वर्ष वेद और जगत्की उत्पत्तिमें बीतगयेहैं ॥

(उत्तर) यहजो वर्तमान सृष्टिहै इसमें सातवें (७)वैवस्वत मनुका वर्तमानहै, इससेपूर्व छः मन्वन्तर होचुकेहैं, स्वायंभुव (१) स्वारोचिष(२) औतमि(३) तामस (४) रैवत(५) चाक्षुष(६) यह छः तो बीतगयेहैं, और ७सातवाँ वैवस्वत वर्तरहा है, और सावर्णिआदि ७सातमन्वन्तर आगेआवेंगे ये सबमिलके १४मन्वन्तरहोते हैं,और इकहत्तर चतुर्युगियोंकानाम मन्वन्तर धरागयाहै ॥ और४३२००००वर्षकी एकचतुर्युगी होतीहै, इससंख्याको प्रथम७१से फिर ६से गुणाकरनेसे जोहोय उस में २७चौकड़ी और १सत्ययुग १त्रेता १द्वापर और चलतेहुए कलियुगकी गई वर्षोंको जोड़देनेसे वेद और सृष्टिकी उत्पत्तिका ठीककाल निकलआवेगा और ४३२०००० वर्षका कलि इससे दूनाद्वापर तिगनात्रेता चौगुना सत्युगहोताहै, और विक्रमीसम्वत् १९३७के समाप्तिपर ४९८२ वर्षहालकेअर्थात् २८वें कलि की भुगतचुकी क्योंकि यह दिग्विजय सम्वत् १९३८में बनाहै इससे जोअध्यापक विल्सनसाहब और अध्यापक मोक्षमूलरसाहब आदि योरोपखंडकेवासी विद्वानों ने यावकहाहै कि वेदमनुष्यकेरचेहैं किन्तु श्रुतिनहींहै उनकीयहबात ठीकनहींहै, औरदूसरीयहकी कोईकहताहै (२४००) चौवीससौ वर्षवेदोंकी उत्पत्तिकोहुए कोई (२९००) उनतीससौ वर्ष कोई(३०००)तीनहजारवर्ष और कोईकहताहै (३१००) इकतीससौ वर्ष वेदोंको उत्पन्नहुए बीतेहैं, उनकीयहभीबातझूठीहै, क्योंकि उन लोगोंने हमआर्य्यलोगोंकी नित्यप्रतिकी दिनचर्याकालेख और संकल्पपठनविद्या कोभी यथावत्‌सुना और नविचाराहै नहींतो इतनेही विचारसे यहभ्रम उनको नहींहोता इससे यहजानना अवश्यचाहियेकि वेदोंकीउत्पत्ति परमेश्वरसेही हुईहै, औरजितनेवर्ष अभी ऊपरगिनआयेहैं उतनेहीवर्ष वेदों और जगत्की उत्पत्तिमेंभी

इसपर आर्य्यतत्वप्रकाश व्याख्यान पहिला पृष्ठ७ पंक्ति७में यह लिखाहै ॥

वेदोंकी प्राचीनताके विषयमें विचारकरनेके पहिले हम उनपुस्तकोंकी सूचना लिखतेहैं जिनको पंडित दयानन्दने सत्यमानाहै, और जिनपर उन्होंने आर्य्य मतकी नेवडालीहै । इसलिये हमारेविवादकी नेवभी उन्हीं पुस्तकोंपरहोगी और जहांकहीं आवश्यकताहोगी यहाँ उन्हीं पुस्तकोंकीबातें हमभी संग्रह करेंगे ।

अबहम उन पुस्तकोंके नाम लिखतेहैं ॥

(१) पहिले चारवेद अर्थात् १ऋग्वेद २यजुर्वेद ३सामवेद ४अथर्वणवेद जिन्हें आर्य्यलोग ईश्वरका वचन और अनादि मानतेहैं ॥

(२) चार ब्राह्मण १ऋग्वेदका ऐतरेय २यजुर्वेदका शतपथ ३सामवेदका ताण्ड्य महाब्राह्मण ४अथर्वणवेदका गोपथ ॥

(३) ग्यारह उपनिषद अर्थात् १ईश २केन ३कठ ४प्रश्न ५छान्दोग्य ६बृहदारण्यक ७मुण्डक ८माण्डूक्य ९श्वेत १०तैत्तरीय ११ऐतरेय ॥

(४) छः अंग १शिक्षा २कल्प ३व्याकरण ४निरुक्त ५छन्द ६ज्योतिष॥

(५) पांचवां मनुसंहिता ॥

(६) छः दर्शन अर्थात् १न्याय २वैशेषिक ३सांख्य ४पातंजलि ५पूर्वमीमांसा ६उत्तरमीमांसा ॥

सत्यार्थ प्रकाश में दयानन्द जी ने इन पुस्तकों को सत्य मानाहै, सो सब उनके अनुयायियों को भी उन्हें ऐसाही जानना चाहिये । उन्होंने वेदोंपर अपनी टीकामें भी बहुधा इन्ही पुस्तकों की बातोंका संग्रह कियाहै ॥

अबहम उन प्रमाणोंका वर्णन करतेहैं जिन्हें आर्य्यलोग वेदोंकी प्राचीनतामें देतेहैं, और उनके खंडनमें प्राचीन बड़े बड़े नामी पण्डितोंकी बातोंको हम वर्णन करेंगे जो दो हजारसे अधिक बरस बीता होगाकि वे वर्तमानथे जिससे आर्य्यलोग यह नसमझेंकि हमने आपही गढ़ल कीहैं । और इसीलिये हम उनबातोंको यहाँ वर्णन नहींकरते जिनको अन्यदेशीय लोगोंने निर्णय करके अपनीपुस्तकोंमें लिखीहैं हम केवल इसी भारतदेशकी नामी और उत्तम प्रसिद्ध पुस्तकोंहीकी प्रामाणिक बातें लिखेंगे ॥

दयानन्दजीने मनुजीके वचनोंसे बहुत संग्रह कियाहै और उनको बड़ा प्रमाणिक ठहरायाहै । इसकारण अब यह प्रश्न होसकताहैकि मनुजीकीबातें विश्वासयोग्यहैं वा नहीं । वह अपनीसंहितामें लिखतेहैंकि जबपहिले सतयुगके१०

हजारबरस बीतगयेथे और भादोंमासके पन्द्रहदिन बीतगये तबहमने यह धर्मग्र
समाप्तकिया और ब्रह्माकी आज्ञासे यह बनाया ॥

इसप्रकार मनुसंहिताको बनाएहुए बहुतही बर्षबीतेहैं, परंतु यह आश्च
की बातहै कि उसपुस्तकमें उनराजाओं और ऋषियोंका बर्णनहै जोकि ब
थोड़ाही समय बीताहोगाकि इससंसारमें बर्तमानथे । राजाओंमें तो बेना
नहुष पृथुइत्यादि । ऋषियोंमें विश्वामित्र शुनःशेप वसिष्ठ और भारद्वाज
बर्णनहै ॥

आश्चर्य यहहैकि उसपुस्तकमें इनलोगोंके नाम लिखेहैं जो इससमय
जिसमें उसका लिखाजाना संभवथा सैकड़ों बरसपीछे रहेहैं । जब पंडितदयान
जी आश्चर्यबातका संभवहोना नहींमानते तो यहक्योंकर होसकताहै आर्य्यों
इस अद्भुत बातको मानना अथवा मनुजीका प्रमाण छोड़ना चाहिये । और य
वह इस असंभव बातको मानलेंतो उन्हें मनुजीकी दूसरी आश्चर्यबातोंकोभी
स्वीकार करनापड़ेगा । उनमेंसे एक उत्तम उदाहरण हिरण्यकश्यप नामक दैत
मनुजी इस दैत्यके विषयमें इसप्रकार बर्णनकरतेहैंकि वह ऐसाऊंचाथाकि उसक
कमर सूर्य्यके बराबर पहुंचतीथी और उसका शेषशरीर सूर्य्यसे आगे निक
जाताथा । मनुजीके बचनोंका प्रमाणतो बसइसीमें प्रगट होगया ॥

विना किसी दूसरे दृढ़प्रमाणके वेदोंकी साक्षी अपने निजविषयमें नहीं
मानी जासकती । मनुजीने वेदोंके बहुतपीछे अपनी संहिता लिखीहै भला वे
वेदोंके विषयमें क्योंकर प्रमाणदेसकतेहैं क्योंकि वह आपही उसके आरंभमें नहीं
थे कि जोकुछ हुआसो देखते । सम्पूर्णप्रमाण जो आर्य्यलोग देतेहैं वह केवल
मन्त्रों और मनुजीसेहीहैं । कोई और प्रमाण वे नहींदेसकते हमने उनका उत्तर
सो ठीक देदियाहै

वेदोंकी अत्यन्त प्राचीनताके विषयमें आर्य्यलोगोंके प्रमाण और तर्कों
के विषयमें इतनाही कहना बसहैकि यहसमय जोआर्य्यलोग कहतेहैं अनुमानसे
विरुद्ध और इतिहाससे विरुद्धहै ॥

वेदोंमेंसे सबसे प्राचीन ऋग्वेदहै और तीनवेद उससे पीछेहुयेहैं और
यथार्थमें उन तीन वेदोंके बहुत स्थानोंमें उसीमेंसे लियेगयेहैं इसकारण प्रथम
ऋग्वेदकी प्राचीनतापर विचार करतेहैं ॥ इसवेदका पहिलामंत्र विश्वामित्रकेपुत्र
मधुच्छन्दस् का रचितहै और अन्तकामन्त्र अघमर्षण नामकऋषिका बनायाहुआहै।

इसकारण ऋग्वेद उससमयका रचाहुआहै जबकि मधुछन्दस् और अघमर्षण वर्तमानथे क्योंकि आदिमंत्र और अंतकेमन्त्रके यही रचनेवालेहैं ॥

बीचके भाग बहुतसे ऋषियोंके बनायेहुएहैं। हमग्रन्थमें उनकेनाम और वेदों केमंत्रोंकी सूचनालिखेंगे * जिसने जोबनाया सो प्रगटकरदेनेकेलिये ॥

मधुच्छन्दस्ऋषि जिसने पहिलामंत्र बनाया रामचन्द्रजीके समयमें वर्तमानथे। इसकारण ऋग्वेदके आरम्भका समय प्रगट होगया । रामचन्द्रजीसे सुमित्रतक ५६पीढ़ियां और १११०वर्षका समय निकलताहै । इसमें विक्रमादित्यसे आजतक का समय अर्थात् सम्वत् मिलानेसे विदित होताहैकि अबतक ३०६२वर्ष होतेहैं जबकि ऋग्वेदका आरंभ हुआथा । ऋग्वेदके दूसरेभागमें पराशरऋषिके मंत्रहैं और यहबात जाननाकि वह किससमयमें वर्तमानथे बहुतही सहजहै क्योंकि व्यासजी एकवड़ेनामी विद्वानहुएहैं। व्यासजीने एकअतिउत्तम और बहुतप्रसिद्ध ग्रन्थ बनायाहै जिसकानाम वेदान्तदर्शनहै । व्यासजीने अपनी पुस्तकमें ऐसी— मुख्य बातोंका वर्णनकियाहै जिससे हमको ठीकठीक विदित होजाताहैकि वहकिस समय में थे ॥

वेदांत दर्शनके दूसरेअध्याय पाद२ सूत्र३३से ३८सूत्रतकमें व्यासजीने बौद्धमतकी बातोंका वर्णन कियाहै । अबहम जानतेहैंकि बुद्धजी विक्रमादित्यके सम्वत्से ४७५बरस पहिले हुएहैं और येशूमसीहसे ६३२बर्षपहिले । उससमय राजा चन्द्रगुप्त राज्यकरताथा । इसप्रकार हमबुद्धजीका समय जानकर व्यासजीकी ओरचलतेहैं हां यहतोहै कि वह बुद्धजीके पीछेहुएहैं क्योंकि उन्होंने बौद्धमतका खण्डनलिखाहै । पतंजलि ऋषिने एकपुस्तक बनाईहै जिसकानाम योगदर्शनहै उसमें उन्होंने पाणिनिके व्याकरणके अध्याय२ पाद४ सूत्र२३पर टीकाकरतेहुए कहाहैकि राजाको ऐसीसभा नियुक्त करनीचाहिये जैसी राजा चन्द्रगुप्तनेकिईहै । यौंहम देखतेहैंकि पतंजलिने अपने योगदर्शनमें राजा चन्द्रगुप्तकी चर्चाकीईहै और फिर व्यासजीने इसीपुस्तकपर व्याख्या लिखीहै इसकारण इसीसे अत्यन्त प्रगट होताहैकि व्यासजी बुद्ध और राजा चन्द्रगुप्तके पीछेहुएहैं परन्तु उनके पिता पराशरऋषि ठीक उससमयके लगभग वर्तमानथे । अबऋग्वेदके अन्तभागमें पराशरके मंत्रहैं इसकारण ऋग्वेदका समय लगभगउससमयके ठहरताहै अथवा उन दूसरेशब्दोंसेभी यहीसमय सिद्धहोताहै जिनके अर्थ उसी प्रकारकेहैं । यदिआज-

* यह नाममाला दूसरे भागमें छपेगी ॥

तक इस यह बरस जोविक्रमादित्यसे लेकर अबतक बीतेहैं एकट्ठाकरके लेखा लगा ये तो विदित होताहैकि उससमयसे लेकर जबकि ऋग्वेदके अन्तभागके मंत्र लिखेगये २४१७ बरस होतेहैं ॥

इससे प्रगट होताहैकि ३०६२ बरसमें ऋग्वेदका आरम्भहुआहै और २४१७में समाप्तहुआहै । ऋग्वेद एकऋषिका बनाया हुआनहींहै किन्तु ६४५ बरसके अन्तरमें बहुत ऋषियोंने उसको समाप्त कियाहै । आर्य्यलोग कहतेहैं कि वेदकेजो ऋषि प्राचीनहैं बनानेवाले नथे वे केवल उसके माननेवालेथे ॥

यहएक और वर्णनहैजो आर्य्यलोग उनपुस्तकोंकी जिनकोकि वे धर्म्मपुस्तक मानतेहैं शिक्षाके विरुद्ध कहतेहैं । क्योंकि निजकर वेदोंमें ऋषियोंकी दोप्रकारकी सर्वत्र चर्चाहै अर्थात् एकतो जिन्होंने वेदोंको बनाया और दूसरा उनका जिन्होंने उसे माना वर्णनहै । जैसाकि यजुर्वेदके तैतरीयब्राह्मणके मंत्र २२में यहलिखाहैकि मैं उनऋषियोंको धन्यवाद देताहूं जिन्होंने वेदोंको बनायाहै । एक दूसरे स्थानमें यहलिखाहैकि मैं उनऋषि योंको धन्यवाद देताहूं जिन्होंने वेदों को माना अर्थात् उनको अभ्यास और विश्वास किया । औरभी बहुतसे भागोंमेंऐसाही लिखाहै कि वे ऋषि जिन्होंने वेदोंको बनाया और जिन्होंने वेदों को माना सदाकाल मेरी ओर लगेरहें। फिर भी लिखाहैकि मैंउन ऋषियोंका जिन्होंने वेदोंको बनाया और जिन्होंने माना नहींछोड़ूंगा ॥

वेदआपही आर्य्यलोगोंके इसवर्णनकी भूलको प्रगट करतेहैं । यदि उन्हें अपनी धर्म्मपुस्तकोंमें पूर्ण प्रमाणताहोती तो ऐसी प्रत्यक्ष भूलकी बातोंका वर्णन नकरते

हमवेदोंका प्रारंभ और प्राचीनताकेविषयमें आर्य्यलोगोंका वर्णन सुनचुकेहैं कदाचित् उनसे अधिक निर्मूलबातोंका वर्णन और कहीं नमिलेगा । यह आश्चर्य्यकीबातहैकि किसप्रकार बुद्धिमान मनुष्य उनबातोंको बुद्धियुक्त और मत प्रसिद्ध करतेहैं । वेदोंकीशिक्षा और उनके प्रमाणोंके विषयमें हम आगेके व्याख्यानोंमें वर्णन करेंगे ॥

*हमअपने पढ़नेवालोंको स्मरणकरातेहैंकि जैसाहमने पहिले व्याख्यानमें कहाहैकि स्वामी दयानन्दजी ग्यारह उपनिषद् और छः दर्शनोंको वेदोंके तुल्य मानतेहैं । इनपुस्तकोंके नाम हम पहिले व्याख्यानमें वर्णन करचुकेहैं । स्वामी दयानन्दने इनपुस्तकोंको पवित्र अंगीकार करलियाहै और सत्यतामें वेदोंके तुल्य

* यहलेख धार्मिकसत्यप्रकाश व्याख्यान पांचवां पृ०११ प क्ति१० से प्रारंभ कियागयाहै ॥

ठहरायाहै और उनपर आर्य्यमतकी नेवडालीहै । वह सिखातेहैं कि "परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार ऋषियोंने इन पुस्तकोंको वेदोंसे बनायाहै और इनपुस्तकोंके द्वारा मनुष्यको परमेश्वरका ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होतीहै । और उनकी यहभी ममताहैकि ये पुस्तकें एकदूसरीसे मिलतीहैं केवल मिलतीहीनहीं बरन एक दूसरेको प्रकाश देती और प्रमाणित करतीहैं ॥

जैसा वैशेपिकदर्शनमें वस्तुओंके रूप न्याय दर्शनमें उनके भेद सांख्यमें उनके तत्व और पातञ्जलिमें उनपुस्तकोंकी शिक्षा समझनेके विषयमें लिखाहै । जैमिनीय अर्थात् मीमांसामें विश्वास और विश्वासियोंका वर्णनहै और वेदान्त दर्शनमें निस्तार और निस्तार प्राप्तकरनेके द्वाराका वर्णनहै ॥"

यह स्वामीदयानन्दजीके मतका व्यवहारहै यदि यह सत्यहै तब विरुद्धता तो अलगरही परन्तु एकपुस्तकके नहोनेसे औरोंका समझना कठिनहोगा जैसा कि ताला विनाकुंजी किसीकामकानहीं । परंतु जबहम उनको पढतेहैंतो विदित होताहैकि उनका वर्णन एक दूसरेसे बहुत विरुद्धहै इसकारण क्यातो ये पुस्तकें वेदोंको नहींमानतीं अथवा वेद आपहीविरुद्धतापरहैं । विशेषबाततो यहहैकि जो कुछ स्वामीदयानन्द कहतेहैं वह सम्पूर्ण मिथ्याहै । क्योंकि यदि मनुष्य इन पुस्तकोंको ध्यानलगाकर पढेतो उसको प्रगटहोजायगाकि यह परस्पर बहुत विरुद्धता रखतीहैं । जैसा व्यासजी वेदान्तदर्शनके शारीरिक अध्याय१पाद१ सूत्र१ से४में अपने मतका वर्णन करतेहैं । फिरवह सांख्यदर्शनकी खण्डनकरतेहैं और कहतेहैंकि वह वेदोंके विरुद्धहै देखोशारीरिकअध्याय१पाद१सूत्र५से अंततक।अब फिर निश्चय करतेहैंकि यह बुद्धिके विरुद्धहै देखो अध्याय२ पाद२ सूत्र१से १२ उसके साथ वह पातंजलिदर्शनकोभी खण्डन करतेहैं। फिर सांख्यदर्शनके वर्णनों का भिन्न२ विवादकियाहै और उन्हें खण्डन कियाहै । और अध्याय२ पाद२ सूत्र११ से १७में उन्होंने वैशेपिकदर्शनके धुर्रेउडायेहैं । और सूत्र१७से ३१में उन्होंने न्यायदर्शनको मिट्टीमें मिलायाहै । और अध्याय२ पाद२ सूत्र१४से १७ में कणादको खण्डन कियाहै । पाद१ सूत्र८ से ४१ में शैवशास्त्रकी चिर्रेंघाती उडाईहै । अध्याय२ पाद२ सूत्र४२ से ४५में नारदपंचरात्रकी अच्छी खबर लिईहै । अध्याय२ पाद२ सूत्र४१ से४४में जैमिनिकी बहुत निन्दा किईहै । यों हम देखतेहैंकि यह वर्णन कि यहसब पुस्तकें आपसमें मेल रखतीहैं कैसा बे ठिकानेकाहै ॥

इसकेपरे देखाजाताहैकि इनपुस्तकोंके आचार्य्य एकदूसरेको भलीभांति

गाली गलौज करतेहैं जैसा न्याय वेदान्तदर्शनको नास्तिककी पुस्तक लिखताहै वेदान्त उसके उत्तरमें न्यायको कुत्तेकेनामसे पुकारताहै और सांख्यदर्शन इन दोनोंको स्थापित बतलाताहै और पातंजलि इन तीनोंको रसिक और व्यर्थ पुस्तकें ठहराताहै ॥

औरदेखोमित्रविलासपत्रलाहोरसम्या१७खण्ड१२ता०२४।६।८८ई०मेंलिखाहै॥

अबकेलोक जो अल्पश्रुतहैं, वेदार्थको नहींजानते उनको पूर्वापरकी कुछ खबर नहीं। इसजमानेमें मन्दबुद्धि वेदोक्त कर्म्म जिनोंने त्यागदियेहैं। उन्होंने कुमार्गको पकड़ लियाहै। वर्णाश्रम धर्म्मकी निंदाकरतेहैं शिष्टाचारसे भ्रष्टलोग हैं, नहिं वो आस्तिक, नहिं वो नास्तिक क्योंकि जो नास्तिकहैं, जयन बौद्ध मतवाले, सोभी अपने परमेश्वरकी मूर्तिका पूजन करतेहैं, मंदिरोंमें, जोआस्तिक हैं सोतो सनातन शिष्टाचारसे श्रुति स्मृति विहित भगवतके अवतारोंकी मूर्तिका पूजन करतेहैं। परन्तु अबके लोकोंने वेदोंके अर्थ उलटे विपरीत अपनेमनसे कल्पनाकरकरके लोकोंके मनभ्रमातेहैं, जिनअर्थोंमें कुछप्रमाणनहिं। वेदोंसे विरुद्ध अर्थ करतेहैं, जोभाष्यकारोंने शिष्टोंने प्रमाणिक अर्थ कियेहैं वेदोंके, उनसे विरुद्ध चलतेहैं और भगवतके अवतार और मूर्तिकी निंदा करतेहैं। इनलोगोंका दर्शन नहींकरना चाहिये, क्योंकि जोनिंदकहोतेहैं सो महापापिष्ट होतेहैं, उनके साथ स्पर्शकरणा संभाषण करणा महापापहै, सचेलचलके स्नानकिये जीव पवित्र होताहै। ब्रह्मसेलेकर कीटपर्य्यंत भगवतकी विभूतिमात्र सभजगतहै। जीवमात्रकी निंदा नहिंकरणीचाहिये। यहलोकतो भगवतके अवतारोंकी और मूर्तियोंकी निंदा करतेहैं, इसवास्ते पापिष्टोंमें अधम पापिष्टहैं, औरक्याकहतेहैंकि वेदोंमें मूर्तिका निरूपणनहिंहै। यहबातउनकी किसतरहकीहै जैसे आकाशको कोई मन्दबुद्धि चिमटासें लेपन करताहै। और बड़ी अफसोसकी बातहैकि कोईएक शाखा वेद की देखकर कहतेहैंकि इतनाही वेदहै, और वेदनहिं। जैसे कूपकामेंडक जानता हैकि कूपही समुद्रहै और समुद्रनहिं। प्रथम आपदेखोकि १हजारशाखा सामवेदकीहै। एकशत शाखा यजुर्वेदकीहै, एकविंशति शाखा ऋग्वेदकीहै, ६शाखा अथर्वणवेदकीहै, और पञ्चम वेदजो अष्टादश पुराणहैं उनकी श्लोकसंख्या ४लक्षहै जिनके महाभाष्यकार पातंजलिजीने महाभाष्यमें प्रमाण सम्मतिदियाहै। इतने वेदोंको और वेदोंकेजो भाष्यहैं, औरजो १६महा स्मृतीयाहैं, और जो सकलधर्मशास्त्रहैं, इतनेशास्त्रको विनाजाणे और विनादेखेंमें कहदेनाकि मूर्तिकापूजन

कहीं नहिं जैसे जन्मका अन्धा जो पुरुष है उसको सूर्य्यका ज्ञान नहिं और दर्शन भी नहिं तैसे इन लोकोंका कथन है० ॥

फिर मित्रविलास पत्र संख्या ११ खण्ड १२ तारीख ११ । १० । १८८८ ई० में लिखा है॥

इस भारत खण्डमें आधुनिक पाखंड मार्गमें अग्रसर वेद मार्गका दूषक, जो दयानन्द भया है उसके अनुजाईयोंकी भ्रष्ट बुद्धि पर जो अच्छे विद्वान सज्जन लोक हैं वे बड़ा उपहास्य करते हैं । हम लोक जानते थे कि दयानन्दको व्याकरण ज्ञान कुछ नहि और अल्पश्रुतया केवल शब्द मात्रसे कोई शास्त्र, वेदकी जानकर पंडित मन्य होगयाथा वेदार्थकी उसको कुछ खबर नहींथी, प्रमाण रहित उलटे अर्थ कल्पना करके अपने मनसे लोकोंके मन भ्रमाता था; कई लोक मन्द बुद्धि उसने भ्रष्ट कर दिये हैं; वर्णाश्रम धर्मसे च्युत कर दिये वेद, ब्राह्मण विदूषक बहुत कर दिये । इत्यादि इत्यादि

फिर देखो मित्र विलास पत्र संख्या १३ खण्ड १२ तारीख १५ । १० । १८८८ ई०में लिखा है,

" और भी एक बात सुनो जो यथार्थ है कि, दयानन्दका जो गुरु था सो एक मथुरामें रहने वाला, नेत्रोंसे अन्धा, दंडी सन्यासी था इसका दयानन्द शिष्य था बहुत चिर उसके पास पठन करता रहा * इस बातसे क्या मालूम होता है कि अन्धेके शिष्यने अन्ध मार्गको प्रवृत्त किया है। जिसको नेत्र नहीं उसको शास्त्रकी क्या खबर है " ॥

श्रीमान पंडित शिवचन्द्रजी निज रचित प्रश्नमालिकामें लिखते हैं,

(२०) स्वामीजी आप लिखते हैं कि उक्त ऋषियोंका पूर्व पुण्य ऐसा ही था इसीसे उनके हृदयमें ४ वेदका ज्ञान प्रकट करा सत्य है जब उक्त ऋषियोंने जो पुण्य करा होगा तो जगत्में ही करा होगा लेकिन वो कोई जक्त दूसरा होगा? क्योंकि यह जगत् तो उसी वृक्त ईश्वरने बनायाथा फेर मनुष्योंको ज्ञानोपदेश दिया इस वृतान्तसे भी जगत् अनादि सिद्ध होता है ॥

तथा, उक्त महोदय निज रचित मूर्ति पुजा मंडन पृष्ठ १० पंक्ति २७ से आगे लिखते हैं कि-समाजोंकी प्राचीनता किसी प्रत्यक्ष प्रमाणसे नहीं मालूम हो सकती केवल वेदका आश्रय लेके उसकी आड़से लड़ते हैं, उसमें भी उसकी ऋचा और मंत्रोंके अर्थ अपने आशयके अनुकूल बदल दिये फक्त अपना प्रयोजन मुख्य

* सत्यार्थ प्रकाश पृष्ट १२० पंक्ति १७ में स्वामीजी मथुरामें एक विरजस मुलाकात होना लिखते हैं

समझागया अर्थ के व्यर्थसे भय नहीं हुआ ॥

दयानन्द मत परीक्षा प्रथम भाग पृष्ठ ७ पंक्ति १३ में यह लिखा है कि

" स्वामीजीने केवल लज्जाही का त्याग किया है उनको अपने प्रयोजनानुकूल मिथ्या अर्थ बनाते हुये भय और शङ्का भी तो नहीं होती देखो (प्रजापत्यांनिरूप्येष्टि) इसी श्रुतिका कैसा विपरीत अर्थ किया है उनको यह किंचित् भय शङ्का न हुई कि विद्वज्जन मेरे पांडित्य पर हसैंगे। और बुद्धिमान मुझको क्या कहैंगे। इसी प्रकार वेदोंका वास्तविक अर्थ बिगाड़ रहे हैं, आर्योंकी धर्म्म रूपी पुष्प वाटिका उजाड़ रहे हैं" इत्यादि इत्यादि० ॥

श्रीमान पंडित सत्यानन्दजी अग्निहोत्री देव धर्म्म प्रवर्तक लाहोर निवासी भी अपनी बनाई एक "दयानन्दी वेदोंमें जिनाकारीकी तालीम" नामकी छोटी सी उर्दू पुस्तकमें स्वामी दयानन्द सरस्वतीके मन घड़त वेदार्थ पर अनेक तर्क करते हैं ॥

पुस्तक " धर्म्माधर्म्म परीक्षा " में तर्क है कि जब स्वामीजी ब्राह्मण भागको वेद नहीं मानते फिर नवीन सत्यार्थ प्रकाशके पृष्ठ ११६ में यह कैसे लिख दिया कि वेद सुने पढ़नेका अधिकार सबको है, देखो गार्गी आदि स्त्रियों और छान्दोग्यमें जान श्रुति शूद्रनेभी वेद रैक्य मुनिके पास पढ़ाया ॥

पादरी टी बिल्यम्स साहिब रेवाड़ी स्थानके मिशनाध्यक्ष अपने एक लेखमें लिखते हैं कि " दयानन्दका योग्य शिष्य गुरुदत्त अपने स्वामीके विषयमें कहता है कि वह अपने समयका एकही वैदिक पण्डित है। वरनमें इसको भी मानने पर तैयार हूं अर्थात् इस कारणसे कि दयानन्दने वेदका मिथ्या अनुवाद करके उस पर ऐसी अत्यंत अनुचित शिक्षाका दोष लगाया कि यही दयानन्द अपने समयमें वेदका सबसे महा शत्रु ठहरता है " ॥

रिवाड़ी ६ जून १८८०] [टी विल्यम्स

पुस्तक मंगल ग्रन्थ पराजय पृष्ठ १८ पंक्ति २० में लिखा है कि " यदि स्वामीजीमें यह गुण होताकि दूसरेकी सत्य बातको मानने और अपनी मिथ्या बातका पक्ष न करते तो उनका मत डांवा डोल क्यों रहता और उनके लेखपर आक्षेपोंकी वृष्टि क्यों होती उनकी बुद्धि पर बुद्धिमान् क्यों हंसते" इत्यादि इत्यादि

श्री राधा चरण गोस्वामी वृन्दावन निवासी (जो सन् १८७७ ई० में स्वामी दयानन्दके नाम पर न्योछावर होते थे) अपने भारतेन्दु नाम मासिक पत्र खण्ड १ संख्या ४ मास आषाढ़ शुक्ला १५ सम्वत् १९४२ पृष्ठ १ में लिखते हैं कि

॥ वेदोंका अर्थ ॥

" बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदोमामयम्प्रहरिष्यति "

हिन्दू लोगोंका धर्म्म ग्रन्थ वेद है० वेदसे बढकर और कोई ग्रन्थ हिन्दुओं को मान्य नहीं। वेद विरुद्ध यदि ईश्वरभी कहे तो उसकी बात कोई हिन्दू नहीं मानता वेदका नाम सुनतेही हिन्दू लोगोंका चित श्रद्धासे पूरित हो जाता है, फिर उसमें हेतु हेतुमद्भाव नहीं लगाते। परन्तु खेदका स्थान है कि भारतकी दुर्दशाके साथ साथ वेदकीभी दुर्दशा होगई वेदके अनेक ग्रन्थ नष्ट हो गये, व्याख्यान सब उठ गये कर्म्मकी शृङ्खला जाती रही अर्थ ब्राह्मण लोग भूल गये नाना प्रकारके मत मतान्तरोंके फैलनेसे वेदकी चर्चा भी कम हो गई। चलिये छुट्टी हुई परन्तु वेद वृक्षकी जड बडी दृढ है, इस्से अनेक आन्धी बवण्डर सह कर भी अब तक महा प्रलयमें बचा हुआ है। पर अब बचना कठिन है, क्योंकि अब इसकी जडमें तेल और पारा भरने वाले बहुत पैदा होगए। जो वृक्ष आन्धी बवण्डरसे नहीं गिरा उसे अब छलबल कौशलसे गिरानेका उपाय हो रहा है। प्रथम इसके विनाशक स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज हैं, इन्होंने वेदका वह गौरव उड़ा दिया, जो सनातनसे सम्प्रदायानुसार एकार्थ बाच्य चला आता था॥ आपने वेदके अर्थका कुछ भी भाव न समझकर व्याकरणका खड्ग हाथमें ले वेद रूपी महा नगरका कृत्ल आम कर दिया। रेल, तार, विमान बैलून, जहाज, कल, आदि विलायतका सारा कारखाना बिचारे भोले भाले परमेश्वरकी वाणीमें भर दिया० दूसरा नाश वैदिक सद्धर्म सभा आगरेने किया इत्यादि० ॥

फिर देखो राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्दके निवेदनकी भूमिका इस प्रकार है

मैंने श्रीमत्स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीका जो कुछ चर्चा देश देशान्तरोंमें सुना मनमें आया कि जैसे किसी समयमें विष्णु भगवानने वेदोंको एक्केया बत लाते हैं कदाचित् फिर भी इस कलि कालमें उसी लिये दयानन्दजीने अवतार लिया हो दैव संयोगसे एक दिनमें किसी मेम* और साहिबके देखनेको गया था तो वहाँ उस बागमें पहले दयानदजी महाराजहीका दर्शन हुआ मैंने जिज्ञासा की कुछ उपदेश चाहा प्रश्नोतर पूरे नहीं भये साहिब आ गये और और बातें

* ए पी भाष्म बलमसकी और कर्नल ओल्काट साहिब जगत विख्यातहो मिलनेको गयेथे ॥

होने लगी मैं घर आया पर जितना महाराजजीके मुखारविन्दसे सुना था बड़े सन्देहका कारण हुआ निवृत्यर्थ पत्र लिखा महाराजजीने कृपा करके उत्तर दिया उसे देख मेरा सन्देह और भी बढ़ा महाराजजीके लिखने अनुसार ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका मँगाके पृष्ठ १ से ८८ तक देखा विचित्र लीला दिखाईदी आध आधे वचन जो अपने अनुकूल पाये ग्रहण किये हैं और शेषार्थका जो प्रति कूल पाये परित्याग उन आधे अनुकूलमें भी जो कोई शब्द अपने भावसे विरुद्ध देखे उनके अर्थ पलट दिये मन माने लगा लिये घबराया कि छापेकी अशुद्धता है वा मेरी समझ और आँखोंका दोष फिर पत्र लिखा उसका जो उत्तर पाया तो जाट और खाट और मुगल और कोल्हूकी कहावत याद आयी श्रीमत्पण्डितवर बालशास्त्रीजी तो बाहर गये हैं परम पूजनीय जगत गुरु श्री स्वामी विशुद्धानन्द जीके चरणोंमें पहुचा पत्र और उत्तरोंको देखकर बहुत हँसे और पिछले उत्तर पर जिसमें इन दोनों महात्माओंका नाम है कुछ लिखवा भी लिया अब मैं महा विकट विस्मयावर्तमें पड़ा हू न तो यह कह सक्ता हूं कि स्वामी दयानन्दजी संस्कृत शब्दोंका अर्थ नहीं समझते और न यह अपने मनमें ला सक्ता हूं कि आपतो समझते हैं दूसरोंके बहकाने और भुलानेको यह अर्थाभास रचा है क्योंकि ऐसा काम सत्पुरुषोंका नहीं है जोहो मैंने अपने पत्र और स्वामी दयानन्दजीके उत्त रोंका इसमें छपवादेना बहुत उचित समझा कि जो सज्जन आर्यलोग उनकी बनायी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका देखते हैं अपनी बुद्धिको कुछ काममें लावें और दूसरे पण्डितोंसे भी सम्मति लेवें ऐसा नहो कि अंधे नेत्रनीयमाना यथान्धाः के सदृश केवल दयानन्दजी के भाष्य और भूमि काही की लाठी थामे किसी अथाह गढ़े वा नरक कुण्ड में जा गिरें क्योंकि किसी पारसी कविने कहा है ॥ अगर बीनम के नाबीना व चाहस्त ॥ अगर खामोश बनशीनम गुनाहस्त ॥ *

श्री सम्बेगी साधु आत्माराम (आनन्दविजय) जी अपने बनाये अज्ञान तिमिर भास्कर नाम ग्रन्थ पृष्ठ ३४ पंक्ति १३ से लगा पृष्ठ ३५ पंक्ति १८ तक इस प्रकार लिखते हैं,

"दयानन्द सरस्वती जीका कहना एक सरीखा नहीं, इसका यही तात्पर्य है कि ब्राह्मण पुराणादिकों में अनुचित लेख देखके मतिवादियों के भयसे दया नन्दजीने अन्य पुस्तक सर्वे वेद संहिता के सिवाय मानने छोड़ दिये हैं, और पूर्वले अर्थोंसे लज्जायमान होकर स्वकपोल कल्पित नवीन अर्थ बनाये हैं। सो जिसको अच्छे लगेंगे सोमानेगा । और हमतो दयानन्द सरस्वती के बनाए

* [illegible] कारण और हाथ आगे देखना ॥

अर्थोको कदापि सत्य नहीं मानेंगे, क्योंकि दयानन्द सरस्वतीने अपने बनाए सत्यार्थ प्रकाश के बारवे समुल्लासमें जैनमतकी बाबत बहुत जूठी बातें लिखी हैं

ऐसाही उनका बनाया वेदभाष्य हैगा। दयानन्द सरस्वतीने जो मत निकाला है सो इसाइयों के चाल चलन और मतके साथ बहुत मिलता है। परन्तु चार वेद ईश्वर के कहे हुए हैं, और अग्नि, सूर्य्य पवन रूप ऋषियोंको प्रेरके ईश्वरने वेद मंत्र कहा है और मुक्ति हुआ पीछे फेर जगतमें आकर उत्पन्न होता है, और मुक्ति वाला जहाँ चाहता है वहां उड़के चला जाता है, और ईश्वर सर्व व्यापी है, जीव और प्रमाणु अनादि हैं, घी, सुगन्धी के होमनेसे वर्षा होती है, हवा सुधरती है मुक्ति वा स्वर्ग ऐसा कोई स्थान नहीं, इत्यादि बात तो इसाइ मतसे नहीं मिलती हैं, शेष बातें प्राय' तुल्य ही हैं, बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है प्राचीन ब्राह्मणों के मतको छोड़ के अन्यमत वालों के शरणागत होना और जो कुछ अंग्रेजोंने बुद्धि के बलसे तार, रेल, धूंये के जहाज आदि कला निकाली हैं उनही कलांको मूर्खों आगे कहना कि हमारे वेदों में भी इन कलाका कथन है, दयानन्द सरस्वती इस यजुर्वेद के मंत्रसे सूर्य्य स्थिर और पृथ्वी भ्रमण करती सिद्ध करता है,

अयगौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरपुरः पितर च प्रयस्व

यजुर्वेद अध्याय ३ मंत्र ९ तथा इस मंत्रसे तार (टेलीग्राफ) की विद्या कहता है,

युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधा श्वेत तरु तार दुवस्यथः
शर्यैर भिद्यु पृतनासुदुष्टर चर्कृत्यमिंद्रमिवचर्षणी सहम्॥

ऋग्वेद अष्टक १ अध्याय ८ वर्ग २१ मंत्र १०

जे करतो पूर्व भाष्यकारोंने इन मंत्रोका इसी तरें अर्थ करा होवेगा तब तो दयानन्दका कहना ठीक है, नहीं तो स्वकपोल कल्पना से क्या होता है ॥

(क) इसी प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती के किये वेद भाष्यको कोई भी विद्वान अच्छा नहीं कहता जिसको देखो इनका विरोधी दृष्टि पड़ेगा बस अधिक लिखनेकी क्या आवश्यकता है यह विषय इसना ही बहुत है ॥

सम्वत् १०३५ वैशाख के महीनेमें स्वामी दयानन्द सरस्वती मुल्तानसे लौट के फिर लाहोरमें आये और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकामें अंक १४ के टाइटिल पेजपर निम्न लिखित विज्ञापन पत्र मुद्रित होनेके लिये लाजरस प्रेस बनारसमें पठाया ॥

॥ विज्ञापनपत्र ॥

सब सज्जन लोगोंको विदित होकि इसके आगे अर्थात् सम्वत् १९३५ज्ये ष्ठ महीनेसे लेकर वेद भाष्य उत्तम कागज़ और अक्षरोंसे युक्त बम्बईमें छपा करे गा हमारी ओरसे इस कामके प्रबन्ध करने वाले प्रधान आर्य्यसमाज के रा रा बाबू हरिश्चन्द्र चिंतामणिजी स्थापित कियेगये हैं उनका ठिकाना बम्बई बाइकोट घर नम्बर ६ मेडोस्ट्रीटफोर्ट का है, वहाँसे सब ग्राहकों के पास पूर्व लिखित ठिकानों में यथोचित कालमें प्रतिमास अंक पहुंचते रहेंगे, और जो अंक ग्यारवें में नो टिस दिया गया था कि भूमिकाके अंक नम्बर १२, १३ और १४ चौथवाँ छप नेको बाकी रहे हैं, सो अनुमान अधिक होनेसे अंक १५ में में भूमिका पूरी होगी सो अगले महीनेमें अंक १ ऋग्वेदके मंत्र भाष्य और अंक १६ वाँ भूमिका दोनों साथ छपेंगे। आषाढसे लेके ऋग्वेद १ यजुर्वेदका १ मंत्र भाष्य साथ साथ प्रतिमास बराबर छपा करेंगे। जो कोई केवल भूमिका ही लेवेंगे वे ५) रुपये देकर ले सके हैं और जो मंत्र भाष्य दो लेंगे और भूमिका १ वेदोनों वर्ष के ११) देंगे जि न्होंने सम्वत् १०३४ का वार्षिक मूल्य दिया है और दो मंत्र भाष्य लेंगे वे स म्वत् १०३० का रुपया ७) और जो एक लेंगे वे ४) देंगे और जो नवीन ग्राह क होंगे वे इन दोनो वर्षोंका एक पुस्तकका मूल्य ८) रुपये और दोनोंका रुपये ११) देंगे । और यह भी जानना चाहिये कि चारों वेदोंकी भूमिका एकही है, आगे बम्बई उक्त बाबूजी और स्वामीजी के पास पत्र भेजनेसे नवीन ग्रा हकोंको वेद भाष्य मिला करेगा और इन दोनोंमें से किसी एक के पास दाम भी भेजना होगा ॥

बम्बईके मिस्टर हरिश्चंद्र मुख्य चिंतामणि * द्वारा अमीरका में कर्नल अ लकाट (Colonel Alcott) और मादम ब्लवत्स्की (H. P. Madam Blavatsko) से पत्र व्यवहार चलाया तो यह श्लोक सार्थकही पाया गया ॥

उष्ट्राणां विवाहेतु गर्दभा वेदपाठकाः ॥
परस्पर प्रशंसंति अहोरूपमहोध्वनि ॥ १ ॥

भावार्थ—ऊंटने इसको ईश्वरावतार लिखातो इसने उसको साक्षात पर

* आगमें इनके साथ स्वामीजीकी खूब लिखापढ़ी और कर्नेल अलकाट भी यहां भेंट कर गए ॥

मेश्वर ही प्रकट किया और इतने परही स्वामीजीने सम्पूर्ण भारतमें यह प्रकाशित करा दिया कि अम्रीका देशके हजारों मनुष्य हमारा नाम सुनकर ही हमारे विश्वासी हो वेदको मानने लग गये हैं। जो चिठ्ठी कर्नल अलकाटने अपनी सुसाईटीकी तर्फसे स्वामी दयानन्द सरस्वती के पास हिन्दुस्थानमें भेजीथी उसकी नकल निम्न लिखित है, ॥

स्वामीजी महाराज चन्दलोग अम्रीका व और और देश निवासी तालवइल्म जोकि इल्म परमेश्वर व आत्मज्ञान होनेका अत्यन्त शौक रखते हैं वह अपने आपको आपके चरणोंमें डालकर यह प्रार्थना करते हैं कि आप उनका उद्धार करें। यद्दिचि वे अन्य अन्य देश निवासी और पृथक् पृथक् पेशा व नोकरी करने वाले हैं लेकिन सबके सब एकही मनोरथ सिद्ध करने और उत्तमोतम हो जानेके लिये दृढ चित हो सम्मिलित व सुसम्मित हैं! इसी कारन तीन वर्ष पेश्तरसे उन्होंने अपनी एक सभा स्थापित की है, और उसका नाम परिब्रह्म परिज्ञान समाज रक्खा है, जो कि उन्होंने अपने ईसाई मतमें ऐसी कोई बात न देखी कि जिस्से स्वार्थ व परमार्थ ज्ञान प्राप्त करके अपना चित संतुष्ट करते बल्किहरबहार तरफसे खराब करने वाले उसके निश्चयोंके अति बुरे फल देखे और ऐसे बड़े २ पादरी आदि पाये कि जाहर परस्त और घाकबप्प और बुद्धि नाशक हैं उनपर विश्वास लाने वाले लोग भी बहुत बुरी रीति व अपवित्रतासे कलाच्छेप करते हैं, और यहभी देखा गया है कि पादरी लोग भलाई व दानाईको ताक़में रखकर दोषोंको छिपाते और ऐबोंको माफकरदेते हैं। जो कि उनकी यह सब हालतें इन मुल्कोंके मनुष्य मात्रोंको खराब खिस्त करने वाली हैं नाचार हम उनके मतसे जुदे होकर रौशनी पाने के लिये हिन्दुस्थानाभिमुख होते हैं, हमने अपने यहीं खुले मैदान पुकारकर ईसाई मतका दुश्मन प्रसिद्ध करदिया है हमारे इस चलन व साहसको देख सबकी नज़र हमारी तर्फसे फिर गई अर्थात् बड़े बड़े अधिकारी व अखबार नवीस (कि जिन्की भ्रष्ट बुद्धिपर दुर्न्यशना शक्ति प्रकाति है और ईसाई भिन्नमत वालोंसे द्वेष रखते हैं) हमको धिकार देते और भ्रष्ट व काफर व गमार कहते हैं हमने १८ महीने पेश्तर के मरे हुये आदमीकी नाश (शव) को कबरसे निकालकर पुराने पुरुषों यानी आर्य्योंकी रीतिसे जला दिया, हम केवल तरुण आदमियोंकी ही सहायता नहीं चाहते बल्कि उनकी चाहते हैं कि जो बड़े दाना और प्रसनेष्ट हैं इस लिये हम आप के चरणों में इस तरह शिर निवाते हैं जैसे कि बच्चे माबाप के पैरोंपर गिरते हैं, और कहते हैं कि अब हमारे

गुरु हमारी ओर देखिये और बतलाइये कि हम क्या करें? और हमको अपनी दिक्षा व सहायता पात्र बनाइये यहाँ लाखों आदमी ज्ञान रहित विषयासक्ति मृत मतरूप अन्धकारमें पड़े हुये हैं और इसनेपर भी उन गुमराहोंको संतोष होय सा नहीं अपनी चुस्त अकली व अति निन्दक ढमङ्गसे अपना धन खर्चकर जाहल आदमियोंको अपना शुद्ध मत कबूल कराने में तत्पर हैं हमारी रसाई अखबारों तक बखूबी है उसके द्वारा हम वैदिक मतके सहीसही खयालात तमाम ईसाई मूल्कोंमें फैला देना चाहते हैं, और जिन लोगोंको जो ईसाई महामूर्ख बनलाकर अपने मतमें लाना चाहते हैं उनको चिताना व उनपर ईसाई मतकी भ्रष्टिता व मिथ्यात्व प्रकाशित कर देना हमारा ऐन मनोरथ है, इसी तरह आर्य्या वर्त के प्राचीन ग्रंथ वेदशास्त्रोंका जो इन दुष्टोंने विपरीत अर्थ प्रकाशित किया वह अब हम सत्य सत्य छपवाकर इनकी चालाकी और दुष्टता स्पष्ट करना चाहते हैं। अगर आप हमारी सभाकी मेम्बरीकी सनद स्वीकार लेंवे तो हमको बड़ी प्रतिष्ठा और इज्जत मिलेगी और आपकी कृपा व महरबानी और सहायतासे हमको बड़ाही जोर बन्धगा ! हम अपने तईं आपके शिष्य गणोंमें स्थापित करते हैं ! जिस पाक काममें आप संसिक्त हैं शायद आपकोभी हमसे कुछ सहायता उसमें पहुंचे क्योंकि हमारा मैदान जंग कन्या कुमारीसे हिमालय तक फैला हुआ है, अर्थात् सारे हिन्दमें जो हम चाहेंगे वह कर सके हैं ! स्वामीजी महाराज आप अपने स शील वंशन्योंके स्वभावको खूब पहचानते हैं इस लिये निश्चय है कि हमारे दिलका भी हाल आप पर छुपा न रहा होगा हम बारम्बार प्रार्थना करते हैं कि आप हमारी तरफ परम कृपा व दया दृष्टसे निहारें। हम सच कहते हैं कि हम आपके शरणागत आपकी चरण रज बन कर होते हैं न किसी अहंकार व कपटसे हमारी यह दीनता है निश्चय जानियें कि हम आपकी दीक्षा लेने और उस करतव्यके करनेको मुस्तैद व उपस्थित हैं जिसकी के आप हमको आज्ञा करें। जो आप हमको एक पत्र लिखेंगे तो जानलेंगे कि हम ठीक ठीक यथा जिज्ञासा रखते हैं, निश्चय है कि जो हम चाहते हैं वह आप हमको जरूर अर्पण करेंगे ॥ १८ मई सन् १८७८ *

(भय परम प्रतिष्ठित साहिब में हिनरीएस अलकाट ईश्वर पर ज्ञानसमाजके सभापति यह पत्र सभाकी तरफसे आपको बड़ी नम्रता पूर्वक लिखता हूं इति)

* यह चिट्ठी रजिस्टर हिस्ट्रीअप प्रथम भाग पृष्ठ ९०। ९१ सफ्हा ६ में लिखी गई है इसमें और अन्य वार्तेंभी लिखी हैं सो उनका वर्णाया ही मूल समझना चाहिये।

ज्येष्ठ सम्वत् १९३५ में स्वामीजी लाहोरसे अमृतसर चले आये और वेदभा ष्यभूमिकाके अंक १५ व १६ में निम्न लिखित विज्ञापन पत्र मुद्रित करनेको बनाये *

॥ विज्ञापन पत्र पहिला ॥

आगे यह विचार किया जाता है कि संस्कृत विद्याकी उन्नति करनी चाहिये सो विना व्याकरणके नहीं हो सक्ती, जो आजकल कौमुदी, चन्द्रिका, सारस्वत, मुग्धबोध और शब्दबोध आदि ग्रन्थ प्रचलित हैं उनसे न तो ठीक ठीक बोध और न वैदिक विषयका ज्ञान यथावत् होता है वेद और पुरातीन आर्ष ग्रन्थों के ज्ञानसे विना किसीको संस्कृत विद्याका यथार्थ फल नहीं हो सक्ता, और इसके विना मनुष्य जन्मका फल होना दुर्घट है, इस लिये जो सनातन प्रतिष्ठित पाणिनि अष्टाध्याई महाभाष्य नामक व्याकरण है, उसमें अष्टाध्याई सुगम संस्कृत और आर्य्य भाषामें वृत्त बनानेकी इच्छा है, जैसे वेद भाष्य प्रतिमास २४ पृष्ठोंमें १ अंक छपता है इसी प्रकार ४८ पृष्ठका अंक बम्बईमें छपाया जाय तो बहुत सुगमतासे सब लोगोंको महा लाभ होसक्ता है, इसमें हजारों रुपयेका खर्च और बड़ा भारी परिश्रम है इसका मासिक मूल्य जो प्रथम देवस्से ॥=) आना के हिसाबसे ७॥) रुपये लेनेका है उधार लेने वालोंसे ॥।=) आना के हिसाबसे ११।) लिये जाँय, विद्योत्साही सब सज्जनोंकी सम्मति प्रथम ही जाना चाहता हूं सो सब लोग अपना अपना अभिप्राय जणावें ॥ इति॥[1]

॥ विज्ञापन पत्र दूसरा ॥

सबको विदित होकि चारों वेदोंकी भूमिका पूरी हो गई है इसकी अंक १५ । १६ में समाप्ति हुई, इसकी जिल्द जिनको इच्छा हो बन्धवालेवें जो एक वेद लेते हैं उनके पास आषाढ में ऋग्वेदका अंक नहीं आवेगा क्योंकि यह दो अंक आये हैं इसके आगे श्रावणसे लेकर एक लेने वालोंके पास एक एक और दो लेने वालोंके पास दो दो ऋग्वेदके और यजुर्वेदके अंक आया करेंगे धीर्य्य करो कि बम्बईमें बहुत अच्छा काम चलैगा यह पहिला महीनाथा इस लिये

---

*वेदभाष्य भूमिकाका अंक १५ व १६ इकट्ठा निर्णयसागर प्रेस बम्बईमें छपकर नियत समय से कुछदिन पीछे प्रकाशित हुआथा ॥

१ यह कार्य्य स्वामीजीका मनकी मधुर इच्छासे भरा हुआ पाया जाता है ॥

थोड़ी देर होगई आगे बराबर मिती वार पहुंचा करेगा ॥

एक महीनेके लगभग स्वामीजी अमृतसरमें रहकर सहारनपुर चले आये और कुछ दिन रहकर एक समाज स्थापितकर अगस्त् सन् १८७८ ई० के अन्तमें रुड़की पहुंचे । और मौलवी मुहम्मद कासिम * से मुबाहिसा करनेके लिये पत्र व्यवहार किया परंतु बात अधूरी रहगई और २६ अगस्त सन् १८७८ ई० को स्वामीजी मेरठ चले आये । और इनके चले आनेपर १ ली सितम्बर को रुड़की में और आश्विन शुक्ला० ३ तारीख २९ सितम्बरको मेरठमें नवीन आर्य्यसमाज स्थापित हुये ।

आश्विन मासके अंततक स्वामीजी मेरठ ही में रहे इस समय तक वेद भाष्य भूमिका के पूर्ण १६ अंक छपकर प्रकाशित हो चुके थे । अब वेद भाष्य के छपनेका आरम्भ हुआ । सो ऋग्वेद भाष्य व यजुर्वेद भाष्य के जुदे२ प्रथम और द्वितीय अंक बम्बई निर्णयसागर यंत्रालयमें छपाकर प्रकाशित किये । जिनके टाइटिल पेजपर सत्यार्थ प्रकाश सम्बन्धी निम्न लिखित एक विज्ञापन छपवाया था ॥

॥ विज्ञापनपत्र ॥

सबको विदित हो कि जो जो बातें वेदोंकी और उनके अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूं विरुद्ध बातोंको नहीं । इससे जो मेरे बनाये सत्यार्थ प्रकाश वा संस्कार विधि आदि ग्रन्थोंमें गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकोंके वचन बहुतसे लिखे हैं । वे उन उन ग्रन्थोंके मतोंका जाननेके लिये लिखे हैं, उनमेंसे वेदार्थके अनुकूलका साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्धका अप्रमाण मानता हू, जो जो बात वेदार्थसे निकलती हैं उन सबको प्रमाण करता हूं, क्योंकि वेद ईश्वर वाक्य होनेसे सर्वथा मुझको मान्य है ॥ और जो जो ब्रह्माजीसे लेकर जैमिनिमुनि पर्य्यन्त महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रन्थ हैं उनको भी मैं साक्षीके समान मानता हू । और जो सत्यार्थ प्रकाशके ४२ पृष्ठ और २८ पंक्तिमें पितादिकोंमें से जो कोई जीता हो उसका तर्पण नकरे, और जितने मर गये हैं उनका तो अवश्य करे ॥ तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ में मरे भये पितादिकोंका तर्पण और श्राद्ध करना है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषयमें जो छापा गया है सो लि

---

* यह मौलवी मुहम्मद कासिमजी वही हैं जिनका हाल मैंने पहले भागमें लिखा है ॥

खने और शोधनेवालोंकी भूलसे छप गया है। इसके स्थानमें ऐसा समझना चाहिये कि जीवतोंकी श्रद्धासे सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादिका परम धर्म्म है, और जो जो मर गये हों उनका नहीं करना क्यों कि न तो कोई मनुष्य मरे हुये जीवके पास किसी पदार्थको पहुंचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादिने दिये पदार्थोंको ग्रहणकर सकता है इससे यह सिद्ध हुआकि जीते पिता आदिकी प्रीतिसे सेवा करनेका नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं। इस विषयमें वेद मंत्रादिका प्रमाण भूमिका के ११ अंक के पृष्ठ २५१ से ले के १२ अंक के २६७ पृष्ठ तक छपा है वहाँ देख लेना ॥

(क) हमारी समीक्षा ! प्यारे पाठकगण ! देखो स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी चालाकी। आप लिखते हैं कि यह सब लिखने और शुद्ध करनेवालोंकी भूलसे छप गया है। यह भूल केवल स्वामीजी ही स्वीकार सकते हैं, किसी विषयको लिखते या अक्षर वा टाइप योजना करते समय भूल तो अवश्य हो सक्ती है, सो कोई अक्षर अथवा शब्द इधरसे उधर हो जाना संभव होता है, परन्तु यह आज ही सुना है कि एक सात आठ तर्क वितर्कसे भरा हुआ पूरा लेख कई पृष्ठोंमें समाया हुआ स्वतःऽशुद्ध होकर किसी पुस्तकमें मिल जाय! तथा उस पुस्तकमें एक शुद्धाशुद्ध पत्र भी लगा हुआ है, जिसमें एक एक शब्दकी शोधकर दी गई है, फिर क्योंकर सभव होकि पूर्वोक्त भूल यदि यथार्थ होवी तो शुद्ध होनेसे रह जाती। कई वर्ष तक यह पुस्तक छपकर बिकती रही परन्तु स्वामीजीने कभी भी इसकी ऽशुद्धतापर ध्यान नहीं दिया, केवल जब नई चमत्काराके मनुष्य उनके समाजोंमें सभासद होकर श्राद्ध तर्पणको व्यर्थ समझने लगे तो स्वामीजीने भी चट छापने और शुद्ध करने वालोंकी भूल बताकर मन राजीकर लिया, यदि सत्य सत्य यही कह देते कि पहिले मेरा विश्वास श्राद्ध तर्पणपरथा अब नहीं रहातो इसमें कुछ हानि नहीं थी। परंतु कहमुकरने की चालतो स्वामीजी घरसे चले तब ही से ग्रहण किये हुये थे उसको क्योंकर भूल सक्ते थे ॥

मंगल देव पराजय पृष्ट १९ पंक्ति १३ में भी लिखा है कि " स्वामीजीने पूर्व 'सत्यार्थ प्रकाश' में तीन पृष्टपर विस्तार पूर्वक युक्ति सहित मृत्यु पुरुषोंके श्राद्ध और तर्पणकी विधि लिखी फिर जबकि उसका खण्डन करने लगे और लोगोंने आक्षेप किया कि आपने अपने पुस्तकमें क्या लिखा है, व्याख्यान क्या कहते हो तब वेद भाष्य अंक ७ के टाइटिलपर झूठा विज्ञापन दियाकि 'सत्या

थोड़ी देर होगई आगे बराबर मिती मार पहुंचा करेगा ॥

एक महीनेके लगभग स्वामीजी अमृतसरमें रहकर सहारनपुर चले आये और कुछ दिन रहकर एक समाज स्थापितकर अगस्त् सन् १८७८ ई० के अन्तमें रुड़की पहुंचे । और मौलवी मुहम्मद कासिम * से मुबाहिसा करनेके लिये पत्र व्यवहार किया परन्तु बात अधूरी रहगई और २६ अगस्त सन् १८७८ ई० को स्वामीजी मेरठ चले आये । और इनके चले आनेपर १ ली सितम्बर को रुड़की में और आश्विन शुक्ला० ३ तारीख २९ सितम्बरको मेरठमें नवीन आर्य्यसमाज स्थापित हुये ।

आश्विन मासके अंततक स्वामीजी मेरठ ही में रहे इस समय तक वेद भाष्य भूमिका के पूर्ण १६ अंक छपकर प्रकाशित हो चुके थे । अब वेद भाष्य के छपनेका आरम्भ हुआ। सो ऋग्वेद भाष्य व यजुर्वेद भाष्य के दुवेर प्रथम और द्वितीय अंक बम्बई निर्णयसागर यन्त्रालयमें छपाकर प्रकाशित किये। जिनके टाइटिल पेजपर सत्यार्थ प्रकाश सम्बन्धी निम्न लिखित एक विज्ञापन छपवाया था ॥

॥ विज्ञापनपत्र ॥

सबको विदित हो कि जो जो बातें वेदोंकी और उनके अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूं विरुद्ध बातोंको नहीं । इससे जो मेरे बनाये सत्यार्थ प्रकाश वा संस्कार विधि आदि ग्रन्थोंमें गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकोंके वचन बहुतसे लिखे हैं । वे उन उन ग्रन्थोंके मतोंको जाननेके लिये लिखे हैं, उनमेंसे वेदार्थके अनुकूलका साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्धका अप्रमाण मानता हूं, जो जो बात वेदार्थसे निकलती हैं उन सबको प्रमाण करता हूं, क्योंकि वेद ईश्वर वाक्य होनेसे सर्वथा मुझको मान्य है ॥ और जो जो ब्रह्माजीसे लेकर जैमिनिमुनि पर्य्यन्त महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रन्थ हैं उनको भी मैं साक्षीके समान मानता हूं । और जो सत्यार्थ प्रकाशके ४२ पृष्ठ और २५ पंक्तिमें पित्रादिकोंमेंसे जो कोई जीता हो उसका तर्पण नकरे, और जितने मर गये हैं उनका तो अवश्य करे ॥ तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ में मरे भये पित्रादिकोंका तर्पण और श्राद्ध करता है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषयमें जो छापा गया है सो लि

* यह मौलवी मुहम्मद कासिमभटी मुरी हैं जिनका हाल मेळे चान्दापुरमें लिखा है ॥

खने और शोधनेवालोंकी भूलसे छप गया है। इसके स्थानमें ऐसा समझना चाहिये कि जीवतोंकी श्रद्धासे सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादिका परम धर्म्म है, और जो जो मर गये हों उनका नहीं करना क्यों कि न तो कोई मनुष्य मरे हुये जीवके पास किसी पदार्थको पहुचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादिने दिये पदार्थोंको ग्रहणकर सकता है इससे यह सिद्ध हुआकि जीते पिता आदिकी प्रीतिसे सेवा करनेका नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं। इस विषयमें वेद मत्रादिका प्रमाण भूमिका के ११ अंक के पृष्ट २८१ से ले के १२ अंक के २६७ पृष्ट तक छपा है वहाँ देख लेना॥

(क) हमारी समीक्षा। प्यारे पाठकगण! देखो स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी चालाकी। आप लिखते हैं कि यह सब लिखने और शुद्ध करनेवालोंकी भूलसे छप गया है। यह भूल केवल स्वामीजी ही स्वीकार सकते हैं, किसी विषयको लिखते या अक्षर वा टाइप योजना करते समय भूल तो अवश्य हो सक्ती है, सो कोई अक्षर अथवा शब्द इधरसे उधर हो जाना संभव होता है, परन्तु यह आज ही सुना है कि एक सात आठ तर्क वितर्कसे भरा हुआ पूरा लेख कई पृष्ठोंमें समाया हुआ स्वतःऽशुद्ध होकर किसी पुस्तकमें मिल जाय! तथा उस पुस्तकमें एक शुद्धाशुद्ध पत्र भी लगा हुआ है, जिसमें एक एक शब्दकी शोधकर दी गई है, फिर क्योंकर संभव होकि पूर्वोक्त भूल यदि यथार्थ होती तो शुद्ध होनेसे रह जाती। कई वर्ष तक यह पुस्तक छपकर बिकती रही परन्तु स्वामीजीने कभी भी इसकी ऽशुद्धतापर ध्यान नहीं दिया, केवल जब नई चमत्काराके मनुष्य उनके समाजोंमें सभासद होकर श्राद्ध तर्पणको व्यर्थ समझने लगे तो स्वामीजीने भी घट छापने और शुद्ध करने वालोंकी भूल बताकर मन राजीकर लिया, यदि सत्य सत्य यही कह देते कि पहिले मेरा विश्वास श्राद्ध तर्पणपरथा अब नहीं रहातो इसमें कुछ हानि नहीं थी। परंतु कहमुकरने की चालतो स्वामीजी घरसे चले तब ही से ग्रहण किये हुये थे उसको क्योंकर भूल सक्ते थे॥

मंगल देव पराजय पृष्ट १९ पंक्ति ११ में भी लिखा है कि "स्वामीजीने पूर्व 'सत्यार्थ प्रकाश' में तीन पृष्टपर विस्तार पूर्वक युक्ति सहित मृत्यु पुरुषोंके श्राद्ध और तर्पणकी विधि लिखी फिर जबकि उसका खण्डन करने लगे और लोगोंने आक्षेप किया कि आपने अपने पुस्तकमें क्या लिखा है, व्याख्यान क्या कहते हो तब वेद भाष्य अंक २ के टाइटिलपर झूठा विज्ञापन दियाकि 'सत्या

'थे प्रकाश' में तर्पण और श्राद्ध के विषयमें जो छापा गया है सो लिखने और शोधने वालोंकी भूलसे छप गया है ॥

स्वामीजीने लालारामशरणदासकी सहायतासे आश्विन मास मेरठ ही में पूराकर देहलीको प्रयाण किया, इस समय तक ऋग्वेद भाष्य और यजुर्वेद भाष्य के दो दो अंक प्रकाशित हो चुके थे। कार्तिक के महीनेमें दोनों वेद भाष्यके तीसरे अंक पृथक् २ प्रकाशित हुये, ऋग्वेद भाष्य अंक ३ के दूसरे रुल टाइटिल पेजपर स्वामीजीने निम्न लिखित विज्ञापन छपाये थे।

॥ विज्ञापन पत्र पहिला ॥

विदित होकि सत्यार्थ प्रकाशके १०७ पृष्ट पंक्ति १४ में रोहिणी बलदेवकी स्त्रीथी इसके स्थानमें रोहिणी बलदेवकी माता और वसुदेवकी स्त्रीथी ऐसा जानना ॥

॥ विज्ञापन दूसरा आर्य्यदर्पण शाहजहान्पुर ॥

इस नामका एक मासिक पत्र उर्दू भाषामें आर्य्यसमाज शाहजहान्पुरकी ओरसे प्रकाशित होता है, इसमें वेदादि सत्शास्त्रानुकूल सनातन धर्म्मोपदेश विषयके व्याख्यान और आर्य्यसमाज के नियमादि प्रकाशित होते हैं, यह पत्र मेरी समझमें बहुत अच्छा है इत्यादि।

कार्तिक शुक्ला ११ सम्वत् १९३५ को ही स्वामीजी अजमेर पधारे जहाँपर पादरी गिरिसाहिब तथा डाक्टर हसबैंडसाहिब पहिलेसे मौजूद थे स्वामीजीने एक इश्तहारमें तौरेत इंजील कुरानकी कुछ अशुद्धियाँ विदित करी तब पादरी साहिबने कहा ऐसा मत करो सुवाल लिखकर भेज दो जबाब दिया जायगा इसको स्वामीजीनेभी स्वीकार किया और अगले दिन साठ शंकाओंका एक पत्र पंडित भागराम साहिब एकस्ट्राअसिसटेंट कमिश्नर अजमेरद्वारा पादरीसाहिबके पास भेजा गया। तब ९ दिन पीछे पादरीसाहिबने उनको विचार लिया तो एक दिन उनके उत्तर देनेके लिये नियत हुआ, विज्ञापन दिये गये, सरदार बहादुर मुन्शी अमीचन्द साहिब जज्ज पंडित भागराम साहिब एकस्ट्रा असिसटेंट कमिश्नर सरदार भक्तासिंह साहिब इंजीनियर आदि अनेक प्रतिष्ठित पुरुषोंने स्वतः पधारकर दोनोंका उत्साह बढाया पादरीसाहिबके साथमें डाक्टर हसबेंड साहिब आये स्वामी दयानन्द सरस्वती चार

वेद लेकर सुशोभित हुये प्रश्नोत्तर होने लगे, तीन मनुष्य लिखनेको बैठाये गये थे । अभी कुछ थोड़ा ही समय व्यतीत हुआथा कि पादरी साहिब नट गये क हने लगे लिखे हुये प्रश्नोत्तर हम नहीं चाहते, जो कुछ कहना सुना है सब जु बानी होतो होने दो नहीं बन्द करो, अगले दिन स्वामीजीने पादरी साहिबसे कहाकि कल जो जो प्रश्नोतर लिखे गये उनपर हस्ताक्षर कर दो । परन्तु पादरी साहिबने नहीं माना ॥ तब स्वामीजीने पूर्वोक्त तीनों सरदारोंके हस्ताक्षर करा लिये । अगले दिन फिर पादरी साहबने पत्रद्वारा स्वामीजीसे पूछा कि हम वाद (बहस) करनेको तैयार हैं परन्तु लिखा पढीका कुछ काम नहीं । तब स्वामी जीने कहा यदि प्रश्नोत्तर किया चाहते हो तो लिखा पढी अवश्य होगी । यदि आप स्वीकार करें तो मैं ठहरा रहूं, जो ऐसा नहीं करो तो सरदार भगतसिंह को उत्तर लिख भेजो क्योंकि उन्होने सभाका प्रबन्ध कर रक्खा है, इस उत्तर के जानेपर पादरी साहिबने साफ इनकार कर दिया ॥

अजमेर नगरमें शीतकालका विशेष भाग पूराकर स्वामीजी उसके निकट वर्ती अनेक स्थानोंमें घूमकर फिर पूर्वीभारतको लौट आये और ऋग्वेद भाष्य अंक ४ तथा यजुर्वेद भाष्य अक ४ तो आपने अजमेरके जानेपर ही प्रकाशित कर दिये थे परन्तु पञ्चम् अंक प्रकाशित करने के लिये बहुत ही थोड़ा समय मि ला, इस लिये वृह अंक सम्वत् १९३५ के अन्तपर प्रकाशित हुआ जिसके टा इटिल पेजपर निम्न लिखित विज्ञापन प्रकाशित किया था ॥

॥ नोटिश ॥

सबको विदित होकि वेद भाष्यके तीसरे वर्षका आरम्भ सम्वत् १९३६के वैशाख मासके ६ अंकसे गिना जायगा, और पीछे के दो वर्षका हिसाब ग्राह कोंके पास प्रतिमास अक न पहुंचनेके कारणसे ठीक न रहा इस लिये हम व र्षोंके हिसाबको छोड़कर अंकोका हिसाब लगाते हैं, एक अंक नमूनेका १६ भूमिका के और इस अक सहित १० अक दोनो वेदोंके निकले सब मिल जा नेसे २७ अंक हुये इत्यादि० *

सब ग्राहकोंको विदित किया जाता है कि पांचवें अंकसे बम्बईमें वेद भा ष्यका प्रबन्ध अर्थात् भाष्यका चन्दावसूल करना मासिक अंक छपाकर ग्राह कोंके पास भेजना नवीन ग्राहक करना आदि वेद भाष्य सम्बन्धी जो काम

* इस विज्ञापनमें व्यर्थ ऐसा सो छोड़ दिया है ॥

बाबू हरिश्चन्द्र चिंतामणिजी करते थे सो हमारी तरफसे मुन्शी समर्थदान करेंगे, और पंडित उमरावसिंह भी चन्दावसूल करना नये ग्राहक करना बम्बईके सिवाय सब जगहके उधार वालों ग्राहकोंसे तकाजा करके रुपया वसूल करना यह सब काम करेंगे। अब नीचे लिखे ठिकानोंसे रोक रुपया देनेपर वेद भाष्यका पुस्तक मिला करेगा, मुन्शी समर्थदान प्रबन्ध कर्ता वेद भाष्य कार्य्यालय मारवाड़ी बाजार मुम्बादेवीकी चाली मुम्बई इत्यादि ‡

(हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती के)

सन् १८७८ ई० के पूरा होते ही करनल अलकाट और मैडम ब्लिवत्स्की जिनको स्वामीजीके मिलनेका अधिक चाव था भारत वर्षमें पधारे और अपना उपदेश देना प्रारम्भ किया तब तो आर्य्य समाज और थियोसाफिकल सुसायटीके सभासदोंमें ऐसी गूढ मित्रता होगई कि क्या कहना है और स्वामीजी स्वयंभी उक्त सुसायटीके सभासद और अध्यापक बन बैठे, इधर हरिद्वार कुम्भ कामेला निकट आया जिसमें जानेके लिये स्वामीजी राजस्थानसे लौटकर पूर्व को चल पड़े थे सो इस देशाटन केही सम्बन्धमें स्वामीजीने फिर रुड़की पहुंच कर मौलवी कासमअलीसे बहस करनेका यत्न किया और फीरोजपुर नैनीताल जेहलम रावलपिंडी गुजरान्वाला गुरुदासपुर, इलाहाबाद कानपुर दानापुर आदिक कई स्थानोंमें इनकी नवीन समाज स्थापन हो गई, आप वैशाख मासमें कुछ दिनों हरिद्वार कुम्भके मेलेमें रहे। कर्नल अलकाट और मैडम ब्लिवत्स्कीने बम्बईमें पहुंचकर मालूम कियाकि स्वामीजी आज कल हरिद्वारमें हैं और उसी स्थानपर जाना चाहा परन्तु स्वामीजीने रोक दिया और जब मेला समाप्त हुआ तो स्वामीजीने देहरादूनमें जाकर आर्य्यसमाज स्थापित किया और कर्नल अलकाट साहिबको तारद्वारा समाचार पठाया तथा ऋग्वेद भाष्य यजुर्वेद भाष्यका प्रथम् अंक प्रकाशित किया जिसके टाइटिल पेजपर निम्न लिखित विज्ञापन छपाकर प्रकाशित किया था॥

॥ विज्ञापनपत्रमिदम् ॥

सब सज्जन लोगोंको विदित होकि ठिकाना ज़िला अलीगढ परगने मोरथल ग्राम छलेश्वर ठाकुर मुकुन्दसिंह ठाकुर भूपालसिंह रईस तथा ठाकुर मौर्मोसिंह रईसको हमने वेद भाष्य और सत्यार्थ प्रकाश आदि पुस्तकोंके मूल्य

‡ इस विज्ञापनमें व्यर्थ लेखका सो छोड़ दिया गया है॥

वसूल करनेका अधिकार दिया है, अर्थात् इनके नाम मुखतार नामा रजिष्ट्री करा दिया है, इनमेंसे ठाकुर मुन्नासिंहके नाम पूर्वोक्त ठिकाने वेद भाष्यादि पुस्तकोंका मूल्य भेजे वे ग्राहकोंके पास रसीद भेजदेवेंगे जो कोई पुस्तक लिया चाहै वह भी मुन्नासिंहके नामपर भेजे और जो अंक ५ में उमरावसिंहके नाम नोटिस दिया था वह अब नहीं रहा अबमें सब ग्राहकोंको प्रीति पूर्वक सूचना करता हू कि जैसी प्रीतिसे इस काममें पुस्तक लेकर सहाय करे हैं वैसे मूल्य भेजनमें भी विलम्ब न करें क्योंकि अब जो मुखत्यार किये गये हैं वह जिस उपायसे मूल्य वसूल होगा वह वह उपाय करके रुपया वसूल करेंगे ।

(हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती के)

जब कर्नेल अलकाट और मैडम विल्वस्तकीको तार पहुचा तो रेलमें सवार होकर सहारनपुर आये । आर्य्यसमाज सहारनपुरने यथायोग आदर किया तारीख १ मई सन् १८७९ ई० को स्वामीजी भी सहारनपुरमें आये और कर्नेल अलकाट साहिबसे मिले फिर इन दोनोंको साथ लेकर तारीख ३ मई सन् १८७९ ई० को स्वामीजी मेरठ पधारे । आर्य्यसमाज वालोंने यथायोग दोनोंका आदर सत्कार किया ५ दिन तक कर्नेल अलकाट और मैडम विल्वस्तकी दोनो बाबू शिवनारायण गुमास्ते कमसारियटकी कोठीमें रहे और उसके निकट ही स्वामीजी पंडित जगन्नाथ साहिबके बंगलेपर विराजे कर्नेलसाहिब और स्वामी दयानन्द सरस्वतीके मध्य खूब प्रेम प्रीतिका वर्ताव हुआ, अलकाट साहबने कहा हम केवल अपना देश त्यागकर आपके दर्शनाभिलाषी आये हैं बड़ा खेद है कि भारत वर्षके मनुष्य आपके यथार्थ गुणको नहीं जानते आप बड़े योग पुरुष हैं। तब तो स्वामीजीने भी कर्नेल साहिबकी प्रशंसामें कोई शब्द शेष नहीं रक्खा । तारीख ७ मईको कर्नेल अलकाट साहिब और मैडम् विल्वस्तकी तो बम्बईको चले गये परन्तु स्वामीजी मेरठ ही में रहे, और इन्हीं दिनोंमें नानौटाके रहने वाले मौलवी मुहम्मद कासिम (जो स्वामीजीसे रुड़कीमें भी मिले थे और इनके साथ स्वामीजीका मेले चान्दापुरमें भी समागम हुआ था) भी मेरठमें आये । और मेरठके बहुधा मुसल्मानोंको अपना सहायक बना स्वामीजीसे जाभिड़े । और धर्म्मचर्चाकी बातें होनें लगी, मुसल्मान लोग कहते थे जो कुछ सुवाल जवाब हो सब जुबानी हो, स्वामीजी कहते थे प्रश्न और उत्तर लिख २ कर दिये जावें इसपर बहसतो न हुई परन्तु सारांश यह निकला कि दोनो दल अपनी २ विजय मानबैठे, और मुसल्मानोंने उर्दू अखवारोंमें स्वामीजीकी पराजय और

अपनी विजय प्रकाशित कराई, इधर एक सयीक हुसैन नामी नवीन मुसल्मान ने स्वामीजीकी बहुत ही कुछ प्रशंसा निज लेखनीसे लिखी जो दयानन्द दिग्विजयार्क प्रथम भाग मयूखपञ्चममें मुद्रित हुई है, परन्तु हम तो ऐसे लेखकका लिखना भी यथार्थ और सत्य नहीं समझ सकते। क्योंकि यदि वो सत्य ग्राही होता तो प्रथम ही अपना अमूल्य हिन्दू धर्म्म रत्न क्यों नष्ट करता॥

स्वामीजीके मेरठ रहते रहते ही ऋग्वेद यजुर्वेद भाष्यका जुदा जुदा सप्तम अंक प्रकाशित हुआ जिनके टाइटिलपेजपर निम्न लिखित विज्ञापन छपाया था।

॥ विज्ञापन ॥

सर्व आर्य्यसमाजी और अन्य लोगोंको प्रघट किया जाता है कि पहिले बम्बईके आर्य्यसमाजके प्रधान बाबू हरिश्चन्द्र चिंतामणि थे वे समाज सम्बन्धी कितने अयोग्य कार्मोंके करनेसे चैत्र शुक्ल० १ सम्बत् १९३६ से प्रधानके अधिकारसे उतारे और आर्य्यसमाजसे सर्वथा पृथक् कर दिये गये हैं अब पीछे कोई भी मनुष्य आर्य्यसमाज सम्बन्धी व्यवहार उनके साथ न करे। हम अति हर्ष और आनन्द पूर्वक प्रकट करते हैं कि आर्य्यसमाजके प्रधान प्रतिष्ठित महाशय रावबहादुर गोपालराव निर्बेघ मुख्य चितामणि ज्वाइंट जज्ज नासिक नियत हुये हैं। अब पीछे जिसको आर्य्यसमाजसे पत्र व्यवहार करना होतो निम्न लिखे ठिकानेंपर पत्र भेजे। मिष्टर प्राणजीवणदास कहानदास उपमंत्री आर्य्य समाज बाहरकोट पायधूनीपर गौडीजीकी चाली घर बम्बई इत्यादि०॥

आषाढ सम्बत् १९३६ में स्वामीजीका नवीन आर्य्यसमाज फर्रुखाबादमें खोला गया, और दोनो वेद भाष्योंके जुदे जुदे अष्टम अंक प्रकाशित हुये थे॥

श्रावणमें स्वामीजी मुरादाबादमें रहे वेद भाष्य नवम अंकके टाइटिल पेजपर भी एक निम्न लिखित नवीन विज्ञापन मुद्रित कराया॥

॥ विज्ञापनपत्रमिदम् ॥

सबको विदित होकि ठाकुर मुकन्दसिंह और मुन्नासिंहजीके नामका ६ अंकमें विज्ञापन दिया गया था और मुन्नासिंहजीने परोपकार बुद्धिसे ग्राहकोंसे उधारका रुपया लेनेका काम स्वीकार किया था परंतु उक्त ठाकुरको किसी विशेष कार्य्यके होनेसे ग्राहकोंसे रुपया जमा करनेकी फुरसत नहीं है, इस लिये

सब स्थानोंके ग्राहकोंसे तकाज़ा करके रुपया लेनेका अधिकार मुन्शी समर्थ दान प्रबन्ध कर्ता "वेद भाष्य कार्य्यालय" मुम्बईको दिया गया है। और इनके तकाज़ा करनेपर भी ग्राहक लोग रुपया देनेमें हीला हवाला करेंगे तो उनसे रुपया समर्थदानके विदित करनेसे राजकीय नियमानुसार ठाकुर मुन्नासिंहजी ही लेंगे। अब पीछे सब ग्राहक मुम्बईमें रुपया भेजा करें, वहाँसे सबके पास बराबर रसीद पहुंचे गी। हम ग्राहकोंको सुगमता होनेके लिये यह नियम भी लिखते हैं कि जिस २ स्थानके लोगों ने [illegible] स्थानके ग्राहक [illegible] रुपया जमा करा देंगे तो वे लोग सबके नाम पृथक् २ रसीद मुम्बईसे मंगवा दिया करेंगे।

मुन्शी इन्द्रमणिजी प्रधान आर्य्यसमाज मुरादाबाद॥ मुन्शी बख्तावरसिंहजी मंत्री आर्य्यसमाज शाहजहानपुर॥ लालारामशरणदास रईस उप प्रधान आर्य्य समाज मेरठ। लालासाईंदास मंत्री आर्य्य समाज लाहोर॥ लालावल्लभ दासजी खजान्ची आर्य्य समाज गुरुदासपुर॥ चौधरी लक्ष्मणदासजी सभासद आर्य्य समाज अमृतसर बाजार माईसेवा॥ बाबू रामाधार बाजपेई तार आफिस रेलवे लखनऊ॥ प० सुन्दरलाल रामनारायन पोष्ट मास्टर जनरेल्स आफिस इलाहाबाद॥ बाबू माधोलाल मंत्री आर्य्य समाज दानापुर बंगाल॥ मुन्शी समर्थदान और मुन्शी इन्द्रमणिजीके पास हमारे बनाये सब पुस्तक रहते हैं जिसकी इच्छा हो मंगालें। (हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती)

मुरादाबादसे चलकर स्वामीजी बरेली पहुंचे और कुछ रहकर अपने मन्तव्यको प्रकट किया तब पादरी टी जी स्काट (T G SKOT) साहिबने बहस करनेका इरादा किया दिन नियत होगये मध्यस्थ और तमाशाई लोगोंने यह चर्चा सारे नगरमें फैला दई तारीख २५। २६। २७ अगस्त सन् १८७९ ई० में यह वादानुवाद हजारों मनुष्योंके समारोहमें ३ दिन तक बराबर हुआ प्रश्नोत्तरके लिखनेके लिये तीन मनुष्य बिठलाये जाते थे अन्तमें यही फल हुआ कि पादरी साहिब उठकर चलदिये स्वामीजीकी विजय प्रकट हुई तथा स्वामीजीने इस प्रश्नोत्तर सम्बन्धी एक पुस्तक भी बनाकर छपवाई जिसका नाम "सत्यासत्य विवेक" है, बरेलीमें उसी समय आर्य्य समाज भी स्थापित हो गया, और स्वामीजी थोड़ेही दिन पीछे शाहजहान्पुर चले गये, और स्वामीजीके शिष्य पंडित देवी प्रसादका शाहजहान्पुरके लक्ष्मण शास्त्री आदिकसे कुछ शास्त्रार्थ भी हुआ इसका सविस्तर वृत्तांत आर्य्य दर्पण पत्र मास जौलाई सन् १८७९ ई० में छपा है॥

मुन्शी बख्तावरसिंहसे स्वामीजीने कहा कि हम अपने यहां यन्त्रालय खो

ते चाहते हैं, और यह यंत्रालय काशीमें होना उचित है आप उसके कार्य्याध्यक्ष हो जायें तब मुन्शीजीने कहा में सरकारी नौकर हूं नौकरी छोड़ नहीं सकता इस पर स्वामीजीने कहा तुमको सरकारी नौकरीसे अधिक वेतन दिया जायगा और पेन्शन मिलनेके बदले हम अपने वसीयतनामे में इसका यथार्थ प्रबन्ध कर देवेंगे। इसका मुन्शीजीने कुछ उत्तर नहीं दिया और स्वामीजी [illegible] में पधारे और आश्विन मास उसी स्थान पर विताया और वेदभाष्य [illegible] किये ॥ फिर दानापुर बंगालमें पधारे और एक मास पूरा किया यहाँ आर्य्य समाज [illegible] इसलिये आप दीपमालिकाके कुछ दिन पीछेही काशीपुरी (बनारस)को चल पड़े और दोनो ऋग्वेद, यजुर्वेद, भाष्यके जुदे जुदे ग्यारह वे अंक प्रकाशित कराये जिनके टाइटिल पेज पर यह मुद्रित करायाकि एक पुस्तक भ्रांति निवारण, दूसरी सत्यासत्य विवेक, स्वामीजीकी बनाई मुन्शी बखतावरसिंह मंत्री आर्य्य समाज शाहजहान्पुरके पास मिलती हैं।

स्वामीजीने मुन्शी बखतावर सिंह को अपना नौकर बनानेके लिये अधिक दबाया तब लाचार उक्त मुन्शीजीने स्वीकार कर कहा आप काशीमें कार्य्यारम्भ कीजियेगा जब मेरी आवश्यकता हो और आप मुझे याद करेंगे में आजाऊंगा।

स्वामीजीने काशीमें पहुंचकर राजा विजयनगरके आनन्द बागमें डेरा जमाया और यह इनका सप्तम बारका अन्तिम आगमन था॥

कार्तिक शुक्ल १४ गुरुवारको उक्त स्वामीजीके शिष्य पंडित भीमसेनजी शर्म्माने काशी नगरमें निम्न लिखित एक विज्ञापनपत्र प्रकाशित किया था॥

॥ विज्ञापनपत्र ॥

सब सज्जन लोगोंको विदित किया जाता है कि इस समय पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज काशीमें आकर जो श्रीयुत महाराजे विजय नगरके अधि पतिका आनन्द बाग महमूदगंजके समीप है उसमें निवास करते हैं। वे वेद मतका ग्रहण करके उसके विरुद्ध कुछभी नहीं मानते। किंतु जो २ ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव और वेदोक्त सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तोंका आचार और सिद्धांत तथा अपने आत्माकी पवित्रता और उत्तमविज्ञानसे विरुद्ध होनेके कारण पाषाणादि मूर्ति पूजा जल और स्थल विशेष पाप निवारण करनेकी श्रक्ति व्यास मुनि आदिके नाम पर छलसे प्रसिद्ध किये नवीन व्यर्थ पुराण नामक

आदि ब्रह्म वैवर्तादि ग्रंथ परमेश्वरके अवतार ईश्वरका पुत्र होके अपने विश्वासियोंके पास क्षमा करके मुक्ति देनेहारको मानना उपदेशके लिये अपने मित्र पैगम्बरको पृथिवी पर भेजना पर्वतोंका उठाना, मुर्दोंका जिलाना, चन्द्रमौंका खंडन करना कारण के विना कारणके विना कार्य्यकी उत्पत्ति मानना, ईश्वर को नहीं मानना, स्वयम् ब्रह्म बनना अर्थात् ब्रह्मसे व्यतिरिक्त वस्तु कुछभी नहीं मानना, जीव ब्रह्मको एकही समझना, कंठी तिलक और रुद्राक्षादि धारण करणा और शैव शाक्ति वैष्णव गाणापत्यादि संप्रदाय आदि हैं इन सबका खंडन करते हैं, इससे इस विषयमें जिस किसी वेदादि शास्त्रोंके अर्थ जाननेमें कुशल, सभ्य, शिष्ट, आप्त विद्वानको विरुद्ध जान पड़े। अपने मतका स्थापन और दूसरेके मतका खंडन करनेमें सामर्थ हो। वह स्वामीजीके साथ शास्त्रार्थ करके पूर्वोक्त व्यवहारोंका स्थापन करें। इससे विरुद्ध मनुष्य कभी नहीं कर सक्ता इस शास्त्रार्थमें वेद मध्यस्थ रहेंगे। वेदार्थ निश्चयके लिये जो ब्रह्मासे लेके जैमिनिमुनि पर्य्यंतके बनाये ऐतरेय ब्राह्मणसे लेके पूर्वमीमांसा पर्य्यन्त वेदानुकूल आर्ष ग्रंथ हैं वे वादी और प्रतिवादी उभय पक्षवालोंको माननीय होनेके कारण माने जावेंगे। और जो उस सभामें सभासद हो वेभी पक्षपात रहित धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्षके स्वरूप तथा साधनोंको ठीक ठीक जानने सत्यके साथ प्रीति और ऽसत्यके साथ द्वेष रखने वाले हों, इनसे विपरीत नहीं दोनो पक्षवाले जो कुछ कहें उसको शीघ्र लिखने वाले तीन लेखक लिखते जावें। वादी और प्रतिवादी अपने अपने लेखके अन्तमें अपने २ लेखपर स्वहस्ताक्षरसे अपना अपना नाम लिखें। तथा जो मुख्य सभासद हों वेभी दोनोके लेखपर हस्ताक्षर करें। उन तीन पुस्तकोंमेसे एक वादी दूसरा प्रतिवादीको दे दीया जाय, और तीसरा सब सभाकी सम्मतिसे किसी प्रतिष्ठित राज पुरुषकी सभामें रक्खा जावे कि जिससे कोई अन्यथा न कर सके। जो इस प्रकार होनेपर भी काशीके विद्वान लोग सत्य और ऽसत्यका निर्णय करके औरोंको न करावेंगे तो उनके लिये अत्यन्त लज्जाकी बात है, क्योंकि विद्वानोंका यही स्वभाव होता है कि सत्य और ऽसत्यको ठीक ठीक जानके सत्यका ग्रहण और ऽसत्यका परित्याग कर दूसरोंको कराके आप आनन्दमें रहना, और औरोंको भी रखना।

इस विज्ञापनके प्रकाशित करनेकी विशेषावश्यकता यह थी कि कर्नल्ल अलकाट स्वामीजीसे मिल्नेको यहाँ पधारने वालेथे, और इधर स्वामीजीको अपना निज यंत्रालय काशीमे खोलनेका फिक्र लग रहाथा, सो अब छापेखानेका सब प्रवन्ध ठीक ठीक होना सम्भव हो गया और पंडित भीमसेनके दिये हुये

पूर्वोक्त विज्ञापनपर काशीमें किसीने कुछ ध्यान नहीं दिया तो शीघ्रता सहित एक निम्न लिखित विषयका विज्ञापन पुन प्रकाशित किया ॥

॥ विज्ञापनपत्र

प्रथम विज्ञापन काशीके पंडित मात्रपर था इस कारण यदि बड़े पंडितोंने उस पर ध्यान देना उचित न जाना हो क्यों कि शिष्टातिशिष्ट ऐसे समेन्के निमन्त्रणमें जानेको अपनी कुछ अप्रतिष्ठा समझते हैं एतदर्थक काशीके सब पंडितोंमें शिरोमणि श्री स्वामी विशुद्धानदजी व पंडित बालशास्त्रीजी अब अपना पृथक् निमन्त्रण इस द्वितीय विज्ञापन द्वारा समझ कर मेरे प्रथम विज्ञापनमें लिखे नियमानुसार मुझसे शास्त्रार्थ करनेको अवश्य और अति शीघ्र सन्नद्ध होवें

मार्गशिर सम्वत् १०३६ में कर्नल अलकाट बनारस पधारे जिनके मिलनेको राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द रईस बनारस आनन्द बागमें आये तो प्रथम स्वामीजीसे ही भेट हुई कुछ ज्ञानचर्चा भी रही * अंतको राजा साहिब उक्त साहिबसे मिलकर निजस्थानपर चले गये ॥

कुछ दिन पश्चात तारीख २० दिसम्बर सन् १८७९ ई० अर्थात् पौष सम्वत् १९३६ में कर्नल अलकाटने विज्ञापन प्रकाशित किया कि अमुक २ समय पर हम और स्वामी दयानन्द सरस्वती बंगाली स्कूलमें व्याख्यान देंगे, जब वह समय निकट आया असंख्य दर्शक गणनियत स्थानपर एकत्रित हो गये और स्वामी दयानन्द सरस्वती कर्नल अलकाट साहिबको साथ लेकर पधारे। इसी अवसर पर एक चपरासी मिस्टर बाल साहिब कलक्टर बनारसकी चिट्ठी लेकर आया जिसमें लिखाथा कि इस समय स्वामीजी कोई व्याख्यान नहीं देने पावेंगे, इसपर स्वामीजी तो चुप हो रहे परन्तु कर्नल अलकाट साहिबने अंग्रेजी भाषामें बड़ा लम्बा चौड़ा व्याख्यान दिया और कुछ समय पीछे जब स्वामीजीको भी सरकारसे आज्ञा हो गई तो दोनो महाशयोंने दिल खोलकर निज मन्तव्य प्रगट किया, और माघ शुक्ला २ तारीख १२ फरवरी सन १८८० ई० को स्वामीजीने " आर्य्य प्रकाश " नामक एक नवीन यंत्रालय (प्रेस) विजय बाग् लक्ष्मी कुंडपर खोला जिसकी रजिष्ट्री अपने नामसे कराई, और निज रचित पुस्तकें उसमें मुद्रित करानी आरम्भ करदी, इसका विशेष कारण यही था कि अपना भेद दूसरों पर नहीं खुलेगा ‡ जो रुपया छपाईमें देना पड़ताहै

* देखो इसी पुस्तकका पृष्ठ ८५ ‡ स्वामीजीको पुस्तकके छपते छपते पादियोंके भयकर अनेक बार पढ़ाने पढ़ानेकी आवश्यकता सदा लगी रहती थी।

उसकी बचत होगी तथा यह अपने ही घर रहैगा कार्य्य भी मनमाना उत्तम रीतिसे शीघ्रता सहित होता रहैगा ॥ इत्यादि० ॥

मुन्शी बखतावरसिंह शाहजहान्पुरी स्वामीजीके विशेष आग्रहसे तीन महीने की छुट्टी लेकर बनारस चले आये और स्वामीजीने उनको निज यंत्रालयका प्रथम दिनसे ही मेनेजर बना दियाथा।

जब स्वामीजीको यत्रालयकी तर्फका फिकर मिट गयातो दोनो वेदभाष्योंके अंक १२ पर जुदा जुदा निम्न लिखित विज्ञापन पत्र मुद्रित कराया ॥

॥ विज्ञापन पत्र ॥

सब सज्जनों पर विदित होकि अब वेद भाष्यतो रहवे १३ अंक पर्य्यन्त मुम्बई में छपैगा इसके आगे १४ वे अंकसे लेकर आगे आगे काशीमें आर्य्य प्रकाश यत्रालयमें सदा छपा करैगा। मैने इस यत्रालयमें अधिष्ठाता मुन्शी बखतावर सिंह मत्री आर्य्य समाज शाहजहान्पुरको नियत किया है, इस लिये सब ग्राहक और दूसरे सज्जनोंसे यह निवेदन है कि इसके आगे अब जो कुछ वेद भाष्यादि पुस्तकोंके लेनेके लिये पत्र और मूल्यादि भेजा चाहैं सो उक्त यंत्रालयमें उक्त स्थान पर उक्त मुन्शीजीके पास भेजा करें। और इसके आगे बाहरके लोग मुम्बईमें मुन्शी समर्थ दानके समीप वेद भाष्य संबंधी कार्य्यके लिये पत्र अथवा मूल्य आदि न भेजें क्योंकि १३ अंक छपे पीछे मुम्बईमें इसका कुछ भी संबन्ध नहीं रहैगा, किंतु मुम्बईके लोग दूसरा विज्ञापन दिया जाय तब तक सब व्यवहार मुम्बईमें ही रक्खें। (दयानदसरस्वती)

थोड़े ही दिन व्यतीत हुवे थे कि स्वामीजीको निज यत्रालयका "आर्य्य प्रकाश" नाम प्यारा नहीं लगा और उसके बदलनेके लिये शीघ्रही यजुर्वेद भाष्य अंक १३ के टाइटिल पेजपर निम्न लिखित विज्ञापन छपाया ॥

॥ विज्ञापन पत्र ॥

सब सज्जनोंको विदित होकि मुम्बईमें १३ अंक छपनेको थासो छप चुका अब पीछे सब काम बनारसमें रहैगा, और १२ अंक में काशीके यत्रालयका नाम आर्य्य प्रकाश छपाथा उसके बदले वैदक यंत्रालय नाम रक्खा गया है, इस लिये अब पीछे वेद भाष्य सम्बन्धी पत्र व्यवहार मुम्बई और बनारसके

भव लोगोंको मुन्शी बखतावरसिंहजी प्रबन्ध करता वैदिक यंत्रालयसे करना चाहिये मुम्बईमें इसका कुछ काम नहीं है।

इस अवसर पर स्वामीजीका बनारस पधारना अत्यंत लाभ कारी हुआ कि चैत्रकृष्णा ११ शनिवारको इस भारत प्रसिद्ध पण्डितोंकी राजधानी काशी पुरीमें आर्य्य समाज स्थापित होगया, और इस सम्वत् १९३६ के अन्त होनेसे पहिले २ संस्कृत वर्णोच्चारण १ संस्कृत वाक्य प्रबोध २ व्यवहारभानु ३ यह तीन पुस्तक निज रचित वैदक यन्त्रालय काशीमें छपाकर प्रकाशित कर दी और इन पुस्तकोंको देखकर काशीमें विद्वानोंको भी क्लेश उत्पन्न हुआ, मनमें विचारने लगे इसके चरण काशीपुरीमें जम गये तो सत्य सनातन धर्मका गौरव धूलमें मिल जावेगा, इसी आशयको लेकर चैत्र शुक्ल ११ सम्वत् १९३७ को राजा शिव प्रसादजी सितारे हिन्दने स्वामीजीको निम्न लिखित एक पत्र पठाया था जो स्वामीजीके उत्तर सहित प्रकाशित किया जाता है ॥

॥ काशी सम्वत् १९३७ चैत्र शुक्ला ११ ॥

श्री ५ मत्स्वामी दयानन्द सरस्वतीभ्यो नमोनमः ॥

जब दर्शन पाया कुछ बात हुई अधूरी रहगयी इच्छाथी फिर दर्शन करूं पन नहीं पड़ा सुना आप बाहर पधारने वाले हैं इस लिये उस दिनके अपने प्रश्न और आपके उत्तर अपने स्मरणानुसार नीचे लिखता हूं यदि भूल हो आप सुधार दें आगे भी कृपा करके इसी पत्र पर कुछ उत्तर लिख भेजें ॥

(१) मेरा प्रश्न * आपका मत क्या है ?

(१) स्वामीजी महाराज का उत्तर @ हम केवल वेदकी संहिता मात्र मानते हैं एक ईशावास्य उपनिषद संहिता है, और सब उपनिषद ब्राह्मण हैं ब्राह्मण हम कोई नहीं मानते सिवाय संहिता के हम और कुछ नहीं मानते।

(२) यदि वादी कहे कि आप वेद के ब्राह्मण नहीं मानते तो हम वेद की संहिता नहीं मानते तो आप संहिताके मंडन और ब्राह्मण के खंडनका ऐसा प्रमाण दीजिये जिस से ब्राह्मणका मंडन और संहिता का खंडन न हो सके वादीको आप अपना प्रतिध्वनि समझिये प्रमाण चाहे ४ मानिये चाहे ६ चाहे ८ चाहे सहस्रों सिवाय शब्दके और सबका सहारा प्रत्यक्ष है सो इसमें प्रत्यक्ष हो सकेगा नहीं और शब्द जो आपने ब्राह्मण ही को नहीं माना तो दूसरा कहांसे लाईयेगा केवल आप के कहनेसे कोई कुछ क्यों मान लेगा ? @

जहाँ जहाँ * ऐसा चिन्ह है वह वचन राजा शिवप्रसादका है।
जहाँ जहाँ @ ऐसा चिन्ह है वह वचन स्वामी दयानन्द सरस्वतीका है॥

(२) संहिता स्वय प्रकाश है अनुभव सिद्ध है ॥ *

(३) वादी कहता है कि ब्राह्मण स्वय प्रकाश और अनुभव सिद्ध हैं? *

आपका दास शिव प्रसाद

स्वामी दयानन्दजीका उत्तर

॥ ओ३म् ॥

सम्वत् १९३७ चैत्र शुदी १२ गुरुवार। राजा शिवप्रसादजी आनन्दित रहो। आपका चैत्र शुक्ला ११ बुधवारका लिखा पत्र मेरे पास आया देखि के आपका अभिप्राय विदित हुआ उस दिन आपसे और मुझसे परस्पर जो २ वातें हुई थी तब आपको अवकाश कम होनेसे मैं न पूरी वात कह सका और न आप पूरी वात सुन सके क्योंकि आप उन साहवों से मिलने को आये थे आपका वही मुख्य प्रयोजन था पश्चात् मेरा और आपका भी समागम न हुआ जो कि मेरी और आपकी वातें उस विषयमें परस्पर होती अब मैं आठ दश दिनोंमें पश्चिमको जाने वाला हूं इतने समयमें जो आप को अवकाश हो सकै तो मुझसे मिलिये फिर भी वात हो सक्ती है और मैं भी आपको मिलता परतु अब मुझको अवकाश कुछ भी नहीं है इससे मैं आपसे नहीं मिल सकूंगा क्योंकि जैसा सन्मुख में परस्पर वातें होकर शीघ्र सिद्धान्त हो सक्ता है वैसा लेख से नहीं इसमें वहुत कालकी अपेक्षा है।

(१) आप का प्रश्न * आपका मत क्या है ?

(१) मेरा उत्तर ⊖ वैदिक।

(२) आप वेद किसको मानते हैं *

(२) संहिताओं को ⊖

(३) क्या उपनिषदोंको वेद नहीं मानते *

(३) मैं वेदोंमें एक ईशावास्यको छोड़कर अन्य उपनिषदों को नहीं मानता किंतु अन्य सब उपनिषद ब्राह्मण ग्रन्थोंमें हैं वे ईश्वरोक्त नहीं हैं ⊖

(४) क्या आप ब्राह्मण पुस्तकोंको वेद नहीं मानते *

(४) नहीं क्योंकि जो ईश्वरोक्त है वही वेद होता है जीवोक्त नहीं जितने ब्राह्मण ग्रंथ हैं वे सब ऋषि मुनि प्रणीत और संहिता ईश्वर प्रणीत है जैसा ईश्वरके सर्वज्ञ होनेसे तदुक्त निर्भ्रान्त सत्य और मतके साथ स्वीकार करनेके

जहां जहां * ऐसा चिन्ह है वह वचन राजा शिवप्रसादका है,

जहां जहां ⊖ ऐसा चिन्ह है वह वचन स्वामी दयानन्द सरस्वतीका है,

योग्य होता है वैसा जीवोक्त नहीं हो सक्ता क्योंकि वे सर्वज्ञ नहीं परन्तु जो जो वेदानुकूल ब्राह्मण ग्रन्थ हैं उनको मैं मानता और विरुद्धार्थोंको नहीं मानता हूं वेद स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं इससे जैसे वेद विरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थोंका त्याग होता है वैसे ब्राह्मण ग्रन्थोंसे विरुद्धार्थ होनेपर भी वेदोंकापरित्याग कभी नहीं हो सक्ता क्योंकि वेद सर्वथा सबको माननीय ही हैं ☉

अब रहगया यह विचार कि जैसा संहिताहीको ईश्वरोक्त निर्भ्रान्त सत्य वेद मानना होता है वैसा ब्राह्मण ग्रन्थोंको नहीं इसका उत्तर मेरी बनाई ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के नवमे पृष्ठसे ९ लेके ८८ अट्ठासीके पृष्ठ तक वेदोत्पत्ति, वेदोंका नित्यत्व, और वेद संज्ञा विचार विषयों कोदेख लीजिये वहाँ मैं जिसको जैसा मानता हूं सब लिख रक्खा है इसीको विचार पूर्वक देखनेसे सब निश्चय आपको होगा कि इन विषयोंमें जैसा मेरा सिद्धान्त है वैसाही जानि लिजियेगा।

(दयानन्द सरस्वती काशी)

॥ राजा शिवप्रसादजीका दूसरा पत्र ॥

श्री काशी वाराणसी सम्वत् १९३७ चैत्र शुक्ला पूर्णमा ॥

श्री ५ मत्स्वामि दयानन्द सरस्वतीभ्यो नमो नमः

आपका कृपा पत्र चैत्र शुक्ला १२ का पा अत्यंत कृतार्थ हुआ ग्रीष्मका प्रचंड उताप अवकाश नहीं देता कि आपके दर्शनानन्द से मन ठंडा करूं तब तक आप कृपा करके पत्र द्वारा मेरे मनको सन्देहके ताप से बचावैं ॥

आपने लिखा " ब्राह्मण ग्रन्थ सब ऋषि मुनि प्रणीत और संहिता ईश्वर प्रणीत हैं" वादी कहता है जो " संहिता ईश्वर प्रणीत है"तो ब्राह्मण भी ईश्वर प्रणीत है और जो " ब्राह्मण ग्रन्थ सब ऋषि मुनि प्रणीत" हैं तो संहिता भी ऋषि मुनि प्रणीत है आपने लिखा " वेद (संहिता) स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं " वादी कहता है जो ऐसा तो ब्राह्मणही स्वतः प्रमाणहै आपका संहिता परतः प्रमाण होगा (२) आपने प्रमाण ऐसा कोई दिया नहीं (३) जिस्से जिज्ञासु को तुष्टि प्रश्नकी पूर्ति और सिद्धान्तकी आशा हो आपने लिखा कि " मेरी बनायी हुई ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के नवमें पृष्ठसे (९ लेके ८८) अट्ठासीके पृष्ठ तक वेदोत्पत्ति वेदोंका नित्यत्व और वेद संज्ञा विचार

जहां जहां ☉ ऐसा चिन्ह है वह वचन स्वामी दयानन्द सरस्वतीका है ॥

(२) मैं अपने पहिले पत्रमें लिख चुका हूं कि 'वादीको आप अपना प्रतिध्वनि समझिये'

(३) स्वामीजी महाराज प्रमाण कुछभी नहीं देते जो आप अपने मनमानी कह देते हैं उसीको चाहते हैं कि लोग विश्वासका लेख मानें ॥

विषयों को देख लीजिये" "निश्चय + होगा" सो महाराज "निश्चय" के पल्टे मैं तो और भी भ्रान्ति में पड़गया मुझे तो इतनाही प्रमाण चाहिये कि आपने संहिताको "माननीय" मानकर ब्राह्मण का क्यों "परित्याग" किया और वादी तो संहिता जैसा ब्राह्मणको वेद मान जो आपने "वेद" के अनुकूल लिखा अपने अनुकूल और जो कुछ ब्राह्मणके प्रतिकूल लिखा उसे संहिता के भी प्रतिकूल लिखा उसे संहिता के भी प्रतिकूल समझता है तो भी मैं ने आपकी "भाष्य भूमिका" मँगा के देखी पर उसमें क्या देखता हूं कि पहले ही (पृष्ट ९ पंक्ति ८) लिखा है "तस्माद्यज्ञात् + + + अजायत" अर्थात् उस यज्ञसे (वेद) उत्पन्न हुए पृष्ट १० पंक्ति २९ में आप शतपथ आदि ब्राह्मणका प्रमाण देकर यह सिद्ध करते हैं कि यज्ञ विष्णु और विष्णु परमेश्वर (४) और फिर पृष्ट ११ पंक्ति १२ में आप यह लिखते हैं कि "याज्ञवल्क्य महाविद्वान् जो म हर्षि हुए हैं अपनी पढिता मैत्रेयी स्त्रीको उपदेश करते हैं कि हे मैत्रेयि जो आकाशादि से भी बड़ा सर्व व्यापक परमेश्वर है उससे ही ऋक् यजु साम और अ थर्व ये चारों वेद उत्पन्न हुवे हैं" परन्तु आपने याज्ञवल्क्यजी का यह वाक्य आधाही अपना उपयोगी समझ क्यों लिखा क्या इसी लिये कि शेषार्द्ध वादी का उपयोगी है? वाक्य तो यही है:—एवंवा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसित मेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानिव्याख्यानानीष्टं हुतमाशितं पायितमयंच लोक परश्चलोकः सर्वाणिच भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि अर्थात् अरी मैत्रेयि इस महाभूत के यह ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद इतिहास पुराण विद्या उपनिषद श्लोक सूत्र अनुव्याख्या व्याख्या इष्ट हुत खाया पीया यह लोक पर लोक सब भूत सब निश्वसित हैं (५) मुझे इस समय और कुछ तर्क वितर्क आवश्यक

(२) मैं अपने पहले पत्रमें लिख चुका हूं कि "वादीका आप अपना प्रतिध्वनि समझिये" ॥

(३) स्वामीजी महाराज प्रमाण कुछ भी नहीं देते जो आप अपने मनमानी कह देते हैं उसीको चाहते हैं कि लोग विधाता का लेख जानें ॥

(४) कैसा आश्चर्य है कि आपही तो संहिताको "स्वतः प्रमाण" और ब्राह्मणको "परतः प्रमाण" लिखते हैं और फिर आपही संहिता के "ईश्वरप्रणीत" होने के लिये "परतः प्रमाण" शतपथ ब्राह्मणका प्रमाण देते हैं जैसे किसी मुद्दई का गवाह गवाही दे कि मुद्दई का तमस्सुक सचा है पर मुद्दाअलैह की रसीद भी सची है रुपया चुक गया और मुद्दई कहे कि गवाह झूठा है भरोसे के योग्य नहीं परन्तु अपना तमस्सुक ठीक होनेके प्रमाण में उसी गवाह को आगे लावे अथवा जब हाकिम प्रमाण (सबूत) माँगे तो कहे मैं कहता हूं मेरा दावा सचा है।

(५) यह तो बड़ी हँसीकी बात है कि स्वामीजी महाराजने जिस वचन को संहिता

नहीं इतना कहना अलम् कि आपके इस प्रमाणसे तो कि जो बृहदारण्यक ब्राह्मण का है जैसे वेद ईश्वर प्रणीत हैं वैसे ही उपनिषदादि सब ईश्वर प्रणीत हैं यदि इसका अर्थ यह कीजियेगा कि उपनिषद जीव प्रणीत है तो आपका चारों वेद भी वैसाही जीव प्रणीत ठहर जायगा आपने संहिता स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण को परतः प्रमाण लिखा और फिर संहिता के स्वतः प्रमाण सिद्ध करनेको उन्हीं परतः प्रमाण ब्राह्मणों का आप प्रमाण लाते हैं सो इस व्याघात से छुटने के लिये यदि कुछ उत्तर हो आप कृपा करके शीघ्र लिख भेजें तब तक मैं आपकी भाष्य भूमिका आगे नहीं देखूंगा पृष्ठों को कुछ उलट पुलट किया तो विचित्र लीला दिखाई देती है आप पृष्ठ ८१ पंक्ति ३ में लिखते हैं "कात्यायन ऋषिने कहा है कि मंत्र और ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम वेद है" पृष्ठ ५२ में लिखते हैं प्रमाण ८ हैं और फिर पृष्ठ ५३ में लिखते हैं चौथा शब्द प्रमाण "आप्तों के उपदेश" पांच वाँ ऐतिह्य "सत्यवादी विद्वानों के कहे वा लिखे उपदेश" तो आपके निकट कात्यायन ऋषि "आप्त" और सत्यवादी विद्वान" नहीं थे (६) पृष्ठ ८२ में आप लिखते हैं कि ब्राह्मणमें जमदग्नि कश्यप इत्यादि जो लिखे हैं सो देहधारी हैं अतएव यह वेद नहीं और संहिता में शतपथ ब्राह्मण (!) के अनुसार जमदग्नि का अर्थ चक्षु और कश्यप का अर्थ प्राण है अतएव वेद है (!!) फिर आप उसी पृष्ठमें लिखते हैं कि "ब्राह्मणानीतिहासान्पुराणानिकल्पान् गाथा नाराशंसीः" (७) "इस वचनमें ब्राह्मणानिसंज्ञी और इतिहासादि संज्ञा है" तो इस युक्तिसे बृहदारण्यक का वचन जो मैंने ऊपर लिखा है उसमें भी क्या उपनिषद संज्ञी और इतिहास पुराणादि संज्ञा है अथवा ऋग्वेदादि क्रमानुसार उनका संज्ञी वा संज्ञा है? पृष्ठ ८८ पंक्ति १२ में आप लिखते हैं कि "ब्राह्मण + + + वेदोंके अनुकूल होनेसे प्रमाण के योग्य तो हैं" यदि आप इतना

' ईश्वर प्रणीत ' होने के लिये प्रमाण दिया है उसमें चारों वेद का नाम तो लेलिया और वेदों के आगे जो उपनिषदादि का नाम लिखा है उसे सम्पूर्ण छोड़ दिया मानो यह समझा कि हमारे सिवाय किसी ने बृहदारण्यक उपनिषद देखाही नहीं है ॥

(६) भाई! आपही कहो कि कात्यायनऋषिजी की झूठ बोलने का क्या प्रयोजन था क्या कोई उनका भी मुकद्दमा किसी अंग्रेजी अदालत वा कचहरी में पेश था भला वह झूठ लिखते तो उनके समकाली लोग उसे कब चलने देते पर जो हो दयानन्दजी ने कात्यायनजी को झूठा बनाया तो मैं पूछता हूं कि जब कात्यायनजी ही झूठे ठहरे तो अब दयानन्दजी की बातयोंही कौन मान लेगा ?

(७) इस का अर्थ बहुत स्पष्ट है अर्थात् ब्राह्मण (और) इतिहास (और) पुराण (और) कल्प (और) गाथा (और) नाराशंसी परंतु स्वामीजी महाराजने पहिले (और) को अमद (अर्थात्) कल्पना कर लिया अर्थात् ब्राह्मण अर्थात् इतिहास पुराणादि ।

और मान लें कि सम्पूर्ण ब्राह्मणों का प्रमाण संहिता के प्रमाण के तुल्य है अथवा पृष्ठ ४२ पंक्ति ७ में आप लिखते हैं "तत्रा परा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ऽथर्वेद शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति अथ परायया तदक्षरमधिगम्यते" इसका अर्थ सीधा सीधा यह मान लेवें कि आप के चारों वेद और उनके छओं अंग "अपरा" हैं जो "परा" उससे अक्षर में अधिगमन होता है अपना फिरवटका अर्थ वा अर्थाभास छोड़ दें (८) तो बड़ा अनुग्रह हो मेरा सारा परिश्रम सफल हो जावे और आपके दर्शन का उत्साह बढ़े किमधिकमित्यलम्। आपका दास शिव प्रसाद

॥ स्वामी दयानन्दजी का पिछला उत्तर ॥

राजा शिवप्रसादजी आनन्दित रहो आपका पत्र मेरे पास आया देख कर अभिप्राय जान लिया इस से मुझको निश्चित हुआ कि आप ने वेदोंसे लेके पूर्व मीमांसा [९] पर्यन्त विद्या पुस्तकों के मध्य में से किसी भी पुस्तकके शब्दार्थ सम्बन्धों को जाना नहीं है इस लिये आप को मेरी बनाई भूमिका का अर्थ भी ठीक २ विदित न हुआ जो आप मेरे पास आके समझते तो कुछ समझ सकते परन्तु जो आपको अपने प्रश्नोंके प्रत्युत्तर सुननेकी इच्छा हो तो स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती वा बालशास्त्रीजी को खड़ा करके [१०] सुनियेगा तो भी आप कुछ २ समझ लेंगे क्योंकि वे आपको समझावेंगे तो कुछ आशा है समझ जायेंगे भला विचार तो कीजिये कि आप उन पुस्तकों के पढ़े विना वेद और ब्राह्मण पुस्तकों का कैसा आपस में संबन्ध क्या २ उनमें हैं और स्वतः प्रमाण तथा ईश्वरोक्त वेद और परत प्रमाण और ऋषि मुनि कृत ब्राह्मणपुस्तक हैं इन

(८) स्वामीजी महाराज अपनी भाष्य भूमिका में (पृष्ठ ४२ पंक्ति ७) इस का अर्थ यों लिखते हैं '(तत्रापरा॰) वेदों में दो विद्या हैं एक अपरा दूसरी परा इनमें से अपरा यह है कि जिससे पृथिवी और तृण से लेके प्रकृति पर्य्यन्त पदार्थों के गुणों के ज्ञानसे ठीक ठीक कार्य्य सिद्ध करना होता है और दूसरी परा कि जिससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की यथावत प्राप्ति होती है यह परा विद्या अपरा विद्यासे अत्यन्त उत्तम है क्योंकि अपरा काही उत्तम फल परा विद्या है' निदान स्वामीजी महाराजने इतना तो लिखा परन्तु सीधा अर्थ वा आशय नहीं लिखा कि चारोंवेद (संहिता) और उनके छओं अंग अपरा हैं परा उनके सिवाय अर्थात् उपनिषद हैं ॥

(९) जान पड़ता है कि स्वामीजी महाराजने पूर्व मीमांसाही तक देखा है उत्तर मीमांसा नहीं देखा नहीं तो ऐसा न लिखते ।

(१०) तो जहां जहां जिसके पास भाष्य भूमिका जाती है उसके पास स्वामी विशुद्धानन्दजी और पंडित बालशास्त्रीजी को जाना चाहिये अथवा उन सबको समझने के लिये दयानन्दजी के पास जाना चाहिये ॥

हेतुओंसे क्या २ सिद्धान्त सिद्ध होते और ऐसे हुए विना क्या २ हानि होती है इन विचाररहस्यकी बातों को जाने विना आप कभी नहीं समझ सक्के ॥ सं० १९३७ मि० वै० व० सप्तमी शनिवार

[दयानन्द सरस्वती]*

तत्पश्चात् वैशाख सम्वत् १९३७ में ऋग्वेदभाष्य अंक १४ यजुर्वेदभाष्य अंक १४ दोनो वेदकप्रेस काशी में छपकर प्रकाशित हुए और स्वामीजी फर्रुखाबाद चले आये और यहां पहुंचकर राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के निवेदन के उत्तर में आपने "भ्रमोच्छेदन" नाम पुस्तक रचा और छपाकर उक्त राजा साहिब के पास भी पठाया जिस के बनाये जाने की मिति ज्येष्ठ शुक्ला २ गुरुवार निम्न लिखित श्लोक से विदित होती है ।

मुनि रामाङ्क चन्द्रेब्दे शुक्रे मासेऽसिते दले ।
द्वितीयाया गुरौवारे भ्रमोच्छेदो ह्यलंकृत ॥ १ ॥

इस पुस्तक में राजा शिवप्रसादजी के प्रश्नों का उत्तर लिखने के बदले स्वामीजी ने उनको अनेक कुवचन लिख मारे, जो आगे चलकर देखने में आवेंगे और उनको राजा साहिबने अपने दूसरे पिछले निवेदन में स्वतः लिखा है,

स्वामीजी ने फर्रुखाबाद रहते रहते ही एक पत्र अपने शिष्य श्यामजीकृष्ण वर्म्मा को संस्कृत में लिख लंडन भेजा जिसका उल्था शुद्ध देवनागरी में निम्न लिखित है ॥

नमस्ते । विदित हो कि यद्यपि तुम बावजूद साबित कदमी सरीके वेद और अपनी विद्याके स्तुति योग्य हो परंतु परम पश्चाताप की बात है कि तुमने अपने पत्र द्वारा बहुकाल से मुझ को आनंदित नहीं किया अब मैं आशा करता हू कि तुम अपने कुशल और नीचे लिखे विषयों के जवाब में मुझको बहुशीघ्र प्रमुदित करोगे ।

इङ्गलिस्तान के रहनेवाले लोग किस प्रकार के हैं? और उनकी प्रकृति और ढंग व चलन कैसे हैं? वहांकी पृथ्वी और वायु जल कैसा है? और सामान खाने पीने आदि आरामका वहां किसप्रकार मिलता है? जबसे तुम यहांसे गये हो तबसे तुम्हारी शारीरक आरोग्यताकी क्या दशा है? और इङ्गलिस्तान

* राजा शिवप्रसादजी सितारे हिन्द अपनी निवेदन नाम पुस्तक में स्वामी दयानन्दजी के १ व ७ के पत्र के अंतपर लिखते हैं कि (स्वामी विशुद्धानन्दजी का लिखाया) राजा साहिब के प्रश्नों का उत्तर दयानन्दसे नहीं बना ! ॥

में तुम्हारी खास इच्छा पूरी भी होती है * या क्या ? वहां के लोग किसप्रकार प्रेम रखते हैं और क्या क्या पुस्तकें तुमसे पढते हैं ? तुम्हारी मासिक प्राप्ति और व्यय क्या है ? और तुम्हारे अधीत ग्रन्थोंके पूर्वापर अवलोकन करने व विचारने और दूसरों के पढाने का समय क्या २ नियत है ? इसका क्या कारण है कि धर्मोपदेश करने में आर्य्यावर्त के अनुरूप अभीतक तुम्हारी प्रसिद्धि इङ्गलिस्तान में नहीं फैली ? कदाचित् मेरी दूरस्थिति होनेके कारण मुझको तुम्हारी प्रसिद्धि के समाचार न मिलते हों ? अथवा इस कामके करनेका तुमको अवकाश न मिलता हो यदि इसका कारण द्वितीय है तो अब मेरी प्रबल इच्छा यह है कि जिसवक्त तुम पढानेसे निश्चिन्त हुआकरो उस समय वैदिक मतकी उन्नतिमें जिसप्रकार हो वहां खूब यत्नकरो पश्चात् यहाँ चले आओ क्योंकि ऐसे सर्वोत्तम और सर्वोपकारी काममें अपनी प्रसिद्धि करना रुपया पैदा करने से विशेषतर उत्तम है ॥ हमारे मित्र प्रोफेसर मोनियर विलियम और माक्शमलर साहबों की वेद और शास्त्रों के विषय में तथा वहांके और २ विद्वानोंकी मेरे वेदभाष्यपर कैसी ? क्या ? सम्मति अर्थात् राय है ॥ क्या यहसत्य है ? कि थ्यूसफिकिल सुसैटी ने कोई वेदमत की शाखा लन्दनमें स्थापित करदी है, कभी तुमने भरत खंडकी राज राजेश्वरी से भी सन्मान परिचय प्राप्ति किया है और कभी पारलीमेंट में भी गये हो ? परम प्रीति पूर्वक इन सब प्रश्नोंका उत्तर अति शीघ्र भेजदो । और वे भी बातें लिखो जिनको तुम अपने निकट लिखने के योग्य समझो । प्रस्तुत मेरा इतनाही लेख बहुत है क्योंकि बुद्धिवानों को संकेत मात्र अपेक्षित होता है न विस्तार । इति । तिथि ज्येष्ठ शुक्ला० ७ मंगलवार सम्वत् १९३७ विक्रमी ॥

इधर मुन्शी बखतावरसिंहजी (जिन्होंने केवल ३ महीनेकी छुट्टी लेकर स्वामीजी का प्रेस चलाया था) काम से जुदा होनेपर उद्यमी हुये वो खबर पाते ही स्वामीजीने अपनी निम्न लिखित सारांशकी चिट्ठी द्वारा उनका उत्साह बढाया॥

मुन्शी बखतावरसिंहजी आप आनन्द पूर्वक काम किये जाइये सरकारी नौकरी छोडने में जो आपको पिन्शन का घाटा है उसके पूराकरने का प्रबन्ध हम अपने वसीयतनामे में (जो शीघ्र लिखने का इरादा है) पूरा पूरा कर देंगे॥

इस वचनका मुन्शीजी को जब पूरा विश्वास न हुआ तो उन्होंने सरकारी नौकरी छोडदेनी अनुचित जान और सातमहीने की अधिक छुट्टी ले लई ।

---

* हम नहीं कहसके कि वह खास इच्छा क्या थी ? ॥

अब मुन्शी बखतावरसिंहजी की सात मासकी अधिक छुट्टीभी पूरी होनेपर आई तो स्वामीजी ने एक माया युक्त निम्न लिखित चिट्ठी निज कर कमलों से लिख निज शिष्य पंडित भीमसेन के पास पठाई ।

पंडित भीमसेनजी आनन्दित रहो ।

अब तुमने ८ दिन पीछे चिट्ठी भेजना बन्द क्यों करदिया ? बराबर आठ दिन पीछे चिट्ठी भेजाकरो और यह लिखाकरो कि इस सप्ताह में इतनी पुस्तकें छपी और यह यह काम हुआ, और अब क्या होता है ? आगे सप्ताह में कौन २ काम होने वाला है और जब२ चिट्ठी लिखा करो मुन्शीजी से पूछ देखा करो कि इन ८ दिनों में कितनी पुस्तकें छपी और जब २ छपकर तयार हुआ करें सब गणकर संख्या लिखा करो और मुन्शीजी तो माहवारी आमदनी बिक्री के रुपयों के हिसाब की चिट्ठी लिखते ही हैं तथापि तुम भी बखत२ सब पूछ लिया करो और मुन्शीजी से कहना कि तुमको कुछभी शंका न करनी चाहिये आप इस्तिफा सरकारी नौकरीसे दे दीजिये जब तक तुम काम करने वाले हो जब तक तुम्हारे शरीर में प्राण हैं और सामर्थ्य है तबतक आनन्द में काम किया करो और पश्चात् भी तुम्हारी सलाहसे काम हुआ करे गें और वसीयतनामा के सभासद सब आर्य्य समाज के हैं किसी प्रकारकी हानि उनके लिये न करेंगे और निश्चय है कि मुन्शीजी भी ऐसे नहीं हैं कि धर्म विरुद्ध काम करें, और वसीयतनामे में यह अवकाश रक्खा है कि चाहे जिसको रजष्टरी जितने अधिकार वा धनदेने आदिके लिये मैं कराऊंगा उसका पूरा करना सभाको अवश्य होगा और अधिक न्यून अदल बदल वा दूसरा वसीयतनामा करनेका अधिकार मैंने अपना पूरा रक्खा है चाहे किसी सभासद् को निकाल दूं वा किसी अन्य सभासद को भरती करदूं इत्यादि नियम इसलिये रक्खे हैं कि जो चाहे सो हम करसक्ते हैं ये सभासद मुन्शीजी के सुहृद ही हैं, और सब विद्वान और धार्मिक हैं किसी के लिये अन्याय की वृत्ति नहीं करते तो क्या मुन्शीजी के लिये अन्यथा प्रवृत्ति करनेको उद्यत हो सक्ते हैं, कभी नहीं क्योंकि धार्मिक लोग सदा धर्म प्रिय और अधर्म द्वेषी ही होते हैं क्या मैं वा वे सभासद मुन्शीजी को परोपकार के लिये प्रवृत्त हुए नहीं जानते हैं इससे यह पत्र मुन्शी बखतावरसिंहजी को एकान्त में सुनादेना और इस पत्रको अपने पास रक्खो चाहें तो दे देना तुमको यह पत्र इस लिये लिखा है कि तू भी इसका साक्षी रहे और यह लेख मैंने अपने हाथसे इस लिये किया है कि यह बात गुप्त रहे और समय

पर काम आवे ॥ हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती*

इस चिठ्ठीपर मुन्शीजीने कुछ भरोसा नहीं किया और छुट्टीके पूरा होते ही स्वामीजी के वैदिक यंत्रालय से पृथक होगये ॥

पंडित गोपालराम फर्रुखाबादी के नाम दयानन्द की एक चिठ्ठीकी नकल

‡ पंडित गोपालरामजी आनन्दित रहो। मैं आशा करता हूं कि जो २बातें करनी आपके लिये नीचे लिखता हूं सो २ आप यथावत् स्वीकार करेंगे।

(१) जो "मीमांसकीय सभा" नियत कीगई है उसके ५ सभासद निश्चित किये गये हैं एक आप १ बाबूजी २ लाला जगन्नाथ ३ लाला रामचरण ४ आपके लाला निर्भयरामजी ५ और इनके अनुपस्थित में क्रमशः यथा आपके लाला नरायणदास मुख्तार। लाला हरनारायण पुरोहित। मन्नीलाल। लाला कालीचरण और लाला निर्भयरामके कोई पुत्र अर्थात् तीनों में से एक जो उपस्थित हो नियत किये गये हैं।

(२) जहाँ तक बने और आप उपस्थित हों तो व्याख्यान भी समाज में दिया करें।

(३) जो मासिक पुस्तक निकलता है वह भी आपके हाथसे बनेगा अथवा बने पर शुद्ध कर देंगे तौ भी अच्छा होगा।इति। आषाढ कृष्णा०८ बुधवार।सम्बत् १९३७ विक्रमी (ह० दयानन्द सरस्वती)

जब स्वामीजी का भ्रमोच्छेदन पुस्तक काशीपुरी के विद्वानों ने देखा बड़े चकित हुये और स्वामीजी की विद्वता पर परम उपहास्य किया अनेक प्रकारके लेख पुस्तकादि इनके प्रतिकूल लिखे गये जिनमें से लोक रावण और अबोध निवारण इन दो पुस्तकों की भूमिका यहाँ प्रकाशित करी जाती है, जिसके देखने से स्वामीजी की विद्या और बुद्धि का भी परिचय हो जायगा।

॥ लोकरावण भूमिका ॥

पल्यलोत्थित आदि लिखे दस विशेषण बिलसित अर्थात् वराह समान आकार और चरित्र का एक कोई भिक्षुक भेषधारी काशी में आया उसकी यह गृमव धृष्टता और चाह कि यहाँके विद्वान मुझसे शास्त्रार्थ करें। यह सुन भारत राजकुल रत्नायित आदि ६ विशेषण युत काशी नरेश ने कहाकि मेरी इस विदुष्मती काशी में आकर बैठा पंडित मन्य नास्तिक यदि यहां से विमुख गया तो

* यह चिट्ठी आर्य्यदर्पण पत्र संख्या ५ खंड ७ मास मई सन् १८८६ ई० मे छपी है

‡ स्वामीजीका माया जाल और प्रपंच इस चिट्ठीके लेखसे ही विदित होता है

मेरी बड़ी भारी अप कीर्ति होगी अतः सम्वत् २६ के कार्तिक शुक्ला १३ मंगल वार के दिन सायकाल के समय घटिका द्वय मात्र में पंडितों से मुंडी के प्रश्नोंका उत्तर और करतालि दिलवा कर (जन करतालि बहुलो सभा विसर्जनकवत राजा) जीत बजाते घर आये जनक समान राजा ईश्वरीप्रसाद नारायणजी ॥ सिंधेव गात्र + अन्धीत शास्त्र + अवशिष्ट साहसमा + गर्हणा पात्र + बेप्रुमेच्छता + क्षुद्रमुंडी द्वारा तो भी पाली के भांति देशान्तरों में घूमता अपनी जीत बताता हुआ वह अम रीका वालों के साथ फिर एक बार काशी में आया वहाँ किसी बागमें बैठा हुआ था कि इतने में वहाँ जगत् विख्यात् यश कर्नेल अल्काट से मिलने चतुर शिरोरत्न पित राजा शिवप्रसाद गये। उन्हों ने वहां इसके मत और मतिकी परीक्षा वेद व ब्राह्मण शब्दार्थ के बहाने से की, मुंडी की बात चीत बहुत भद्दी थी परन्तु प्रवचन प्रपंच चातुरी को लिये कटाक्ष करे तो राजा शिवप्रसाद बोले कि यों मुझ मंद मती के समक्ष में बिना लिखे नहीं आने की * मुंडी ने भी स्वीकार किया परन्तु पत्रोत्तर उसके कपट कौटिल्य, निंदा मात्सर्य और अभिमान से भरे हुये थे ौ तो भी राजा नम्र रहे और उन्होंने निवेदन नामकी पुस्तकें छपवाकर उसके और सर्व आर्य्य समाजियों के पास भेजी इसने उसके उत्तर में भ्रमो च्छेदन (वस्तुत भ्रमोत्पादन) छपवाया। उसमें सपथ लिखी कि अतः पर मैं कभी काशीके किसी विद्वान पंडित से शास्त्रार्थ न करूं गा @ इसने यह उचितही किया अब यह फ़ारसी और अंग्रेजी पढे हुए मूर्खों को बहकाता फिरता है। मेरे चित्तको इसकी वेद प्रतारणा दुखाती है एतदर्थ मेरा यह सब उद्योग है अन्यथा मेरी इस क्षुद्र के साथ क्या महिमा थी सिंह, शशक वा मशकों से कभी नहीं भिड़ता, परन्तु उसका जातीय स्वभाव यह है कि वृह विपक्षी को देख नहीं सक्ता तद्वत् अधर्म निवारणार्थ इस वादानर्ह के साथ मेरी यह प्रवृति है जानिमे। इति लोक रावण भूमिका ॥ S

॥ अबोध निवारण की भूमिका ॥

बड़े आश्चर्य्य की बात है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संस्कृत वाक्य प्रबोध नामक ग्रन्थ को केवल इसी प्रयोजन से बनाया है कि साधारण जनोंको संस्कृत का बोध हो और कुछ बोल चाल आवे। पर उस छोटी सी पुस्तक में

* राजा शिवप्रसाद का आदि निवेदन इस पुस्तक में प्रथम लिख चुके हैं, ौ पोपा पथा बाजे पना अथवा अधूरे जल के घट वत @ अब तो स्वामी जी का काशी पुरी में आर्य्य समाज स्थापित होगया यंत्रालय खुलगया सम्पूर्ण मनो कामना पूरी होगई बस अब काशी के विद्वानों से शास्त्रार्थ करके और क्या लेना है। S यह ... दिग्विजय में छप चुकी है

इतनी अशुधियां हैं कि कदापि सर्व साधारण लोगों का उपकार उस से नहीं हो सक्ता, हां इतनी बात तो होसकती है कि जिन लोगों को कुछ आता है सो भी भूल जायँगे । जब कि यह पुस्तक उसी प्रयोजन से बनाई गई और उसमें इतनी अशुद्धियाँ भरी हैं तो वेदभाष्यादि पुस्तकों की शुद्धता इतने ही से जान लेनी चाहिये। वेदों का नवीनार्थ तो स्वामी जी ने व्याकरण ही की सहायता से किया है और जब उसी की यह दशा है तो कैसे उनके अर्थों पर विश्वास हो सकता है?। अब इस पुस्तक में शब्दाशुद्धि अर्थाशुद्धि और अनुवादाशुद्धि इतनी हैं कि कोई कहांतक लिखे पर हमारे मित्र पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने कुछ थोड़ी बहुत यहां दिखलाई हैं, जिस से पाठक गणों को सम्पूर्ण ग्रन्थ का भाव जान पड़ेगा पाठकों को उचित है कि पक्षपात और द्वेष भाव को छोड़कर सत्यासत्य का विचार करें तो शीघ्र ही स्वामीजी की विद्वता उनपर प्रगट हो जायगी। भला मैं स्वामी ही जी से पूछता हूं कि क्या इसी विद्या पर आप राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की निन्दा करते हैं * और वृथा अपनी प्रसिद्धि के लिये काशी के प्रसिद्ध पण्डितों से शास्त्रार्थ करने को ललकारते हैं ? ॥

आप के बल का ज्ञान पंडितों को इतने ही से होगया। बस इतना ही आप को कहते हैं कि यदि कुछ विद्या रखते हैं और अपने को पंडित लगाते हैं तो इसका प्रत्युत्तर दे कर अपने लेख को शुद्ध ठहराइए और इस अकीर्ति को मिटाइए और यदि आप सच्चे देशहितैषी हों तो इन स्वरचित अशुद्ध पुस्तकों को नदी में फेंकवा दीजिये अथवा अग्नि देवता के समर्पण कर डालिये जिस से उन के पढ़ने से संसार में दिन दिन अबोध की वृद्धि न होय ० अब आपको अधिक क्या समझावें आप स्वयं बुद्धिमान हैं ॥ प्यारे पाठक गण मुझ को आशा है कि स्वामीजी लोकोपकार में बहुत दृष्टि रखते हैं इस लिये लोकाबोध निवारक पंडित अम्बिकादत्त व्यास जी को (जिन्हों ने उनके ग्रन्थ का शुद्धि पत्र बनाया) शतशः धन्यवाद देंगे और कृतज्ञों की नांई उनका परमोपकार मानेंगे। परन्तु यदि दैवात् वे अपनी शुद्धियों को व्याकरण से शुद्ध करने के अभिप्राय से कोई पत्र प्रकाश करें तो उनको उचित है कि जैसे मैंने इस लेख में स्वामी जी दयानंद जी ऐसे ऐसे उत्तम शब्दों हीका प्रयोग किया है, वैसे ही वे भी उत्तम शब्दों ही को लिखेंगे०। और यदि इतने पर भी वे गालिप्रदान करेंगे तो हम लोग समझ लेंगे कि (ददतु ददतु गाली गालिमन्तोभवन्त) और यदि इस शुद्धाशुद्ध के विषय में स्वामीजी कुछ विवाद करना चाहें तो इधर से काशीस्थ संस्कृत पाठशा

* देखो भ्रमोच्छेदन की भूमिका ॥

र्शीय दर्शन शास्त्राऽध्यापक पंडित राममिश्र शास्त्री जी मध्यस्थ माने जाते हैं वे भी चाहें जिस पंडित को मध्यस्थ मान के लेख द्वारा शास्त्रार्थ करें उनके सब सन्देह मिटा दिये जायगे। जो सच पूछिये तो वास्तविक और उत्तम बात तो यह है कि इस्को देखकर दयानन्द जी कुछ शोक और लज्जा न करें क्योंकि हाय ही तो है चूकगया मनुष्य ही तो है भूलगये उनका इतना ही लिखना बहुत है ॥

कश्चिदऽपक्षपाती देशहिताभिलाषी
रामकृष्ण वर्म्मा ।

पूर्वोक्त भूमिका ३ पृष्ट पर समाप्त होकर पृष्ट ५ से पृष्ट १८ पंक्ति १८ तक प्रथम प्रकर्ण में व्याकरण की भूल दिखलाई हैं जिनको हम ग्रन्थ बढजाने के भयसे पूरा नहीं लिखते जिसको देखना हो अबोधनिवारण नाम काशी भारतजीवन प्रेस का छपा पुस्तक देख ले। पृष्ट १८ पंक्ति १८ से आगे पृष्ट १९ पंक्ति ३ तक यह लिखा है

"पाठकगण। अब आप लोग प्रथम प्रकर्णको देख चुके और इस से स्वामी जी की विद्वता निस्सन्देह आपपर प्रगट हुई होगी, अब तनिक दूसरे प्रकर्ण की ओर भी दृष्टि दीजिये तो जान पड़ेगा कि स्वामीजी ने क्याररंग दिखाए हैं"॥

पृष्ट २१ से २२ तक दूसरा प्रकर्ण तथा २३ से २४ तक चितौनी उनकी नकल इस प्रकार है,

॥ दूसरा प्रकर्ण ॥

प्रथम प्रकर्ण में तो व्याकरण की अशुद्धियां दिखादी गई अब इस प्रकर्ण में अर्थाशुद्धियां और अनुवाद की अशुद्धियां कुछ थोड़ी सी दिखा दी जाती हैं क्योंकि प्राय सभी पृष्टों में तो अशुद्धि भरी है कोई कहां तक उन को दिखलावे। पाठकों को पढ़तेही जान पड़ेगा कि कैसी विद्या और बुद्धि स्वामी जी ने अनुवाद करने में लगाई है। जैसे दो चार चावलों के देखने से स्थाली भरके चावलों का पता लगा लेते हैं, वैसेही कतिपय अशुद्धियों को देख कर ग्रन्थ भर का वृतान्त सब कोई जान लेंगे देखिये—

१, ८ (शरीर शुद्धि करके ईश्वर ज्ञान के लिये सन्ध्योपासन करो) इस की संस्कृत स्वामी जी लिखते हैं कि (शौचादिकं कृत्वा सन्ध्यामुपासीरन्) हा! बड़ा अनर्थ है, देखिये तो "ईश्वर ज्ञान के लिये" इस की संस्कृत क्या लिखी

है? कुछ नहीं, दूसरे आपही लोग कहिये पाठक गण "उपासन करो" इस की सस्कृत क्या यही है कि "उपासीरन्" ऐसे ऐसे विषय के स्पष्ट करनेमें लेखिनी को बहुत परिश्रम देना व्यर्थ है, इतने ही में समझ जाइये कि जिसने लघुकामदी भी पढी होगी उस को भी इस का पूर्णतया विवेक होगा ॥

८, १६ (आजका) इस हिन्दी की सस्कृत (नित्य) लिखी है॥

६, २ (शाक, दाल, कढी, भात, रोटी, चटनी आदि) इसका उल्था लिखा है कि (शाकसूपोदश्वित्कौदनरोटिकादय) भला और जो गड़बड़ है सो तो हई है चटनी कहां से निकाली? हां! यदि स्वामी जीने आदय को आदी की चटनी समझा होतो आश्चर्य्य नहीं ॥

१४,१ (गुड का क्या भाव है) इसकी सस्कृत (गुडस्य कों भावः) लिखी है, वाह क्या उत्तम सस्कृत है। यदि मुझ से कोई पूछे कि गुडस्य को भाव तो मैं तो यही कहूंगा कि गुडत्वम् ॥

१४,२ आने की सस्कृत आना लिखते हैं वाह इसी प्रकार से लोटे की संस्कृत लोष्टा बना डालिये ॥

२८,१९ (ऊपर को श्वास चलने से) इसकी सस्कृत लिखते हैं कि (ऊर्द्ध श्वासत्वात्) अहा! हा!! हा!!! कोई कैसी भी चिंता में बैठा हो इस उल्थे के सुनतेही हँस पड़ेगा। मैं अब क्या लिखूं मेरी लेखनी तो इस समय हास्य रस में डूब रही है। समझ जाइये "किमज्ञात सुबुद्धीनाम्"

३४,६ (जले पात्रेच पुर्निक्षिप्य विनाशितम्) इस को पाठक गण शुद्ध कर लेवैं। इत्यादि ॥ ॥ बहुत हुआ इतिश्रम् ॥

॥ चितौनी ॥

स्वामी दयानन्द जी से विनय पूर्वक प्रार्थना है कि वे अपने इन अशुद्धियों के प्रगट किए जाने से कदापि अप्रसन्न न हों प्रत्युत उनको यह उचित है कि इन सब अशुद्धियों को व्याकरण से शुद्ध ठहरावें और न कि अपने वृथा विश्वासी शिष्यों के प्रतारणार्थ एक दो को झूठ मूठ रफू कर कोरा घोप मचावें। यह बात भी स्मरण रखने के योग्य है कि भक्षित्वा औरचित्वा आदि अशुद्धियों का समाधान कहीं " चिन्तेति पठितव्ये इदित्करणाणिच पाक्षिकत्वे लिङ्गम् " से न करें नहीं तो भले ही शङ्खध्वनि हो क्योंकि यह सब समाधान तो सतिशिष्ट प्रयोगनिर्वाहार्थ होते हैं और न कि मुंह से निकला लपनि और आप

आग्रह कर बैठे कि "अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्" और चम्मोसिम्याह् तो लिखें पर जब कोई टोके तो कहें कि पाणिनि जी ने भी तो "इकोगुणवृद्धी" लिखा है। यदि ऐसा ही हो तो आप यह भी कह देंगे कि जब द्रौपदी के पांच पति थे तो अब भी स्त्रियों को दश पति होना चाहिए, और फिर आपको क्या, आप तो अपने ऋग्वेद के भूमिकावाद में लिख ही चुके हैं कि प्रायः एकादश पति होने तक कुछ भी चिन्ता नहीं है, वाह!!! क्या कहना है आपही की लेखनी तो है जब चली तब चली जो कुछ आया आंख मूद के लिखमारा। और यदि "भावः कुक्कुटा ब्रुवन्ति" अथवा "हरयो हर्षन्ति" के समाधान में आप धातूनामनेकार्थत्वम् कहें, तो फिर हम यों कहेंगे कि "स्वामिन शब्दायन्ते विद्वांसश्च-हसन्ति" का अर्थ यह है कि स्वामी जी व्याख्या देते हैं और विद्वान् लोग सुन के कृतार्थ होते हैं। हमारी यह प्रार्थना है कि जो कुछ वे उत्तर दें सो व्याकरण से हो और विद्वानों की नाईं लिखें न कि "मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ताहरीतकी" अथवा वेद की व्याख्या करते २ कहीं रेल जो याद आई तो बोले कि हव्यं अर्थात् यानं, तद् वहति प्रापयतीति विद्युदादिर्भौतिकोऽग्निः"*

॥ इत्यलमति पल्लवितेन ॥

तारीख ८ जौलाई सन् १८८० ई० को मेरठ आर्य्यसमाज के सभासदों की प्रार्थनानुसार स्वामी जी फर्रुखाबाद से चले और मेरठ पहुंचकर मुन्शी रामशरणदास जीकी कोठी में (जो छावनी मेरठ में है) डेरा जमाया और अपना एक "वसीयतनामा"§ लिख रजिष्ट्री कराया और उसमें मुन्शी बखतावर सिंह का कुछ जिकर नहीं लिखा और यह समाचार सुन कर उक्त मुन्शी बखतावरसिंह जी विचारने लगे कि भला हुआ मैंने सरकारी नौकरी नहीं छोड़ी यदि धोखे में आनकर छोड़ देता तो इस समय कितना बड़ा कष्ट सहना पड़ता॥

जब स्वामी जी मेरठ में विराजमान थे तो यह समाचार मिला कि मुन्शी

---

* इस अशुद्ध निवारण पुस्तक को देख स्वामी जी ने यह कहा कि यह पुस्तक (धातुप्रबोध) भीमसेन ने लिखा था और मैंने बिना देखे छपा दिया इस कारण अशुद्धियें रह गई होंगी॥

§ इस वसीयत नामे की नकल सरकारी तौर पर तो अनेक यत्न किये गये मिली नहीं और स्वामी जी या अन्य किसी प्रकार के मनुष्यों के पास है नहीं इस लिये हम यहां लिख ने से लाचार रहे।

इन्द्रमणि प्रधान आर्य्यसमाज मुरादाबाद की बनाई @पुस्तकों से दुखित होकर मुसल्मानोंने २२ जौलाई सन् १८८० ई० के दिन मजिस्ट्रेट मुरादाबाद की कचहरीमें नालिश करी और मजिस्ट्रेट महाशय ने २४ जौलाई के दिन मुन्शी इन्द्रमणि को दोषी ठहरा कर पाच सौ रुपया जुरमाना किया और उन की रची पुस्तकें तल्फ (नष्ट) करा दी गई । जब यह समाचार भारत वर्ष में फैले और उक्त मुन्शी जी के इष्ट मित्र तथा अन्यान्य हिन्दू लोगों तक पहुंचे तो उन को बड़ा दुःख हुआ तन मन धन तीनों द्वारा सहायता को उद्यमी हुये । इधर स्वामी दयानन्द जी ने भी समय को अनुकूल जान सम्पूर्ण आर्य्यसमाजों में लिख भेजा कि इस समय मुन्शी इन्द्रमणि जी की धन द्वारा सहायता करना सम्पूर्ण आर्य्य गण तथा हिन्दू मात्र का परम धर्म्म है और मुन्शी इन्द्रमणि जी को प्रथम तार (टेलीग्राफ) पुनः चिट्ठी द्वारा मुरादाबाद से मेरठ बुला कर कहा हम ने आप के झगड़े में सहायता देने के लिये चन्दा एकत्रित करने का प्रबन्ध किया है जो कुछ रुपया देशांतर से आवे गा लाला रामसरणदास रईस मेरठ के पास जमा होगा और आप आवश्यकता होने पर उन से ले सको गे, इस बात को मुन्शी जी ने भी स्वीकार लिया और चन्दा खोला गया ॥

इसी अवसर पर लाला ठाकुरदास भावड़ा गुजरान्वाल निवासी ने स्वामी जी के "सत्यार्थ प्रकाश" द्वादश समुल्लास में लिखे हुए लेख से अप्रसन्न होकर एक चिट्ठी स्वामी जी के नाम आषाढ कृष्णा ११ सम्वत् १९३७ को लिख शहर आगरे पठाई जिसका सारांश यह है कि "आपने जो लेख निज रचित पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" के पृष्ट ३९६ से लेकर जैन धर्म्म सम्बन्धी लिखा है कृपा कर यह बतलाओ कि यह लेख आपने जैन धर्म्म के किस शास्त्र से लिया है? क्योंकि यह लेख जैन के किसी भी ग्रन्थ में नहीं है, और मिथ्या लिखना विद्वानों को उचित नहीं, इस चिट्ठी का स्वामी जी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब लाचार ठाकुरदास ने आषाढ शुक्ला ५ को एक और चिट्ठी स्वामी जी के नाम आगरे पठाई । जिस में वे श्लोक लिखकर (जो स्वामी जी ने "सत्यार्थ प्रकाश" में जैन ग्रन्थों के बतलाये हैं) यह भी लिखा था कि यह चिट्ठी बतौर नोटिस के है यदि मेरे प्रश्न का यथार्थ उत्तर न दिया तो मुझको अदालत में तौहीन मजहब की नालिश करनी पड़े गी जिस में आप को विशेष क्लेश उठाना

@ मुन्शी इन्द्रमणि ने सन् १८८० ई० में समसाम हिन्द १ हमले हिन्द २ पादाश इसलाम ३ तोहफत हिन्द ४ असूल दीन अहमदी ५ यह पांच पुस्तक छपाई थी । जिन में झगड़े की जड़ हमले हिन्द ही थी ॥

पढ़ै गा इत्यादि० ॥

पाया जाता है कि पूर्वोक्त दोनों चिट्ठी आगरे होकर स्वामी जी के पास मेरठ पहुंची जिन के उत्तर में स्वामी जी ने आनंदीलाल मंत्री आर्य्यसमाज मेरठ के नाम से जो कुछ लिख वाया उस में ठाकुरदास के किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं था किंतु विशेष यही भरा था तुम मूर्ख हो झगड़ालू हो तुमको लिखना पढ़ना नहीं आता स्वामी जीने जो कुछ लिखा सत्य लिखा है, खबरदार चुप के होजाओ यदि न मानोंगे अदालत से सीधे कराढ़िये जावोगे इत्यादि०

मिती श्रावण कृष्णा० ५ सम्वत् १९३७*

जब मुन्शी इन्द्रमणि के झगडे की सहायता के लिये चारों ओर से द्रव्य का आगमन आरम्भ हुआ तो स्वामी जी की नीयत बदल गई और उस सम्पूर्ण द्रव्य को निजाधीन कर लेने का विचार किया। और मुन्शी इन्द्रमणि जी ने जल्दी में अपील करने की गर्ज से छः सौ रुपये का एक बैरिष्टर वकील नियत कर उस के देने के लिये लाला रामसरणदास से कहा चार सौ रुपया मेरे पास है यदि आप आये हुए रुपये में से दो सौ दे देवें तो कार्य्य सिद्ध हो इस पर लाला रामसरणदास ने कहा "यहां से तो अभी तुम को कुछ भी नहीं मिलैगा मुराद बाद से ही तदवीर कर के भेज दो ॥

मुन्शी बखतावरसिंह मेनेजर वैदिक यन्त्रालय काशी अपने जौलाई सन् १८८० ई० के आर्यदर्पण में लिखते हैं कि अबतक आर्य्यसमाज फीरोजपुर व अमृतसर व लाहोर व जेहलम व रावलपिंडी व कानपुर व प्रयाग व दानापुर वगैरः से करीब चार हजार के चन्दा मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमे के लिये जमा हो चुका है और बहुधा ग्राम नगरों में हो रहा है ॥

इसी अवसर पर पंडिता रमाबाई (जो दक्षिणी ब्राह्मणी और लंदनादि बड़े बड़े शहरों में घूमकर प्रसिद्ध होगई है संस्कृत विद्या में अच्छी योगता रखती है) स्वामी जी से मिलने को आई बाबू छेदीलाल की कोठी पर ठहरी स्त्री शिक्षा के विषय में चार पांच व्याख्यान बड़े समारोह के साथ दिये दो सप्ताह के लगभग मेरठ में रहकर देहली होती हुई निज देश को चली गई, स्वामी जी ने निज रचित " सत्यार्थ प्रकाश "—" सन्ध्या' —" आर्य्याभिविनय ' आदि अनेक पुस्तक और आर्य्य समाज मेरठ ने १२५) रुपये नकद और १०) रुपये का एक थान चलते समय भेट किया था ॥

श्रावण सम्वत् १९३७ में ऋग्वेद भाष्य अंक १५ यजुर्वेद भाष्य अंक १४

* यह तीनों चिट्ठी पूरा का विस्तार सहित पुस्तक "दयानन्द मुखचपेटिका में छपी है

यह दोनो छपकर प्रकाशित होगये ॥

जो पत्र आनन्दीलाल मंत्री आर्य्यसमाज मेरठ ने स्वामीजी की आज्ञा से श्रावण कृष्णा ९ को ठाकुरदास के पास भेजा था उसका उत्तर श्रावण शुक्ला० १ सम्वत् १९३७ को ठाकुरदासने आर्य्यसमाज गुजरान्वाला की मारफत भेजा जिसका खुलासा इस प्रकार है ॥

वाह जी खूब उत्तर लिखा दूसरे की बुराई अपनी बड़ाई लिखी सो तो ठीक परन्तु हमारे इस प्रश्न का भी तो कुछ उत्तर लिखा होता कि स्वामी जी ने "सत्यार्थ प्रकाश" द्वादश समुल्लास में किस जैन शास्त्र से लेकर लेख लिखा है, जैन की दिगाम्बर श्वेताम्बर दो प्रसिद्ध शाखाओं में से किस शाखा के जैनी से यह सुना था अथवा व्यर्थ कागज़ काले किये अथवा आपकी समझ में जैन की कोई और तीसरी भी शाखा है उत्तर के बदले व्यर्थ अभिमान की बात लिखना योग्य नहीं इत्यादि० ॥

जब मुन्शी इन्द्रमणि जी ने विचारा कि मेरे नाम से द्रव्य एकत्र कर स्वामी जी आप उड़ाया चाहते हैं, तब तो उन्हों ने शीघ्रता से कितनेक समाचारपत्रों में यह छपा दिया कि जिन महाशयों को मेरी सहायता के लिये रुपया देना हो वह सीधा मेरे पास पठावें और स्थानों का भेजा हुआ द्रव्य मुझको नहीं मिलता ॥

इस के व्यति रिक्त मुन्शी जी ने स्वामी जी को भी अनेक पत्र इस विषय के लिखे कि मुझको रुपया नहीं मिलता यह कार्य्य आपका अत्यन्त ही निन्दनीय है, इस पर कुछ सोच समझ स्वामी जी ने मुन्शी जी को निम्न लिखित पत्र पठाया था ।

मुन्शी इन्द्रमणि जी आनन्दित रहो ।

आपके दो तीन पत्र आये हाल मालूम हुआ, पंजाब के ढाई सौ या तीन सौ रुपये आपके पास स्यात् पहुंचे होंगे। आज हम यहांके सभासदोंसे दरियाफ्त करेंगे कि रुपये भेजे या नहीं, अगर नहीं भेजे होंगे तो हम भिजवाते हैं, चार दिन हुये कि उसी वक्त हमने उनसे कह दियाथा कि रुपये भेज दो अढाई सौ रुपये यहां हैं और सौ रुपये लाला शामलाल के और पंजाब और फर्रुखाबाद से भी आते हैं सब मिलकर सात सौ रुपये होगये खूब होशियारी से काम करना मिती भाद्र पद कृष्णा ६ गुरुवार सम्वत् १९३७ स्थान मेरठ ॥

(दयानन्द सरस्वती)

इसके अगले दिन आनन्दीलाल मंत्री आर्य्यसमाज मेरठ ने दो सौ रुपये के नोट एक निज पत्र की साथ (जिस में लिखा था कि यह द्रव्य आपके स

गड़े की सहायता के लिये हैं) मुरादाबाद मुन्शी जी के पास पठाये परन्तु लिफाफा डाक में डाल देने के पीछे ही कुछ मनमें कपट ने प्रवेश किया तो अगले दिन भाद्रपद २८ अगस्त सन् १८८० ई० को एक दूसरा पत्र इस विषय का लिखा कि दो सौ रुपये के नोट वेद भाष्य की सहायतार्थ फर्रुखाबाद भेज ने थे हमारी समाज के चपरासी की भूल से तुम्हारे पास चले गये कृपा कर उनको मेरठ ही भेज दो सो मुन्शी जी ने पत्र के पाते ही शीघ्र लौटा दिये ॥

प्यारे पाठक गण टुक विचार करना चाहिये चपरासी की भूल से इतना हो जाना तो सम्भव है कि फर्रुखाबाद के लिफाफे में मुरादाबाद का पत्र और मुरादाबाद के लिफाफे में फर्रुखाबाद का पत्र रखदे परन्तु यह तो देखो कि उस लिफाफे में जो चिट्ठी थी उसमें यह भी क्या चपरासी ने ही लिख दिया था कि यह नोट तुम्हारे झगड़े की सहायता में लाहौर से आये थे सो भेजे जाते हैं, ? इत्यादि० ॥

सितम्बर सन् १८८० ई० में कर्नेल अलकाट साहिब और मैडम बिल्वस्टकी शमले जाते हुये मेरठ में स्वामीजी से फिर मिले तो मैडम साहिब ने बहुधा प्रतिष्ठित मनुष्यों के साम्हने ईश्वर के मानने से इन्कार किया और स्वामी जी उसके खंडन करने पर उद्यमी हुए थे परंतु बात अधूरी रहगई और खंडन मंडन तो कुछ भी न हुआ किंतु स्वामी जी और कर्नेल अलकाट के मध्य अप्रीति का अङ्कूरा रोपण हो गया ॥

स्वामीजी के मेरठ में रहते रहते ही मेरठ के आर्य्यसमाज ने एक निम्न लिखित विज्ञापन मुन्शी इन्द्रमणि जी के झगड़े सम्बन्धी प्रकाशित कराया था ॥

॥ विज्ञापन दिया हुआ आर्य्यसमाज मेरठ का ॥

विदित हो कि जो विक्रम सम्वत १९३७ तदनुसार सन् १८८० ई० में मुन्शी इन्द्रमणि जी रईस मुरादाबाद का मुसल्मानों से विवाद होकर मुन्शी जी पर ५००) मेजिष्ट्रेट मुरादाबाद ने जुरमाना किया तब उसपर आर्य्य जनों ने उस मामले को अपना समझ सहाय की थी वह मामला तभी हो चुका था परन्तु मेरठ में उस समय इसके लिये यह नियम नियत किया गया था कि मुन्शी जी के मुकद्दमें में जितना धन बचे वह अच्छे प्रतिष्ठित साहूकार के यहां ।।) व्याजपर रक्खा जाय जब कभी ऐसा ही किसी अन्य वैदिक धर्मावलम्बी आर्य का अन्य मत वालियों से धर्म विषय का विवाद होके कचहरी में मुकद्दमा जाय तब

उसकी सहायता इस धन से हो और मुन्शीजी ने भी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी आदि के सन्मुख मेरठ में स्वीकार कर लिया था परंतु शोक का विषय है कि उक्त मुन्शी जी ने ऐसे उत्तम नियम को तोड़ा अब हिसाब नहीं देते और उलटा चोर कोतवाल को डाडे इसके सदृश लाला रामशरणदास रईस मेरठ और स्वामी दयानन्द सरस्वती पर मिथ्या दोषारोपण करते हैं इस कारण मेरठ आर्य्य समाज को आये व्यय का हिसाब प्रकाश करना पड़ा जिस्से मिथ्या भ्रम जैसा मुन्शीजी को हुआ वैसा किसी अन्य आर्य्य पुरुष को नहो और मुन्शी इन्द्रमणि जी का सत्यासत्य यह हिसाब और मुन्शी जी के विज्ञापन को देखकर सब पर प्रकट हो जायगा, मुन्शी जी लिखते हैं कि बहुत आर्य्य जनों ने मेरे मुकद्दमे की सहायता में मेरठ समाज और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास धन भेजा था उसमें केवल ६००) रु० मेरे पास पहुंचे बाकी उनके पास रहे परन्तु इस मेरठ के मितीवार क्रमानुसार हिसाब । देखने से निश्चय होता है कि मुंशी जी के पास उन्हीं के मामले में ९६३॥।≈॥) मेरठ समाज से पहुचे हैं न जाने मुन्शी जी ने केवल ६००) रु० पाना क्यों अपने विज्ञापन द्वारा प्रकाश किये इस बात से तो मुन्शी जी की अति ऽसत्य ता प्रकट होती है, यदि मुन्शी जी का कथन सत्य है तो इन रुपयों के सिवाय लाला रामशरणदास वा स्वामी जी के पास किसी ने और रुपये भेजे होयं और उनके पास उनकी हस्ताक्षरी सहित रसीद होय शीघ्र प्रकाश करें अथवा करावें क्योंकि सांच को आँच कहां और मुन्शी जी ने हिसाब के छपवाने में टच पच की वा और ही कुछ राग गाने लगे तो यह उनके लिये पूरा कलंक है इसके निवारणार्थ उनको अवश्य चाहिये कि जब जब जितना २ खर्च हुआ है यथावत मितीवार छपवा देवें और शेष धन आर्य्यसमाज मेरठ में सर्वोपकारार्थ भेज दें पूर्व स्वीकृत नियम को भी सत्य करें तो बहुत अच्छी बात है नहीं तो रुपये गये हुए आभी जाते हैं, परन्तु धर्मयुक्त कीर्ति गई हुई कभी नहीं आती (सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते) सत पुरुष को मरण से अप कीर्ति बहुत बुरी समझनी चाहिये, यदि हमारे आर्य्य जनो विशेष कर उपदेशकों का आरंभ से मृत्यु तक एकसा सत्याचरण रहे तो देशकी बड़ी ही उन्नति हो । सर्व शक्ति मान परमात्मा आर्य्या वर्त देश पर कृपा करे जिस से हमारे आर्य्यावर्तीय उपदेशक अपने किये हुये उत्तम उपदेश को लोभादि दोषों से कलंकित न कर के आद्योपान्ति पर्यन्त शुभाचरण से देश की सुदशा बढ़ाया करें । अलमति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥ एतिजीवतमानन्दः ॥ विक्रमी सम्वत् १९३७ तदनुसार सन् १८८० ई० ॥

नकल हिसाब जो कि मेरठ के समाज और मुन्शी इन्द्रमणि जी के विषय का है॥
जमा चन्दा कुल रुपया १५१६) आर्य्यसमाज मुलतान १०) मेम्बरान म्यासा १०५) आर्य्यसमाज लाहोर ११५) आर्य्यसमाज रुड़की १००) आर्य्यसमाज अमृतसर ५०) आर्य्यसमाज फीरोजपुर २३३॥≈) आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद १००) आर्य्यसमाज गुरदासपुर १५०॥‒) आर्य्यसमाज जेहलम् १००) लाला केवलकृष्ण ११) लाला रुकुनराय व लाला मुरलीधर आँरगाबाद से ११८।।) पांडे रामदीन सैकिंडमास्टर दार्जिलिंग १३६।।।) आर्य्यसमाज मेरठ २४५।।) इस रकम में मेरठ शहर के और मेरठ के ज़िला के तीन चार महापुरुषों का जो समाज के मेम्बर नहीं हैं चन्दा शामिल है ॥ खर्च कुल रुपया ९६३।।।≈।।। रजिष्ट्री मुन्शी इन्द्रमणि जी के पास भेजी ता० ७ अगस्त् सन् १८८० ई० ।)॥ दिये मुन्शीइन्द्रमणि जी को मा० लाला श्यामसुन्दरलाल रईस मुरादाबाद के तारीख० ७ अगस्त् सन् १८८० ईस्वी ३००) किराया रेलगाड़ी मेरठ से मुरादाबाद तक चार आदमियों का तारीख १४ अगस्त सन् १८८० ई० ११। किराया रेलगाड़ी का बरेली से मेरठ और बरेली से मुरादाबाद तक ६) लाला शादीराम के खत का महसूल जो इलाहाबाद से आया ।–) किराया गाड़ी जो हुल साहिब बैरिष्टर के पास मेरठ जाते समय दिया गया ता० १४।८।८० ई० ॥) मुकद्दमें पहिले में खर्च हुआ २३) मुकाम मुरादाबाद इसका हाल मुन्शी जी को मालूम है, १७७≈।) खर्च खानगी मेरठ से इलाहाबाद तक ता० ६ सितम्बर सन् १८८० ई० ॥ ३०७) बजरिये नोट के मुन्शी जी के पास भेजे गये १।–) रजिष्ट्री खत का महसूल ३००) बजरिये हुन्डी के मुन्शी जी के पास भेजे गये । १।।) हुन्डियावन दिया गया ३०।१०।८० ई०॥ ३।।) किराया रेल शम्भू नौकर मेरठ से अलीगढ़ तक गये वापिस खुराक के ≈) मुन्शी इन्द्रमणि जी के खत का महसूल, ५५२।–। बाकी रहा यह रुपया त्रैराशिक के हिसाब से ऊपर लिखे चन्दा देने वालोंको मेरठ समाज ने उनकी इच्छानुसार फेर दिया॥

लाला ठाकुरदास गुजरान्वाले निवासी के श्रावण शुक्ला १ सम्वत् १९३७ के पत्र का उत्तर २१ दिन तक कुछ नहीं मिला तो तारीख ३० अगस्त सन् १८८० ई० को एक और पत्र रजिष्ट्री करके दयानन्द के पास भेजा उसका संक्षेप विषय यह है कि आप हमारे प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर नहीं देते प्रथम तो चुप बैठ जाते हैं जब अधिक लिखता हूं तो दूसरों को [illegible] है यह वाजिब नहीं मैं आनन्दीलाल से कुछ नहीं पूछता [illegible] कुछ [illegible] सो आप स्वतः देवें, इत्यादि इत्यादि ॥

जब यह पत्र स्वामी जी को मेरठ मिला तो इसका उत्तर भी स्वामी जी ने आनन्दीलाल मंत्री आर्य्यसमाज के तर्फ से भिजवाया जिसका सारांश यह है कि आपके लेखों को देख २ मुझे आश्चर्य्य होता है आप पुनः पुनः पिष्ट पेषण वत् श्रम क्यों करते हो इस समय गुजरान्वाला में आत्माराम जी उपस्थित हैं उनको स्वामी जी के सन्मुख करो जिससे सत्यासत्य का निर्णय हो जायगा, आप लोग अपने धर्म ग्रंथो को गुप्त रखकर अपने आपको ससार में निन्दनीक ठहराये हुये हो, उनका भाषा में उल्था कराकर क्यों नहीं प्रकाशित कराते था ममार्गियों के सदृश क्यों छिपाते हो ? पूर्वोक्त बदनामी दूर करने के आप दो उपाय करिये, एक स्वामी जी के साथ तुम्हारे मतके सर्वोतम विद्वान् का शास्त्रार्थ होना और दूसरे अपने सब पुस्तकों को अनेक देश भाषाओं में छपवाके प्रसिद्ध करणा जब तक ऐसा न करोगे तब तक पूर्वोक्त कलंक दूर न होगा, प्रथम यत्न का उपाय इतने ही पर हो जावैगा कि आत्माराम जी का और स्वामीजी का शास्त्रार्थ हो जाय, स्वामी जी से तो हमने सम्मति कर लई है, तुम आत्माराम जी से पूछो कि इसको स्वीकार करते हैं वा नहीं दूसरे तीसरे पत्रका उत्तर इस लिये नहीं दिया कि प्रथम पत्र में हमने लिखा वही बहुतया तुम इतना भी नहीं समझते कि "सत्यार्थप्रकाश" को स्वामी जी ने नहीं किंतु राजा जयकृष्णदास मुरादाबाद निवासी ने छपायाथा, शास्त्रार्थ के समय तुम्हारे पक्ष का पंडित यदि "सत्यार्थप्रकाश" के द्वादश समुल्लास को मिथ्या सिद्ध करदेगा तो स्वामी जी पुनर्वार के छपने पर उसको निकाल डालेंगे, इस लिये शास्त्रार्थ जितना शीघ्र हो सके करो हमारी तर्फसे कुछ विलम्ब नहीं है, इत्यादि० ॥ मिती भाद्रपद शुक्ल० ८ रविवार सम्वत् १९३७ आनन्दीलाल मंत्री आर्य्यसमाज मेरठ ॥

भाद्रपद में यजुर्वेद भाष्य अंक १६ व १७ प्रकाशित हुये उनके टाईटिल पेजोंपर कर्नल अलकाट और उसकी सुसायटी के विषय में लेख है जिसको हम व्यर्थ समझ यहाँ संग्रह करने से बंचित रहते हैं ॥

१९ सितम्बर सन् १८८० ई० को स्वामी जी मुजफ्फरनगर में चले आये ॥ और ऋग्वेद भाष्य अंक १६ व १७ सम्मिलित एकठे प्रकाशित हुये और ऋग्वेद भाष्य अंक १८ व १९ एकठे छपाकर उनके टाइटिल पेजपर यह विज्ञापन दिया था।

"मास अक्टूबर सन् १८८० ई० से यह दस्तूर जारी किया जाता है कि इस बार ऋग्वेद अंक १८ व १० प्रकाशित किये गये अगले महीने में यजुर्वेद

अंक १८ व १० प्रकाशित होगा और फिर सदा एक मास में २ अंक ऋग्वेद भाष्य दूसरे में दो अंक यजुर्वेद के प्रकाशित हुआ करेंगे" ॥

लाला ठाकुरदासने एक पत्र आश्विन कृष्णा ९ सम्वत् १९३७को स्वामी जी के नाम और पठाया जिसका संक्षेप इस प्रकार है। "आप मेरे इस प्रश्नका साफ़ उत्तर क्यों नहीं देते कि जो श्लोक आपने "सत्यार्थप्रकाश" में जैनों के नामसे लिखे वे जैन के किस ग्रन्थ के हैं अथवा किस जैनी से आपने सुने इसका ठीक २ उत्तर दो नहीं अपनी भूल बताकर हमसे मुआफी मांगो। इत्यादि०" ॥

यह पूर्वोक्त पत्र ठाकुरदास ने आर्य्यसमाज गुजरान्वाला की मारफत भेजा था ॥ इस पत्रका उत्तर स्वामी जी ने अपने हस्ताक्षर से तो नहीं दिया परंतु आर्य्यसमाज गुजरान्वाला ने जो पत्र ठाकुरदास को लिखा उसका खुलासा इस प्रकार है ॥

लाला ठाकुरदास जी नमस्ते।

जो पत्र आपने स्वामी जी के पास भेजने को इस समाज में पठाया था उसमें सर्व या वे ही बातें भरीथी जो पुरानी और व्यर्थ हैं इस लिये वह स्वामी जी के पास नहीं भेजा गया, क्योंकि स्वामी जी तो इसके उत्तर में लिख चुके हैं कि आत्माराम से हमारा शास्त्रार्थ हो तो सत्यासत्य का भली प्रकार निर्णय हो जाय आपने प्रथम से ही अनुचित शब्दों का प्रचार किया यह विद्वानों को उचित नहीं आगे आपकी इच्छा। इत्यादि० ॥ नमस्ते ॥ आर्य्यसमाज गुजरान्वाले से लिखा।

फिर कार्तिक ९ सम्वत् १९३७ का लिखा एक और पत्र गुजरान्वाले आर्य्यसमाज ने आत्मारामजी के नाम पठाया जिसमें लिखा था कि हमारे पास स्वामी दयानन्द जी का एक पत्र आया है जिसमें लिखा है कि पंडित आत्मा राम जी से एक पत्र उन सन्देह मात्र बातोंका जिनको वे "सत्यार्थप्रकाश" में जैन विरुद्ध समझते हैं उनके हस्ताक्षर से हमारे पास भेजो तब हम विचार पूर्वक उनका उत्तर देंगे इस लिये आप हस्ताक्षर करके पत्र पठावें तब हम शीघ्र स्वामीजी के पास भेज देवें ॥ इत्यादि०। हस्ताक्षर नारायणकृष्ण आर्य्यसमाज गुजरान्वाला की तर्फसे ॥

और भानन्दीलाल मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठ ने इसी विषय में अपने आर्य्य समाचार मेरठ बाबत मास आश्विन संख्या १८ जिल्द २ पृष्ठ १०३। १०४। १०५में मनमाने कुवचन लाला ठाकुरदासको लिख अपनी योग्यता दिखलाई है, उनकी नकलको हम व्यर्थ समझ और विस्तार कि भयसे यहाँ नहीं लिखते हैं॥

पूर्वोक्त पत्र के उत्तर में २५ अक्टूबर सन् १८८० ई० को ठाकुरदास ने जो पत्र दयानन्द सरस्वती को लिखा उसका खुलासा इस प्रकार है ।

महाशय जो पत्र आपने आत्माराम जी के नाम भेजा उन्हो ने देखते ही मुझ को देदिया क्योंकि उनको वादानुवाद से कुछ काम नहीं पत्रका शिरनामा और ऊपर आत्माराम जी का नाम देखकर तो मैंने समझा थाकि आर्य्यसमाज को भ्रम हुआ जो उन्हों ने मेरे नाम के बदले आत्माराम जी का नाम लिख दिया परन्तु नहीं जब पत्रका आशय पढा तो यही प्रतीत हुआ कि आर्य्यसमाज ने जान बूझकर यह भ्रांति की है, और इस भ्रांतिके मूल कारण आप ही क्योंकि आपही के आदेश से आर्य्यसमाज ने ऐसा किया । प्यारे दयानन्द जी यह बुद्धि आपको किसने दी ? यह आपको किसने समझाया ? कि आत्माराम जी के नाम पत्र भेजो ? मैंने एक प्रश्न किया है उसके सम्बन्ध में पाच छ पत्र भेज चुका हूं आपके भी दो तीन पत्र मेरेही नाम आये फिर आत्माराम जी के साम्हने विना बुलाये क्यों जापड़े ? यह विद्वता आपने कहाँसे सीखी कि जो प्रश्न करे उसका उत्तर न देना और दूसरे से जा भिड़ना ? आप प्रथम मेरे साधारण प्रश्नका उत्तर दीजिये फिर आत्माराम जी से भिड़ना, आपने छोटे से प्रश्नका उत्तर तो न दिया और व्यर्थ चार महीने व्यतीत करदिये अब मुझको अदालत करना अवश्य होगा । इत्यादि०॥

तत्पश्चात एक पत्र गुजरान्वाला आर्य्यसमाज ने आत्माराम जी की सहीके लिये भेजा और ठाकुरदास ने आत्माराम के हस्ताक्षर कराकर समाज वालोंके पास भेजदिया ॥

तारीख ७ अक्टूबर सन् १८८० ई० को स्वामी दयानन्द सरस्वती मुजफ्फरनगर से देहरादून पधारे, और इस नगर के अनेक ब्राह्मण वैश्य मुसल्मान ईसाईयों से वार्तालाप हुआ परन्तु नियमानुसार शास्त्रार्थ नहीं हुआ और लाला ठाकुरदास के पूर्वोक्त पत्रका उत्तर स्वामीजी ने देहरादून आर्य्यसमाज के मंत्री कृपाराम के हाथसे लिखाकर भेजा जो ता० ४ नवम्बर सन् १८८० ई०का लिखा हुआ था और नारायणकृष्ण मंत्री आर्यसमाज गुजरान्वाला ने अपने ता० १३ । ११ । १८८० ई०के पत्र के साथ ठाकुरदास के पास भेजकर विदित किया कि स्वामी जी की आज्ञानुसार एक नकल इसकी लुधियाने के श्रावकों को भी भेजी गई है ॥

स्वामी जी के पूर्वोक्त पत्रका खुलासा यह है कि "सत्यार्थप्रकाश" में जो श्लोक जैनोंके नामसे लिखगये हैं वे सब "बृहस्पति मतानुयायी चार्वाक जिसके

मतकानामांतर लोकायत भी है" और इतना लिखकर ये श्लोक * पुनः इस उत्तर में भी लिखे हैं, फिर लिखा है कि मैंनें प्रथम चिट्ठी के उत्तर में लिखवा दियाथा कि जैनमत की कई एक शाखा हैं, आपने उन शाखों के प्रतितंत्र सिद्धान्त जाने होवे तो यह भ्रम न होता, और उत्तर देने में विलम्ब इसलिये हुआ कि आपने अपने पत्र अनुचित रीति से लिखे थे यदि उचित रीति से लिखते तो उत्तर में विलम्ब न होता जैसे लुधियाने के जैनी पंचों ने यथा योग पत्र लिखा तो उनका उत्तर शीघ्रता पूर्वक दिया गया, और उनको यह भी लिखा दिया गया है कि तुम लोग पंडित आत्मारामजी को सर्व शिरोमणि गिणते हो सो यदि उनका और हमारा पत्र व्यवहार अथवा समागम हो तो अत्यन्त लाभ हो परन्तु खेदका विषय है कि हमारी रजिष्ट्री चिट्ठी का भी उत्तर उन्होंने नहीं दिया, ठाकुरदास को शुद्ध हिन्दी लिखना नहीं आता तब वह स्वामी जी के सन्मुख वाद करणे के योग्य क्योंकर हो सक्ता है आत्माराम तो अलग रहें और ठाकुरदास सन्मुख हो यह शिष्टों को योग्य नहीं यदि आपको हमसे कुछ लिखापढी करना है तो किसी विद्वान को खड़ा करिये। इत्यादि० ॥

स्वामी दयानन्दजी ने जो पत्र आत्माराम जी के उत्तर में लिखा उसकी पूरी नकल इस प्रकार है ॥

पंडित आत्माराम जी नमस्ते ।

पत्र आपका तारीख ४ नवम्बर का लिखा हुआ १० नवम्बर सन् १८८० ई० को सन्ध्या समय मेरे पास पहुंचा देखकर आनन्द हुआ अब आप के प्रश्नों का उत्तर लिखता हू ॥

(प्रश्न) न० १ "सत्यार्थप्रकाश" समुल्लास १२ पृष्ठ ३९६ पंक्ति १६ में लिखा है कि जब प्रलय होता है तो पुंगल जुदे २ हो जाते हैं ऐसा नहीं (जवाब) मैंने ठाकुरदास जी के जवाब में एक पत्र आर्य्यसमाज गुजरानवाला की मारफत भेजा था जो आप के पास भी पहुंचा होगा उस में यह जतलाया गया है कि जैन बौद्ध दोनो एकही हैं याज्ञ [illegible] महावीर [illegible] बुध और बौद्ध आदि श[illegible]ब्दों से पुकार से हैं, औ[illegible] जन जै[illegible] आदि नामसे भी बोलते हैं, और जिनको [illegible] ने हैं उनही को लोग

* असल में यह श्लो[illegible] [illegible] पुरुषकी [illegible] बनाई हु[illegible] [illegible] कुछ [illegible] छिव [illegible] घरा [illegible] नहीं [illegible]

बुध स्वंगबुध और चारबुध वगैर कहते हैं, आप अपने ग्रंथो में देख लीजिये (ग्रन्थ ट्रेकसार पृष्ट ६९ प १३) बुध बोद्ध यह एक सिद्ध अनेक सिद्ध भगवान हैं (पृ ११३ पं ७ पुस्तक मजकूर) चार बुध की कथा (पृ ११७ प० ८) हर एक बुधकी कथा (पृ ११८ पं) स्वंगबुद्ध की कथा (पृ १५२ पं १४) चारबुध समकाल मोक्षको गये इसी तरह आपके ग्रन्थों में कथा साफ साफ मौजूद हैं जिसको कोई श्रावक खर्खिलाफ न कर सकें गे और ठाकुरदास की पहली चिट्ठी में आप लोग कई श्लोक मंजूर भी कर चुके हैं उस चिट्ठी की नकल मेरठ में है आपके पास भी होगी (कल्पभाष्य भूमिका) जिसमें राजा शिवप्रसाद जो ने अपने जैनमत स्थित पिता आदि पुरुषाओं की परमपरा का हाल लिखा है उनकी भी गवाही देख लीजिये। इतिहास तिमिर नाशक खंड ३ पृष्ट ८ पंक्ति २१ से पृष्ट ९ की पंक्ति १२ तक साफ लिखा है कि जैन और बौद्ध एकही के नाम हैं, अब रहे बौद्धकी शाखाओं के भेद सो चारवाक आभानक आदि हैं, जैसे आपके यहां श्वेताम्बर आदि भेद हैं, और जैसे पुराणमत में रामानुजी आदि वैष्णवी शाखा और पाशुपति आदि शैवों में और बाममार्गी आदि दश महाविद्या की शाखें और ईसाईयों में रोमन कैथलिक आदि और मुस्लमानों में शाया और सुनी आदि शाखों के चन्द दर चन्द भेद हैं, परन्तु वेद बाइबिल और कुरान के फिरकों में वह एकही समझे जाते हैं, इसी तरह बौद्ध और जैन को शाखें जुदी २ हैं, मगर जैन या बौद्ध मत एकही है अगर आप सब सिद्धांतो से जानकार होवे और ग्रन्थ देखे होवे तो "सत्यार्थप्रकाश" में जो लेख उत्पति और प्रलय के विषय में है उसपर शंका कभी नहीं करते (सत्यार्थप्रकाश पृष्ट ३९७ पं० २४) आदमी आदि को ज्ञान है ज्ञान से वह गुनाह करते हैं, इसलिये उनको दुःख देने में दोष नहीं। यह बात जैनमत में नहीं (उत्तर) ग्रन्थ ट्रेकसार में पृ० २२८ पं० १५ से ले के पं० १९ तक देख लीजिये क्या लिखा है यानी सोजन आदि समुदाय की आज्ञा जैसें दशनवकुमार ने यक्ष के हुक्म से बौद्धरूप रचना करके पमरची नाम पुरोहित को कि वह जिनका वैरी था लातमे मार के सातवें नर्क में भेजा ॥ऐसेंही और२ बातें ॥

(प्रश्न) न० १ सत्यार्थप्रकाश पृ ३९० प १ उसका पद्मशिला पर बैठकर चराचर को देखना।

(उत्तर) पुस्तक रत्नसार भाग पृ २३ पं १२ से लेके पृ २४ तक देख लीजिये कि महावीर और गोतम की चर्चा में क्या लिखा है ॥

(प्रश्न) न० ४ सत्यार्थप्रकाश पृ ४०१ पं २१ उनके मतमें नहीं वृह अगर सत्पुरुष भी होय तो भी सेवा नहीं करते अर्थात् जलतक नहीं देते।

(उत्तर) पुस्तक ढूंढकसार पृ २२१ पं ३ से लेकर पं ८ तक लिखा है देख लीजिये॥

(प्रश्न) न० ५ सत्यार्थप्रकाश पृ ४०१ पं २७ उनका साधु जब आता है तो जैन लोग उसकी डाढी मूछ और शिरके बाल सब नोच लेते हैं।

(उत्तर) ५ ग्रन्थ कल्पभाष्य पृ १०८ प ४ से लेके ९ तक देख लीजिये और प्रत्येक ग्रन्थ में दीक्षा के समय अर्थात् चेला बनाने के समय पांच मुट्ठी बाल नोचना लिखा है वृह काम अपने हाथ अथवा चेला गुरु के हाथ में होता है और विशेष कर ढूंढियों में है॥

[प्रश्न] ६ सत्यार्थप्रकाश पृ ४०२ प २० से लेके जो श्लोक जैनियों के बनाये लिखे हैं वृह जैनमत के तथा जैनमत केही ग्रन्थों के हैं।

[उत्तर] ६ में इसका उत्तर इससे पहिले पत्रमें लिख चुका हूं आपके पास पहुंचा होगा देख लीजिये॥

[प्रश्न] न०७सत्यार्थप्रकाश पृ ४०३ पं १ अर्थ काम दोनो पदार्थ मान्ते हैं।

[उत्तर] ७ यह मत जैन सम्बन्धी सम्प्रदाय चारवाक का है जिसमें ऐसे श्लोक कि "जबतक जिये सुखसे जिये मौत पोशीदा नहीं" खाक शुदा जिसमें फिर आना नहीं आदि। अपने मन के माने हैं इसी तरह और काम शास्त्र के अनुसार अर्थ और दोहे बनाये और माने गये हैं, यह संक्षेप से उत्तर हुए क्योंकि पत्र द्वारा ब्यौरा नहीं खुलसक्ता। जब कभी मैं और आप मिलेंगे तो दलीलों से ठीकर निश्चय करा सक्ता हूं और जो कुछ सन्देह सत्या० के १२ वें समु० में हों वे मेरठ के आर्य्यसमाज की मारफत लिखकर भेज दीजिये सबका ठीक २ उत्तर दिया जायगा अब मैं यहां थोड़े दिन रहूंगा अगर आप अम्बाला तक आ सकें तो तारीख १७ नवम्बर सन् १८८० तक सुबह के आठ बजे से पहले देहरादून और उसके बाद आगरे में मुझको तार में खबर देनी चाहिये कि मैं शास्त्रार्थ के वास्ते आसकूं क्षाना को इसनाशे बहुत है, सं० १९३७ मिती कार्तिक शुदि १२ इतवार॥ द० दयानन्द सरस्वती जी देहरादून से।*

* यह पत्र दयानन्द दिग्विजय भाग १ पृष्ठ ६७ से लिया गया है, और इस पत्र में जो स्वामी जी ने बहुधा ढूंढकसार ग्रन्थ के प्रमाण दिये इस लिये लिखने की आवश्यकता हुई कि ढूंढकसार जैन धर्म्म का पुस्तक नहीं है, जैसे संसार में सिंहासन बत्तीसी ऐसा श्वेताम्बर जैनियों में ढूंढकसार है॥

जब मुन्शी बखतावर सिंह वैदिक यन्त्रालय से जुदा हुये तो स्वामी जी ने मार्गशिर्ष मासके छपे ऋग्वेद भाष्य अंक २० । २१ के टाइटिल पेजके अंतके पृष्ट पर यह छपवाया कि "१५ नवम्बर सन् १८८० ई० से मुन्शी बखतावर सिंह वैदिक प्रेस से जुदा किये और शादीराम मेनेजर बनाये गये" और कुछ थोड़े दिन पीछे एक अर्जी दावे (जिसमें मुन्शी बखतावरसिंह के ऊपर तेरा हजार रुपये वैदिक यन्त्रालय के हिसाब के बाकियें यह लिखाया) पर स्वामी जी ने हस्ताक्षर किये, और उसकी हल्फी (सपथपूर्वक) तसदीक करके कांताप्रसाद आदि मनुष्यों के हाथ शाहजहान्पुर की दीवानी अदालत में दाखिल कराया परन्तु बड़े खेद के साथ प्रकाश किया जाता है कि स्वामी जी ने कसम (सौगन्ध) भी खाई और अनेक यत्न भी किये परतु दावा खारिज होगया जिसका अपील भी नहीं हुआ ॥

१७ नवम्बर सन् १८८० ई० तक स्वामी जी देहरेदून में रहे फिर आगरे को रवाना हुए मार्ग में मेरठ के रेलवे स्टेशन पर लाला रामशरणदास से मिले और कहा कोयल जाता हू फिर कोयल पहुचकर बाबू तोताराम वकील से मिले और तत्पश्चात् आगरे में पहुच कर राय गिरधरलाल साहिब वकील के मकान पर सुशोभित हुये इसका सविस्तर वर्णन मुन्शी इन्द्रमणि जी के पत्रमें आगे चलकर मिलैगा ॥

तारीख २२ नवम्बर सन् १८८० ई० को लाला ठाकुरदास ने एक बड़ा लम्बा चौड़ा पत्र लिख रजिष्ट्री द्वारा स्वामी जी के नाम भेजा जो उक्त ठाकुरदास के लेखानुसार स्वामी जी का पता न मिलने के कारण १४ दिसम्बर को उल्टा आया * जिसका संक्षेप (खुलासा) यह है कि प्रथम तो पुराना ही झगड़ा भरा है मध्य में ये पांच प्रश्न हैं,

(१) यह आपने चार्वाक मत को जैन मत की शाखा किस शास्त्र से प्रमाण किया वा कौन से जैनी शास्त्रों में लिखा देखा ?

(२) यह कितना काल हुआ कि चार्वाक मत जैन मत सें निकला और जैन मत की शाखा निश्चित की गई ?

(३) चार्वाक मत के प्रचार देने वाला कौनसा जैनी था वा किस जैन

---

* हम नहीं कह सके कि ठाकुरदासजी का यह कहना कहां तक सच है कि स्वामी जी का पता न लगने से पत्र उलटा आया क्योंकि डाक वालों का नियम है जहां तक बने चिट्ठी पहुंचा देते हैं ॥

धर्म आचार्य का चेला था?

(४) कौन कौन से ऐसे नियम हैं, जो जैन और चार्वाक मत एक हैं और आपस में मिलते हैं और कौन कौन से नियमों को देख आप सिद्ध करते हैं कि चार्वाक और जैन मत एक हैं?

(५) जैन मत की सब कितनी शाखा हैं? उनका पृथक् पृथक् नाम पते वार कहो? उन शाखाओं के पृथक् पृथक् होने में क्या प्रमाण है? तथा चार्वाक मत उन शाखाओं से किस की प्रति शाखा है? इस उपरान्त लाला ठाकुरदास ने अपने पत्र में स्वामी जी को अनेक घुरकियां दी हैं, हमसे माफी मांगो अपना पीछा छुटाओ नहीं पश्चात्ताप करोगे, आपने लुधियाने के पत्र में लिखा पूर्वोक्त श्लोक में बहुधा जैन ग्रन्थों के भी हैं जिनको ठाकुरदास जी ने स्वीकार भी किया है भला स्वामी जी मैंने किस पत्र में स्वीकार किया है ऐसा झूठ बोलना छल करना आपको किस ने सिखलाया आप इसी प्रकार धोखे बाजी करते हैं आप स्मरण रखिये कि आपका यह सब कपट अदालत में दिखाकर आपको यथेष्ट दंड दिला दिया जायगा, और इस पत्र का उत्तर चाहे आप भेजें चाहे न भेजें यह आपकी इच्छा है, इत्यादि०

आगरे से स्वामी जी ने एक पत्र २४ नवम्बर को लाला रामशरणदास के नाम भेजा, और २९ नवम्बर तथा ६ दिसम्बर को एक एक पत्र लिख मुन्शी इन्द्रमणि जी के नाम पठाये उनकी यथार्थ नकल मुन्शी इन्द्रमणि जी के उत्तर में आगे चलकर उत्तरार्द्ध भाग में लिखेंगे।

शास्त्रार्थ काशी जो सम्वत् १९२६ में हुआ था इस सम्वत् १९३७ के कार्तिक शुक्ला १२ को वैदिक यन्त्रालय काशी में पुस्तकाकार छपा और इसी सम्वत् के मार्गशीर्ष मास में सन्धि विषय १ वेदांग प्रकाश (जिसमें अव्ययार्थ १ आख्यातिक १ सौवर १ पारिभाषिक १ धातुपाठ १ उणादि गण १ गणपाठ १ यह छ पुस्तक शामिल हैं) छपकर प्रकाशित हुए॥

पौष सम्वत् १९३७ में ही यजुर्वेद भाष्य अंक २० व २१ छप कर प्रकाशित होगये, जिसके टाइटिल पेजपर कोई संग्रह योग विज्ञापन नहीं था

यद्यपि आगरा गोकुलपुरे में एक आर्य्यसमाज पहिले ही से था परन्तु शहर से यह स्थान दूर है इसलिये २६ दिसम्बर को एक खास जलसा इस लिये किया गया कि शहर में एक नवीन आर्य्यसमाज स्थापित किया जावे, और एक गोरक्षिणी सभा भी नियत हो इस पर स्वामीजी ने बड़ी धूम धाम से व्याख्यान किया और ९००) रुपया चन्दा तो उसी समय होगया और २८

दिसम्बर के जल्से में १००) रुपये और जमा हुए जिसमें २५) रुपये एक मु स्लमानने दिये थे।

लाला ठाकुरदासजी निम्न लिखित पुस्तक दयानन्द मुख चपेटिका में लिखते हैं कि जब हमारा पत्र १४ दिसम्बर को लौटकर चला आया और किसी समाज वालेने हमको स्वामी जी का पता नहीं दिया तब हमने २१ दिसम्बर सन् १८८० ई० को एक पत्र समाज वालों पर फारसी में लिखा जिसका आशय यह था कि स्वामीजी के पास हमारे प्रश्न का उत्तर नहीं है, इससे स्वामी जी छुपे बैठे हैं, आप उनका पता बतलादो, इसका उत्तर समाज वालोंने अट का सट जो चाहा लिखा परंतु स्वामीजी का पता नहीं बतलाया उस समय हमने १ ली जनवरी सन् १८८१ ई० के दिन एक पत्र समाज वालों को और लिखा जिसका आशय यह था कि हम दिगाम्बरी श्वेताम्बरी दोनो प्रकार के जैनी तारीख २० जनवरी सन् १८८१ ई० को स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने अम्बाले आवेंगे तुम स्वामी जी को भी वहा हाजिर रक्खो। और सब समाजियों में खबर दे दो तब इस पत्रका उत्तर भी समाज वालों ने उलटा ही दिया। जब हमने फिर तारीख १२ जनवरी सन् १८८१ ई० को यही लिखा कि हम दोनो पक्षके जैनी अम्बाले आनकर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करेंगे और तारीख २० से २३ तक स्वामी जी से चर्चा होगी, इस पर स्वामीजी अम्बाले में नहीं आये हम उनकी राह देख अम्बाले में बैठकर चले आये, और तारीख ६ फरवरी सन् १८८१ ई० को एक छपा हुवा निवेदन सम्पूर्ण समाजियों के नाम पर रवाना किया जिसका खुलासा इस प्रकार है॥

यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है कि स्वामीजी ने हमारे जैन धर्म्म के नामसे मिथ्या श्लोक बनाकर हमारी बहुत बड़ी निन्दा की है, और जिसका प्रमाण स्वामी जी के पास कुछ भी नहीं है, और हमारे पूछने पर स्वामी जी धमकी देनेके सिवाय और कुछ नहीं कहते हमने बहुधा यह चाहा कि यह झगड़ा पत्रद्वारा ही समाप्त हो परंतु स्वामीजी ने पत्र द्वारा इन श्लोकों को चार्वाक का बतलाकर जैन और बौद्ध चार्वाक सबको एक बतलादिया और नवीन अनर्थ किया, अब आप और सुनियें।

आनन्दीलाल मंत्री आर्य्य समाज मेरठ अपने पत्र में लिखते हैं कि सम्पूर्ण आर्य्य समाज स्वामीजी के अनुकूल हैं तुम सब जैनी भी सहमत होकर अदालत करने को उठो तुम लोगोंने सत्य वेद विद्याका नाशकर हमको बहुत हानि

पहुंचाई है, इस लिये तुम्हारा तन मन धन भी हमारे नुकसान को पूरा नहीं कर सक्ता इत्यादि० ॥

सो मैं आपसे पूछता हूं क्या आप भी इस को प्रमाण करते हैं? और जो ऐसा ही है तो क्या जिस जुर्म (अपराध) में स्वामी दयानन्द दोषी ठहरते हैं आप भी उसमें शमूल हुआ चाहते हैं, इस वाक्य का ठीक पता लगाने के लिये कि आनन्दीलाल का लिखना आप सर्व समाजी मनुष्य स्वीकार करते हैं कि नहीं यह निवेदन पत्र भेजा जाता है एक मास तक इसके उत्तर की राह देखूं गा, सो इस अवसर में आप मुझको अपने सच्चे अभिप्राय से भेदी करें और अपने आपको उस कलंक से बचावें जिसको मंत्री मेरठ समाज ने सर्व समाजियों के शिरपर धरा है, नहीं तो फिर आप सम्पूर्ण समाजियों पर स्वामी जी सहित अदालत दीवानी में सम्पूर्ण जैनियों की तर्फ से हतक इज्जत की नालिश की जायगी और हर्जा तथा खर्चा जो हमारा इतने दिनोंसे हो रहा है तुमसे भराया जायगा वगैर ॥

पूर्वोक्त छपे हुये निवेदन पत्र का उत्तर तो किसी समाज वालेने भी कुछ नहीं दिया परंतु स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य पंडित गोपाल शर्म्मा शास्त्री फर्रुखाबाद निवासी ने एक दयानन्द दिग्विजयार्क प्रथम भाग नाम पुस्तक छपाई जिसके आरम्भका दिन माघ शुक्ला ५ गुरुवार सम्वत् १९३७ और समाप्त करने का दिन ज्येष्ठ शुक्ला ९ चन्द्रवार सम्वत् १९३८ है जो निम्न लिखित श्लोकों से विदित होता है ॥

मुनिरामाङ्क भू वर्षे माघे मासे सिते दले।
पचम्या च गुरौ सिद्धे ग्रन्थारम्भ कृतो मया ॥ १ ॥
वसु रामाङ्क चन्द्राब्दे शुक्रे मासे सिते दले॥
नवम्या चन्द्र वारेच ग्रथोय पूर्णता गतः ॥ २ ॥

हम नहीं कह सक्के इस पुस्तक के रचयता ने क्यों ऐसी भूलकी जो छिपाये से नहीं छिपती स्वामी जी का रियासत मसूदा में जाकर ढूंढियों से शास्त्रार्थ करनेका समय आषाढ और श्रावण सम्मत् १९३८ है जबकि स्वामी जी वहां पधार कर विराज मानथे परन्तु जब दिग्विजय प्रथम भाग ज्येष्ठही में पूरा होगया तो मसूदा का हाल उसमें कैसे लिखागया।

उक्त पुस्तक में लाला ठाकुरदास जी के विषय में यह लिखा हुआ है॥

विदित हो कि श्रीयुत विजयजी महाराज सर्वत्र व्याख्यानों में जैनियोंके मतका भी खण्डन बराबर करते हैं परन्तु अबतक कोई ऐसा प्रसंग नहीं आया कि उन लोगोंने कहीं सन्मुख बैठ शास्त्रार्थ किया हो इस सम्वत्सर में जैनियों के पुजारी लाला ठाकुरदास नगर गुजरान्वाला मुल्क पंजाब वाले ने कुछ छेड़छाड़ की थी उसका कुछ वृतान्त अनुरूप प्रकार से सबको विदित होने के लिये यहां लिखा जाता है, और दो आर्य्य समाचार मेरठ का सार है भावार्थ देखो उर्दू आर्य्य समाचार मेरठ संख्या २२ जिल्द २ पृष्ठ ३१३ बाबत् सन् १८८० ई०

अरसा एक साल या कुछ कम बेश से हमारे एक जैनी भाई लाला ठाकुरदास जी आपेसे बाहर होगये हैं अपना समय निरा बे मतलब तू तू मैं मैं में खोते हैं और दूसरों का भी उसके देखने सुने से खराब कर रहे हैं कभी तो सत्यार्थप्रकाश के १२ वे समुल्लास के लेख का सबूत तलब करते कभी नालिश तौहीन मजहब की धमकी देते कभी अखबारों के द्वारा यह प्रकाशित करते हैं कि स्वामी दयानन्द जी रूपोश होगये हम उनपर इस हफ्ते में अवश्य नालिश करेंगे । पहिले तो हम लोग खामोश रहे जब उनके अत्याचार से चुप बैठना और ही कुछ भाषित होने लगा तब लाचार उत्तर देने ही पड़ा वहां क्या था वे समझते थे कि हमारी मत सम्बन्धी किताबें जब हमीको व मुश्किल मिलती हैं तो स्वामी जी क्योंकर पावेंगे, आखिर कार मजबूर होकर अपना लिखा खुद काटेंगे । दूसरे यह भी जानते होंगे कि इस नाहक की तू तू मैं मैं से मेरा नामभी मत हितैषियों में गिणा जावेगा । इनका पहिला मनोरथ तो सिद्ध न हुआ, रहा दूसरा वह अच्छा नहा तो खैर बुराही सही बुरेहो नामसे प्रसिद्ध होगये, जब पहिले पत्रका उत्तर इनको मिला तो इधर से मुंह मोड़ दूसराही तोड़ तोड़ लड़ाया अर्थात् अखबारों पर दांत निकाले और उसीके साथ अनन्दलाल मन्त्री आर्य्य समाज मेरठ पर भी क्रोधित हुए हैं । इत्यादि ।१।२।३।४ आगे उस पत्र की नकल कर दी है जो कार्तिक शुक्ला ४ शनिवार सं० १९३७ को दयानन्द जी ने दहरे से लिखा था ॥

स्वामी जी का एक दूसरा पत्र आत्माराम जी के नाम इस प्रकार से है।

आनन्द विजय आत्माराम जी । नमस्ते ।

आपके पत्र लिखित सब समाचार विदित हुए जो आपने लिखा कि बौद्ध और जैन के एक मानने से हमारी हतक इज्जत नहीं इससे आनन्द हुआ मगर यहतो आपने लिखा कि योगाचार आदि चार मत जिम बौद्ध के हैं वह जैन

मत के एक अलग शास्त्र का है इसका जवाब मैं भेज चुका मजहब म शास्त्रतर शास्त्र का फर्क थोड़ी बातें जुदी होनेसे होता है मगर बहैसियत मजहब शास्त्रें एकही मजहब की होती हैं देखिये कि उनही मनकरों में चार्वाक्यादि मनकर हैं और जो आप उनका इतिहास वा जीवन चरित्र पूछते हैं सो इसका जवाब भी मैं दे चुका हू भावार्थ इतिहास तिमिरनाशिक के तीसरे भागमें देख लीजिये। और आप जिन बौद्धोंको अपने धर्म्मसे पृथक् लिखते हैं वह आपकी आम्नाय भेदसे चाहे जुदेही हों परतु धर्म्म से जुदा नहीं हो सक्ते जैसे कई जैनी श्वेताम्बर दूसरे सम्वेगी साधुओं पर तर्क करके उनको नवीन और पृथक् मान्ते हैं और यह विवेकसार पुस्तक में सविस्तर लिखा हुआ है और इसी प्रकार आप लोगों ने उनपर अनेक तर्क सम्यक्त तृगणी पुस्तक में लिखे हैं, सो इस्से वे और आप बौद्ध या जैन धर्म्म से अलग नहीं होसक्ते और न कोई विद्वान् उनके धार्मिक वर्ताव से उनको अलग मान सक्ता है, उनके आचार विचार में भिन्नता तो अवश्य होगी और आपके इस कौलसे कि इसमें क्या अजब है कि महावीर तीर्थंकर के समय में चारवाक मजहब था। उनके पीछे नहीं हुआ इस्से मुझको निहायत हैरानी हुई क्या जो महावीर तीर्थंकर के पहिले २३ तीर्थंकर हुए उन सब के पहले चार्वाक मजहब को आप साबित नहीं कर सक्ते? अगर कुछ शक होय तो लीजिये मेरा प्रश्न है कि ऋषभदेव भी चार्वाक मजहब से ही चले हैं फिर इसका उत्तर आप क्या और क्योंकर दोगे? क्या चारवाक १५ प्रकार मेंसे एक प्रकारका यह नहीं है, और उनमें एक भी शुद्ध और वक्ता नहीं हुआ? क्या वे आपके धर्म्माचरण और शास्त्रों से अलग होसक्ते हैं? इस के व्यतिरिक्त आपने भी अपने पत्र में बौद्ध धर्म्म को अपने धर्म में स्वीकार कर लिया है क्योंकि कर कंडादिको आपने बौद्ध माना है और मैंने भी अपने पहिले पत्र में जैन और बौद्धकी एक्यता का लिखित प्रमाण दे दिया है, फिर आपका पुन २ पूछना व्यर्थ और निःस्वार्थ है, जहाँ वादी के वचनोंपर शविश्वास होसके वहां शाक्षी लेनेकी क्या आवश्यकता है, भला जिसके अनेक पुरुषा जैनी थे ऐसे राजा शिवप्रसाद की साक्षी को तथा यूर्प देशके अनेक इतिहास लिखने वाले विद्वान् अंग्रेजों को आप झूटा कह सकते हैं जिन्होंने अपनी बनाई पुस्तकों में स्पष्ट लिखा है कि कुछ बात आर्य्योंकी और कुछ बौद्धोंकी मिलकर जैनधर्म बना है।

दूसरे प्रश्नके उत्तरमें जो आपने लिखा है कि वृह नमुचि नास्तिक जैन धर्मका द्वेषी साधोंको निकालने और तकलीफ देने वालाथा उसको मारकर

सातवें नर्क में भेजा गया यह लेख आपने सत्यार्थप्रकाश के उत्तर में नहीं स मझा? खयाल कीजिये कि वह नमुचि जैन धर्म्मका शत्रु था इस लिये मारा गया उसने जान बूझकर पाप नहीं किया था कितने खेदकी बात है कि आप सीधी बातेको भी उल्टी समझ गये। तीसरे प्रश्न के उत्तर में जो प्राकृत का श्लोक लिखकर उसका समझना मेरे ऊपर छोड़ा इससे प्रकट है कि आप यह जानते होंगे कि मैं उसके आशय तक न पहुंचूं गा हां ! मैं सब मुल्कोंकी बोली नहीं जानता सिर्फ चन्द देशोंकी बोली और संस्कृत जानता हूं परन्तु मत सम्बन्धी सिद्धांतों को विद्वानों के सत्सग से अच्छे प्रकार जानता हूं, आप लोगों ने अ पनी भाषा ऐसी बिगाड़ी है और ऐसे अप्रसिद्ध शब्द बनाये हैं ताकि दूसरा लें न समझे जैसे किसी २ ने शराब का नाम (तीर्थ) और मासका नाम पुष्प आदि बना लिया है ताकि उनके सिवाय दूसरा कोई न जान ले। जो राजा न्याय वान होते हैं वे ऐसे स्पष्ट मार्ग बनाते हैं कि अन्धा भी नियत स्थान पर विना परिश्रम पहुंच जाय लेकिन उनके प्रतिपक्षी मार्गको ऐसा बिगाड़ते हैं कि कोई परिश्रम द्वारा भी चल नहीं सक्ता आप जो पुस्तक रत्नसार को नहीं मा नते तो क्या बहुधा जैनी गण उसको धर्म ग्रन्थ मानते हैं। देखिये आप ऐसे विद्वान होकर मूर्खको मूरप लिखते हैं, और वाक्य शुद्ध के लिये पत्र पर हर- ताल भी लगाई है, कैसा दुःखका विषय है कि आप लोग संस्कृत का क्यामिक्र भाषाभी नहीं जानते। यदि यह मानलियाजाय तो कुछ डर नहीं कि अशुद्धिया मनुष्य ही से हो जाती हैं॥ चौथे सवाल का उत्तर बड़ा हैरान करने वाला है, अधिक तब सीखा जाता है जब सीखने वाले से सिखाने वाला विशेष जानता हो आप भी शायद इसे मानते होंगे? यह बात विद्वानों की नहीं कि अपने ही मतके विद्वानों को माननीय ठहराना और दूसरे मतके विद्वानों को इससे विरु द्ध। गर्ज इन छः निषेधों का कलक आपको ऐसा लिपट गया कि जब ईश्वरही चाहे तब छूटे अब जो आपके ग्रन्थों में हमारी तौहीन मजहबी साफ २ लिखी है उसका उत्तर व वापसी डाक हवाला सफा और सतर दीजिये।

द्वेक सार पर प्रश्न

(१) द्वेक०पृ०१०प०१ में लिखा है कि श्रीकृष्ण तीसरे नर्क को गया।

(२) द्वेक०पृ०४०प०८ से १० तक कि हरिहर ब्रह्मा महादेव राम कृष्ण आदि कामी क्रोधी अज्ञानी स्त्रियों के द्रोपी पाषाण की नौका समान आप डूबे

औरोंको डुबोने वाले थे।

(३) द्रेक० पृ० २२४ पं ०९ से पृ०२२५पं०१९ तक में लिखा है कि ब्रह्मा विष्णु महादेव आदि सब अदेवता और अपूज्य हैं।

(४) द्रेक०पृ०५५पं०१२ में लिखा है कि गंगा आदि तीर्थो और काशी आदि क्षेत्रों से कुछ भी परमार्थ सिद्ध नहीं होता।

(५) द्रेक०पृ०११८पं०२० से लिखा है कि जैनी साधु भ्रष्ट भी होय तो अन्य धर्म्मावलम्बी साधुओं से उत्तम है।

(६) द्रेक०पृ०१प०१ से लेकर लिखा है कि जैनियोंमें बौद्ध आदि शाखें हैं, इस्से सिद्ध हुआ कि जैन मतांतर गत बौद्धादि सब शाखा हैं॥ *

स्वामी जी के आगरे में रहते रहते माघ सम्वत् १९३७ में ऋग्वेद भाष्य अंक २२ व २३ प्रकाशित हुआ और इसके टाइटिल पेजपर कोई सग्रह योग विज्ञापन नहीं था।

पुस्तक दयानन्द दिग्विजय प्रथम भाग में एक लेख उर्दू अक्षरों में इस प्रकार है। अखबार आफ्ताब पंजाब तारीख १७ फरवरी सन् १८८१ ई० में जो आखरी नोटिस गुजरान्वाला की कौम जैनी की तर्फ से छपा है उस्से प्रकट हुआ कि वह पुराना झगड़ा जो उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के उस लेखपर जिस में कि उन्होने जैनियों के पुस्तक और उनके सिद्धांत पर नुक्ताचीनी की, अर्थात् दोष लगाये, एक छोटी बातका बड़ा भारी तुमार बान्ध के कोर्ट में फैसला उचित समजा है॥ देखिये इन्होने इस के उत्तर का जो ६ दिसम्बर के इसी अखबार में छपा है कुछ लिहाज नहीं किया और शर (झगड़ा) बढ़ाने पर मुस्तैद रहे, मुकाम इन्साफ है कि जब दयानन्द सरस्वती जी ने इस कौमके सवालों का जवाब तफसीलवार सफ' म सतर लिखा फिर कौनसी बात बाकी रहगई, यह मुकदमा इस वजह का है कि स्वामी दयानन्द जी ने जो हमारे मजहब पर नुक्ता चीनी की हैं वह गोया हमारी तोहीन मज़हबी है, मगर हम कहते हैं, कि जिस मजहब व मिल्लत पर खूब पक्की बहस की जावे वह एक तरह की पक्की नुक्ता चीनी है, न तौहीन मज़हबकी, हां! जो बनावटी दलील

* यह लेख उर्दू आर्य्य समाचार मेरठ जिल्द २ संख्या २२ मास माघ पृष्ट ११५ में तद भी छप चुका है और इस लेख में प्रश्न ३ के उत्तर में प्राकृत विद्या को प्रमुख क था उसपर मममोंमे स्पर्श प्रमाण यथा रत्नसार विवेकसार को अैनयत्र माननीय ग्रंथ म गये प्रश्न के उत्तर में हर एक मजहब में विद्वानों का होना बतलाना यही सिद्ध करते है जी लाल बुझक्कड़ से भी अधिक नामदार अभिमान मूर्ति थे।

केवल कपोल कल्पित हो तो जरूर होसक्ता है, आया यह कि जो किसी खास मज़हब पर बहस करे वो' तौहीन मज़हबी के इल्ज़ाम का मुल्ज़िम दोषी ठहर सकता है, नहीं तो हरगिज नहीं, बाजे पाठक जन और दूसरे लोग जैनियों के विज्ञापनों से यह समझते हैं कि स्वामी जी उनसे फैसला क्यों नहीं करते, यह ख़याल केवल उनको असली बात के न जानने के कारण है, क्योंकि स्वामी जी ने सब पर जैन मत की सत्यता और असत्यता प्रघट करदी है, बाजे लोग कहते हैं कि जैनी कौम ऐसी वैसी नहीं जो जरासी बातपर मुक़द्दमा करे, पस इसकी कुछ और वज' होगी, यकीनन खास सबब यह है कि एकही आदमी अपना नाम करने को यह हाल करता है, और अपने तमाम मतवालों को इसमें शामिल करता है, गो कि बाक़ी तमाम मतवाले इसैं बुरा ख़याल करते हैं, अब हम सबसे कहते हैं कि बारबार नालिश की धमकी नदें, बरन जो कहते हैं सो कर दिखलावें और इसका नतीजा पावें ॥

पक्षपात इसी का नाम है कि लाला ठाकुरदासके पत्र व्यवहार से रुष्टमान हो आनन्दीलाल मंत्री आर्य्य समाज मेरठने अपने माघ सम्वत् १९३७ के आर्य्य समाचार मेरठ पृष्ठ ३०५ से ३१२ तक में उस रथयात्रा के मेलों की बुराई लिखदी जो माघ सम्वत् १९३७ तथा जनवरी फरवरी सन् १८८१ ई० में शहर और छावनी मेरठ में हुए थे ॥

राजा शिवप्रसाद जी ने एक दूसरा निवेदन पत्र छपाकर स्वामी जी के पास पठाया जो भ्रमोच्छेदन के उत्तर में था, उसकी पूरी नकल नीचे लिखी जाती है ॥

॥ दूसरा वा पिछला निवेदन ॥

(अब इस विषय में आगे कुछ नहीं लिखा जायगा)

एक पुस्तक भ्रमोच्छेदन नाम मेरे "निवेदन के उत्तर में" श्रीमत्स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का निर्माण किया हुआ आया समझा कि अब अवश्य स्वामी जी महाराज ने यथा नाम तथा गुण दया करके मेरे प्रश्न का उत्तर भेजा होगा बड़े उत्साह से खोलके देखा तो शिवप्रसाद कमसमझ, आलस्यी, उसको संस्कृत विद्यामें शब्दार्थ सम्बन्धों के समझने की सामर्थ्य नहीं, वह अयोग्य उसकी समझ अति छोटी, वृष अविद्वान अधर्म कर्मसेयुक्त अनधिकारी उसके नेत्र फूट गये हैं, उसकी अल्प समझ, वह श्वानके समान, जैसी उसकी समझ वैसी

किसी छोटे विद्यार्थी की भी नहीं, उसकी उलटी समझ वह प्रमत्त अर्थात् पागल, उसको वाक्य का बोध नहीं, वह अन्धाना मध्ये काणो राजा, तात्पर्यार्थ ज्ञानशून्य, पक्षपातान्धकार से विचार शून्य, अशास्त्रवित्, अव्युत्पन्न, न्यायमें प्रविष्ट, अन्धा, उसकी मिथ्या आडम्बर युक्त लड़कपनकी बात, वह वादके लक्षण युक्त नहीं उसकी बुद्धि और आंखें अन्धकारावृत, वह सन्निपाती, वह कोदों देके पढा, वह अविद्यायुक्त, मार्ख, बधिर, बिचारा संस्कृत विद्या पढा ही नहीं, ऐसे ऐसे शब्द और वाक्यों से परिपूर्ण पाया खेदकी बात है क्यों वृथा इतना कागज़ बिगाड़ा मैंतो आपही अपने को बड़ा बेसमझ बड़ा अविद्वान् बड़ा अधर्मी बड़ा अशास्त्रवित बड़ा अव्युत्पन्न बड़ा अन्धा पहलेसे माने हुये हूं यदि इनकी जगह राम नाम लिखा होता कदाचित् कुछ पुण्य भी होसकता (राम राम) मेरे सिरपर आट खाट और कोल्हू चढाया है (भ्रमोच्छेदन पृष्ठ १०)—(Thanks) पर मैं तो पहाड़ का भी बोझसहसकता हूं हां मुझको छली और कपटी जो लिखा है उसका कारण कुछ समझमें नहीं आया यदि कहैंकि जो जैसा होता है वैसाही दूसरोंको भी समझता है तो ऐसी बात मनमें लाने के भी पापकाभागी मैं नहीं हुआचाहता जो हो मैं तो अपने प्रश्नका उत्तर देखनेको विह्वल था प्रश्न मेरा एकही इतना कि "आपने लिखा 'ब्राह्मण ग्रंथ सब ऋषि मुनि प्रणीत और संहिता ईश्वर प्रणीत है' वादी कहताहै जो 'संहिता ईश्वर प्रणीत है, तो ब्राह्मण भी ईश्वर प्रणीत है और जो 'ब्राह्मण ग्रंथ सब ऋषि मुनि प्रणीत' है तो संहिता भी ऋषि मुनि प्रणीत है आपने लिखा 'वेद (संहिता मात्र) स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण है' वादी कहता है जो ऐसा तो ब्राह्मण ही स्वतः प्रमाण है आप का संहिता परतः प्रमाण होगा (निवेदन पृष्ठ ८) "आप संहिता के मण्डन और ब्राह्मण के खण्डन का ऐसा प्रमाण दीजिये जिस से ब्राह्मण का मंडन और संहिता का खंडन न होसके केवल आपके कहने से कोई कुछ क्यों मान लेगा" (नि० पृष्ठ ९) निदान भ्रमोच्छेदन की बाईसों पृष्ठ बाईस बार उलट डाली इसके सिवाय उसमें और कुछ उत्तर नहीं पाया कि "देखिये राजाजी की मिथ्या आडम्बर युक्त लड़कपन की बात को जैसे कोई कहे कि जो पृथ्वी और सूर्य ईश्वर के बनाये हैं तो घड़ा और दीप भी ईश्वरने रचे हैं" और जो "सूर्य्य और दीप स्वतः प्रकाशमान हैं तो घटपटादि भी स्वतः प्रकाशमान हैं" (भ्र० पृष्ठ १२ और १३) भला सूर्य और घड़ेकी उपमा संहिता और ब्राह्मण में क्योंकर घट सकैगी उधर सूर्य के सामने कोई आध घंटे भी आंख खोल के देखता रहे अन्धा नहीं तो चक्षु रोग से अ

श्य पीडित होवे जेठ की धूपमें नगे सिर बैठे सन्निपाती नहीं तो ज्वर ग्रस्य अवश्य होजावे यदि अग्न्युत्तेजक काच सामने धरदे कपड़ा लत्ताही जल जावे जन्म भर उछले कूदे कैसे ही बलून पर चढ़े कभी सूर्य तक न पहुंचे इधर कुम्हारसे यदि चाक डंडा और कुछ मिट्टी लेआवे चाहे जितने घड़े आप अपने हाथ बना लेवे और फिर जब चाहे तोड़ डाले संहिता और ब्राह्मण दोनों ग्रन्थ हैं एक से कागज़ पर एक सी सियाही से लिखे हुए वा छपे हुए और एक से कपड़ों में बन्धे हुए जब तक बत लाया न जावे जानना भी कठिन कि कौन संहिता है और कौन ब्राह्मण पर हां उस काल से लेकर कि जिससे पहले किसीको कुछ विदित नहीं आजतक सब वैदिक हिन्दू अर्थात् जो हिन्दू वेदको मानते हैं संहिता और ब्राह्मण दोनोंको बराबर माननीय मानते चले आये स्वामी जी महाराज को अपने ही इस न्याय से कि "जो सैंकड़ों आप्त ऋषियों को छोड़ कर एक ही को आप्त मान कर, सन्तुष्ट रहता है वह कभी विद्वान नहीं कहा जा सक्ता (भ्र० पृष्ठ १९) ब्राह्मण का परित्याग न करना चाहिये आपस्तम्बादि मुनि प्रणीत सूत्रों के परिभाषा सूत्रमें भी "मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्" ऐसाही लिखा है और स्वामी जी महाराज जो यह कहते हैं कि "क्या आप जैसा कात्यायन को आप्त मानते हैं वैसा पाणिनि आदि ऋषियों को आप्त नहीं मानते + + + जो उन को भी आप्त मानते हो तो मन्त्र संहिता ही वेद है उनके इस वचन को मानकर तद्विरुद्ध ब्राह्मण को वेद संज्ञा के प्रतिपादक वचन को क्यों नहीं छोड़ देते" (भ्र० पृष्ठ १९) सो पहले तो स्वामी जी महाराज यह बतलावें कि पाणिनि आदि ऋषियोंने कहां ऐसा लिखा है कि "मंत्र संहिता ही वेद है" ब्राह्मण वेद नहीं है, वरन पाणिनि ने तो जहां मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लेने को प्रयोजन देखा स्पष्ट "छन्दसि" कहा अर्थात् वेदमें अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण दोनों में और जहां केवल मन्त्र वा ब्राह्मण का देखा "मन्त्रे" वा "ब्राह्मणे" कहा और जहां मंत्र और ब्राह्मण अर्थात् वेद के सिवाय देखा वहां "भाषायाम्" कहा भला जैमिनि महर्षि के पूर्व मीमांसा को तो स्वामी जी महाराज मानते हैं उसमें इन सूत्रोंका अर्थ क्योंकर लगावेंगे "तचोदकेषुमन्त्राख्या"–"शेषे ब्राह्मणशब्दः" (अ० २ पा० १ सू० ३३) इस का अर्थ बहुत स्पष्ट है कि वेदका मन्त्रोंसे अवशिष्ट जो भाग सो ब्राह्मण, निदान जब मैंने गौतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्न का प्रमाणिक उत्तर पाया और न स्वामी जी महाराज की वाक्य रचना का उससे कुछ सम्बन्ध देखा डरा कि कहीं स्वामी जी महाराज ने किसी मेम अथवा साहिब से कोई नया तर्क और न्याय रूस

अमरिका अथवा और किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया हो फरांगिस्तान के विद्वज्जनमंडली भूषण काशीराज स्थापित पाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबो साहिब बहादुर को दिखलाया बहुत अचरज में आये और कहने लगे कि हमतो स्वामी जी महाराज को बड़ा पवित्र जानते थे पर अब उन के मनुष्य होने में भी संदेह होता है (तबतो भ्रमोच्छेदन को भ्रमोत्पादन कहना चाहिये !) और अंग्रेजी में कुछ लिख भी दिया नीचे उस की भाषा सहित छापा जाता है–

The question at issue between Raja Sivaprasad and Dayanand Sarassvati is the authoritativeness of the several parts of what is commonly comprised under the name "Veda" Dayanand Sarassvati rejects the Brahmanas and Upnishads (with one exception) and acknowledges the authority of the Sanhitas only As this procedure is not in agreement with the religious belief of the Hindus of the Present day as well as of past ages of which we have records, Dayanand Sarassvati is bound to Produce convincing proofs for the validity of the distinction he makes. He mentions that the Sanhitas are "ईश्वरोक्त" while The Brahmans and Upnishads are merely "जीवोक्त" But how does he prove this assertion ? (for as it stands it cannot be called anything but a mere assertion) The assertion of the Sanh tas being स्वतःप्रमाण while the Brahmans and Upnishads are merely परतःप्रमाण can likewise not be admitted before it is supported by arguments stronger than those which Dayanand Sarassvati has brought forward up to the present, Raja Sivaprasad is right to ask "why should not both be स्वतःप्रमाण if one is so ? " or again "why should not both be परतःप्रमाण if one is so ?" and this reasoning could certainly not be emplyed by any one for proving that other non-vedic books as well are to be considered equal to the veda for the veda alone (including Brahmanas and Upnishads) enjoys the privilege of having–since immemorial times–been acknowledged by all Hindus as sacred and revealed books.

With regard to the passage quoted by Dayanand Sarassvati from the Satapatha Brahmana (Brihadaranyaka Upanishad) it must be admitted that the objection of Raja Sivaprasad is well-founded If one part of the passage is authoritative, the other part is so likewise. The assertion whether the whole passage is a वाक्य or a वाक्यसमूह is wholly irrelevant to the point at issue.

Dayanand Sarassvati has certainly no right to declare the passage from Katyayana–according to which the veda consists of

Mantra and Brahmana—on interpolation Acting in this way any body might declare any passage contrary to his pre-conceived opinions an interpolation

Dayanand Sarasvati rejects the authority of the Brahmanas How then does he prepare to deal with Brahmana portions of the Taittiriya Sanhita which in character nowise differ from other Brahmanas like the Satapatha, Panchavinsa, &c. And on the other hand does he reject all the mantras contained in the Taittiriya Brahmana ?

G Thibaut

(भाषा) "राजा शिवप्रसाद और दयानन्द सरस्वती में जो विवाद उपस्थित है उसका निचोड़ यह है कि "वेद" नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थों के कौन भाग प्रमाण और कौन अप्रमाण हैं। दयानन्द सरस्वती सिवाय एक उपनिषद् के ब्राह्मण औ उपनिषद् ग्रन्थों को छोड़ देते हैं और केवल संहिताओं को प्रमाण मानते हैं। यह रीति न आज कल के हिन्दुओं के मतानुसार है, न अतीतकालों के आर्य्यों के मत से जिनका लेख हमको मिलता है, अनुकूल है। इस कारण से दयानन्द सरस्वती को अवश्य उचित है कि बलवत् प्रमाण देवें जिस से उनके अभिमत भेद की सिद्धि हो। वे कहते हैं कि संहिता "ईश्वरोक्त" हैं—और ब्राह्मण और उपनिषद् केवल "जीवोक्त"।

परन्तु इस बात का प्रमाण क्या देते हैं ? अब तक उन्होंने दन्तकथा ही केवल कह रक्खी है, संहिता मात्र का स्वतः प्रमाण होना और ब्राह्मण और उपनिषद् वाक्यों का निरा परतः प्रमाण होना तभी माना जासक्ता है जब दयानन्द सरस्वती दृढतर युक्ति देवें। आज तक जो युक्तियां दी हैं उनसे कुछ भी सिद्ध नहीं होता है। राजा शिवप्रसाद का यह पूछना न्याय्य है कि "यदि एक स्वतः प्रमाण है तो दोनों क्यों न हों" अथवा "यदि एक परतः प्रमाण है तो दोनों क्यों न हों"

और यह तो कभी युक्ति युक्त हो ही नहीं सक्ता कि वेद भिन्न पुस्तकोंको भी कोई इसी रीतिसे कह दे कि ये भी वेद के समान हैं क्योंकि केवल वेदही को (ब्राह्मण औ उपनिषदोंके सहित) अनादि काल से (Since Immemorial times अर्थात् इतने प्राचीन कालसे कि जिसका ठिकाना कोई नहीं बता सक्ता) सब आर्य्य लोग अपने धर्म्मका मूल ग्रन्थ और परमेश्वरकी वाणी मानते रहे हैं। दयानन्द सरस्वतीने शतपथ ब्राह्मण (बृहदारण्यक उपनिषद्)

से जो वचन उद्धार किया है उस पर तो इस बात का अवश्य स्वीकार करना उचित है कि राजा शिवप्रसाद की विप्रतिपत्ति अर्थात् दूषण सयुक्तिक है उस वाक्य का एक भाग यदि प्रमाण हो दूसरा भाग भी अवश्य प्रमाण है। वह वाक्य एक है अथवा वाक्य समूह है इस की चर्चा प्रकृत विषय से कुछ सम्बन्ध नहीं रखती।

निः सन्देह दयानन्द सरस्वती को अधिकार नहीं कि कात्यायन के उस वाक्य को प्रक्षिप्त बतावें जिसके अनुसार मन्त्र औ ब्राह्मण का नाम वेद सिद्ध होता है। ऐसे तो जो जिस किसी वचन को चाहे अपने अविवेक कल्पित मत से विरुद्ध पाकर प्रक्षिप्त कह दे।

दयानन्द सरस्वती ब्राह्मण ग्रन्थों की प्रमाणता नहीं मानते तो तैत्तिरीय संहिता के ब्राह्मण भागों को क्या कहेंगे। इन ब्राह्मण भागों में और शतपथ पञ्चविंश आदि ब्राह्मण में कुछ भी अन्तर नहीं है। और फिर तैत्तिरीय ब्राह्मण के जो मन्त्र हैं क्या उन सब को भी छोड़ देंगे?

यहां इस के लिखने की आवश्यकता नहीं कि स्वामी जी महाराज जो लिखते हैं कि "वेदों (संहिता) में इतिहास होवे तो वेद आदि और सब से प्राचीन नहीं हो सके ++ इस लिये ++ जमदग्नि आदि शब्दों से चक्षु आदि ही अर्थों का ग्रहण करना योग्य है" (भ्र० पृष्ठ १६) सो मेरा अभिप्राय तो इतना ही है कि यदि ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार जमदग्नि आदिका अर्थ योंही माना जावे तो संहिता के समान ब्राह्मण को भी वेद भाग अथवा माननीय मानने में उन्हीं ब्राह्मण ग्रंथों की युक्तियां क्यों न मानी जावें और स्वामी जी महाराज यह जो लिखते हैं कि वेदों में "परा विद्या न होती केन आदि उपनिषदों में कहां से आती" (भ्र० पृष्ठ १८) सो यहां भी मेरा अभिप्राय तो इतना ही है कि वेद के नाम से मंत्र भाग अर्थात् संहिता और ब्राह्मणों को मान कर जहां वेदों को अपरा कहा जाय वहां मंत्र और ब्राह्मणोंका कर्म्म काण्ड और जहां वेदों को परा कहा जाय वहां मंत्र और ब्राह्मणों का ज्ञान काण्ड मानना चाहिये और ऐसा ही आजतक वैदिक हिन्दू परम्परा से मानते चले आये हैं अधिक जो कुछ स्वामी जी महाराज ने लिखा है वा आगे लिखें उसका तत्व पंडित लोग आप बूझ लेंगे हम फिर भी हाथ जोड़ कर स्वामी जी महाराज के चरणों में विनय पूर्वक विनती करते हैं कि आप एक क्षणमात्र पक्षपात और क्रोध रहित होकर सोचिये और सत्य को हाथ से न दीजिये सत्यमेव जयति नानृतं और मुझे तो यदि एक भी दयानन्दी के चित्त में यह बात जम जायगी

कि स्वामीजी महाराज का आदेश विधाता का लेख अर्थात् पोप की तरह इनफेल्लिब्ल (infallible) नहीं है अपनी बुद्धि काम में लानी चाहिये और दूसरे पंडितो की भी सुननी चाहिये सनातन धर्म्म को अथवा जो बात परम्परा से चली आयी है एकाकी किसी एकके कहने सुनने से वे समझे बूझे न छोड़ देनी चाहिये में कृतकृत्य और अपना सारा परिश्रम सफल समझूंगा।

निदान अब में इन सब बातों को एक ओर रखकर जो इस २२ पृष्ट के भ्रमोच्छेदन में स्वामीजी महाराज का अभिष्ट खोजता हूं तो आदि से अंत तक यही अभिष्ट पाता हू—यही अभिष्ट है यही अभिप्राय है यही कामना है यही इच्छा है यही ईप्सा है यही लालसा है—कि एक बार श्रीमत पंडितवर धुरंधर अज्ञानतिमिरनाशनैकभास्कर बाल शास्त्री जी महाराज स्वामी जी महाराज के साथ शास्त्रार्थ स्वीकार करलें सज्जन पुरुषोंका स्वभाव ही है कि याचकों की याचना पूरी करने में उद्योग करें में शास्त्री जी महाराज के चरणों में पहुचा और भ्रमोच्छेदन दिखलाया आज्ञा की—कि "भला आप के (शिवप्रसाद के) एक सहज से प्रश्न का तो उत्तर श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से कुछ बनाही नहीं उत्तर के बदले दुर्वचनों की वृष्टी की यदि काशी के पंडित उनसे शास्त्रार्थ करने को उद्यत भी हों उत्तर के स्थान में उन्हें वैसी ही दुर्वचन पुष्पाञ्जलि का लाभ होगा इस से अतिरिक्त और कुछ भी सार उस में से नहीं निकलेगा सिवाय इस के सम्वत् १९२६ में यहा दुर्गाजी पर आनन्दबाग में श्रीमन्महाराजाधिराज द्विजराज श्री ५ काशीनरेस महाराज प्रभृति प्रायः सब काशी के मान्य प्रतिष्ठित और विद्वज्जनों के समाज में जो कुछ शास्त्रार्थ हुआ था उसी को उक्त स्वामी जी नहीं मानते तो अब आगे उन से क्या आशा है"॥

निदान स्वामी जी महाराज से तो अब काशी के पंडित लोग फिर शास्त्रार्थ करते नहीं दीखलायी देते किन्तु स्वामी जी महाराज यदि अपने किसी गुरु को आगे खडा करके शास्त्रार्थ करना चाहें तो क्या आश्चर्य्य है कि फिर भी यहां के पंडित लोग बद्ध परिकर हो जावें हां बाबू रामकृष्णजी ने जो अबोध निवारण ग्रन्थ छपवाया है ऐसे ऐसे ग्रंथ स्वामी जी महाराज अपना जी बहलाने को चाहे जितने ले ले वें ॥ इति ॥

मंगल देव पराजय पृष्ट १२ पंक्ति २१ से आगे यह लिखा है॥

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के साथ वेद ब्राह्मण की एकता में क्यों तकरार किया स्यात् है आप छान्दोग्य उपनिषत् को ऋक् यजु साम अथर्व की

संहिताओं के अंतर्गत मानते हो और यह शतपथ ब्राह्मण का एक भाग है, यह बात न जानते हों इसी लिये छान्दोग्य उपनिषत् को वेद माना और वेद ब्राह्मण की एकता में भेद जाना वास्तव बात यही है कि स्वामी जी को किसी विषय का यथार्थ निर्णय नहीं इसी कारण उनके सिद्धांत नित्य बदलते रहते हैं, जो आज कहते हैं कलको उसके विरुद्ध कहते हैं, ॥ इति ॥

पंडित भीमसेन जो वेदिक प्रेस काशी में सहकारी थे जब राजाजी का यह अंतिम निवेदन उनके हाथ पड़ा तब उन्होंने स्वामी जी की आज्ञा लेकर इसका उत्तर आप "अनुभ्रमोच्छेदन" नाम पुस्तक रचा जिसकी भूमिका इस प्रकार है, ॥

॥ अनुभ्रमोच्छेदन की भूमिका ॥

मैं ने विचारा था कि राजाजी और स्वामी जी ने एक २ वार लिखा है आगे इसका प्रपञ्च न बढ़ेगा परन्तु वैसा न हुआ और उनके अनुगामी लोगों ने समाचार पत्रों को भी गर्जाया और बहुत योग्यायोग्य वाच्यावाच्य भी लिखना न छोड़ा और मैं ने यह जान भी लिया कि स्वामी जी अपने नामसे इसपर कुछ भी न लिखें और न छपवावें गे क्योंकि इसपर श्रीयुत स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती और बाल शास्त्रीजी की सम्मति नहीं लिखी तथा अन्य किसी आर्य्य ने भी इसके प्रत्युत्तर में न लिखा यह बात ठीक है कि स्वामी जी को तो इसपर लिखना योग्य ही नहीं क्यों कि वे अपनी पूर्व प्रतिज्ञा से विरुद्ध क्यों करें जब ऐसा हुआ तब मैं यथामति इसपर लिखने में प्रवृत्त हुआ यद्यपि इन महाशयों के सन्मुख मेरा लेख न्यूनास्पद है तथापि अन्तःकरण से पक्षपात छोड़कर देखने से कुछ इससे भी तत्व निकलेगा और जो कुछ इस में भूल चूक रहेगी उसको सज्जन महात्मा लोग सुधार लेंगे अब जो राजा शिवप्रसादजी की यह प्रतिज्ञा है कि अब आगे इस विषय में कुछ न लिखा जायगा तो मुझको भी आगे लिखना अवश्य न होगा, जो राजाजी ने भ्रमोच्छेदन पर दूसरा भाग छपवाया है उसमें स्वामीजी के लेखपर निरर्थक आदि दोष दिये हैं उन और इन दोनों पुस्तकों के लेख को जब बुद्धिमान् लोग पक्षपात रहित होकर देखें गे तब अवश्य निश्चय कर लेंगे कि कौन सत्य और कौन असत्य है ॥ इति भूमिका ॥

"पुस्तक के अंत में यह श्लोक लिखा है"

ऋषिकोलाङ्क भू वर्षे तपस्यस्या ऽसिते दले ॥
दिद्धियौ वाक् पतौग्रन्थो भ्रमोच्छेतु मकार्य्येलम् ॥१॥

इस पुस्तक में कोई भी लेख ऐसा नहीं है जिसको हम संग्रह करना ठीक समझें इस लिये इसके विषय में भूमिका की नकल ही लेकर यह लिख देना ठीक है कि राजा शिवप्रसादजी का यथार्थ उत्तर स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी वा उनके शिष्य अथवा सहकारी से नहीं बना ॥

और फाल्गुण सम्वत् १९३७ में यजुर्वेद भाष्य अंक २२ । २३ वैदिक यंत्रालय काशी से छपकर प्रकाशित हुआ, उसके टाइटिल पेजपर कोई संग्रह योग विज्ञापन नहीं था ॥

स्वामीजी ने जब देखा कि नवीन विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्यान्य हिन्दूगण हमको द्वेष दृष्टिसे देखते हैं और इन लोगों को अपना विश्वासी बनाये बिना काम नहीं चलैगा तो उन्हों ने एक गोकरुणानिधि नाम पुस्तक रचकर यह उपदेश दिया कि गौ आदि पशुओंका पालन पोषण करणा सर्वही प्राणी मात्र का धर्म्म है, और उक्त पुस्तक गोकरुणानिधि के आदि और अंत का एक एक श्लोक इस प्रकार निम्न लिखित है ॥

तनोतुसर्वेश्वरउत्तमम्बल गवादि रक्ष विविध दयेरित ॥
अशेष विघ्नानि निहत्यनः प्रभु सहायकारी विदधातु गोहितम् ॥१॥
येगोसुख सम्यगु शन्ति धीरास्ते धर्म्मजंसौख्य मथाददन्ते ॥
क्रूरानरा पापरतानयति प्रज्ञाविहीना पशुहिंसकास्तत् ॥२॥

॥ अन्त का श्लोक इस प्रकार से है ॥

मुनि रामाङ्क चन्द्रेऽव्दे तपस्यस्या सितेदले ॥
दशम्या भृगुवारे ऽलकृतोऽयं कामधेनुप ॥ १ ॥

इस पुस्तक के रचे जाने का समय उसके अंतिम श्लोक से फाल्गुण शुक्ला १० भृगुवार सम्वत् १९३७ सिद्ध होता है, जिसके अंकूरा रोपणका कारण नवीन गौरक्षिणी सभा आगरा और छपने के उत्साह में वृद्धि करने वाला बम्बई वालकेश्वर गोशाला का निवास था ॥

लाला ठाकुरदासजी भाभदे अपनी दयानन्द मुख चपेटिका नाम पुस्तक में

लिखते हैं कि जब स्वामी दयानन्द सरस्वती के लेखसे यह सिद्ध हुआ के उ
सने राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के इतिहास तिमिरनाशक के आधार जैन
बौद्ध को एक लिखा है इसपर हमने राजा शिवप्रसादजी से पत्र द्वारा पूछा तो
उन्होने यह उत्तर दिया

श्री ५ सकल पचायत गुजरान्वाला को शिवप्रसाद का प्रणाम पहुचे।
कृपापत्र पत्रोसहित पहुचा ।

(१) जैन और बौद्धमत एक नहीं हैं सनातन से भिन्न २ चले आये, ज
र्मनी देशके एक बड़े विद्वान ने इसके प्रमाण में एक ग्रन्थ छापा है ।

(२) चार्वाक और जैन से कुछ सबध नहीं जैन को चार्वाक कहना ऐसा
है जैसा स्वामी दयानन्दजी महाराज को मुसलमान कहना ।

(३) इतिहास तिमिरनाशक का आशय स्वामीजी की समझ में नहीं आ
या उसकी भूमिका की नकल * इसके साथ जाती है उस्से विदित होगा कि
"सग्रह" है बहुत बात खडन के लिये लिखी गई मेरे निश्चय के अनुसार उस
में कुछ भी नहीं है ।

(४) जो स्वामीजी जैन को इतिहास तिमिर नाशक के अनुसार मानते हैं
तो वेदों को भी उसके अनुसार क्यों नहीं मानते ? ॥

आपका शिवप्रसाद‡

श्रीमान पडित शिव चन्द्रजी निज रचित "मूर्ति पूजा मडन" पुस्तक पृष्ठ
८ पंक्ति १४ में लिखते हैं कि

बहुधा अज्ञानी मनुष्य ऐसा कहते हैं कि चार्वाक और बौद्ध और जैन ती
नों एक हैं, उनका ऐसा कहना सर्वथा असत्य है क्योंकि जबतक षट्दर्शन का
ज्ञाता नहोगा तबतक मतके भेदोंका ज्ञाता कभी नहोगा और बिना जाने कि
सी के धर्म्मका एक रूप अथवा शाखा प्रतिशाखा कहना और पुस्तकों में लि
खना अयोग्य और अन्याय अधर्म्म का कारण है जो लोग ऐसा कहते हैं उ
नको जैन धर्म्म का रहस्य कुछ मालूम नहीं किंतु जैसा किसी से सुना वैसाही
लिख दिया इसका भेद शास्त्र ज्ञान के बिना कभी नहीं जाना जायगा, इससे,

* इतिहास तिमिरनाशक की भूमिका की नकल यहां नहीं दिखते हैं जिसको देखना हो असल पुस्तकमें देखलें ॥

‡ यह पत्र ४ अप्रेल सन् १८८१ ई० के मित्र विलास पत्र के साथ क्रोड पत्र में स्वरूप भी प्रकाशित हो चुका है ॥

जिनको जानने की इच्छा हो उनको योग्य है कि थोड़े दिन पठमतके शास्त्रोंका अध्ययन कर सव मतों का रहस्य जानें और जो विना जाने कहते हैं या पुस्तक में लिखते हैं जब कोई प्रश्न करेगा तो उस वक्त उत्तर देना दुर्लभ होगा जैन और बौद्ध चार्वाक इनका भेद और यथार्थ व्याख्यान न्याय शास्त्रों से जानना चाहिये, और जैनबौद्ध की एकता करनी ऐसी है जैसा कि अमृतमें विष मिलाना जब मत मतान्तर का भेदही मालूम नहीं तब उसकी जो समीक्षा करी है वो भी असत्य है विचारना चाहिये कि जिसके देव गुरु शास्त्र में तफावत हो। और एक चिन्ह भी नहीं मिले तो दो धर्म्म एक किस्तरह हो सक्ते हैं, चार्वाक नास्तिक मति शून्यवादी हैं और बौद्धमती छणिकवादी पचभूत आत्मा को मानते हैं आत्माको परलोक मुक्ति नहीं मानते उनका देव बुध धोती दोपट्टा यज्ञोपवीत का धारक गुरु रक्ताम्बर है जीवादि सात तत्व को मानते हैं, जैनी आस्तिक्य–मती स्वर्ग नर्क मोक्ष मानते हैं, जीवादि सात तत्व को मानते हैं, उनका देव आप्त वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशक, गुरु दिगम्बर, पूर्वापर विरोध रहित शास्त्र है, और जो लिखते हैं कि अमरकोश में लिखा है कि (सर्वज्ञ' सुगतो बुद्धो) इत्यादि पाठ के नाम से नाम मिलते हैं इससे हम एक समझते हैं तथास्तु प्रथम जो अमरकोश की साक्षी लिखते हैं वो उसकों अप्रमाण समझते हैं यदि प्रमाणीक मानते तो देवों को नास्तिक न मानते और शब्दोंका अर्थ भी नहीं बदलते दूसरे नाम की एकता से एक नहीं होसकते, जैसा कि किसी का नाम है राजा या धनपाल नृसिंह लक्ष्मीपति अमरचन्द इत्यादि विख्यात है तो वो मनुष्य ततुल्य नहीं समझा जायगा, न वो उक्त नाम के समान गुणी है केवल संज्ञा मात्र जाना जायगा इस्तरह बौद्धमत वालोंका सर्वज्ञ समझना चाहिये अथवा जैसा ईसाई भी ईश्वर कहते हैं और अन्य समाज वाले भी अपने इष्टको ईश्वर कहते हैं लेकिन दोनो मत एक किस तरें समझे जायँ इसी तरह जैनमत और बौद्ध मत एक नहीं, न शाखा प्रतिशाखा संसार में मुख्य षट्दर्शन अनादि काल से हैं, शैव, वेदांती, नैयायिक, बौद्ध, जैन, मिमांसक, इस भांति जानियें॥इत्यादि०॥

फाल्गुण मास के पूरा होनेपर स्वामीजी जयपुर में पधारे और ऋग्वेद भाष्य अंक २४।२५ वेदक प्रेस काशी से छपकर निकला, लाहोर के पंजाबी उर्दू अखबार में लाला ठाकुरदास के प्रतिकूल १० मार्च सन् १८८१ ई०को निम्न लिखित पत्र प्रकाशित हुआ जिसको दयानन्द दिग्विजय के संग्रह कर्ता ने भी अपनी पुस्तक में लिखा है और आर्य्य समाचार पत्र संख्या २२ मास माघ

पृष्ठ ३३० । ३३१ पर यह लेख मेरठ भी छप चुका है ॥

हमको मालूम हुआ है कि गुजरानवाला में जो तर्क पूज्य आत्मारामने ठाकुरदास मामदे द्वारा प्रकाशित किये थे स्वामी दयानन्द सरस्वतीने उनके यथार्थ उत्तर आत्मारामजी के हस्ताक्षरी प्रश्न पहुंचने पर ही देदिये थे कि उत्था उनका अखबार आफताब पंजाब तारीख १३ दिसम्बर सन् १८८० ई० में छप चुका है, प्रकट में स्वामी जी ने उसमें हर एक प्रश्न का उत्तर लिखा और अंत में यह और साफ लिख दिया था कि और पूछना हो तो साम्हने होकर पूछ लें, परंतु आश्चर्य्य की बात है कि न तो वह उन उत्तरों को स्वीकार करते हैं, और न स्वामी दयानन्दजी के सन्मुख होते हैं तो मालूम होता है कि या तो अब वे कायल होगये हैं, या आइन्दा होजाने का खौफ करते हैं, वरना इन बातोंसे दीद दानिस्ता तरह देकर अखबारों में एक प्रकारकी अत्यन्त आश्चर्य्यकारी और सर्वथा अनुचित बातें प्रकाशित करनेपर वह कभी कटबध नहोते जैसाकि अखबार आम तारीख २६ जनवरी सन् १८८१ ई० में छपा है कि "सरस्वती जी के नाम एक नोटिस एक मासकी अवधिका भेजा गया था परतु थोड़े ही दिनों में उलटा चला आया कि दयानन्द का पता नहीं मिलता रजिष्टरी आर्य्यसमाज गुजरान्वाला को दिखाई गई कि मिम्बर लोग पता बतावें परंतु वहां से भी यही उत्तर मिला कि इस बात की हमको भी कुछ खबर नहीं है, आखर जैनियों ने इश्तहार जारी किया कि दयानन्द छिप गये और अम्बाले में अब इसी फैसले की गर्ज से २० जनवरी से २४ जनवरी सन् १८८१ ई० तक बड़ा भारी समारोह होगा, आर्य्य समाजियों को उचित है कि अपने स्वामीजीको इस से भेदी कर दें ता कि वे पधार कर शीघ्र सत्यासत्य का निर्णय करें, और फिर यही विषय न्यूनाधिक अखबार आम तारीख ७ फरवरी सन् १८८१ ई० में छपा है, सच पूछिये तो यह बात (जो आश्चर्यकारी और अप्रमाणीक गप्प हैं) पूज्य महाराज आत्माराम और उनके सेवक ठाकुरदास की एक हास्य और बदनामी करा रही हैं, क्योंकि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का पत्र जो आफताब पंजाब में छपा है, उसमें साफ लिखा है कि १७ नवम्बर सन् १८८०ई० तक देहरा दून और उसके बाद आगरे में स्वामीजी का कयाम लिखा हुआ है, तो कैसे रूपोशी का गुमान होसकता है, और इस शहरमें यहभी हर एक को मालूम है कि यहां के मेम्बरान आर्य्य समाजने भी पूछने पर ठीक २ पता उनको बता दिया था, किंतु एक नोटिस भी छपवाकर स्वामीजी के

पते सहित ठाकुरदास के पास भेजा और स्थान २ पर लगवा दिया था लेकिन ठाकुरदास ने जो नोटिस यहांसे रवाना किया तो देहरादून भेजा न आगरे वरु अम्बाले में भेजा, इससे टुक (जरा) शरमाना चाहिये था न कि और भी अखबारों में धूल उड़ाना और फिर लिखा है कि २० जनवरी से २४ जनवरी सन् १८८१ ई० तक इसी फैसले के लिये तारीख मुकर्रिर थी और इश्तहार जारी हुआ, इस फिकरे में वे खुल्लमखुल्ला सुनाते हैं कि हमभी पांचों सवारों में हैं, कोई पूछे कि यह इश्तहार कौनसा है जो समारोह अम्बाला २० जनवरी से लगायत २४ जनवरी सन् १८८१ ई० के विषय में छपाया कहो क्या वही इश्तहार नहीं है? जो सुनहरी अक्षरों में देहली के किसी यन्त्रालय से छपकर रथयात्रा के मेले सम्बन्धी अम्बाले के बहुधा स्थानों पर भेजा गयाथा, क्या यह वही तारीखें थी जो दिगाम्बराम्नाय के जैनियों की रथयात्रा की नियत हुई थीं, और क्या यह वही मेला नहीं जिसमें आत्मारामजी आदि ने आदि से अन्त पर्य्यन्त जाने से मुख मोड़ा, और क्या यह वही इश्तहार तो नहीं कि ठाकुरदास उसको अपना गुप्त भेद प्रकट होने के भयसे (कि यथार्थ में तो यह रथयात्रा के मेले की चिट्ठी थी और ठाकुरदास उसी को स्वामी दयानन्द सरस्वती की रूपोशी का और अपने शास्त्रार्थ के विज्ञापन का पत्र बतलाते थे परन्तु किसी को) दिखाते नहीं थे और अन्त को जब गुजरान्वाल में इस गुप्त भेदका भांडा फूटा तो उनके पूज्य साहिब आत्माराम की लोगों में अधिक हसी हुई, आश्चर्य्य है कि पूज्य साहिब और उनके सेवक जन इन बातों से कुछ भी लज्जित नहीं होते।

पूज्य साहिब यदि किसी कारण से स्वामीजी के सन्मुख होकर प्रश्नोत्तर करना स्वीकार नहीं कर सकते थे तो चुपही हो जाते ऐसी २ बार्ता समाचार पत्रों में मुद्रित करा कर व्यर्थ अपनी और अपने सेवककी बदनामी करा रहे हैं, यथार्थ में जब कि वे जैन धर्म्म के एक विख्यात विद्वान् हैं तो यह करना उचित नहीं है जिस में बदनामी हो सन्मुख होकर वार्तालाप करने में बड़ा लाभ है, दूर दूर से बखेड़ा करने में वह अपना और अपने सेवक का क्या सुधार समझते हैं, हम कुछ स्वामीजी के तर्फदार अथवा पूज्य साहिब के प्रति पक्षी नहीं हैं, हमको केवल व्यर्थ बखेड़ा देखकर खेद होता है, पूज्य साहिब यदि किसी विशेष कारण से स्वामीजी के सन्मुख होकर बात चीत नहीं कर सकते अथवा सन्मुख होने से कोई और कारण है, जो जैनी लोग और उनके बड़े बड़े पंडित

कहाँ नहीं है, मेरठ सहारनपुर आगरादि जहां स्वामीजी इन दिनों विराजमान रहे हैं सब जगह जैनी लोग और उनके अच्छे २ पंडित मौजूद हैं, पूज्य साहिब यदि चाहैं तो उनको पत्र द्वारा सूचित कर सक्ते हैं कि वह अपने किसी उत्तम पंडित द्वारा बात चीत करके हर एक विषय को भले प्रकार सिद्ध कर लें जिसमें सब विषयोंका यथार्थ और शीघ्र निर्णय होजाय, और युगल पक्ष का व्यर्थ समय नष्ट नहो ।

अखबार आम वा मित्रविलास में जो कभी २ सर्वथा मिथ्या और कटुक शब्दयुक्त पद उनके ओर से कुछ समय से छपते हैं वह मानूं उनको और उनके धर्म्म को बदनाम करते जाते हैं इसमें कुछ शक नहीं कि उनकी अथवा उनके सेवक की ऐसी व्यर्थ बातों से सम्पूर्ण जैनी मात्र बदनाम होते हैं, इत्यादि० ॥

(एक गुजरान्वाला)

लो और सुनो,

लाला ठाकुरदास साहिब जैनी ने तारीख ९ फरवरी सन् १८८१ ई०के छपे एक इश्तहार द्वारा मुकाम गुजरान्वाला वाके मुल्क पंजाब से अपना मन्शा' नालिश तौहीन मजहब जैन के हस्ब मनशाय दफा २९९ ताजीरात हिन्द श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती के नामपर जाहर किया है, और पूछा कि सब आर्य्यसमाज सत्यार्थ प्रकाश के लेख को सत्य मानते हैं या नहीं? अगर मानते हों तो वहभी इस इलजाम में शरीके हैं, जो पूर्वोक्त लेखमें सिद्ध होता है, इस इश्तहार के लेख द्वारा ऐसा मालूम होता है कि यह सब आर्य्यसमाजों में भेजा गया, और इसके द्वारा सम्पूर्ण आर्य्य पुरुषों को भय उत्पन्न करने का विचार ठाकुरदास का है, इसलिये अति आवश्यक हुआ कि इसका यथार्थ वृत्तान्त प्रकाशित करूं और यहां की समाज से पूर्वोक्त नोटिस का ठीक ठीक उत्तर दूं।

प्रगट होकि जब स्वामीजी महाराज गतवर्ष यहां थे तभी ठाकुरदास ने यह पूछाथा कि सत्यार्थप्रकाश में जो जैनी मतकी बात लिखी है वह किस पुस्तक से लेकर लिखी है, और जैनी व बौद्धका एक होना कहांसे साबित, इस के उत्तर भेजे गये, और लिखाकि कोई वक्त नियत करके वार्ता करलो उसका आखरी जवाब यह दिया कि हम नालिश करेंगे, खैर यह उनकी मरजी, हमारे समाज ने यह जवाब लिखाकि हम सब लोग स्वामीजी के हरतरह से साथी हैं उनके कहेकी पुष्टी भी अपनी शक्ति के अनुसार करेंगे ।

सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३९६ से पृष्ठ ४०७ तक जो देखेगा, साफ लाला साहिब की भूल जान लेगा। इस्से प्रगट है कि उन्होंने उसको बुद्धमानीके सूर्य्यके साम्हने तो नहीं परंतु मतपक्ष के अंधेरे में पढ़कर देखा। कसूर मुआफ लाला साहिब सत्यार्थ प्रकाश के समझने के अलावा कानून भी खूब समझ सकते हैं, देखिये जिसमें बहुत सजा इस विषय में लिखी है उसीको ढूंढ लिया, नहीं मालूम कि लाला साहिब ने हम लोगोंको दोषी ठहराने से अपना क्या मनोर्थ सिद्ध समझा, वे क्या यह नहीं जानते कि अगर कोई किसीको सच्चा समझे, और इस्से उसकी झूठी तहरीर पर (कि जिस्ने किसीको खिलाफ कानून कुछरज पहुचा हो) सच्चा ख्याल करेतो वह दोषी नहीं हो सकता, हां शायद इंग्लिश ला अर्थात् सरकारी कानून का कोई पुराना मसलाहो जिस्से हमपर भी कानूनका असर पहुंचे। या कोई जैनमतकी राजनीति, आश्चर्य्य की बात की नालिश किया चाहते हैं, तिसपर भी स्वामीजी की तौहीन करते, हां शायद वह अपने को कानूनी अमर से बाहर समझते हों। खैर वह जाने और उनका काम जाने, हम अपनी सभाके नियमानुसार चिताते हैं देखिये हमको दोषी ठहराने में किसकी खता है, अगर स्वामीजी की तहरीर गल्त समझते होते तो क्या उसपर ऊल जलूल लिखना भले आदमियों का काम था? खैर जो जैनमत बौद्धमतकी शाखा केवल ठाकुरदास के कहने से नसही, हमने तो राजा शिवप्रसाद साहिब सी एस आई के इतिहास तिमिर नाशक तृतीय खंड पृष्ठ ८ के लेख को जो खुद जैनमत के हैं, और और चन्द दलीलों से मानलिया है, जो झूठ, होय तो कोई खंडन लिखे, अगर ठीक होगा तो कोई न कह सकेगा, अगर कोई डराकर झूठ बुलवाना चाहे तो यह जीते भी होना नहीं, क्योंकि सच बोलना हमारा प्रथम धर्म्म है * और यूं तो हम खुद अपनी खाकसारी का इकरार इस "शेर" के मुआफिक करते हैं, जुबां खोलेंगे क्या हमपर मुद्दई बद शाअरी से। कि हमने खाक भरदी उनके मुंह में खाक सारी से।

सारांश वे मतलब शेखी लाला साहिब की तरह मारना हमसे नहीं हो सक्ता जिसको जो अच्छा लगे करे। हमतो अपने देश वालोंको झूठों के झूठे दोषसे जानकार करते हैं, अगर अबभी न मानें तो पश्चाताप करेंगे।

द० आनन्दी लाल मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठ।

---

* आगे चलकर मुन्शी इन्द्रमणिजी के मुकाबले में आपकी सब सफाकट मालूम हो जाय गी।

जब स्वामीजी ने देखाकि काशी के पंडित लोग सदैव काल हमारे कार्यों में विघ्न डालने की चेष्टा करते रहते हैं और इसकी रोकका कोई उत्तम प्रबन्ध नहीं हो सकता इस लिये अपना वैदिक प्रेस (छापाखाना) १ ली अप्रेल सन् १८८१ ई० या मिती चैत्र शुक्ला ३ सम्वत् १९३८ मे काशी से उठाकर इलाहाबाद में स्थापित किया, और उसी स्थानसे वैशाख सम्वत् १९३८ में यजुर्वेद भाष्य अंक २४।२५ प्रकाशित हुआ जिसके टाइटिल पेजपर निम्न लिखित ये दो विज्ञापन छपे थे।

॥ विज्ञापन पत्र पहिला ॥

सब सज्जनों को विदित होकि वैदिक यत्रालय बनारस से प्रयाग में १ ली अप्रेल सन् १८८१ ई० मे आगया है और यहा सब कामका प्रबन्ध जो कुछ बनारस में था होगया है।

॥ विज्ञापन पत्र दूसरा ॥

सब सज्जनों को विदित होकि श्रीमान् स्वामी दयानन्दजी से राजा शिवप्रसादजी ने जो कुछ वाद उठायाथा उस विषय के प्रथम निवेदनका उत्तर स्वामीजी ने भ्रमोच्छेदन नाम पुस्तक से दिया था कि जो सब सज्जनों को विदित है, अब जो राजाजी ने द्वितीय निवेदन दिया है उसपर श्रीमत्स्वामी विशुद्धानन्दजी वा बालशास्त्रीजी आदि विद्वानों की सम्मति नहीं है, और स्वामीजी ने प्रथम ही यह लिखा था कि अब आगे को जबतक किसी पत्रपर विशुद्धानन्दजी वा बाल शास्त्रीजी की सम्मति न होगी हम उत्तर न देंगे, इस लिये इस दूसरे निवेदन का उत्तर एक पंडितजी ने अनुभ्रमोच्छेदन नाम पुस्तक में दिया है, और वैदिक यत्रालय में छपवाया है, मैं शुद्धता से प्रकाशित करता हू कि श्रीयुत राजा शिवप्रसादजी आदि सज्जन महाशय पक्षपात छोड़कर इसको देखें और सत्यासत्यका विचार करें कि [illegible] और [illegible]मति यथावत हो मूल्य प्रति पुस्तक एक [illegible]

ज्येष्ट सम्वत् १९३८ में स्वामी[illegible] [illegible] प्रयागसे मुद्रित होकर ऋग्वेद भाष्य अंक २६ [illegible] पे-[illegible]पर एक विज्ञापन [illegible] के [illegible]

खी है जो प्रथम तारीख जून को छपकर तयार हो चुका था, और स्वामीजीने मुन्शी बखतावरसिंह को हटाकर शादीराम को नियत किया था परंतु इस विज्ञापन में वैदिक प्रेसका मेनेजर दयाराम लिखा है मालूम नहीं शादीराम भी कब और क्यों निकाले गये ? और यह हम प्रथम ही लिख चुके हैं कि दयानन्द दिग्विजय प्रथम भागका सम्पूर्ण होना उसके रचयताने ज्येष्ठ शुक्ला० ९ सम्वत् १९३८ लिखा है

अजमेर से चलकर स्वामीजी स्थान मसूदा राजधानी राव बहादुरसिंहजी में पधारे, उक्त राव् साहिबने यथायोग्य आदर सत्कार किया, श्रावण के अत तक स्वामीजी इसी स्थान पर विराजे रहे, और राजा साहिबके स्वामीजी से विशेष प्रसन्न होनेका कारण यह था कि इस स्थानपर ढूंढिये + लोगोंका अधिक प्रचार था सो यह लोग व्याकरण विद्यासे रहित बहुधा ज्ञान शून्य भी होते हैं जो अपने गुरुत्वके घमण्डमें विद्वानों की निन्दा करने पर कटबध होजाते हैं, स्वामी दयानन्द सरस्वती का आगमन सुन उनकी व्यर्थ निन्दा अपने स्थान पर बैठ कर निज विश्वासी मनुष्यों के सन्मुख करने लगे, यह नहीं विचारा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती संस्कृत विद्याका अच्छा जानकार है हम जैसे भाषा रसिक अल्पाभ्यासी उसकी निन्दा कर अपना ही कुछ खोवेंगे, इनकी निन्दा करनेका फल यह हुआ कि स्वामी दयानन्द सरस्वती उनसे शास्त्रार्थ करने को खडे होगये, अनेक बार उनके शिष्य श्रावकों द्वारा ढूंढियों को बुलाया परतु विद्याहीनोंकी क्या मजाल है जो दयानन्द सरस्वती के सन्मुख आवें, ढूंढिये लोग तो जान बचाकर छिप गये और उनके अनेक श्रावक चेले स्वामी दयानन्द सरस्वती के विश्वासी होगये, जिस्से सत्य सनातन जैनधर्म्म की (जिसमें अब भी अनेक विद्वान् सूर्य्य समान विद्यमान हैं) व्यर्थ निन्दा हुई।

स्वामीजी के मसूदामें रहते रहते ही वैदिक यन्त्रालय प्रयागसे मुद्रित होकर यजुर्वेद भाष्य अक २६।२७ और ऋग्वेद भाष्य अक २८।२९ प्रकाशित हो गये और इसी अवसर पर स्वामी जी के शिष्य गोपाल शास्त्री फर्रुखाबाद निवासी ने "दयानन्द दिग्विजय" का दूसरा भाग प्रारम्भ किया जैसा कि निम्न लिखित श्लोक से विदित है।

+ सम्वेगी साधु आत्माराम को इन लोगों से बड़ा द्वेष है वे अपनी बनाई पुस्तकों में लिखते हैं कि ढूंढिये लोग विद्याहीन व्याकरण ज्ञान शून्य भ्रष्टाचारी मुखसे गुदा मुख बस्त्रिका बांधने वाले जैन धर्म्मसे पृथक् हैं, और इनके मलीना चार चलन व्यवहार को देखकर अन्य धर्म्मावलम्बी जैन धर्म्म की निन्दा करते हैं।

वसुरामाङ्क भू वर्षे श्रावणस्य सिते दले ॥
नवम्यां गुरु वारेच ग्रन्थारम्भ कृतो मया ॥ १ ॥

और फिर स्वामीजी आगेको चले और मार्ग में स्थान् रायपुर इलाके राज योधपुर में कुछ दिन विराजे परन्तु इस समय का कोई विशेष समाचार हमको नहीं मिला केवल यजुर्वेद भाष्य अंक २८।२९ (जो भाद्रपद शुक्ला५ को छपा) तथा ऋग्वेद भाष्य अंक ३०।३१ (जो आश्विन शुक्ला० ५ को छपा) के टा इटिल पेजपर यह लिखा है कि स्वामीजी रायपुर इलाके जोधपुर (बिआवरसे रेलका दूसरा स्टेशन) के माधो बाग में विराजमान हैं।

इस सम्वत् १९३८ के भाद्रपद मासमें स्वामीजी रचित संस्कृत पठन पाठन सम्बन्धी "कारकीय" १ "सामासिक" १ यह दो पुस्तक वैदिक यन्त्रालय में छपकर निकली तत्पश्चात स्वामीजी स्थान बनैरा इलाके भीलवाड़े में पधारे, जिसकी साक्षी के लिये यजुर्वेद भाष्य अंक ३०।३१ का टाइटिल पेज है जिस पर लिखा है कि कार्तिक शुक्ला०५ सम्वत् १९३८ को वहाँ विराजमान थे फिर प्रसिद्ध नगर चितौड़ इलाके राज उदयपुर में पधारे, ऋग्वेद भाष्य अंक ३२। ३३ के टाइटिल पेजपर लिखा है कि मार्गशिर्ष शुक्ला० ५ तक चितौड़गढ़ इलाके राज उदयपुर स्थान कैडी के महादेव के मन्दिर में थे। इसी मार्गशिर्ष में संस्कृत पठन पाठन की "तद्धित" नाम पुस्तक स्वामीजी की रची वैदिक यन्त्रालय में छपकर प्रकाशित हुई, और फिर स्वामीजी इन्दौर खडवा होते हुये बम्बई में पधारे, इनके आने की खबर पहिले ही से मिल चुकी थी इस लिये अनेकप्रतिष्ठित मनुष्यों सहित कर्नल अल्काट साहिब ने रेलके स्टेशनपर अगवानी की। और बड़ी शोभा सरूपा के साथ इनका नगर में प्रवेश कराया और प्रसिद्ध बालकेश्वर गोशाला में डेरा जमाया, और स्वामीजी का वहाँ कुछ दिन ठहरना हुआ था कि गुजरान्वाले निवासी ठाकुरदास को यह समाचार मिलगये और उसने मनमें विचारा कि इस समय स्वामी दयानंद सरस्वती ऐसे स्थान पर है जहां आत्मारामजी के अनेक धनाढ्य ओसवाल चेले रहते हैं उनकी सहायता से मेरे अनेक कार्य्य सिद्ध होंगे समय को अनुकूल समझ शीघ्र लाहौर नगर से एक चिठी लिख रजिष्ट्री करा स्वामी दयानन्द सरस्वती के पास पठाई जिसका खुलासा यह था कि, बनारस, अहमदाबाद, बुम्बई, इन तीनो स्थानों में से जहां आप ठीक समझें वह स्थान स्वीकार करें हम शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं, इस चिट्ठी का उत्तर शीघ्र देना पहिले जैसी भूल न करना इत्यादि०

ता० १०-१-८२ ई० *

इस चिट्ठीका यद्यपि स्वामीजी ने कुछ उत्तर तो नहीं दिया परंतु यह ख्याल अवश्य होगया कि इस गुजरात प्रान्तके ओशवाल श्वेताम्बरी लोग बड़े धनवान और गुरु भक्ति वाले भी हैं, और विशेष करके अहमदाबाद में तो इनकी पूरी पूरी प्रबलता है, जहा हमारे विश्वासियों में से कोई नहीं है और होने अवश्य चाहियें, सो इसी ध्वनि में निमग्न हो मुम्बई में जो सात महीने तक डेरा जमाया था उसके मध्य ही में नौसारी सूरत, बड़ोदा आदिक कई स्थानों में घूमकर अहमदाबाद पधारे तो यहां पर मुम्बई सरकारी संस्कृत पाठशाला के अध्यापक पंडित भोलानाथ जी शास्त्री से शास्त्रार्थ कर पराजय पाई और शीघ्रता पूर्वक मुम्बई को लौट गये, स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य गोपाल शास्त्री फर्रुखाबाद निवासी कृत "दयानन्द दिग्विजय" का दूसरा भाग फाल्गुण शुक्ला १० चन्द्रवार तारीख २७ जनवरी सन १८८२ ई० को पूरा हुआ, जैसा कि निम्न लिखित श्लोक से विदित होवे है ॥

वसु रामांक चन्द्रेब्दे तपस्यस्य सिते दले ॥
दशम्यां चन्द्र वारेच ग्रन्थोय पूर्ण ता गतः ॥ १ ॥

दयानन्द दिग्विजय पुस्तक में " थियोसाफिकल " के विषय में यह लिखा है कि—

यह एक नवीन मत देश में आठ वर्ष से प्रचलित हुआ है, इसका जन्म दाता कर्नल अल्काट और उसके साथ एक रूसी स्त्री हैं, सन् १८७८ ई० में मुल्क एम्रीकासे यह हिन्दुस्थानमें आये थे। शहर न्यूयार्क के रहने वाले हैं, बहुधा मनुष्य इनको अलौकिक प्राणी समझते हैं, एम्रीका से इन्होंने दयानन्द को लिखा था कि हमारी " थियोसोफिट" आपके आर्य्य समाजकी शाखा हुई, और हम हिन्दुस्थानमें आपके शिष्य होने को और संस्कृत सीखने को आते हैं, हिन्दुस्थान में आनकर बदल गये, और किसी धर्म्मको भी नहीं मानते हैं, प्रथम लिखाया कि सुसायटीके सभासदों से जो फीस वसूल होगी समाज में देंगे परन्तु नहीं दी, किन्तु सात सौ ७००) रुपये हरिश्चन्द्र चिंतामणिके दिये हुवे भी गड़प गये। मेरठ समाज के सभासदोंने भोजन वस्त्रादिक के व्यतिरिक्त सैंकड़ो रुपये आदर सत्कार में व्यय किये थे उनसे भी एक किताब देकर ६०) रुपये

* यह चिट्ठी अखबार आफताब पंजाब लाहौर में भी छप चुकी है।

मांग लिये। स्वामी दयानन्दजी के उपकारों को नमान कर उलटा कहते हैं कि हमने दयानन्द के अनेक उपकार किये हैं, प्रथम तो दयानन्द के सन्मुख ईश्वरका होना स्वीकार किया फिर अक्तूबर सन् १८८० ई० में जब दोनों पुरुष स्त्री मेरठ पधारे तो दोनों ने मिलकर ईश्वर के मानने से नाहीं करदी। जब वे एफ्रीकासे हिन्दोस्थानको चले तो अपना एक पत्र " इन्डीयनस्पेक्टर " पत्र तारीख १४ जौलाइ सन् १८७८ ई० में छपवाया था कि न हम बुद्धिष्ट् और न हम क्रुश्चियन् और न हम ब्राह्मण या पुराण को मानते हैं, किंतु हम शुद्ध आर्य्यसमाजी हैं अब सन् १८८० ई० में साफ लिखते हैं कि प्रथम हम बुद्धिष्ट् थे। और आर्य्यसमाज की शाखा हमारी सुसायटी नहीं है, प्रथम जब बम्बई में " थियोसाफिट "सुसायटी स्थापित करी तो दयानन्दका भी नाम लिख लियाथा। मेरठमें यह प्रण कियाथा कि हम अपनी सुसायटी में आर्य्य समाजियोंको नहीं भरेंगे परंतु उसके प्रतिकूल उन्होंने बहुधा मनुष्यों को बहका कर दयानन्द से प्रतिकूल कर दिया तब दयानन्द ने मेरठ आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर साफ कह दिया था कि इनका कुछ भरोसा नहीं करना चाहिये। अतिरिक्त इसके जब दयानन्दजी दूसरी वार बम्बई पधारे अल्काट साहिब ने रेलवेस्टेशन पर अगवानी की तो तबही से दयानन्दजी ने इनसे यह प्रश्न उठाया कि हमारा तुम्हारा ईश्वर विषय में एकमत होजाना ठीक है, पानाचन्द आनन्दजी द्वारा कहा सुनी होकर फैसले के लिये १७ मार्च सन् १८८२ ई० का दिन नियत हुआ, परतु अल्काट साहिब ने यह बहाना कियाकि मेरी मेम तुमसे वात करलेगी मैं नहीं आसकता परतु मेम भी नहीं आई तब आर्य्यसमाज बम्बई की तर्फ से सर्व साधारणमें यह छपा हुआ विज्ञापन वितरण किया गया कि ' कल ' स्वामीजी " थियोसाफिकल " के प्रतिकूल व्याख्यान देंगे। इस पर भी मेम साहिब नहीं आई, औरस्वामीजी ने अपनेव्याख्यानमें उनकी प्रथम की आई हुई चिठ्ठियाँ पढ़कर भली भांति पूर्वापर विरोध दिखा दिया और दयानन्द ने यह भी कहा कि कर्नल अल्काट मुझसे इस लिये प्रतिकूल हुआ कि मैं ने उस्को भूत प्रेत के मार्ग को रोकाया, और कहाथाकि ऐसा करना उचित नहीं अखबार विलायत भी जाता है उसकी बदनामी है परतु अल्काटने नहीं माना क्योंकि यह स्वार्थी मनुष्य है, इसका विश्वास करना उचित नहीं और यह योग विद्या भी बिल्कुल नहीं जानता इसकी सुसायटी का मनसब पांद मतके फैलाने काहै॥

"किताव पंडित दयानन्द और उनका नया पंथ" पृष्ठ ३२ पर उसकेरचियता लिखते हैं कि जब कर्नल अल्काट ईन्डुस्थान में आये थे तो पंडित दयानन्द से उनकी अत्यंत गाढी प्रीति होगई थी और पंडित साहिब उनके स्वतः अध्यापक और सभासद बन बैठे थे, परंतु अंत को यह गुप्त भेद प्रगट होगया और सरकारको " थियोसाफिकल " सुसायटी के प्रचारिकों के तर्फसे अनेक प्रकारकी अविश्वासता वा राज विद्रोहता का शक हुआ तो झट स्वामीजीने भी यह बहाना निकाल कर कि यह ईश्वर को नहीं मानते, पृथक्ता स्वीकार करली और बुरे शब्दोंमें उनको कोशने लगे। और कहने लगे कि हम कभी भी उस सुसायटी के सभासद नहीं हुवे। परंतु इन्कार करने से क्या होता है। उन्होंने अपने रिसाले " थियोसाफिस्ट " में इसके प्रमाणार्थ कि दयानन्दजी उस सुसायटी के सभासद बने थे। वह मेम्बरीका कागज़ छाप दिया कि जिसपर वह अपने हाथसे हस्ताक्षर कर सभासद बने थे, और अन्यान्य भी अनेक प्रमाण प्रकाशित किये। जिनसे भले प्रकार सिद्ध होगया कि दयानन्दजी उस सुसायटी के सभासद थे। और उनके सत्यका भी भले प्रकार प्रकाश हुआ।

इसी सम्वत् १९३८ में पेशावरादि एक दो स्थानों पर नवीन आर्य्य समाज स्थापित हुई और वैदक यंत्रालय प्रयाग से मुद्रित होकर पौषशुक्ला ५ को अंक ३२। ३३ यजुर्वेद भाष्य और माघ शुक्ला १९ को ऋग्वेद भाष्य अंक ३४। ३५ प्रकाशित हुवे जिनके टाइटिल पेजपर संग्रह योग्य कोई विज्ञापन नहींथा॥

जब कर्नल अल्काट से स्वामीजी का सम्बन्ध टूटा तो उनको यह खयाल पैदा हुआ कि अब कर्नल साहिब मेरे प्रतिकूल मनुष्यों को द्वेषी बनावेंगे और इस बम्बई में श्वेताम्बर जैनियोंकी अधिकता है तो उनको गुजरान्वाल निवासी ठाकुर दास ने मेरे प्रतिकूल करदिया परंतु जैनी लोगों में जीव दयाही परम धर्म्म है इस लिये इसका कोई ऐसा उपाय करू जिस्से उनकी प्रतिकूलता व्यर्थ हो यह विचार निज रचित गो करुणा निधि को प्रगट रूपसे व्याख्यानों में सर्व साधारण को सुनाने लगे जिसका प्रथम संक्षेप यह है,

कदाचित कोई कहै कि पशुको स्वयं मार कर खाने में दोष होगा बाज़ार से लेकर खाने म नहीं यह भी समझ ठीक नहीं मनुजीने आठ प्रकार के हिंसक लिखे हैं जैसे

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी ॥
सस्कृताचे पिहर्ताच खादकश्चे तिघातिका ॥ १ ॥

(अर्थ) अनुमति (मारने की सलाह) देने मांस के काटने पशु आदि के मारने, उनको मारने के लिये लेने और बेचने, मांस के पकाने और परसने और खाने वाले ८ मनुष्य घातक हिंसक अर्थात् ये सब पाप कारी हैं, और भक्ष्य आदि के निमित्त मे भी मांस खाना मारना वा मरवाना महा पाप कर्म है, इसी लिये दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशु आदिके मारने की विधि नहीं लिखी, मद्य भी मांस खाने काही कारण है, इस लिये यहाँ सक्षेप से थोड़ासा लिखा है।

मांसाहारी और मद्यपी मनुष्य विद्यादि शुभ गुणों से रहित होकर उन दोषोंमें फसकर अपने धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष फलोंको छोड़ पशुवत् अहार निद्रा भय मैथुन आदिक में प्रवृत्त होकर अपने मनुष्य जन्म को व्यर्थ कर देते हैं, इस लिये कोई भी मादक पदार्थ सेवन न करना चाहिये।

इतना लिख स्वामीजी ने गोरक्षणी सभाकी नियमावली + को बतलाया और उसके प्रचार पर दृढ़ कटिबद्ध होकर निम्न लिखित दो छपे हुवे पत्र सर्व साधारणमें प्रचलित कराये।

॥ ओ३म् ॥

सही करने का पत्र।

ऐसा कौन मनुष्य जगत में है जो सुख के लाभ होने में प्रसन्न और दुःख को प्राप्त होनेमें अप्रसन्न न होता हो। जैसे दूसरेने किये अपने उपकार में स्वयं आनंदित होता है वैसे ही परोपकार करने में सुखी अवश्य होना चाहिये क्या ऐसा कोई भी विद्वान् भूगोलमें था है और होगा जो परोपकार रूप धर्म्म के सिवाय धर्म्म वा अधर्म्म को सिद्ध करसके। धन्य वे महाशय जन हैं जो अपने तन मन और धन से संसारका अधिक उपकार सिद्ध करते हैं। निन्दनीय मनुष्य वे हैं जो अपनी अज्ञानता से स्वार्थ वश होकर अपने तन मन और धन से जगत में हानि करके बड़े लाभका नाश करते हैं। सृष्टि क्रममें ठीक ठीक यह निश्चय होता है कि परमेश्वर ने जो २ वस्तु बनायी हैं वह वह पूर्ण उपकार लेने के लिये हैं, अल्प लाभ से महा हानि करनेके अर्थ नहीं विश्वमें देही जीवन के मूल है एक अन्न और दूसरा पान इसी अभिप्राय से आर्य्य शिरो मणि राजे महाराजे और प्रजा जन महोपकारक गाय आदि पशुओंको न आप मारते।

+ गोरक्षणी सभा की नियमावली पुस्तक बढ़ जान के भय से यहां नहीं लिखी॥

न किसी को मारने देते थे। अब भी इन गाय बैल और महपि को मारने और मरवाने देना नहीं चाहते। क्योंकि अन्न और पान की बहुताई इन्हींसे होती है और इससे सबका जीवन सुखसे व्यतीत हो सकता है जितना राजा और प्रजाका बड़ा नुकसान इनके मारने और मरवाने से होता है उतना अन्य किसी कर्म से नहीं। इस का निर्णय गो करुणा निधि पुस्तक में अच्छे प्रकार कर दिया है अर्थात् एक गायके मारने और मरवानेसे ४२०००० चार लाख बीस हजार मनुष्यों के सुखकी हानि होती है, इसलिये हम सब लोग स्व प्रजा की हितैषिणी श्रीमती राजराजेश्वरी क्विन विक्टूरिया की न्याय प्रणाली में जो यह अन्याय रूप बड़े बड़े उपकारक गाय आदि पशुओंकी हत्या होती है, इसको इनके राज्यमें से प्रार्थना से छुड़वा के अति प्रसन्न होना चाहते हैं, यह हमको पूरा निश्चय है कि विद्या धर्म्म प्रजाहित प्रिय श्रीमती राजराजेश्वरी क्विन् विक्टूरिया पार्लियामेंट सभा और सर्वोपरि प्रधान आर्य्यावर्तस्य श्रीमान् गवर्नर जनर्ल साहिब बहादुर सम्प्रति इस बड़ी हानि कारक गाय बैल तथा भैंसकी हत्या को उत्साह और प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र बन्द करके हम सबको परम आनन्दित करें। देखिये कि उक्त गाय आदि पशुओं को मारने और मरवान से दुग्ध घी और किसानों की कितनी हानि होकर राजा और प्रजाकी बड़ी हानि हो गई और नित्य प्रति अधिक २ होती जाती है। पक्षपात छोड़के जो कोई देखता है तो वह परोपकारही को धर्म्म और परहानि ही को अधर्म्म निश्चित जानता है। क्या विद्याका यह फल और सिद्धांत नहीं है कि जिस २ से अधिक उपकार हो उसका पालन वर्द्धन करना और नाश कभी न करना।

परम दयालु न्याय कारी सर्वान्तर्यामी सर्व शक्तिमान् परमात्मा इस समस्त जगदुपकारक काम करनेमें एक मत्य करे।

॥ विज्ञापन पत्र मिदम् ॥

सर्व आर्य पुरुषों को विदित किया जाता है कि जिस पत्रके ऊपर (ओ३म्) और नीचे (हस्ताक्षर) ऐसा चिन्ह लिखा है वह सही करनेका पत्र है, उसपर सही इस प्रकार करनी होगी कि जिसके स्वराज या मेलमें ब्राह्मणादिक मनुष्यों की जितनी संख्या हो उतनी संख्या लिख के अर्थात् इतने १०० सौ १००० हजार १००००० लाख या १००००००० करोड़ मनुष्यों की ओर से सर्व साधारण आर्य्य पुरुषों की सही आजायगी परन्तु जितने मनुष्यों की ओर से

एक मुख्य पुरुष सही करे वह उन से सही लेकर अपने पास जरूर रक्खे और जो मुसल्मान वा ईसाई लोग इस महोपकारक विषय में सहमत हो उनके भी नाम संख्या लिखे हमको दृढ निश्चय है कि आप परमोदार महात्माओं के पुरुषार्थ उत्साह और प्रीति से यह सर्वोपकारक महा पुण्य कीर्ति प्रदायक कार्य्य यथावत् सिद्ध होजायगा ॥ अलमति विस्तरेण विपश्चिद्वर शिरोमणिषु ॥

(दयानन्द सरस्वती)

पूर्वोक्त दोनो पत्र मार्च सन् १८८२ ई० के अंत तक देशांतर में वितरण होचुके थे और चैत्र शुक्ला १० सम्वत् १९३९ तारीख २९ मार्च सन् १८८२ ई० को ऋग्वेद भाष्य अंक ३६ । ३७ भी वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में छपकर प्रकाशित हो चुका था जिसके टाइटिल पेजपर निम्न लिखित विज्ञापन छपाया।

॥ विज्ञापन पत्र मिदम् ॥

सब सज्जन उदार आर्य्य लोगों को विदित किया जाता है कि ज्ञा फीरोजपुरमें अनाथाश्रम कई एक वर्षों से आर्य्या समाजोंने स्थापित किया है यह बड़ा प्रशंसित और धर्म्म का काम है, और इस में बड़े सहाय की अपेक्षा है, इस लिये आप सज्जन लोगों को उचित है कि इसका सहाय करना। क्योंकि इसके होने से आर्य्य लोग जिनका पालन करने वाला कोई न होवे वे ईसाई वा मुसल्मान अथवा अन्य मत में वेदोक्त सनातन धर्म्म से छूट के मिल जावें उनकी रक्षा के लिये यह अनाथ पालनार्थ सभा नियत की है, जिस प्रकार अर्थात् धनके सहाय करने से इसका दीर्घायु होवे सो यत्न करने चाहियें। अलमति विस्तरेणी दार्य्यादि गुण युक्तिषु ॥

(हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती)

ठाकुरदासजी अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि जब स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मेरे १० जनवरी सन् १८८२ ई० केनोटिस का कुछ उत्तर नहीं दिया तो मैंने १७ अप्रेल सन् १८८२ ई० को एक नोटिस अहमदाबाद के " अहमदाबाद समाचार " और " बड़ोदा वत्सल" नामक दो गुजराती अखबारों मे छपाकर रजिस्ट्री करा डाक द्वारा दयानन्द के पास भेजा जिसका खुलासा इस प्रकार है,

पंजाब देशके गुजरान्वाल निवासी ठाकुरदासकी तर्फ से दयानन्द सरस्वती को नोटिस दिया जाता है कि तुमने सात वर्ष हुये मुरादाबाद में " सत्यार्थ

प्रकाश " नाम पुस्तक छपाया जिसमें एक स्थान पर कुछ श्लोक लिख उनको जैनाचार्यों कृत बताया सो यह बतलाना अप्रमाणीक और झूठ है और इस बिषय में आपको कई बार लिखा गया परंतु संतोष कारक कोई भी उत्तर नहीं मिला अब इस नोटिस द्वारा सूचना दी जाती है कि आप एक महीने के मध्य यह लिख भेजो कि यह श्लोक आपने जैन के किस शास्त्र से लिये हैं, जो एक मास तक इसका भी उत्तर नहीं आवे गा तो मेरे मन को जो आप के मिथ्या लेखसे दुःख हुआ है उसकी चिकित्सा सरकारी प्रचलित क़ानूनानुसार कराई जावेगी जिसमें मेरे सर्व प्रकार के व्ययका भारभी आपको ही उठाना पड़ेगा यह निश्चय समझ लेना इत्यादि० ॥

जब पूर्वोक्त नोटिस स्वामीजी की दृष्ट गोचर हुआ मनमें विचारा इसका उत्तर देने में बम्बई के अनेक जीव दया रसिक जैनी लोग जो गोरक्षा सम्बन्धी व्याख्यानों से राज़ी होगये हैं, पलट बैठें गे इस लिये कुछ उत्तर नहीं दिया और चुप होकर बैठ गये।

वैशाख शुक्ला १७ सम्वत् १९३९ को वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से स्वामीजी कृत यजुर्वेद भाष्य अंक १६। १७ छपकर निकला जिसके टाइटिल पेजपर कोई संग्रह योग विज्ञापन नहीं था।

जब स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ठाकुरदास के दोनो नोटिसों का कुछ उत्तर नहीं दिया तो अहमदाबाद के " शमशेर बहादुर " * आदि अनेक समाचार पत्रों में लेख लिखे गये परंतु किसी ने सत्य कहा है कि जिस उष्ट पर वृहदा कार नक्कारे बज चुके हैं, उसको डुगडुगी बजाकर कौन चेत करा सकता है, स्वामीजी ने इनके लेखों पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया और ज्येष्ठ शुक्ला १४ सम्वत् १९३९ तारीख ३१ मई सन् १८८२ ई० को जो ऋग्वेद भाष्य अंक ३८। ३९ प्रयाग वैदिक यन्त्रालय से छपकर निकला उसके टाइटिल पेजपर इस विषय में कुछ भी लेख न था केवल स्वामीजी ने निज लेखनी द्वारा भारत सुदशा प्रवर्तक पत्र फर्रुखाबाद की बड़ाई कितनेक शब्दों में लिखकर आर्य्य समाजि यों का ध्यान इसके ग्राहक होने की तर्फ दिलाया था।

ठाकुरदास ने लिखा है कि जब मेरे लेखों का स्वामीजी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तो मैंने मुम्बई पहुंचकर एक पोष्ट कार्ड डाक द्वारा स्वामीजी के नामपर

---

* तारीख १२ मई सन् १८८२ ई० के शमशेर बहादुर का लेख दयानन्द मुख चपेटिका पुस्तक में पूरा छपा है

भेजा तब समाज वाले मुझको बुलाकर स्वामीजी के पास लेगये और यहां स्वामीजी से कुछ समय तक वार्तालाप हुआ + फिर स्वामीजी ने कहा कि तुम्हारे पत्रका उत्तर हमने डाक द्वारा भेज दिया है सो वह देख लेना वह पत्र मुझको मिला जिसका खुलासा इस प्रकार है ॥

सेवकलाल कृष्णदास मंत्री आर्य्य समाज बम्बई ठाकुर दास को लिखता है, कि आपने जो पत्र ज्येष्ठ शुक्ला १५ के दिन स्वामी दयानन्द सरस्वती के पास पठाया था उसके उत्तर में लिखा जाता है कि तुम अपने मतका ज्ञाता तथा धर्म्मोपदेशक विद्वान् हो उसको नियमानुसार शास्त्रार्थ करने पर उपस्थित करो स्वामीजी शास्त्रार्थ कर सत्यासत्य का निर्णय करणे को तयार हैं और इस कार्य्य में शीघ्रता कर उत्तर लिखो क्योंकि स्वामीजी थोड़े दिनो में चले जाने वाले हैं, और जो शास्त्रार्थ होनेका आप कुछ प्रबन्ध न करसकें तो मैं खेद के साथ लिखता हू कि जो मनुष्य स्वामीजी के पास कुछ पूछने को आता है उसके उत्तर को स्वामीजी सायकालके ८ बजेसे ९ बजे तक प्रति दिन मिलते हैं जो आप आनेका इरादा करें मुझको लिख भेजें ताकि मैं भी उससमय उपस्थित होजाऊं इत्यादि० तारीख ५ जून सन् १८८२ ईस्वी ॥

इसपर ठाकुर दासने १३ जून सन् १८८२ ई० को मिस्टर स्मिथ ऐंड फ्रियर हाई कोर्ट के सालिस्टर की मारफत एक अंग्रेजी नोटिस स्वामीजी को दिया उसका खुलासा इस प्रकार है,

हमारे मवक्किल ठाकुरदास पंजाबी गुजरान्वाला निवासी ने जो इस समय बम्बई में है हमको यह जितलाया है कि तुमने उसको जाण बूझकर धर्म्म सम्बन्धी दुःख देनेको " सत्यार्थप्रकाश " अपने बनाये पुस्तक के बारमें समुल्लास पृष्ठ ४०२ । ४०३ में जैन धर्म्म से विरुद्ध किसी अन्य धर्म्म से लेकर कुछ श्लोक धर दिये और उन को जैन ग्रन्थों का बतलाया है, परन्तु वे श्लोक जैन के किसीभी ग्रन्थ के नहीं हैं । यह तुम भी जानते हो और हमको यह भी मालूम हुआ है कि हमारे मवक्किल ने तुमसे अनेक बार पत्र द्वारा यह कहा है कि इन झूठे श्लोकों को जैन का बतलाकर हमारा दिल दुखाना उचित नथा इसकी हमसे मुआफी मांगकर उन श्लोकों को निज पुस्तक से निकाल डालो परंतु आपने कुछ खयाल

+ स्वामी जी समझते थे ठाकुरदास कोई शास्त्री ज्ञानी होगा परंतु मिलने से पर मालूम हुआ कि यह विचारा साधारण मात्र है तबही हंसकर हँसे और साफ कह दिया तुम्हारे कार्ड का उत्तर डाक द्वारा भेजा गया है, (और डाक द्वारा जो उत्तर भेजा वह भी लिख दिया था ॥

नहीं किया, सो अवश्य अपने मवक्किल के कहने मुजिब तुमको बतलाये देते हैं कि इस नोटिस के पहुंचने पर आठ दिन के मध्य पूर्वोक्त श्लोकों को "सत्यार्थ प्रकाश" से निकाल कर हमारे मवक्किल तथा अन्यान्य जैनियों से बम्बई से प्रकाशित होने वाले किसी पत्र द्वारा मुआफी मांगो। और जब तक उक्त श्लोक उक्त पुस्तक से पृथक् न कर दो उसको किसी के हाथ मत बेचो यदि इसके प्रति कूल करोगे तो फिर तुमको जवाबदही अदालत में करनी पड़ेगी यह निश्चय जान लेना ॥

इसके उत्तर में १९ जून सन् १८८२ ई० को मिस्टर पेनी ऐंड ग्लिन्हर्ट ने जो कुछ अंग्रेज़ी में लिखा उसका खुलासा इस प्रकार है,

मिस्टर स्मिथ ऐंड फ्रियर लाला ठाकुरदास के अटरनी को विदित हो कि आपका १३ जून सन् १८८२ का लिखा नोटिस जो आपने स्वामी दयानन्द सरस्वती के पास भेजा था सो उनके द्वारा हमारे पास पहुंचा और उनके कथनानुसार आपको यह उत्तर लिखा जाता है, कि तुम जो कहते हो कि यह श्लोक जैन के कौनसे ग्रन्थ के हैं सो हमारे मवक्किल स्वामी दयानन्द सरस्वती यह समझ रहे हैं कि जैनमत के किसी विद्वान् के रचित ही यह श्लोक हैं, और जैनधर्म्म की अनेक शाखा प्रशाखा हैं जिसमें से किसी के रचित यह श्लोक होंगे हमारे मवक्किलका यह अभिप्राय नहीं है कि किसी मनुष्य का उसके धर्म्म सम्बन्धी दिल दुखावे, किंतु सत्यार्थप्रकाश करने काही तात्पर्य्य यह विशेष है, इसलिये तुम्हारा मवक्किल या कोई दूसरा जैनी हमारे मवक्किल को यह सिद्ध करदेगा कि पूर्वोक्त श्लोक जैन धर्म्म से विरुद्ध हैं तो सत्यार्थप्रकाश पुस्तक के छपाने वाले राजा जयकृष्णदास सी एस आई मुरादाबाद निवासी दूसरी बार छपने के समय उन श्लोकों को पृथक् कर देवेंगे, इसमें हमारे मवक्किल को कुछ उजर नहीं है, और हमारा मवक्किल यह भी कहता है कि आपके मवक्किल को पुस्तक सत्यार्थप्रकाश के टाइटिल पेज और राजा जयकृष्णदास के दिये विज्ञापनों को देखना चाहिये, जिनके लेखों से स्पष्ट सिद्ध है कि उक्त पुस्तक सम्बन्धी छपाने बेचने शुद्धाशुद्ध आदि करने के सम्पूर्ण अधिकार उक्त राजा साहिब होने स्वत: अपने किये हैं, इस लिये पुन: छपवाना या न छपवाना सब उनकेही आधीन है, इत्यादि *

---

* इस लिख मे से स्वामीजी का यह अभिप्राय है कि हमारा सत्यार्थप्रकाश से कुछ सम्बन्ध नहीं है जो कुछ है राजा जयकृष्णदासका है और—दयानन्द मुख चपेटिका पुस्तक इसी टेक्सपर समाप्त हुई है

जब स्वामीजी ने देखा कि ठाकुरदास ने बम्बई के जैनी लोगों को हमसे उदास करने का यत्न किया है इसलिये अब यहां ठहरना ठीक नहीं है, और दिनभी यहां अधिक होगये हैं, बस स्वामीजी इसी ध्यान में चलकर खंडवा में पधारे, और आषाढ शुक्ला १५ सम्वत् १९३९ के दिन खंडवे में थे ऐसा यजुर्वेद भाष्य अंक ३८ । ३९ के टाइटिल पेजपर लिखा हुआ देखा गया है, मास जौलाई सन् १८८२ ई० के रिसाला थियोसाफिस्ट और उसके कोड़ पत्र में यह प्रकाशित होगया कि दयानन्द हमसे जुदा होगये हैं, खंडवा में कुछ दिन ठहर कर स्वामीजी राजधानी जावरा देश मालवे में पधारे मार्ग में आपका आत्मानन्दजी से कुछ दिनों तक समागम व वचनालाप रहता रहा फिर खंडवे से चलकर अधिक श्रावण कृष्णा १३ सम्वत् १९३९ तारीख ११ अगस्ट सन् १८८२ ई० गुरुवार के दिन राजधानी उदयपुर में पधारे। देखो जो ऋग्वेद भाष्य अंक ४० । ४१ अधिक श्रावण कृष्णा ३ सम्वत् १९३९ को छपकर प्रकाशित हुआ उसके टाइटिल पर लिखा है, कि इस समय स्वामीजी जावरा देश मालवा में विराजमान हैं, इससे यह सिद्ध हुआ कि दो चार दिन मार्ग चलने में बिताकर स्वामीजी जावरे से सीधे उदयपुर चले आये और महाराणा जी के नौलखा बाग राजमहल में डेरा किया और महाराजा साहिब श्री राणा सज्जनसिंह जी ने इनको संस्कृतका उत्तम विद्वान् समझकर बड़ा अच्छा आदर सत्कार किया और स्वामीजी के पास निज चाकरों का आना जाना भी प्रारम्भ किया जिससे स्वामीजी उदयपुर में भले प्रकार प्रसिद्ध होगये।

बम्बई से जो पत्र आपने हस्ताक्षर के लिये देशान्तर में पठाये थे उनका उत्तर अनेक स्थानों से सन्तोष जनक आया जैसाकि निम्न लिखित पत्र के लेखसे विदित होता है।

श्री सत्परम गुरुभ्यो नमो नमः (नम्बर ३०)

भगवन्‌ः आपकी सेवामें गोरक्षा होनेके अर्थ इस पत्र के साथ एक प्रार्थना पत्र ७२ सहस्र मनुष्यों की ओर से अपने हस्ताक्षर करके परम विनय पूर्वक भेजता हूं यदि दो मासका विलम्ब होय सो क्षमित किया जाऊं एक लक्ष संख्या पूर्ति होसक्ती है, और यह संख्या नगर फर्रुखाबाद और फतहगढ से हुई है, ऐसा जानिये क्योंकि उन दोनों नगरोंकी संख्या समाज से आवेगी। ११। ८। ८२ ई० ॥

इस पत्रका उत्तर स्वामी दयानन्द की तर्फ से यह गया था।

(ओ३म्) श्रीयुत पंडित गोपाल रावजी आनन्दित रहो।

विदित होकि गोरक्षार्थ हस्ताक्षर पत्रके सहित आपका कुशल पत्र पहुंचा पत्रस्थ समाचार के अवलोकन करने से अत्यन्त हर्षहुआ यह आपने सर्वोपकारक धन्य यादाई पुरुषार्थ किया परमात्मा दिन प्रति ऐसेही कर्मोंके सिद्ध करने में उत्साहीकरे आशा है कि आर्य्य भाषाके प्रचारार्थ भी आप स्वपुरुषार्थ की प्रकटी करेंगे। हम उदयपुर पहुच कर नौलखा बाग के राज महलों में ठहरे हैं, एक वार श्रीयुत आर्य्य कुल दिवाकर श्री महाराणा साहिब पधारे परस्पर प्रेम प्रीति के साथ समागम हुआ जैसे उनका नाम है वैसेही गुण भी देखे इत्यादि०
द्वितीय श्रावण १२ शनि सम्वत् १९३० (दयानन्द सरस्वती)

उदयपुर के जैनियोंमें श्वेताम्बराम्नायकी अधिकता है और इस आम्नायके नगरमें अनेक मन्दिर भी उत्तम बने हुयेहैं जिस समयस्वामी दयानन्द सरस्वती उदयपुर में पधारे जैन धर्म्मानुसार वह समय था जबकि (चोमासेमें) मुनिजनों का गमनागमन बन्द होता है, इस अवसर पर उदयपुर गौडी जी के जैन मन्दिर में श्रीमान् सम्वेगी साधु " झवेर सागर " (जवाहिर सागर) जी चतुर्मासकर विराजे थे, जब उनको यह समाचार मिला कि दयानन्द जैनियोंको नास्तिक बतलाता है तो उक्त साधुजीने एक मनुष्य को दयानन्द जी के पास भेजकर यह पूछा कि तुम जैनियों को किस ग्रन्थ के प्रमाण से नास्तिक कहते हो यदि कोई प्रमाण रखते हो तो लिख भेजो वा विदित करो नहीं रखते होतो यह तुमको अथवा कोई भी विद्वान को उचित नहिं कि विना प्रमाण के किसी को अनुचित शब्द कहे, इसपर दयानन्दजी ने अपने दो नवीन शिष्य सहजानन्दादि सन्यासी श्रीमुनि झवेरसागरजी' के पास पठाये जिनसे अनेक प्रश्नोतर के पश्चात निम्न लिखित दो प्रश्न स्वामी दयानन्द सरस्वती के चेलोंने (श्रीमान मुनि ' झवेर सागरजीसे) किये।

(१) जैन लोगोंमें यह बात कैसे मान्य रूप है कि सूक्ष्म निगोद । जीव राशि जो कि सुईके अग्रभाग से भी सूक्ष्म है और उसमें अनत जीवोंका रहना होता है। सोचनेका स्थान है कि आधारसे अधिक आधेय उसमें कैसे रह सकता है ? ।

(२) यह भी अल्पज्ञता का चिन्ह है कि जैनी लोग कृत्रिम वस्तुका बहुत आदर करते हैं। यह सबकोई जानता है जो मूर्ति है सो कृत्रिम है। कि

त्रिम पदार्थ में देवपना कैसे मान सक्ते हैं? जो वस्तु अपने हाथों से बनाई जावे वह फिर पूज्य कैसे हो जाय? इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर उक्त महर्षि ने यह दियाकि

(१) जैन मत में जो सूक्ष्म निगोद राशि सुईके अग्र भाग से भी सूक्ष्म और उसमें भी अनंत जीवोंका रहना कहा है सो युक्ति युक्ति है, और आधार से आधेय अधिक कैसे रहसके यह शंका भी यत्किंचित है। सोचोतो सही कि, चिंतामणि रत्न एक छोटीसी वस्तु है, परंतु उससे जो मांगो वही दे सक्ता है, यह आधेय उस अल्प आधार में कैसे समा सका? इस लिये यह कहना व्यर्थ है कि आधार से अधिक आधेय उस आधार भूत वस्तु में नहीं रह सकता जीव अरूपी है उसका कोई रंग रूप नहीं जैसे चिंतामणि रत्न में याचक को अनंत वस्तु देने की सत्ता, सत्ता पूर्ण रही है, ऐसे सूक्ष्म निगोद राशिमें अनंत जीव राशि सत्ता पूर्ण रहे हुवे ज्ञान गम्य हैं ॥ यतः उक्तंच ॥

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ॥
आज्ञा सिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथा वादिनो जिना ॥१॥

(२) दूसरे जो क्रित्रिम वस्तुका आदर नहीं करना चाहिये यह कहना भी युक्त नहीं। क्यों कि जैसे मूर्ति क्रित्रिम वस्तु है वैसे मुनि, सन्यासी वेषभी त्रिमिम है, उसको भी न मानना चाहिये। परम हंस परि ब्राजका चार्य्य जो दयानन्दजी हैं वे प्रथम गृहस्थ वेषमें थे। अब परिब्राजक वेष रखते हैं, वेष की क्रित्रिमता स्वतः सिद्ध है। और प्रत्यक्ष प्रमाण से सबको उपलब्ध है गृहस्थावस्था में दयानन्दजी परिब्राजक न होनेसे अपूज्य थे और परिब्राजक वेष धारन करने से पूज्य बनगये, इससे सिद्ध हुआ कि क्रित्रिम वस्तुका आदर तुम भी करते हो। यदि तुम्हारे स्वामी दयानन्दजी को कल दिन पुलिस मैनका काला वेष पहना कर और हाथ पग सार्जंटी का बिल्ला लगा कर दस पन्द्रः सिपाही उनके साथ कर दियें जायें तो सम्पूर्ण उदयपुर में यह हवालदार जमादार जैसा आदर सत्कार पावेंगें। और सन्यासी तो तभी समझे जायेंगे कि,जब परिब्राजक वेष धारण कर तुमको साथ ले एक स्थानपर बैठेंगे। बिचार करो कि पुलिस-मैन के वेषमें और परिब्राजका चार्य्य के वेषमें स्वामीजीको बदिये तो फिर एक अवस्थामें पूज्य और एक में अपूज्य किसने बनाया? कहोगे वेषने बनाया तो वेष क्रित्रिम है और त्रिमिम वस्तुका आदर करना यह स्वामी दयानन्दजीकी आज्ञा के विरुद्ध है इस लिये यह प्रश्न तुम्हारा तुमको ही बाधक होगया। और इससे क्रित्रिम वस्तुका आदर करना स्वतः सिद्ध हो गया। मूर्तिमें पूजक का

भाव साक्षात् ईश्वर पनेका आरोपित है, इस लिये यह मूर्ति पूजक को साक्षात् ईश्वर सेवाका फल देती हैं, यह उत्तर सुनकर स्वामीजीके दोनो चेले चुप होकर चले गये और कुछ दिनों पीछे श्री झवेरसागरजी ने फिर दयानन्दजी के निकट एक मनुष्य भेजकर यह कहलाया कि आपने जो निज रचित "सत्यार्थ प्रकाश" के द्वादश समुल्लास में जैनों के नाम से झूठे श्लोक लिखे हैं, सो यातो उनको निज पुस्तकसे निकाल डालो। और जो उनको किसी जैन शास्त्र से सिद्ध करणे की सामर्थ रखते हो तो हमसे सन्मुख होकर शास्त्रार्थ करलो। यह समाचार सुनकर स्वामीजी के छक्के छूट गये, मन में विचारा ठाकुरदास तो पराया वह काया अल्पज्ञ पणें ही भिड़ने को उद्यमी था यह साक्षर पुरुष शास्त्रार्थको स्वत उद्यमी हुआ अब क्या करिये। बस इस बातके घमंड में आनकर कि यहां के महाराणा साहिब हमारे रागी हैं, "श्री झवेर सागर जी" के प्रश्नका कुछ भी उत्तर नहीं दिया, जब यह समाचार "श्री झवेर सागरजी" को विदित हुए तो उन्होंने एक विज्ञापन मोटे अक्षरों से लिखा और काष्टकी तखती परलगाकर अपने उपाश्रयके दरवाजे पर (जहां) सर्व साधारण की दृष्टि पडे) लटका दिया उसमें लिखाया कि "दयानन्द सरस्वती ने अपने बनाये पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' में कुछ नास्तिक मतके श्लोक लेकर उनको जैन मतका कह दिया है, इस विषयमें हम दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, और यह प्रणमी करते हैं कि यदि शास्त्रार्थ में हमारी पराजय हुई तो हम दयानन्दजी के शिष्य होजावेंगे। और जो हमारी विजय होगी तो दयानन्दजी को हमारा शिष्य होना पड़ेगा इत्यादि" ॥

जिस दिनसे यह साइन बोर्ड (तखती) लटकाई गई, स्वामी दयानन्दजी को बड़ा कष्ट हुआ "श्री झवेर सागरजी" के विषयमें मनमाने अप शब्द बोलने लगे अनेक प्रकार के भय दिखलाये परंतु जब कुछ कार्य्य कारी न हुए तो महाराणा जी से ही कहना पड़ा कि आपके अखंड प्रताप सबल राज में हमको "झवेर सागर" सम्वेगी ने विज्ञापन लगाकर दुःख दिया इस विज्ञापनके तखते को जब तक हटाया नहीं जायगा हमको महान कष्ट है, इसको महाराणा जी ने स्वीकार लिया तब एक "श्री झवेर सागर जी" का शिष्य श्रावक जो उस समय दयानन्दजी के पास उपस्थितथा इस समाचार को सुनकर चलपड़ा और "श्री झवेर सागरजी" के पास आनकर कहने लगा आप यह विज्ञापन का तखता स्वतः उतार लेवें तो ठीक है नहीं तो महाराणा जी की आज्ञा से उता

रना पड़ेगा आज दयानन्दजी ने उनसे आपकी बहुत बुराई करी है, तब "श्री झवेर सागरजी" ने कहा कुछ चिंता नहीं सब कार्य्य ठीक हो जायगा। "श्री झवेर सागर जी" भात और सायकाल दिनमें दो बार दशा जङ्गल जायाकरते थे सो इस दिवस वह उस तर्फ पधारे जहां उदयपुरके एजंट साहिबकी कोठी थी दशा जगल होकर सीधे एजंट साहिब के बंगले पर चले गये पहरे वालेने साहिब बहादुर को खबरदी कि कोई फकीर बाहर खड़ाहै, साहिब बहादुर बाहर आए "श्री झवेर सागर" जी को सलाम किया कुरसी पर बिठलाकर पूछा पूज्य साहिब क्योंकर आना हुआ तब "श्री झवेर सागरजी" ने कहा हुजूर आपके स्वतंत्र निर्मल राजमें एक अनुचित कार्य्य तो यह हो गया कि दयानन्द जी ने हमारे धर्म्म संबंधी झूठे श्लोक नास्तिक मतके लेकर उनको हमारा कहकर हमारा दिल दुखाया है, दूसरा अनर्थ यह होने वाला है कि मैंने एक पाटिये (साइन् बोर्ड) पर एक विज्ञापन इस विषयका लिख कर अपने मकान पर लटकाया है कि स्वामी दयानन्द जी ने जो श्लोक अपने पुस्तक में जैनियोंके कहकर लिखे हैं वह जैन के किसी ग्रन्थ के भी नहीं हैं, सो दयानन्द जी को हमसे शास्त्रार्थ करना चाहिये जो हम हारेंगे उनके शिष्य होंगे वह हारे हमारा शिष्य होजाय, इसपर दयानन्द शास्त्रार्थ तो नहीं करता किंतु राणाजीसे कहकर यह तखता (साइन बोर्ड) हटाना चाहता है, सो क्या यह अन्याय नहीं है। इसपर साहिब बहादुरने कहा हम समझ गये तुम कुछ भय मत करो हमारे देखे बिना तुम्हारा साइन बोर्ड (तखता) नहीं हटेगा, और कल्ह प्रातःकाल हम उसको अवश्य देखेंगे 'श्री झवेर सागरजी' निज स्थान पर चले आये प्रातःकाल निज वचनानुसार एजंट साहिब "श्री झवेर सागर जी" के उपाश्रय पर आये विज्ञापन को पढ़ा और कहा इस में राज विरुद्ध कोई लेख नहीं है, और अपने मतकी रक्षार्थ सब कोई ऐसा कर सक्ता है यह नोटिस राज के हुक्म से उतारा नहीं जायगा, और इन्होंने तो अपने निज स्थान पर ही लगाया है इसमें राज्यका कुछ हर्ज नहीं बराबर लगा रहने दो, यह कहकर एजंट साहिब चले गये, और स्वामी दयानन्दजीको चुप हो जाना पड़ा मनमें अनेक तर्क वितर्क उठे परन्तु कुछ बन नहीं पड़ा और विशेष खेद इस लिये हुआ कि एक छोटेसे कार्य्य में बहुत बड़े प्रतिष्ठित महाराणा साहिब की सहाय चाही और अफल हुई। उदयपुर में स्वामीजी ने आत्मानन्द सदानन्द दो शिष्य किये, और वैदिक यंत्रालय प्रयाग से यजुर्वेद भाष्य और

८० । ८१ छपकर प्रकाशित हुआ अब आगे स्वामीजी ने अपनी पूर्वोक्त सम्पूर्ण रचना तथा व्याख्यानोंका विश्वास त्याग एक नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " लिखना पड़ाथा इस लिये अब इसी स्थानपर पुस्तक " दयानन्द छल कपट दर्पण " प्रथम भागका पूर्वार्द्ध पूर्ण होता है, क्यों कि अस्योपरांति स्वामीजीने नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " के व्यतिरिक्त और कुछ नहीं बनाया और सम्वत् १९४० मिती कार्तिक कृष्णा १० को पचत्वको पधार गये थे ॥ इति

इति श्री अग्रवाल बशावतश अनेक महत्पदालकृत
परम विद्वान् राज्यमान सुज्ञ विज्ञ ज्योतिष
रत्न दिवाकर जक्तविख्यात् श्री पडित्
जैनी जीयालालजी चौधरी रईस
फर्रुख नगर जिला गुरगाँव
कृत दयानद छल कपट
दर्पण के प्रथम भागका
पूर्वार्द्ध खड समाप्त
॥ हुआ ॥

॥ अथ दयानन्द छल कपट दर्पण के प्रथम भागका उत्तरार्द्ध लिख्यते ॥

॥ दोहा ॥

दयानन्द नित नित नये मत सिद्धान्त विचार ॥
सदाकाल बदलत रहे तऊ न पाया पार ॥ १ ॥
अन्त समय लों ना हुआ काहू स्थल विश्वास ॥
उनसठ वर्ष व्यतीत कर जगसे भए उदास ॥ २ ॥

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भाद्रपद शुक्ल पक्ष सम्वत् १९३९ में नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" का प्रारम्भ किया जिसकी यथार्थ समालोचना हम द्वितीय भागमें लिखेंगे। परन्तु उक्त पुस्तक की पूर्ण भूमिका पर अपनी पूरी समीक्षा और यथायोग्य पूर्वोक्त सम्पूर्ण पुस्तक के अनेक विषयों पर भी संक्षिप्त समालोचना वा स्व मतव्य प्रकाश करते हैं ॥

(द) "नवीन सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका"

जिस समय मैंने यह ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" बनायाथा उस समय और उस्से पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन पाठनमें संस्कृतही बोलने और जन्म भूमिकी भाषा गुजराती होनेके कारण से मुझको इस भाषाका विशेष परिज्ञान न था इस्से भाषा अशुद्ध बनगई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास होगया है इसलिये इस ग्रन्थकी भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध कर के दूसरी वार छपवाया है। कहीं २ शब्द, वाक्य रचना का भेद हुआहै सो करना उचितथा क्योंकि इसके भेद किये बिना भाषाकी परिपाटी सुधरनी कठिन थी परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तो लिखागया है। हां जो प्रथम छपने में कहीं २ भूल रहीथी, वह निकाल शोध कर ठीक २ करदी गई है ॥ यह ग्रंथ १४ चौदह समुल्लास अर्थात् चौदह विभागोंमें रचा गया है। इसमें १० दश समुल्लास पूर्वार्द्ध और ४ चार उत्तरार्द्ध में बने हैं परंतु अन्त्य के दो समुल्लास और पश्चात् स्व सिद्धान्त किसी कारण से प्रथम नहीं छपसके थे अब वेभी छपवा दिये हैं,—

(समिक्षक) पाठक गण आपको याद होगाकि प्रथम बार के छपे " सत्यार्थ प्रकाश" पर राजा जयकृष्णदास ने यह विज्ञापन छपवाया था कि " यह पुस्तक स्वामीजी ने मेरे व्ययसे रची है और मेरेही व्ययसे यह मुद्रित हुई है, उक्त स्वामीजीने इसका रचनाधिकार मुझको दे दिया है, और उस्का में अधिष्ठाता हू और मेरी ओरसें इस पुस्तक की रजिष्ट्री कानून २० सन १८६७ ई० के अनुसार हुई है, सिवाय मेरे या मेरी आज्ञाके इस पुस्तक के छापने का किसी को अधिकार नहीं हैं " और स्वामीजीने जो पत्र अपने अटरनी द्वारा बम्बई में लाला ठाकुरदासके अटरनी को लिखाया उसमें स्पष्ट रूपसे यह दर्शाया था कि " सत्यार्थ प्रकाश " का छपाना बेचना राजा जयकृष्णदासजी के स्वाधीन है, हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु दूसरी बार छपने की आज्ञा लिये विना स्वामीजी को इसके शोधन करने और छपाने का अधिकार कहाँसे मिला कुछ पता नहीं लगता ? तथा स्वामीजी प्रथम बारके छपे सत्यार्थ प्रकाश की भाषा अशुद्ध होनेके कारण उसको बदल गये तो उनसे पहिलेकी छपी वेद भाष्य भूमिका को भी अशुद्ध ठहराकर पुन' क्यों नहीं लिखा ? क्या उसकी भाषा किसी दूसरे मनुष्यकी लिखी हुई थी ? ऐसा कब माना जासक्ता हैकि जब एकही मनुष्य दो पुस्तक रचे उनमे पहिलेकी भाषा शुद्ध और दूसरे की अशुद्ध समझी जाय और रचियता स्वतः यह लिखैकि इस समय से पहिले मुझको शुद्ध देव नागरी लिखना नहीं आताथा इस लिये भाषा अशुद्ध बनगई थी इ०

पुस्तक " मंगलदेव पराजय" पृष्ट २० पंक्ति २१ में लिखा है कि " बुद्धिमान लोग पूर्व 'सत्यार्थ प्रकाश' और नवीन 'सत्यार्थ प्रकाश' का पाठ करके परीक्षा करलें कि स्वामीजी के इस मिथ्या भाषणमें कितना सत्य है, मण में उनतालीस सेर धूर शेष आटा ही आटा, वास्तवतो यह है कि प्रायः विषयोंमें पूर्व ' सत्यार्थ प्रकाश ' की अपेक्षा नवीन ' सत्यार्थ प्रकाश ' में इतना अर्थ भेद हुआ है कि नवीन ' सत्यार्थ प्रकाश ' पूर्व ' सत्यार्थ प्रकाशका विरोधी ही है, इत्यादि०"

फिर नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " की भूमिका पृष्ट २ पंक्ति १४ में स्वामी जी लिखते हैं कि'–

मेरा इस ग्रन्थके बनानेका मुख्य प्रयोजन सत्य २ अर्थका प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य

॥ अथ दयानन्द छल कपट दर्पण के प्रथम भागका उत्तरार्द्ध लिख्यते ॥

॥ दोहा ॥

दयानन्द नित नित नये मत सिद्धान्त विचार ॥
सदाकाल बदलत रहे तऊ न पाया पार ॥ १ ॥
अन्त समय लों ना हुआ काहू स्थल विश्वास ॥
उनसठ वर्ष व्यतीत कर जगसे भए उदास ॥ २ ॥

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भाद्रपद शुक्ल पक्ष सम्वत् १०३९ में नवीन " सत्यार्थ प्रकाश" का आरम्भ किया जिसकी यथार्थ समालोचना हम द्वितीय भागमें लिखेंगे । परन्तु उक्त पुस्तक की पूर्ण भूमिका पर अपनी पूरी समीक्षा और यथायोग्य पूर्वोक्त सम्पूर्ण पुस्तक के अनेक विषयों पर भी संक्षिप्त समालोचना वा स्व मन्तव्य प्रकाश करते हैं ॥

(द) " नवीन सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका "

जिस समये मैंने यह ग्रन्थ " सत्यार्थ प्रकाश " बनायाथा उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन पाठनमें संस्कृतही बोलने और जन्म भूमिकी भाषा गुजराती होनेके कारण से मुझको इस भाषाका विशेष परिज्ञान न था इससे भाषा अशुद्ध बनगई थी । अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास होगया है इसलिये इस ग्रन्थकी भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध कर के दूसरी बार छपवाया है । कहीं २ शब्द, वाक्य रचना का भेद हुआहै सो करना उचितथा क्योंकि इसके भेद किये बिना भाषाकी परिपाटी सुधरनी कठिन थी परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तो लिखागया है । हां जो प्रथम छपने में कहीं २ भूल रहीथी, वह निकाल शोध कर ठीक २ करदी गई है ॥ यह ग्रंथ १४ चौदह समुल्लास अर्थात् चौदह विभागोंमें रचा गया है । इसमें १० दश समुल्लास पूर्वार्द्ध और ४ चार उत्तरार्द्ध में बने हैं परन्तु अन्त्य के दो समुल्लास और पश्चात् स्व सिद्धान्त किसी कारण से प्रथम नहीं छपसके थे अब वेभी छपवा दिये हैं,—

(समीक्षक) पाठक गण आपको याद होगाकि प्रथम वार के छपे " सत्यार्थ प्रकाश" पर राजा जयकृष्णदास ने यह विज्ञापन छपवाया था कि " यह पुस्तक स्वामीजी ने मेरे व्ययसे रची है और मेरेही व्ययसे यह मुद्रित हुई है, उक्त स्वामीजीने इसका रचनाधिकार मुझको दे दिया है, और उस्का में अधिष्ठाता हू और मेरी औरसें इस पुस्तक की रजिष्ट्री कानून २० सन १८६७ ई० के अनुसार हुई है, सिवाय मेरे या मेरी आज्ञाके इस पुस्तक के छापने का किसी को अधिकार नहीं हैं " और स्वामीजीने जो पत्र अपने अटरनी द्वारा बम्बई में लाला ठाकुरदासके अटरनी को लिखाया उसमें स्पष्ट रूपसे यह दर्शाया था कि " सत्यार्थ प्रकाश " का छपाना बेचना राजा जयकृष्णदासजी के स्वाधीन है, हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु दूसरी बार छपने की आज्ञा लिये बिना स्वामीजी को इसके शोधन करने और छपाने का अधिकार कहाँसे मिला कुछ पता नहीं लगता ? तथा स्वामीजी प्रथम वारके छपे सत्यार्थ प्रकाश की भाषा अशुद्ध होनेके कारण उसको बदल गये तो उससे पहिलेकी छपी वेद भाष्य भूमिका को भी अशुद्ध ठहराकर पुन: क्यों नहीं लिखा ? क्या उसकी भाषा किसी दूसरे मनुष्यकी लिखी हुई थी ? ऐसा कब माना जासक्ता हैकि जब एकही मनुष्य दो पुस्तक रचे उनमे पहिलेकी भाषा शुद्ध और दूसरे की अशुद्ध समझी जाय और रचियता स्वतः यह लिखेकि इस समय से पहिले मुझको शुद्ध देव नागरी लिखना नहीं आताथा इस लिये भाषा अशुद्ध बनगई थी इ०

पुस्तक " मगलदेव पराजय" पृष्ठ २० पंक्ति २१ में लिखा है कि " बुद्धिमान लोग पूर्व 'सत्यार्थ प्रकाश' और नवीन 'सत्यार्थ प्रकाश' का पाठ करके परीक्षा करलें कि स्वामीजी के इस मिथ्या भाषणमें कितना सत्य है, मण में चनवालीस सेर दूर शेष आध्य ही आटा, वास्तवतो यह है कि प्रायः विषयोंमें पूर्व ' सत्यार्थ प्रकाश ' की अपेक्षा नवीन ' सत्यार्थ प्रकाश ' में इतना अर्थ भेद हुआ है कि नवीन ' सत्यार्थ प्रकाश ' पूर्व ' सत्यार्थ प्रकाशका विरोधी ही है, इत्यादि०"

फिर नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " की भूमिका पृष्ठ २ पक्ति १४ में स्वामी जी लिखते हैं कि:—

मेरा इस ग्रन्थके बनानेका मुख्य प्रयोजन सत्य २ अर्थका प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य

के स्थानमें असत्य और असत्यके स्थानमें सत्यका मकाश किया जाय किंतु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसाही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्यको भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवालों के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत होता है, इस लिये वह सत्य मतको प्राप्त नहीं हो सकता इस लिये विद्वान आप्तोंका यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्यका स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थका ग्रहण और मिथ्यार्थका परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्यका आत्मा सत्यासत्यका जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजनकी सिद्धि हठ दुराग्रह और अविद्यादि दोषोंसे सत्यको छोड़ असत्यमें झुक जाता है परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी हैं, और न किसीका मन दुखाना वा किसीकी हानि पर तात्पर्य्य है। किंतु जिससे मनुष्य जातिकी उन्नति और उपकार हो सत्याऽसत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्यका ग्रहण और असत्यका परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जातिकी उन्नतिका कारण नहीं है।

(समीक्षक) पूर्वोक्त लेख सत्य है अथवा असत्य, इसको हम पाठक वृन्द तथा विद्वानोंके भरोसे पर छोड़ते हैं क्योंकि स्वामीजी के नवीन और प्राचीन " सत्यार्थ प्रकाश " को जो कोई विद्वान् न्याय दृष्टिसे देखेगा स्वत. विचार लेगा कि स्वामीजी का लिखना कहांतक सत्य है ॥

अब हम कुछ थोड़ासा नवीन वा प्राचीन " सत्यार्थ प्रकाश " का अंश दिखाते हैं और पुनरुक्त दोष तो इन दोनों ग्रन्थों में इतना है कि जिसके संग्रह करने में एक नवीन ग्रन्थ बनजाय परन्तु हमको यहां केवल सारांश ही से प्रयोजन है।

प्रथम बारके छपे " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ट १८ पंक्ति १० में लिखा है (जो सब गणोंका नाम संघातोंका अर्थात् सब जगतोंका ईश नाम स्वामी होने से परमेश्वर का नाम गणेश है) इसके प्रतिकूल पृष्ट २४ पंक्ति २२ में श्री गणेशायनमः ऐसा लिखने वालेको मिथ्या लेखी कहा है, और इसी प्रकार नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ट २१ पंक्ति ११ में (गण संख्याने) इस धातु से " गण " शब्द सिद्ध होता इसके आगे " ईश वा " पति शब्द रखनेसे " गणेश " और "गणपति" शब्द सिद्ध होते हैं। ' ये प्रकृत्यादयो जडाजीवाश्च गण्यन्ते संख्यायन्ते तेषामीश ' स्वामी पतिः पालको वा ' जो प्रकृत्यादि

न्द और सब जीव असंख्यात पदार्थोंका स्वामी वा पालन करने हारा है इससे उस ईश्वर का नाम " गणेश " वा " गणपति " है । यह लिखकर पृष्ठ २८ पंक्ति १० में इसके प्रतिकूल लिखा है । *

तथा प्रथम बार के छपे " सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ २२ पंक्ति ७ में लिखाहै कि सब कल्याण गुणों से सदायुक्त रहने से परमेश्वर का नाम शिव है । फिर पृष्ठ २४ पंक्ति २१ में " शिवायनमः " ऐसा लिखने वाले को मिथ्या विश्वासी बतलाया है ।

इसी प्रकार नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ठ १० पंक्ति १९ में मंगलमय और सबका कल्याण कर्ता होने से " शिव " नाम ईश्वरका है । तथा पृष्ठ २४ पंक्ति ३ (डुकृञ्करणे) "शम" पूर्वक इस धातु से "शङ्कर" शब्द सिद्ध हुआ है " यःशङ्कल्याण सुखं करोति सःशङ्कर " जो कल्याण अर्थात् सुख का करने हारा है इससे उस ईश्वरका नाम " शंकर है "

तथा पृष्ठ २४ पंक्ति १६ में (शिवकल्याणे) इस धातु से " शिव " शब्द सिद्ध होता है " बहुलमेतेत्रिदर्शनम् " इससे शिव धातु माना जाता है जो कल्याण स्वरूप और कल्याण करने हारा है, इस लिये उस परमेश्वरका नाम " शिव " है ॥

तथा पृष्ठ २४ पंक्ति ६ " महत " शब्दपूर्वक "देव " शब्दसे "महादेव" सिद्ध होता है " योमहतां देवः स महादेवः " जो महान् देवोंका देव अर्थात् विद्वानोंका भी विद्वान् सूर्यादि पदार्थोंका प्रकाशक है इस लिये उस परमात्मा का नाम " महादेव " है,

तथा पृष्ठ १९ पंक्ति २१ (गृशब्दे) इस धातुसे ' गुरू " शब्द बना है। " योधर्म्यान् शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरुः ॥

सपूर्वेषामपिगुरु कालेनानवच्छेदात् ॥ योगसू० ॥

जो सत्यधर्म प्रतिपादक सकल विद्यायुक्त वेदोंका उपदेश करता, सृष्टिकी आदिमें अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मादि गुरुओंका भी गुरू और जिसका नाश कभी नहीं होता इस लिये उस परमेश्वरका नाम " गुरू " है, ॥

तथा पृष्ठ २२ पंक्ति ४ (मृगतौ) इस धातु से "सरस" उससे "मतुप्" और "ङीप्" प्रत्यय होने से " सरस्वती " शब्द सिद्ध होता है, " सरोविवि

* पृष्ठ २२ पंक्ति १५ नवीन " सत्यार्थ प्रकाश ' में दयालु " शब्दको ईश्वर ही माना है इससे स्वामीजी चाहते हैं कि संसारी लोग " दयाय देव्योनमः यही शब्द सदैव् उच्चारा करें।

के स्थानमें असत्य और असत्यके स्थानमें सत्यका प्रकाश किया जाय किंतु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसाही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्यको भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवालों के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इस लिये वह सत्य मतको प्राप्त नहीं हो सकता इस लिये विद्वान आप्तोंका यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्यका स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थका ग्रहण और मिथ्यार्थका परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्यका आत्मा सत्यासत्यका जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजनकी सिद्धि हठ दुराग्रह और अविद्यादि दोषोंसे सत्यको छोड़ असत्यमें झुक जाता है परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी हैं, और न किसीका मन दुखाना वा किसीकी हानि पर तात्पर्य्य है। किंतु जिससे मनुष्य जातिकी उन्नति और उपकार हो सत्याऽसत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्यका ग्रहण और असत्यका परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जातिकी उन्नतिका कारण नहीं है।

(समीक्षक) पूर्वोक्त लेख सत्य है अथवा असत्य, इसको हम पाठक वृन्द तथा विद्वानोंके भरोसे पर छोड़ते हैं क्योंकि स्वामीजी के नवीन और प्राचीन "सत्यार्थ प्रकाश" को जो कोई विद्वान् न्याय दृष्टिसे देखेगा स्वयं विचार लेगा कि स्वामीजी का लिखना कहांतक सत्य है॥

अब हम कुछ थोड़ासा नवीन वा प्राचीन "सत्यार्थ प्रकाश" का अंतर दिखाते हैं और पुनरुक्त दोष तो इन दोनो ग्रन्थों में इतना है कि जिसके संग्रह करने में एक नवीन ग्रन्थ बनजाय परन्तु हमको यहां केवल सारांश ही से प्रयोजन है।

प्रथम बारके छपे "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ १८ पंक्ति १० में लिखा है (जो सब गणोंका नाम सघातोंका अर्थात् सब जगतोंका ईश नाम स्वामी होने से परमेश्वर का नाम गणेश है) इसके प्रतिकूल पृष्ठ २८ पंक्ति २२ में श्री गणेशायनमः ऐसा लिखने वाल्केको मिथ्या लेखी कहा है, और इसी प्रकार नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ २१ पंक्ति ११ में (गण संख्याने) इस धातु से "गण" शब्द सिद्ध होता इसके आगे "ईश वा "पति शब्द रखनेसे "गणेश" और "गणपति" शब्द सिद्ध होते हैं। 'ये प्रकृत्यादयो जडाजीवाश्च गणयन्ते संख्यायन्ते तेषामीशः" स्वामी पतिः पालकोवा" जो प्रकृत्यादि

जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थोंका स्वामी वा पालन करने हारा है इससे उस ईश्वर का नाम " गणेश " वा " गणपति " है। यह लिखकर पृष्ठ २८ पंक्ति १० में इसके प्रतिकूल लिखा है। *

तथा प्रथम वार के छपे " सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ २२ पंक्ति ७ में लिखा है कि सब कल्याण गुणों से सदायुक्त रहने से परमेश्वर का नाम शिव है। फिर पृष्ठ २४ पंक्ति २३ में " शिवायनमः " ऐसा लिखने वाले को मिथ्या विश्वासी बतलाया है।

इसी प्रकार नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ठ १० पंक्ति १९ में मंगलाय और सबका कल्याण कर्ता होने से " शिव " नाम ईश्वरका है। तथा पृष्ठ २४ पंक्ति ३ (डुकृञ्करणे) "शम" पूर्वक इस धातु से "शङ्कर" शब्द सिद्ध हुआ है " यः शङ्कल्याण सुखं करोति स शङ्कर " जो कल्याण अर्थात् सुख का करने हारा है इससे उस ईश्वरका नाम " शंकर है "

तथा पृष्ठ २४ पंक्ति १३ में (शिवकल्याणे) इस धातु से " शिव " शब्द सिद्ध होता है " बहुलमेतन्निदर्शनम् " इससे शिव धातु माना जाता है जो कल्याण स्वरूप और कल्याण करने हारा है, इस लिये उस परमेश्वरका नाम " शिव " है॥

तथा पृष्ठ २४ पंक्ति ६ " महत " शब्दपूर्वक "देव" शब्दसे "महादेव" सिद्ध होता है " योमहतां देवः स महादेव " जो महान् देवोंका देव अर्थात् विद्वानोंका भी विद्वान् सूर्यादि पदार्थोंका प्रकाशक है इस लिये उस परमात्मा का नाम " महादेव " है,

तथा पृष्ठ १९ पंक्ति २१ (गृशब्दे) इस धातुसे ' गुरू " शब्द बना है। " योधर्म्यान् शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरुः॥

सपूर्वेषामपिगुरु कालेनानवच्छेदात्॥ योगसू०॥

जो सत्यधर्म प्रतिपादक सकल विद्यायुक्त वेदोंका उपदेश करता, सृष्टिकी आदिमें अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मादि गुरुओंका भी गुरू और जिसका नाश कभी नहीं होता इस लिये उस परमेश्वरका नाम " गुरू " है,॥

तथा पृष्ठ २२ पंक्ति ४ (सृगतौ) इस धातु से "सरस" उससे "मतुप्" और "ङीप्" प्रत्यय होने से " सरस्वती " शब्द सिद्ध होता है, " सरोविवि

* पृष्ठ २२ पंक्ति १५ नवीन " सत्यार्थ प्रकाश ' में दयालु" शब्दको ईश्वर ही माना है इससे स्वामीजी चाहते हैं कि संसारी लोग " दयान-देभ्योनमः ' यही शब्द सदैव उच्चारण करें।

के स्थानमें असत्य और असत्यके स्थानमें सत्यका प्रकाश किया जाय किंतु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसाही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्यको भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवालों के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इस लिये वह सत्य मतको प्राप्त नहीं हो सकता इस लिये विद्वान आप्तोंका यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्यका स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थका ग्रहण और मिथ्यार्थका परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्यका आत्मा सत्यासत्यका जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजनकी सिद्धि हठ दुराग्रह और अविद्यादि दोषोंसे सत्यको छोड़ असत्यमें झुक जाता है परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी हैं, और न किसीका मन दुखाना वा किसीकी हानि पर तात्पर्य्य है। किंतु जिससे मनुष्य जातिकी उन्नति और उपकार हो सत्याऽसत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्यका ग्रहण और असत्यका परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जातिकी उन्नतिका कारण नहीं है।

(समीक्षक) पूर्वोक्त लेख सत्य है अथवा असत्य, इसको हम पाठक वृन्द तथा विद्वानोंके भरोसे पर छोड़ते हैं क्योंकि स्वामीजी के नवीन और प्राचीन " सत्यार्थ प्रकाश " को जो कोई विद्वान् न्याय दृष्टिसे देखेगा स्वतः विचार लेगा कि स्वामीजी का लिखना कहांतक सत्य है ॥

अब हम कुछ थोड़ासा नवीन वा प्राचीन " सत्यार्थ प्रकाश " का अंतर दिखाते हैं और पुनरुक्त दोष तो इन दोनो ग्रन्थों में इतना है कि जिसके संग्रह करने में एक नवीन ग्रन्थ बनजाय परन्तु हमको यहां केवल सारांश ही से प्रयोजन है।

प्रथम बारके छपे " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ठ १८ पङ्क्ति १० में लिखा है (जो सब गणोंका नाम सघातोंका अर्थात् सब जगतोंका ईश नाम स्वामी होने से परमेश्वर का नाम गणेश है) इसके प्रतिकूल पृष्ठ २४ पंक्ति २२ में श्री गणेशायनमः ऐसा लिखने वालेको मिथ्या लेखी कहा है, और इसी प्रकार नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ठ २१ पङ्क्ति ११ में (गण संख्याने) इस धातु से " गण " शब्द सिद्ध होता इसके आगे " ईश वा " पति शब्द रखनेसे " गणेश " और "गणपति" शब्द सिद्ध होते हैं। ' ये प्रकृत्यादयो जडा जीवाश्च गणयन्ते संख्यायन्ते तेषामीशः " स्वामी पतिः पालको वा " जो प्रकृत्यादि

नये " सत्यार्थ प्रकाश " में मांसका निषेद और प्रथम बारके छपे हुये के पृष्ट ४५ में मांस आदिसे मास' साय होम करनेकी आज्ञा लिखी है ॥

फिर देखो पृष्ट ४३ में पूर्वमुख करके देव तर्पण करना लिखा और पृष्ट ३७२ पक्ति १५ में लिखा है कि देवता हिमालयमें रहते थे जो उत्तराखण्डमें है । और नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " में जो स्वमन्तव्य लिखा उसकी सख्या २० में " देव " नाम विद्वानका लिख दिया है,

फिर देखो पृष्ट ५० पंक्ति १ में शूद्र लोगोंको वेद पढनेकी आज्ञा नहीं लिखी किंतु भाष्य भूमिका पृष्ट३१०व३११मेंसबको वेदाधिकारीलिखदिया।

फिर देखो पृष्ट ७५ पक्ति ६ में लिखा है कि " पूर्वमीमांसादर्शन और वैशेषिक दर्शन में प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण माने हैं " ।

इसके प्रतिकूल आप " आर्य्योद्देश्य रत्नमाला " के ८३ सख्यामें प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, एतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव यह आठ प्रमाण माने और नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " के अतमें जो स्वमतव्य प्रकाश किया उसकी संख्या ३७ में भी यही लिखे हैं ॥

फिर पृष्ट १०७ पक्ति ८ में " शीघ्रबोध " पर तर्क किया हैं इसका उत्तर हम दूसरे भाग में लिखेंगे, फिर देखो पृष्ट १२४ पंक्ति१६ मेंजो यह श्लोक लिखा है,

पाखंडिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकाशठान् ॥
हेतुकान्बकवृतिंश्चवाङ्मात्रेणापिनार्चयेत् ॥ १ ॥

इस श्लोकका अर्थ ऐसा झूठा और मनोक्त लिखा है कि जिसको व्याकरणका कुछ भी ज्ञान होगा वह स्वामीजी के झूठको स्पष्ट रूपसे जान लेवेगा ॥

फिर देखो पृष्ट १२५ पक्ति१९ से " सत्यार्थ प्रकाश " में लिखा है कि जो कोई सदाव्रत क्षेत्र कर्ता है उसमें सज्जन वा सत्पुरुष कोई नहीं जाता इस्में उन गृहस्थोंका पुण्य कुछ नहीं होता किंतु पाप होता है इसके प्रतिकूल फीरोजपुर बरेलीके अनाथालयोंकी बडी प्रशंसा निज लेखनीसे लिखी है, और आपने स्वत' भी जो मथुराजी में जोशीबाबा के धर्म्मक्षेत्रमें अधिक समय तक भोजन खाया उसको भूल गये

फिर देखो पृष्ट १११ की अंतम पंक्ति में जो " पितृ " शब्द है उसका अर्थ पिता किया और इसीप्रकार पृष्ट ११२ पक्ति ९ में भी लिख दिया है ॥

फिर देखो पृष्ट १४० पक्ति ९ व १० में स्त्रीको केवल एक पतिकी ही आज्ञा दई है ॥

घज्ञान विषये यस्या चित्ती सा सरस्वती " जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ सम्बन्ध प्रयोगका ज्ञान यथावत् होवे इससे उस परमेश्वरका नाम 'सरस्वती' है॥

तथा पृष्ट १८ पंक्ति ४ में लिखा है कि " जल और जीवोंका नाम नारा है वे अयन अर्थात् निवास स्थान है जिसका इसलिये सब जीवोंमें व्यापक परमात्मा का नाम "नारायण है" अब पूर्वोक्त लेखके प्रतिकूल स्वामीजी अपने नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ट ७५ पंक्ति १० में यह लिखते हैं कि

जो आधुनिक ग्रन्थोंमें " श्री गणेशायनमः" " सीतारामाभ्यानम, " " राधाकृष्णाभ्यांनम " " श्री गुरुचरणारविन्दाभ्यांनम " " हनुमतेनम " " दुर्गायैनमः " " बटुकायनमः " " भैरवायनमः " " शिवायनमः " " सरस्वत्यैनमः " " नारायणायनमः " इत्यादि लेख देखने में आते हैं इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रोंसे विरुद्ध होनेसे मिथ्याही समझते हैं, इत्यादि० *

फिर देखो पुराने " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ट ३१ पंक्ति २६ में सूर्य्य चन्द्रमाँ को जड़ लिखा है और नाम करण संस्कार विषय में सूर्य्यके सन्मुख खड़ा होकर जलसे अंजलीभर प्रार्थना करनी लिखी है, सो यदि सूर्य्य चन्द्रमाँ जड़ हैं तो जड़ पदार्थके सन्मुख ईश्वर की प्रार्थना करनेको क्यों लिखा।

फिर देखो पुराने " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ट ३८ पंक्ति ९ में लिखा है कि " कन्या लोगोंको यज्ञोपवीत कभी न करना चाहिये " और इसके प्रतिकूल पृष्ट ११० पंक्ति १८ में लिखा है कि " मनुष्यों के बीचमें स्त्री और पुरुष जो मूर्ख हों उनका यज्ञोपवीत भी हुआ होय "।

तथा सम्वत् १९३३ की छपी संस्कारविधि के पृष्ट १०७ पंक्ति ८ में लिखा है " कन्या भी सुन्दर वस्त्रसे शरीरको आच्छादित और यज्ञोपवीत धारण करके विवाह शालामें आवे।

पुराने " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ट ४७ पंक्ति २७ में वेदी १२ अंगुलकी और पंच महायज्ञ विधि के पृष्ट १६ में १६ अंगुलकी लिखी फिर नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ट ८० पंक्ति २९ में १२ व १६ अंगुल दोनोंको ग्रहण करलिया है।

पुराने " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ट ४२ में मरे पितृजनों के श्राद्ध, तर्पण की विधि लिख थोड़े ही दीनपीछे मुकर गये। इस विषयमें सविस्तर लेख पूर्वार्द्ध में लिखाजा चुका है

* और पृष्ट ७१ पंक्ति १४ में लिखा है कि " राम, कृष्ण, नारायण शिव, भगवती गणेशादि नाम स्मरण करनेसे पाप दूर होनेका विश्वास पाखंडियों के उपदेशमें है, ॥

पहिलेही खाते थे, अब आपका यहलेख (कि जो ऐसा कहते हैं कि हम पहिले ही भिक्षा करैं गे यह उनका पाखंड ही जानना) किसका पाखंड दिखलाता है, और किसको पाखंडी ठहराता है, फिर यह वाक्य कि जो विरक्त होके वैरागी आदिक अपने हाथसे लेकर करते हैं वे बड़े पाखंडी है, बतलाइये कि जो सन्यासी होकर रसोइयासे इच्छानुसार भोजन बनवाते हैं वे छोटे पाखंडी हैं वा बड़े पाखंडीसे भी बड़े ? ॥

फिर देखो पृष्ट १७१ में लिखा है कि यज्ञ के वास्ते जो पशुओंकी हिंसा है सो विधि पूर्वक हनन है ।

तथा इसी पृष्ट की पंक्ति २८ में धर्म अधर्म दोनो एक रस लिखदिये हैं, ॥

फिर देखो पृष्ट २०४ पंक्ति २५ से लिखा है कि

और जो तू सत्यही बोलेगा तो गंगा वा कुरु क्षेत्रमें प्रायश्चित करना वा राज्यगृहमें दण्ड अथवा परलोक परजन्ममें नरकादिक सर्व दु:खोंकी प्राप्ति तुझको कभी न होगी, इससे तुझको सत्य ही बोलना चाहिये मिथ्या कभी नहीं ॥

इस लेखमें स्वामीजीने गगा और कुरुक्षेत्रको पाप निवार्के स्थान मान लिया परन्तु नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" में केवल यही लिख दिया है कि गगा २ कहनेसे पाप कभी नहीं जाते हैं और तीर्थ इत्यादि पांचछःसौ वर्ष से प्रकट हुए हैं, ॥

फिर देखो पृष्ट २१९ पंक्ति ३ में लिखा है कि

" जितने जीव हैं उनको ईश्वरने तुल्य पदार्थ दिये हैं पक्षपात कीसीका भी नहीं किया ।

पाठक वृन्द दृष्टि करोकि दो जीव भी तुल्य पदार्थों के भोगी देखनेमें नहीं आते इस विषयमें स्वामीजीका लेख सर्वथा अनुचित है ॥

फिर देखो पृष्ट ३०२ में लिखा है कि कोई भी मांस न खाय तो जानवर पक्षी मत्स्य और जलजन्तु इतने हैं उनसे शत सहस्र गुणे हो जाँय, फिर मनुष्योंको मारने लगें और खेतों में धान्यही न होने पावे फिर सब मनुष्योंकी आजीविका नष्ट होने से सब मनुष्य नष्ट हो जाँय ॥

तथा पृष्ट ३०३ में गोमेधादिकमें वन्ध्या गाय और बैल आदि नर पशुओंका मारना लिखा है, तथा पृष्ट ३९९ में लिखा है कि पशुओंको मारने में थोडासा दु:ख होता है परन्तु यज्ञ में चराचरका अत्यत उपकार होता है, ॥

इसके प्रतिकूल पुस्तक " गोकरुणा निधि " में तथा गौरक्षिणि सभाके

फिर देखो पृष्ट १४७में " यद्द किंचन मनुरवदत्तद्भेषजभेषजतायाः" लिखके इसको स्वामीजी छान्दोग्य उपनिषत् की श्रुति कहते हैं सो यह कहना उनका सर्वथा झूठ है और इसीलिये नये पुस्तकमें इसका अभाव कर दिया है ॥

फिर देखो पृष्ट १४९ पंक्ति १४ में लिखा है कि मांस के पिंड देनेमें कुछ पाप नहीं है ॥

फिर देखो पृष्ट १५९ पंक्ति २६ में लिखा है कि " परमेश्वरने तो सब जीवोंको स्वतन्त्र रचे हैं, " पुनः इसी पुस्तकके पृष्ट २१२ पंक्ति १० से लिखा है कि " जब जीवोंको ईश्वरने रचा तब विचारके सबको स्वतन्त्र ही रखदिया" फिर इसी पृष्ट की पंक्ति १० में लिखा है कि " कर्मोंके करने और पुण्यों के फल भोगने में जीव स्वतन्त्र है और पापों के फल भोगने में पराधीन है, " । पुनः इसी पृष्टकी पंक्ति २१ में लिखा है कि " जीव जैसा करेगा वैसा ही ईश्वर ने ज्ञानसे निश्चय पहिले किया है, " । इस परस्परके विरोधको ज्ञानवन्त स्वतः विचार लेंगे ॥

फिर देखो पृष्ट १६१ पंक्ति ६ से लिखा है, (श्लोक)

प्रजापत्याऽनिरूप्येष्टिसर्ववेदसदक्षिणाम् ॥
आत्मन्यग्नीन्समारोप्यब्राह्मण प्रव्रजेद्गृहात्, मनु०

पूर्वोक्त श्लोकका स्वकपोल कल्पित झूठा अर्थ लिख दिया जो अप्रामाणीक है,

फिर पृष्ट १६४ पंक्ति २७ में एक श्लोक लिखकर उसका खुलासा यह लिखते है कि जब गाँव में धूम न दीखपडे मूसल वा चक्कीका शब्द न सुन पडे किसीके घरमें अंगार न देख पडे सब गृहस्थ लोग भोजन कर चुकें और भोजन करके पत्री और सकोरे बाहर फेंक देवें उस समय सन्यासी गृहस्थ लोगोंके घरमें भिक्षाके लिये नित्य जाय और जो ऐसा कहते हैं कि हम पहिलेही भिक्षा करेंगे यह उनका पाखंड ही जानना क्योंकि गृहस्थ लोगोंको पीड़ा होती है, और जो विरक्त होके वैरागी लोग आदिक अपने हाथसे करते हैं वे बडे पाखंडी हैं,

इसपर मुरादाबादी लाला जगन्नाथदास अपनी बनाई " दयानन्द मत परीक्षा " प्रथम भाग पृष्ट १८ पंक्ति ११ में समीक्षारूप यह लिखते हैं कि

स्वामीजीने तो सन्यास धर्मका सर्वथा ही त्याग करदिया था क्यों कि आप उक्त कालमें गृहस्थ लोगों के घरमें भिक्षाके वास्ते नहीं जाते किंतु रंगी ड्यामें धनाढ्य गृहस्थों के समान इच्छानुसार भोजन बनवाते थे और उससे

इसके प्रतिकूल पृष्ठ ११९ पंक्ति ४ से लिखा है कि " और गर्भवतीस्त्रीसे एक वर्ष समागम न करनेके समयमें पुरुष वास्त्रीसे न रहा जाये तो किसीसे नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति कर दे।"

बड़े आश्चर्यकी बात है कि जब स्त्री प्रथमही गर्भवती है तो और दूसरेसे नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति कैसे करेगी,

क्योंकि किसी वैद्यक ग्रन्थमें ऐसा लिखा देखने में नहीं आया कि एक स्त्री अनेक पुरुषोंसे जुदे जुदे गर्भ एक गर्भके होते हुवे धारण करसके, और जो यही मान लिया जाय कि स्वामीजीका लिखणा पत्थरकी लकीर है तो यह शंका उत्पन्न हो जायगी कि कोका पंडित के कथनानुसार दो मासका गर्भ होने पर स्त्रीको मैथुन करने की अधिक रुचि होती है तो क्या एक गर्भ के दो मास पूरा होने पर वह नियोगद्वारा दूसरा गर्भ धारण करलेगी। और इसी प्रकार दोदो मास पूरे होनेपर नियोगद्वारा गर्भ धारण करते रहनेमें उसका सम्पूर्ण जीवन समय मुर्गी के समान बच्चे देने और भोग करने ही में पूरा होगा जो विद्या औरबुद्धि दोनो के प्रतिकूल है॥ और जो उस गर्भवती स्त्रीसे एक वर्ष तक रहा न जाय तो क्या निज पतिसे भोग करने में कुछ दोष है जो नियोगद्वारा मुंह काला करनेकी आज्ञा दई॥

फिर देखो पृष्ठ ११ पंक्ति २७ से लिखा है कि "किसीको अभिमान न करना चाहिये छल कपट वा कृतघ्नतासे अपना ही हृदय दुःखित होता है तो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिये। छल और कपट उसको कहते हैं जो भीतर और बाहर और रख दूसरोंको मोहमें डाल और दूसरेकी हानिपर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना, "कृतघ्नता" उसको कहते हैं कि किसीके किये हुए उपकारको न मानना।"

फिर देखो पृष्ठ ४० पंक्ति०९ में लिखा है कि। " संध्योपासन जिसको ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं। "आचमन" उतने जलको हथेलीमें लेके उसके मूल और मध्य देशमें ओष्ठ लगाकर करे कि वह जल कंठके नीचे हृदय तक पहुंचे न उससे अधिक न न्यून। उससे कंठस्थ कफ और पित्तकी निवृत्ति थोड़ीसी होती है पश्चात् 'मारजन।' अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभागसे नेत्रादि अंगोंपर जल छिड़के उससे आलस्य दूर होता है जो आलस्य और जल प्राप्त नहोतो न करे।"

फिर देखो पृष्ठ ४१ पंक्ति १ से स्वामीजी वेदी, प्रोक्षणीपात्र, प्रणीतापा-

स्थापित करते समय के व्याख्यानों में मांसका निषेध कर दिया और नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " के तो पृष्ट ३४ पंक्ति २२ पृष्ट २६६ पंक्ति ६ व २८ इत्यादि अनेक स्थान पर मांसका निषेद लिखा है ॥ इसी प्रकार प्रथम बारके छपे " सत्यार्थ प्रकाश " का थोडे से हीमें पूर्वापर विरोध दिखाया अब नवीन " सत्यार्थ प्रकाश "का भी थोड़ासा हाल लिखते हैं, पूरी समालोचनातो दोनों ग्रन्थों की दयानन्द छलकपट दर्पण " के दूसरे भागमें होगी ।

नवीन * " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ट १ पंक्ति १२ तक प्रथम लिखा गया। पृष्ट २ पंक्ति ११ तकचतुर्दशसमुल्लासोंका सूचीपत्र है, पृष्ट २ पंक्ति १४ सेपृष्ट ४ पंक्ति १७ तक भूमिकामें कोई आलोचना करने योग लेख नहीं है, तत्पश्चात् पृष्ट ४ पंक्ति १७ से पृष्ट ५ पंक्ति २८ तक " जैनधर्म्म" सम्बन्धी लेख है जिसकी समीक्षा आगे चल कर करें गे । फिर पृष्ट ५ पंक्ति २९ से पृष्ट ६, के अंत तक भूमिका पूरी करी है, और पृष्ट ७ से २४ तक " ईश्वर नामव्याख्या " पृष्ट २५ से २६ तक मंगलाचरण समीक्षा लिख प्रथम समुल्लास पूरा किया इसकी यथार्थ समालोचना दूसरे भागमें होगी ।

द्वितीय समुल्लास पृष्ट २७ पंक्ति १७ से लिखा है कि

रजो दर्शन के पांचवें दिवससे लेके सोलहवें दिवस तक ऋतुदान देनेका समय है उन दिनोंमेसे प्रथम के चार दिन त्याज हैं, रहे १२ दिन उनमें एकादशी और त्रयोदशी रात्रिको छोड़के बाकी १० रात्रियोंमे गर्भाधान करना उत्तम है, और रजोदर्शनके दिनसे लेके १६ वीरात्रिके पश्चात् न समागम करना। पुनः जब तक ऋतुदानका समय पूर्वोक्त न आवे तब तक और गर्भस्थितिके पश्चात् एक वर्ष तक संयुक्त न हो "

फिर पृष्ट २८ पंक्ति १३ में लिखा है कि " क्योंकि प्रसूता स्त्रीके शरीरके अंशसे बालकका शरीर होता है । इसीसे स्त्री प्रसव समय निर्बल होजाती है, इस लिये प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे । दूध रोकनेके लिये स्तन के छिद्र पर उस औषधिका लेप करे जिससे दूध स्रवित नहो । ऐसे करनेसे दूसरे महीनेमें पुनर युवती हो जाती है । तब तक पुरुष ब्रह्मचर्य्यसे वीर्य्यका निग्रह रक्खे " ॥

* यह बात भी पाठक वृन्दोंको ध्यानमें रखनी चाहिये की नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " जो स्वामीजीने सम्वत् १९३९ में बनायाथा सन् १८८७ में तीसरी बार वैदिक यन्त्रालय प्रयागमें छपाथा जो हमारे पास मौजूद है सो हम यहां जहां नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " का प्रमाण देवेंगे वहां इसीके पृष्ट पंक्ति समझना, ।

वा नाचकराना, सुनना, और देखना, वृथा इधर उधर घूमते रहना, ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं" ।

पाठक वृन्द खयाल करनेका स्थान है स्वामीजीको बालपणेका गीत नृत्य अब तक याद है । क्योंना होइस विद्याने तो घरसे ही निकाला था, और यदि स्वामीजी युवा होकर इस कार्य्यको बुरा समझने लगे थे तो अब उनके शिष्य गण सप्ताहिक जलसों में गला फाड़ फाड़ राग भजन क्यों गाते हैं ? ॥

पृष्ट ७१ पंक्ति १२ में लिखा है कि "अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं उनका परिगणन संक्षेपसे किया जाता है अर्थात् जो २ नीचे ग्रन्थ लिखेंगे वह २ जाल ग्रन्थ समझना चाहिये । व्याकरणमें का तंत्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कोमदीशेखर, मनोरमादि । कोश अमरकोशादि । छन्दो ग्रन्थमें वृत्त रत्नाकरादि । शिक्षामें अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयंमत यथा । इत्यादि । ज्योतिषमें शीघ्रबोध मुहुर्त चिंतामणि आदि । काव्यमें नायका भेद कुवलयानन्द रघुवंश माघ, किरातार्जुनीयादि मीमांसा में धर्मसिन्धु, व्रतार्कादि । वैशेषिकमें तर्क सग्रहादि । न्यायमें जाग दीशी आदि । योगमें हठ प्रदीपिकादि । सांख्यमें सांख्यतत्व कौमुद्यादि । वेदान्तमें योगवासिष्ठ पंचदश्यादि । वैद्यकमें शार्ङ्गधरादि । स्मृतियोंमें एक मनुस्मृति इसमें भी प्रक्षिप्त श्लोक अन्य सर्वस्मृति, सबतंत्र ग्रन्थ, पुराण सब उपपुराण तुलसीदासकृत भाषा रामायण, रुक्मणीमंगलादि और सर्व भाषा ग्रन्थ ये सब कपोल कल्पित मिथ्या ग्रंथ हैं ॥

प्यारे पाठक गण स्वामीजीने आदि आदि शब्द सब के साथ लगादिया। जिससे व्याकरण, कोश, शिक्षा, ज्योतिष, काव्य, मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग सांख्य, वेदान्त, वैद्यक, स्मृति, तंत्र, पुराण, उपपुराण के जितने ग्रन्थ पृथ्वीपर प्रचलित हैं सब परित्यागके योग्य होगये ॥ और मनुस्मृति तो इस लेखसे प्रत्यक्ष ही अप्रमाण हो चुकी है । इसके प्रतिकूल पृष्ट ६०४ पंक्ति १ में पुराणको ग्रहणकर लिया है, सो यदि यही समझ लिया जाय कि मनुस्मृतिको यहाँ यथावत् वेदोक्त माना है अब उसे आद्योपांत नहीं मानते और उसलिखित मृत पुरुषोंके श्राद्धादि कर्मोंको धर्म्म नहीं जानते किंतु उसके अनेक विषयोंको वेद विरुद्ध कहते और उनके खंडन परउद्यमी रहते रहे, विद्वानोंका यह काम नहीं है कि जिसें यथावत्वेदोक्त बतलावें फिर उसीको वेद विरुद्ध ठहरावें । असल बात तो यह है कि स्वामीजी किसी ठिकाणेपर स्थिर नहीं रहते, यदि उनको मनुस्मृतिके लेखोंमें कुछ भाग वेद विरुद्ध जान पड़ा था तो (नवीन "सत्यार्थ

त्र, आज्यस्थाली, चमसा, इन पांचोंका चित्र बनाकर "सत्यार्थ प्रकाश" के पाठकोंको समझाते हैं कि इस प्रकारके सोने चान्दी वा काष्ठके बनवाकर का मर्म लाओ। हम पूछते हैं कि एक जड़ वस्तुके ज्ञान कराने में तो आपको उस की मूर्तिका सहारा लेना पड़ा भावार्थ उसकी मूर्तिद्वारा पाठकोंको बोध कराया फिर पृष्ठ ३०८ से ३१६ तक मूर्ति पूजाका खण्डन किया यह किस बुद्धिमानीका काम है ॥

फिर पृष्ठ ४३ पंक्ति ८ में लिखा है कि "और जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त शूद्र होतो उसको मंत्र संहिता छोड़के सब शास्त्र पढ़ावे शूद्र पढ़े पर उसका उपनयन न करे यह मत अनेक आचार्य्योंका है।"

इसके प्रतिकूल पृष्ठ ७४ पंक्ति ११ में शूद्रको वेद पढ़नेका अधिकार नहीं यह लिख दिया

फिर पृष्ठ ५२ पंक्ति १७ में लिखा है कि "जो वेद और वेदानुकूल आप्त पुरुषोंके किये शास्त्रोंका अपमान करता है उस वेद निन्दक नास्तिकको जाति पंक्ति और देशसे बाहर कर देना चाहिये।"

इसपर स्वामीजीने एक मनु स्मृतिका श्लोक भी लिखा है, और इस "सत्यार्थ प्रकाश" में मनुस्मृतिके अधिक प्रमाण दिये हैं, परन्तु इसके कुछ भागको वेदानुकूल कहकर ग्रहण करना और शेष भागको नहीं मानना इसको न्यायवान विचार सक्ते हैं कि जाति, पंक्ति, और देशसे निकाले जाने लायक शास्त्रोंका अपमान करने वाला नास्तिक कौन ठहर सकता है ॥

पृष्ठ ६८ पंक्ति ५ में "सारस्वत, चन्द्रिका, कौमदी, मनोरमा को कुग्रंथ लिखा और इसी पृष्ठकी पंक्ति १५ में अमरकोशको नास्तिक कृत लिखा पर पृष्ठ ४१९ पंक्ति २१ में इसी के प्रमाणपर लेख किया है ॥

और पृष्ठ ६८ पंक्ति १० में "मनुस्मृति, वाल्मीकीय रामायण, और महाभारतको प्रमाणीक माना परतु उनके अंतरगत लेखको स्वामीजी नहीं मानते इस विषयमें हम आगे चलकर स्पष्ट लिखेंगे।

पृष्ठ ७० पंक्ति १० में लिखा है कि "गान्धर्व वेद कि जिसको गानविद्या कहते हैं उसमें स्वर, राग, रागिणी, समय, ताल, ग्राम तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदिको यथावत सीखें"।

फिर पृष्ठ १४४ पंक्ति २ से लिखा है कि "गाना, बजाना, वा नाचना,

तुल्य पति को प्राप्त होवे जब प्रति मास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों में ३६ बार रजस्वला हुए पश्चात विवाह करना योग्य है, इससे पूर्व नहीं ।

अब न्याय वानों को विचारना चाहिये कि प्रथम लेख से इस लेखमें कितना विरोध है, प्रथम लिखा है कि कन्या का विवाह २४ वर्षकी अवस्था में करे तो श्रेष्ट है । अब उसी विषय को पुनः यहाँ लिखते हैं कि रजस्वला हुए पीछे तीन वर्षमें पति को ढूंढले तो क्या स्वामीजी यह समझ रहे हैं कि २१ वर्ष की अवस्था से पहिले स्त्री रजस्वला* नहीं होती? धन्य महाराज धन्य खूब लिखा।

पृष्ट ८४ पंक्ति १९ में लिखा है कि "वर्ण व्यवस्था भी गुण कर्म स्वभाव के अनुसार होनी चाहिये" ॥

पुन इसी पृष्टकी पंक्ति २५ में लिखा है कि "जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है, वही ब्राह्मण के योग्य है और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है" ।

पुनः पृष्ट ८६ पंक्ति ९ में लिखा है कि "जो नीच भी उत्तम वर्णके गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये ।

पुन' पृष्ट ८७ पंक्ति २१ में लिखा है कि "अर्थात् चारों वर्णों में जिस २ वर्ण के सदृश जो २ पुरुष वा स्त्री हो वह २ उसी वर्ण में गिना जावे" ।

पुन' पृष्ट ८८ पंक्ति १४ में लिखा है कि "यह गुण कर्मों से वर्णोंकी व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरुषों की पचीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिये" ।

पुनः पृष्ट ९० पंक्ति १४ में लिखा है कि "ये संक्षेपसे वर्णोंके गुण और कर्म लिखे, जिस जिस पुरुष में जिस जिस वर्णके गुण कर्म हों उस उस वर्ण का अधिकार देना" ।

इन सबका भावार्थ यही है कि कन्याओं की १६ वें और पुरुषोंकी २५ वें वर्ष परीक्षा करे और जैसा २ गुण कर्म स्वभाव जिस २ स्त्री वा पुरुष में हो उस २ स्त्री वा पुरुषको उसी गुण कर्म स्वभाव वाले वर्ण में प्रविष्ट करना। परन्तु १६ वें वर्षसे पहिले स्त्री २५ वें वर्षसे पहिले पुरुष को किसी वर्ण में न गिना जायगा ॥

इनके प्रतिकूल पृष्ट १७ पंक्ति २ पुस्तक संस्कारविधि में लिखा है कि "जन्म दिनसे लेके १० वी १२ वी रात्रि महीना किंवा एक सम्वत्सर में वा

---

* वर्तमान काल में १० वर्षसे पीछे १२ वर्षसे पहिले कन्या अवश्य रजस्वला हो जाती है ॥

प्रकाश" पृष्ट ७२ पंक्ति ७ के इस लेखानुसार "असत्य मिश्र सत्यं दूरतस्त्याज्य मिति। असत्यसे युक्त ग्रथस्य सत्यको भी वैसे छोड़ देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्नको) मनुस्मृतिका सर्वथा त्याग चाहिये।

फिर पृष्ट ७९ पंक्ति १८ में कैसी कन्यासे विवाह करना चाहिये इस विषयमें यह लिखा है "नक्षत्र अर्थात् अश्विनी भरणी रोहिणीदेई रेवतीबाई चित्तराआदि नक्षत्र नाम वाली। तुलसीआ, गैंदा, गुलाबी, चंपा, चमेली, आदि वृक्ष नाम वाली, गंगा यमुना आदि नदी नाम वाली, चांडाली आदि अन्त्य नाम वाली, विन्ध्या हिमालया पार्वती आदि पर्वत नाम वाली, कोकिला, मैना आदि पक्षी नाम वाली, नागी भुजंगी आदि सर्प नाम वाली, माधोदासी, मीरादासी आदि प्रेष्य नाम वाली और भीमकुंअरि चंडिका काली आदि भीषण नाम वाली कन्या के साथ विवाह न करना चाहिये क्योंकि ये नाम कुत्सित और अन्य पदार्थों के भी हैं।

पाठकवृन्द टुक ध्यान देना चाहिये कि स्वामीजी ने स्त्रीयों को नदी और पुष्पों को वृक्ष बनाकर लिख दिया, और क्या इसी लेखानुसार वसुदेव की स्त्री का नाम रोहिणी, महादेवकी स्त्री का नाम पार्वती यह दोनो मूर्ख थे वा उन कन्याओं के पिता आदि मूर्ख थे? और इस श्लोक का शब्दार्थ भी वह नहीं है जो स्वामीजी ने लिखा है॥

फिर पृष्ठ ८० पंक्ति ७ से लिखा है,

(प्रश्न) विवाहका समय और प्रकार कौनसा अच्छा है, (उत्तर) सोलहवें वर्ष से लेके ४८ में वर्ष तक पुरुषका विवाह समय उत्तम है, इसमें जो सोलह और पचीस में विवाह करे तो निकृष्ट अठारह बीसकी स्त्री तीस पेंतीस वा चालीस वर्ष के पुरुषका मध्यम चौबीस वर्षकी स्त्री और अड़तालीस वर्षके पुरुषका विवाह होना उत्तम है॥

प्रिये पाठकों २४ वर्ष की कन्या और ४८ वर्ष के पुरुष का विवाह करना उत्तम लिखा है सो विचार करना चाहिये कि चौबीस वर्ष की अवस्था वाली लड़की की गणना (शुमार) कन्यामें होगी वा तरुणा (जवान) स्त्री में होगी। एवं ४८ वर्षका पुरुष बालक कदापि न कहावेगा किंतु बराबर जवान (युवा) कहा जायगा।

फिर पृष्ट ८२ पंक्ति १ से मनु के प्रमाण पर लेख लिखा है कि॥

कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पतिका खोज करके अपने

हमारे स्वामीजी महाराज ने तो लड़के लड़कियोंको धातु पाषाणादि के भांडे (बर्तन) बनादिया कि पुराने वा टूटे फूटे बर्तन बदल डाले और बदले में नवीन ग्रहण कर लिये हा! अति आश्चर्य ।

पुनः पृष्ट ८९ पंक्ति २७ से गीता के श्लोक का भावार्थ लिखा है कि "जो भागनेसे वा शत्रुओं को धोखा देनेसे जीत होती हो तो ऐसाही करना"

शौर्यंतेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वर भावश्च क्षत्र कर्म स्वभावजम् ॥ १॥

उक्त श्लोक गीता की अ० १८ का ४३ वाँ है उसके इस पदका (युद्धे चाप्यपलायनम्) अर्थ यह है कि 'युद्धमें पीठ नहीं दिखाना' परन्तु स्वामी-जी ने उसका अर्थ (युद्धमें भी दृढ निश्शंक रहके उससे कभी न हटना न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिससे निश्चित विजय होवे आप बचे जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना) मन माना लिख दिया ।

—पुनः पृष्ट ९१ पंक्ति १५ में विवाहकी विधि का वर्णन किया सो वर्तमान कालके ईसाईयों के समान मूर्ति (फोटोग्राफ) को देखकर सबन्ध करने का वर्णन किया क्या यह भी किसी वेद काही वचन है ?

पुन पृष्ट ९२ पंक्ति १२ में लिखा है कि "जब वीर्य्यका गर्भाशय में गिरनेका समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनो स्थिर और नासिका के सामने नासिका नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यंत प्रसन्न चित्त रहें डिगें नहीं पुरुष अपने शरीर को ढीला छोडे और स्त्री वीर्य्य प्राप्ति समय अपान वायुको उपर खींचे योनिको उपर संकोच कर वीर्य्यका ऊपर आकर्षण करके गर्भाशयमें स्थित करे ।

प्यारे पाठक गण क्या सन्यासी लोक कोक कला में भी प्रवीण होते हैं? और स्वामीजीका यह लेखभी किसी वेदानुकूल हैं ?

पुन पृष्ट ९५ पंक्ति ६ में लिखा है "दिनरातमें जब जब प्रथम मिले वा पृथक् हों तब २ प्रीति पूर्वक "नमस्ते" एक दूसरेसे करें"

इसपर मंगलदेव पराजय पृष्ट ८ पंक्ति ७ में लिखा है कि मुन्शी इन्द्रमणि जी ने हरिद्वार छलेश्वर आदिके वार्तालापमें स्वामीजी से कहाया कि आप

लक का नाम धरे। और उसी पुस्तक के पृष्ठ ३० पंक्ति १० में लिखा है कि ब्राह्मण के नाम के अंतमें शर्मन् क्षत्रिय के वर्मन वैश्य के गुप्त और शूद्र के दास जैसे भद्रशर्मा, भद्रवर्मा, भद्रगुप्त, भद्रदास, इस प्रकारसे नाम रक्खे।

पाठक वृन्द विचार करो कि जब २५ वें वर्ष में परीक्षा करके गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार वर्ण निश्चय करने को "सत्यार्थप्रकाश" में लिखा है तो यहाँ दसवें बारहें महीने एव १ वर्ष के भीतर उन बालकों में गुण कर्म स्वभाव कहाँसे आ गया जो वर्ण निश्चय होकर उनके नाम शर्मन्, वर्मन्, गुप्त, दास रक्खे जाते हैं। और पृष्ठ ९३ पंक्ति १७ इसी "सत्यार्थप्रकाश" में संस्कार विधि के अनुसार नाम करण संस्कार करना लिखा है॥

पुन. पृष्ठ ८८ पंक्ति ९ में यह प्रश्नोत्तर लिखा है

(प्रश्न) जो किसी के एकही पुत्र वा पुत्री हो वह दूसरे वर्णमें प्रविष्ट हो जाय तो उसके माबापकी सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायगा इसकी क्या व्यवस्था होना चाहिये। (उत्तर) न किसीकी सेवाका भंग और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उनको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्व वर्ण के योग्य दूसरे संतान विद्या सभा और राज सभाकी व्यवस्था से मिलेंगे, इस लिये कुछ भी अव्यवस्था नहोगी,

पाठक महाशयों को प्रकट होकि पूर्वोक्त लेखका अभिप्राय यह हुआ कि यदि ब्राह्मणके लड़के वा लड़कियों में शूद्रके गुण कर्म्म पाये जायँ और शूद्रके लड़के लड़कियों में ब्राह्मणके गुण कर्म्म हों तो विद्या सभा और राज सभाकी व्यवस्था से ब्राह्मणके लड़के वा लड़कियाँ शूद्रको और शूद्रके लड़के लड़कियाँ ब्राह्मणको दिये जाय।

अब यहाँपर प्रथम यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ग्रन्थ कर्ताने यह किस वेद की श्रुति का आश्रय लिखा है।

दूसरे बुद्धिमान मनुष्य विचार करें कि कोई ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, इन वा सको प्रसन्नतासे स्वीकार कर सकता है कि अपने लड़के वा लड़की शूद्र को दे दे और उनके बदले में शूद्रके लड़के लड़की को ले ले। यह तो सर्वथा विचार से बाहर है, वरन कोई शूद्र भी ब्राह्मणादि कों को अपने बालक पुत्र और क न्या को देकर बदले में उनके लड़के वा लड़कियों को लेना प्रसन्नता पूर्वक क दापि स्वीकार न करेंगे।

हमारे स्वामीजी महाराज ने तो लड़के लड़कियोंको धातु पाषाणादि के भाँडे (बर्तन) बनादिया कि पुराने वा टूटे फूटे बर्तन बदल डाले और बदले में नवीन ग्रहण कर लिये हा! अति आश्चर्य्य।

पुन पृष्ठ ८९ पंक्ति २७ से गीता के श्लोक का भावार्थ लिखा है कि "जो भागनेसे वा शत्रुओं को धोखा देनेसे जीत होती हो तो ऐसाही करना"

शौर्यंतेजो धृतिर्दाक्ष्य युद्धे चाप्यपलायनम्।

दानमीश्वर भावश्च क्षत्र कर्म स्वभावजम् ॥१॥

उक्त श्लोक गीता की अ० १८ का ४३ वाँ है उसके इस पदका (युद्धे चाप्यपलायनम्) अर्थ यह है कि 'युद्धमें पीठ नहीं दिखाना' परन्तु स्वामीजी ने उसका अर्थ (युद्धमें भी दृढ नि:शंक रहके उससे कभी न हटना न भागना अर्थात् इस प्रकार से लडना कि जिससे निश्चित विजय होवे आप बचे जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना) मन माना लिख दिया।

पुन: पृष्ठ ९१ पंक्ति १५ में विवाहकी विधि का वर्णन किया सो वर्तमान कालके ईसाईयों के समान मूर्ति (फोटोग्राफ) को देखकर सबन्ध करने का वर्णन किया क्या यह भी किसी वेद काही वचन है?

पुन पृष्ठ ९२ पंक्ति १२ में लिखा है कि "जब वीर्य्यका गर्भाशय में गिरनेका समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनो स्थिर और नासिका के सामने नासिका नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यत प्रसन्न चित्त रहैं डिगें नहीं पुरुष अपने शरीर को ढीला छोडे और स्त्री वीर्य्य प्राप्ति समय अपान वायुको ऊपर खींचे योनिको ऊपर सकोच कर वीर्य्यका ऊपर आकर्षण करके गर्भाशयमें स्थित करे।

प्यारे पाठक गण क्या सन्यासी लोक कोक कला में भी प्रवीण होते हैं? और स्वामीजीका यह लेखभी किसी वेदानुकूल है?

पुनः पृष्ठ ९५ पंक्ति ६ में लिखा है "दिनरातमें जब जब प्रथम मिले वा पृथक् हों तब २ प्रीति पूर्वक "नमस्ते" एक दूसरेसे करें"

इसपर मगलदेव पराजय पृष्ठ ८ पंक्ति ७ में लिखा है कि मुन्शी इन्द्रमणि जी ने हरिद्वार छलेश्वर आदिके वार्तालापमें स्वामीजी से कहाथा कि आप

मिलनेके समय जो " नमस्ते " कहते हो यह अयोग्य है, हरिद्वार में स्वामी जीने पंडित भीमसेनको मध्यस्थ किया उन्होंने स्वामीजी के सन्मुख स्पष्ट कह दिया कि मुंशीजी ठीक कहते हैं परस्पर 'नमस्ते'का कहना अयोग्य है, परंतु स्वामीजी को अपने कथनका आग्रह ही रहा फिर मुरादाबाद में इस विषय पर तीन दिन स्वामीजीसे मुन्शी जी का पूर्ण वार्तालाप हुआ पंडित भीमसैन ने बहुत मनुष्योंके सन्मुख कहाकि हम स्वामीजीसे नमस्ते कहते हैं परन्तु वे उत्तरमें किसीको नमस्ते नहीं कहते अंतमें स्वामीजीने मुन्शीजी से कहा कि आपका कथन सर्वथा ठीक है नि सन्देह परस्पर नमस्ते का कहना अयोग्य है, परन्तु फिर भी नवीन "सत्यार्थ प्रकाश " में लिख दिया।

पुन. पृष्ठ १०१ पंक्ति ? पर जो श्लोक मनुस्मृतिका लिखा उसका अर्थ मन माना लिखा शब्दार्थ और अक्षरार्थसे प्रतिकूल है।

पुन पृष्ठ १०३ पंक्ति २७ से पृष्ठ १०४ पंक्ति ८ तक यह लेख है,

अतपास्त्वनधीयान प्रतिग्रहरुचिर्द्विज

अम्भस्य श्मप्लवेनेव सहते नैव मज्जति ॥१॥ मनु०

एक (अतपा) ब्रह्मचर्य सत्य भाषणादि तप रहित। दूसरा (अनधीयानः) बिना पढा हुआ तीसरा (प्रतिग्रहरुचि॰) अत्यन्त धर्म्मार्थ दूसरों से दान लेने वाला ये तीनों पत्थरकी नौकासे समुद्र में तरने के समान अपने दुष्ट कर्मों के साथ ही दुःख सागरमें डूबते हैं। वे तो डूबते ही हैं परंतु दाताओंको साथ डुबा लेते हैं।

इसके प्रतिकूल पंडित गौरीशंकर वैद्यराज सम्पादक पियूष वर्षणी धर्म्म सभा फर्रुखाबाद अपने मासिक पत्र सङ्ख्या ४५ भाग ४ मास ज्येष्ठ शुक्ला १५, सम्वत् १९४८ पृष्ठ १५ पंक्ति १९ से लिखते हैं कि " न्यायकारोंको कुछ विचारना चाहियेकि पूर्वोक्त लेखानुसार उक्त ग्रंथ कर्त्ता किस गतिको प्राप्त हुआ होगा, क्योंकि उसमें अधिक अत्यंत धर्मार्थ दान लेनेवाला कौन होगा क्योंकि उसने यहां तांई अत्यत धर्म्मार्थ दान लिया है कि कोपीनधारी से लक्षपती हो गयाथा यहां तक तृष्णा प्रबल हुई कि सम्पूर्ण रत्न स्वर्णादि दान देने संन्यासी ही के लिये अपने ग्रन्थमें लिखे जिसके प्रमाणमें स्वकपोलकल्पित अर्द्ध श्लोक भी मनुके नाम से धर दिया*

* यह आधा श्लोक नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ठ ११३ पंक्ति २० में लिखा है जिसका वर्णन आगे आवेगा ॥

पुनः पृष्ठ १०४ पंक्ति १९ से आगे जो लिखा है उसका भी भावार्थ यही है ॥

पुनः पृष्ठ ११० पंक्ति २४ में मनुका निम्न लिखित श्लोक और उसका, अर्थ यह लिखा है

यास्त्रीत्वक्षतयोनि स्याद्गतप्रत्यागतापिवा ॥
पौनर्भवनभर्त्रासा पुन संस्कार मर्हति ॥ १ ॥

(अर्थ) जिस स्त्री वा पुरुषका पाणि ग्रहण मात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षत योनि स्त्री और अक्षत वीर्य पुरुष हो उनका अन्य स्त्री वा पुरुषके साथ पुनर्विवाह (*) होना चाहिये किंतु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षत योनि स्त्री क्षत वीर्य्य पुरुषका पुनर्विवाहन होना चाहिये॥

पुन पृष्ठ १११ पंक्ति ६ में लिखा है कि द्विजोंमें पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होने चाहियें।

पुनः पृष्ठ ११३ पंक्ति १० में लिखा है कि " द्विजोंमें स्त्री और पुरुषका एकही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है द्वितीय वार नहीं "

पाठक गणों पक्षपात रहित न्याय करोकि एक ही ग्रन्थमें प्रथम यह लिखाकि अक्षत योनि स्त्री और अक्षत वीर्य्य पुरुष का अन्य स्त्री वा पुरुषके साथ पुनर्विवाह होना चाहिये फिर यह लिखा कि द्विजोंमें स्त्री और पुरुषका एकही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है अब खयाल करनेकी बात है कि इस लेखमें परस्पर कितना विरोध है ॥

पुन पृष्ठ ११९ पंक्ति २२ में जो आधा श्लोक मनुस्मृतिका लिखा उसका अर्थ भी मन माना लिख दिया। स्वामी जी लिखते हैं कि

तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ मनु० ॥

स्वामीजी का किया हुआ इसका अर्थ यह है कि " जो अक्षत योनि स्त्री विधवा होजाय तो पतिका निज छोटा भाई भी उससे विवाह कर सकता है"॥

और यथार्थ बात यह है कि यह पूरा श्लोक मनुस्मृति अध्याय ८ का ६९ वां है जो अर्थ सहित इस प्रकार ठीक है ॥

यस्याम्रियेतकन्यायावाचासत्येकृतेपति ॥
तामनेनविधानेननिजोविन्देतदेवर ॥ १ ॥

(अर्थ) जिस कन्याको जिस किसी पुरुषको जिव्हासे देनी कह चुके

(*) जहां यह निशान है वहां तीसरी बार के छप सत्यार्थ प्रकाशमें " 'म यह विधेन भसर स्वामीजी के शिष्योंने सर्व साधारणको धोखा देनेके लिये बना दिया है असलमें नहीं है-

अर्थात् सम्बन्ध जिस्को कर चुके और वह पुरुष जिस्को कि देने मह चुके वह विवाहके प्रथम मृत्यु हो जाय सो उसका निज भ्राता (सगा भाई) उस क न्यासे इस विधान करके विवाह करे ॥

पुनः पृष्ठ ११७ पंक्ति २ में लिखा है कि (प्रश्न) नियोग मरे पीछे ही होता है या जीते पतिके भी (उत्तर) जीते भी होता है ॥

इसका पादरी टी० विल्यम्स मेनेजर मिश्नहोस रिवाड़ीने निम्न लिखित उत्तर और खंडन किया है ॥

"सत्यार्थ प्रकाश" पुस्तक के जो १८८४ में छपके निकला है ११८ पृष्ठ में दयानन्द यह प्रश्न करता है "क्या पतिके जीतेजी जैसा उसके मृत्यु के पीछे नियोग हो सकता है ?" वह आपही उत्तर देता है कि हां पुरुषके जीतेजी नियोग होता है। हमको विदित है कि दयानन्दका नियोगसे क्या अभिप्राय है अर्थात् जब स्त्री और पुरुष निःसन्तान हैं जो वह जो निर्बल नहीं हैं (इस स्थानमें स्त्रीका अर्थ है) सन्तान उत्पन्न करनेके अभिप्रायसे किसी पुरुषसे प्रसंग करे। इस पर्व्वके पूर्व्व भागमें उसने बतलाया कि जब उसका पति मरजावे स्त्रीको क्या करना चाहिये तब आगे बढ़के वह आज्ञा देता है कि अपने पति के जीतेजी यदि वह सन्तान उत्पन्न करने के योग्य न होवे तो स्त्रीको क्या करना पड़ता है। वह यह अयोग्य शिक्षा देता है कि निःसन्तान पुरुषकी स्त्री अपने पति के जीतेजी दूसरे विवाहित पुरुषके संग भोग करे जिससे उससे सन्तान उत्पन्न होवें। इस विलक्षण शिक्षा के प्रमाण वह मनुसे नहीं वरन ऋग्वेदही से लिया चाहता है वह उस वेदके मण्डल १० ऋचा १० पद १० के विषयमें लिखता है कि यह उसका भारी और निरा प्रमाण है। मैं नहीं कह सकता हूं कि ऋग्वेदमें कोई अनुचित बात नहीं है क्योंकि मैं ऐसी बातोंको प्रगट कर सकता हूं परंतु आर्य्य समाजके आदि कर्ता दयानन्दने यह प्रगट किई कि ऋग्वेदहीमें यह अनुचित शिक्षा है कि यदि उसका पति निर्बल होवे तो वह स्त्री दूसरे विवाहित पुरुषके संग भोग करे यह भी मैं नहीं कहता हूं कि हिन्दुओंने दयानन्द के पहिले यह शिक्षा नहीं सुनी है क्योंकि सैकड़ों बरस से वे यह कुव्यवहार करते चले आये। लोग प्रयाग के पण्डे ब्राह्मणों पर यह दोष लगाते हैं और वल्लभाचार्य्य के पन्थ के महाजनों की भी इसी कारणसे बुरी चर्चा फैल रही है। परन्तु मुझे कहना पड़ता है कि दयानन्दसे पहिले कि सीने इस विलक्षण शिक्षाको वेदोंसे निकालनेकी प्रगटता नहीं किई है वरन

आर्य्य समाजके आदि कर्त्ताने अपने वेदकी इतनी निरादरता किई है। परन्तु दयानन्द की यह ममता कि ऋग्वेदमें यह घृणित शिक्षा मिलती है निरी मिथ्या है जब दयानन्द ऋग्वेद को जो वृह ईश्वरोक्त पुस्तक कहता है ऐसा झुठलाता है और मानो कीचदमें घसीट लेता है तो उसके विषयमें क्या कहना उचितहै।

आपको विदित होगा कि दयानन्द के प्रमाण में अर्थात् ऋग्वेद १० मण्डल १० ऋचा १० पदमें यक्ता आता है और यह स्त्री जिससे वह बोलता है उसकी भगिनी है। यम अपनी भगिनी हां अपनी यमज भगिनी यमी से सम्भाषण करता है। वर्तमान काल तक कोई हिन्दू ऐसा उन्मत्त नहीं हुआ कि ऋग्वेद से यह शिक्षा निकालता क्योंकि जो हिन्दू वेदको पढ सकता था सो जानता था कि इस पदमें यम अपनी यमज भगिनी यमी से बोलता है परन्तु दयानन्द उसपर यह टीका करता है कि वक्तापति और वह स्त्री जिससे वृह बोलता है उसीकी पत्नी है ऐसा कहने से दयानन्द समझ बूझकर मिथ्या बोलता है मैं कहता हू कि इसमें सन्देह नहीं कि दयानन्द जानता था कि उसके प्रमाणमें यम अपनी यमज भगिनी यमीसे सम्भाषण करता है सो इस मिथ्या बोलने से उसको कितना पापहै पापतो है क्योंकि वह उस पुस्तक को झुठलाता है जिसके विषयमें वह कहता है कि वह ईश्वरोक्तशास्त्रहै और मैं उसका मानने वाला हूं।

यदि दयानन्दी इस दोषसे छुटकारा प्राप्त करने चाहें तो वह केवल इस रीति से हो सकता है कि वे यह वचन सिद्ध करें कि पूर्वोक्त पदमें न यमवक्ता है और न यमीसे बात करता है परन्तु उस प्रतिवादकोमें अभीखण्डन करताहू।

पहिले पदहीको छोडकर सबसे प्राचीन प्रमाण यास्क है। वह अपने निरुक्त ६ ५ ५ में इस सूक्तके ११ पदको प्रमाणके लिये लिखता है और उसका टीका कार अपनी टीका इस प्रकारसे आरम्भ करता है अर्थात् यमी यमसे बोलता है। कदाचित कोई कहेगा कि टीका कभी आचार्य्यके मूलार्थके विरोध में होती है इस निमित मैं यास्क के निज वचन लिखता हूं। निरुक्त ११ ३ १३ में ऋग्वेदके १० मण्डलके १० सूक्त के १४ पदका यह वर्णन करता है कि यमीयमचकमेताम प्रत्याचचक्ष अर्थात् यमीने यमके संग भोग करने चाहा उसने अस्वीकार किया। यह साक्षात है क्योंकि यास्क और उसका टीकाकार दोनो मानते हैं कि पूर्वोक्त पद यम और यमीकी बात चीतसे हैं जिसमें यमीने यमसे मांगाकि यम उसके संग प्रसंग करे पर यमने अस्वीकार

किया। तो इस ऋचामें निर्बल पति जो अपनी पत्निको पराये पुरुष के पास भेजे उसका वर्णन कहां है। यास्क के टीका कारने लिखा है कि यम यमीका भ्राता है। आपसे कहना आवश्यक नहीं कि यास्कका निरुक्त वेदांग है इस लिये यह वेदके सदृश प्रमाणित है सो दयानन्द ऐसा साहस क्यों करता है कि यास्कका निरुक्त प्रमाण मह मानता है विरोध करता है और कहता है कि इस ऋचा में निर्बल पतिका वर्णन है।

दूसरे। यास्क के प्रमाणसे कात्यायन के प्रमाणको कुछ कम प्रबलता नहीं रखता है। उसकी ऋग्वेदकी सर्वानुक्रमणिकाको जिसमें प्रत्येक सूक्तका ऋषि और देवता लिखा है सब लोग प्रमाणित मानते हैं। यह शत पथ ब्राह्मणके श्रौत सूत्रोंका आचार्य्य है और व्याकरणके विषयमें पाणिनिके तुल्य है क्यों कि पतञ्जली के महा भाष्यका अभिप्राय यह है कि वह इसीकात्यायनके वार्तिकका अर्थ प्रकाश करे जो उसने पाणिनिके व्याकरणपर लिखा है। इस कारण यदिकात्यायनका वचन प्रबल न ठहरे तो किसका प्रमाण मानेंगे अपन सर्वानुक्रमणिका में उसने लिखा है कि ऋग्वेद म १० सूक्त १० का न ऋषि है न देवता वरन वह विवस्वतके पुत्र और पुत्री यम और यमीका सम्वाद है। (वैवस्वतोर्यमयम्यो सम्वाद॰) हे महाशय ऋचा के प्रमाणको छोड़ कर यास्क और कात्यायनके सदृश क्या प्रमाण ठहरेगा। परन्तु हम अभी ऋचाही का प्रमाण लाते हैं।

तीसरा। यम और यमी के व्यक्ति वाचक नाम इस सूक्तमें तीनतीन बार मिलते हैं। १३ पद्में यमका और १४ पदमें यमीका सम्बोधन मिलता है वे दोनों पिछले पद हैं। पद पाठसे विदित होता है कि सम्बोधन कारकको छोड़ और कारकका पता इन पदोंमें नहीं मिलता। इससे सम्वादकोंके नाम अर्थात् यम और यमी विदित होते हैं।

उनके सम्बध के विषय में २ पदमें यम यमीको अपनी सलक्ष्मा कहता है अर्थात् कुटुम्बिनी फिर चौथे पदमें यू लिखा है। *गंधर्वा अप्स्वप्यायसोषासानां नाभि परमं जामितन्नौ* अर्थात् गंधर्व और उसकी अप्सरा पत्नी उनसे हम दोनोंकी उत्पत्ति हुई इस कारण हम परम जामि अर्थात् सगोत्र हैं। पांचवें पदमें यमी कहती है कि त्वष्टाने हम दोनोंको गर्भ में पति और पत्नी बनाया (गर्भे नुनौजनिताद्म्पतीकर्देवस्त्वष्टा) और इस कारण कि वे मिथुन हैं उनको स्वामी और स्त्री होना चाहिये। फिर नवें पदमें यमी कहती है कि दिग पृथि

न्या मिथुना सबन्धू अर्थात् स्वर्ग और पृथिवी पर मिथुनका बड़ा सम्बन्ध है और फिर वह चाहती कि यमसे ऐसा व्यवहार करे कि मानोवे सगोत्रवा जामी नहीं थे। १० पदमें यम उत्तर देता है यत्र जामय कृण्वन्नजामि अर्थात् अभीसे सगोत्र लोग वह कर्म्म करेंगे जो गोत्र धर्म्मका अयोग्य है। ११ पदमें यमी यमका उलहना करती है कि वह भ्राता होने पर भी उसकी सहायता नहीं करता है और यद्यपि वह उसकी स्वसावामभगिनि है तथापि वह उस पर विपत्ति आने देता है। १२ पदमें यम अपनी भगिनी के सग प्रसंग करने से मुकर जाता है क्योंकि वह कहता है पापमाहुर्य स्वसार निगच्छात न ते भ्राता सुभगेवष्टयेवत् अर्थात् लोग उसको पापी कहते हैं जो अपनी भगिनी के सग गमन करता है तेरा भ्राता हे सुन्दरी इसको नहीं चाहता। यह सूक्त अथर्वण वेदमें भी मिलता है और उसमें इस पदका अधिक विस्तार है और यमका मुकर जाना दृढ़ता और गभीरता के साथ लिखा गया है। इस लिये मैं कहता हू कि यदि कोई यम और यमी के सम्बन्ध के विषयमें सन्देह करे तो उसको सिड़ी कहना चाहिये।

इस प्रकार से मैंने स्पष्ट प्रगट किया है कि इस सम्वादमें वक्ता यमन भ्राता और भगिनी है। यमी अभिलाषी है कि उसका भ्राता यम उसके सग भोग करे। यम इस कुकर्म्मसे मुकर जाके उसको जताता है कि ऐसा करनेसे पाप होगा पर उससे कहता है कि वह दूसरे पुरुषकी अभिलाषा करके उसके संग प्रसंग करे। यही पद दयानन्द उदाहरण देता और मिथ्या अनुवाद करता है और यह शिक्षा देता है कि जब उसका पति निर्बल है तो स्त्रीको उचित है कि वह किसी विवाहित पुरुषके सग सन्तान उत्पन्न होने के निमित्त प्रसग करे।

पुनः नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " के पृष्ट १२७ पंक्ति ४ में ऋग्वेदके नाम से यह आधा मन्त्र लिखा " अन्यमिच्छस्वसुभगेपतिमत् " और इसका अर्थ तो जो मनमें आया सो लिखमारा। खैर हम विशेष लिखना उचित नहीं समझते सारांश पूरा पूरा पादरी टी विल्यम्स साहिबके पूर्वोक्त लेखमें भले प्रकार आ चुका है॥

पुनः पृष्ट १४७ पंक्ति १७ में मनुका यह श्लोक लिखकर।

प्रोषितो धर्म्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौनर समा ॥
विद्यार्थं षड्यशोर्थंवा कामार्थं स्त्रीस्तुवत्सरात् ॥१॥

इसका मन माना अर्थ यह लिखा है कि " विवाहित स्त्री जो विवाहित

पतिधर्म्म के अर्थ परदेश गया होतो आठ वर्ष विया और कीर्ति के लिये गया हो तो छः और धनादि कामना के लिये गया होतो तीन वर्ष तक बाट देख के पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करले जब विवाहित पति आवे तबनि युक्त पति छूटजाय ”

प्रिय पाठक महाशयों विचार तो करो उपरोक्त श्लोकमें किस अक्षर से नियोग और सन्तानोत्पत्ति तथा नियुक्त पतिके त्यागका अर्थ निकल्ता है ॥

प्रगट होकि पूर्वोक्त श्लोक मनुस्मृतिके नवमाध्यायका ७६ वां है इस का भावार्थ विना ऊपरके ७४ । ७५ श्लोक शामिल किये नहीं निकल्ता इस लिये उनका भी अर्थ लिखते हैं ॥

कार्यवाला पुरुष स्त्रीका अनाज कपड़ा आदि प्रबन्ध करके प्रदेश जाय अन्न वस्त्रके अभावमें शील्वती भी विगड़ ही जाती है, मनु० अध्याय ९ श्लोक ७४

भोजन वस्त्रका प्रबन्ध करके गये पतिकी स्त्री शृंगारादि क्रियासे रहित होकर अपना गुजारा करे दूसरे के मकानपर न जाय और जो कदाच पति अन्न वस्त्रादिका प्रबन्ध नहीं भी कर गया होय तो चर्खा सूतकात चाकी पीस कर गुज़ारा करे मनु अध्याय ९ श्लोक ७५ ।

अब श्लोक ७६ का अर्थ भी ठीक ठीक इस प्रकार है सुनिये ।

धर्म्म कार्य्य के अर्थ गये पतिकी स्त्री आठ वर्ष तक पूर्वोक्त आश्रयसे गुज़ारा करे विद्या पढ़नेके अर्थ गये पतिकी स्त्री छ वर्ष तक जो रोजगारके लिये गया होतो तीन वर्ष राह देखकर फिर जहां उसका पति हो वहाँ चली जाय ।७६॥

अब न्यायवान विचार करें कि स्वामीजीने कैसा तात्पर्य लिया है ॥

पुन पृष्ट १२० पंक्ति १ से पराशर स्मृति के वचनोंको झूठा और स्वामी मनुष्योंका किया माना है परंतु उनके झूठ होनेका कोई भी प्रमाण नहीं लिखा।

पुन पृष्ट १२३ पंक्ति ८ में लिखा है कि “जो देह धारी है वह सुख दुःख की प्राप्ति से पृथक् कभी नहीं रह सकता और जो शरीर रहित जीवात्मामु क्ति में सर्व व्यापक परमेश्वरके साथ शुद्ध होकर रहता है तब उसको सांसारिक सुख दुःख प्राप्त नहीं होता ” ॥

इसके प्रतिकूल पृष्ट २४१ पंक्ति २० में लिखा है कि—

मुक्तिमें जाना वहाँ से पुन आनाही अच्छा है। क्या थोड़ेसे कारागारसे जन्म कारागार दंड वाले प्राणी अथवा फाँसी को कोई अच्छा मानता है ?

जब यहाँसे आनाही न हो तो जन्म कारागारसे इतनाही अन्त रहै कि वहाँ मजूरी नहीं करनी पड़ती और ब्रह्ममें लय होजाना समुद्रमें डूब मरना है। आहा! क्या अच्छी समझ है। और इस लेखसे यहभी सिद्ध होता है कि सर्व शक्तिमान परम पूज्य परमेश्वर भी सदैव के लिये कारागारमें है॥

पुनः पृष्ठ ११० पंक्ति २९ में मनुस्मृति के प्रमाण से लिखा है कि "मुक्तिरूप अक्षय आनन्द का देने,वाला सन्यास धर्म्म है" ॥

पुनः पृष्ठ २३९ पंक्ति १८ में गीता के प्रमाणसे लिखा है कि "मुक्ति वही है कि जिस से निवृति होकर पुनः ससारमें कभी नहीं आता (उत्तर) यह बात ठीक नहीं क्योंकि वेदमें इस बातका निषेध किया है॥

पुन' पृष्ठ ३३१ पंक्ति २८ में लिखा है कि "वेदशास्त्र विरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास सदृश विद्वानोंका काम नहीं किंतु यह काम विरोधी स्वार्थी अविद्वान लोगोंका है"

पुनः पृष्ठ ३३२ पंक्ति १८ से लिखा है कि "क्योंकि व्यास कहते हैं वारपारकी मध्य रेखा को अर्थात् ऋग्वेदके आरम्भ से लेकर अथर्व वेदके पार पर्य्यन्त् चारों वेद पढ़ेथे—और शुकदेव तथा जैमिनि आदि शिष्यों को पढ़ाये भी थे।"

फिर पृष्ठ ३५२ पंक्ति ९ में लिखा है कि "व्यास मुनिने शारीरक सूत्रोंमे सब ज्ञानकाण्ड वेदानुकूल लिखा है" ॥

अब न्यायी पुरुषोंको पक्षपात रहित शुद्ध हृदय और विमल बुद्धि से ध्यान पूर्वक विचारना चाहिये कि जब व्यासजीका चारों वेदके पूर्ण विद्वान होना और उनके शारीरक सूत्रोंमें सब ज्ञानकाण्ड वेदानुकूल लिखणा स्वीकार किया है तो फिर व्यासकृत शारीरक सूत्र के पूर्वोक्त वचनको वेद विरुद्ध ठहराना प्रत्यक्ष परस्पर विरोध है या नहीं॥

इसके व्यतिरिक्त मनुस्मृतिको भी "सत्यार्थ प्रकाश" में वेदानुकूल स्वीकार किया है और उसीके प्रमाण से मोक्षको अक्षय माना है, फिर उसीको वेद विरुद्ध कह दिया भला कहो तो सही मनुस्मृति की वेदानुकूलता क्यों कर स्थिर रही।

और जब मोक्ष अक्षय है जैसा कि निश्चयमें है तो फिर पृष्ठ २४० पंक्ति १९ में जो लिखा है कि महाकल्प के पश्चात मुक्ति सुखको छोड़ के ससार

में आता है यह लिखना किस आधार पर है मालूम नहीं ? और इस्मे असम शब्दका अर्थ तो सर्वथा नष्ट हो गया

पुन: पृष्ठ १३० पंक्ति ३० व पृष्ठ १३१ पंक्ति १ में यह लिखा कि "स न्यास ग्रहणका अधिकार मुख्य करके ब्राह्मणका है" ॥

इस पर हमारा यह प्रश्न है कि ब्राह्मण गुण कर्म वाला होगा कि जाति कर्म वाला यह स्पष्ट और शुद्ध लिखना था ॥

पुन: पृष्ठ १३३ पंक्ति २० । २१ में निम्न लिखित आधा श्लोक मनुके नामसे लिखा,

विविधानिच रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् ॥

प्रथम तो यह पद मनुस्मृतिमें किसी स्थान पर भी नहीं है उक्त पुस्तक आज कल घर घरमें मिलता है और सब कोई उसको देख सकते हैं, दूसरे यह कितने आश्चर्य्य की बात है कि प्रथम बारके छपे पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" में तो मनुस्मृतिके लेखानुसार सन्यासीको भिक्षा पात्र तथा वृक्ष मूल निवासी लिखा और अब नवीन पुस्तकमें नवीन अर्द्ध श्लोक लिखकर यह सिद्ध किया कि "नाना प्रकारके धन रत्न सुवर्णादि सन्यासियोंको देवे" इस स्थान पर स्वामीजी इतना लिखना भूल गये कि यह अर्द्ध श्लोक नवीन शुद्ध मनुस्मृतिका है जिस्से पाठक भ्रममें आकर चकित होवे ॥

पुन पृष्ठ १३४ पंक्ति २७ । २८ में एक चाणक्य नीति शास्त्रके श्लोकका अर्थ बदल कर विद्वान नाम सन्यासीका ही माना है क्या जो मनुष्य गृहस्था श्रममें रहकर उत्तम विद्या पढ़े वह विद्वान नहीं कहलाता ? ॥

पुन पृष्ठ १३७ के प्रथमसे ही आर्य्य कुल कमल दिवाकर श्रीमान राणा साहिब उदयपुराधीशको पार्लिमेन्ट नियत करनेकी चाह लगानेकी साहस जो कुछ मनमें आया अथाधुन्ध लिख मारा है ॥

पुन पृष्ठ १३८ पंक्ति १३ । १४ । १५ में ऋग्वेदका मंत्र लिख उसके अर्थमें लिखा है कि ईश्वर उपदेश करता है कि हे राज पुरुषो तुम्हारा आयुध ताप चन्द्र मनुष्य बाण सन्धान आदि ? ॥

इस विषयमें पूर्वार्द्ध भागमें यथार्थ और सविस्तार लेख लिख कर हमने यह स्वत: सिद्ध कर दिया है कि स्वामीजीका किया अर्थ यथार्थ नहीं है इस लिये अब इस स्थानपर विशेष लिखना व्यर्थ समझते हैं ॥

पुन: पृष्ठ १४० पंक्ति ६ में लिखा है कि "आप सर्वदा राज कार्य्य में

तत्पर रहै अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राज कार्य में प्रवृत्त रहना और कोई राजकाम बिगडने न देना ॥

धन्यमहाराज ! बड़ाही सुन्दर उपदेश है नवयुवक राजकुमारोंको कर्म्मरहित करनेका इससे उत्तम और क्या उपदेश होगा परन्तु ध्यान रहैकि श्रीमान महाराणा साहिब सज्जनसिंहपर इस लेखका कुछभी प्रभाव नहुआ क्योंकि प्रथमतो वह स्वतःहीजानकार और कर्मेष्टी पुरुषथे। दूसरे उनके राज प्रबन्धमें ऐसे २ उत्तम कर्मचारी गण हैं जो सदैवकाळ महामान्य महाराणाजीको शुद्ध सनातन कुलाम्नाय धर्म्मपर चलनेका परामरस देते रहतेथे॥

पुन: पृष्ठ १६५ पर राजा लोगोंको न्याय करनेकी रीति मनुस्मृतिके लेखानुसार वर्णन करी किंतु यह न समझाकि कल्युगमें पराशर स्मृतिका वचन प्रमाण विशेष है और इसमें उसमें अनेक वार्तोंका भेदाभेद है ॥

पुनः पृष्ठ १८१ पंक्ति १६ में यह प्रश्नोत्तर लिखा हैकि (प्रश्न) ईश्वर सर्व शक्तिमान है या नहीं ? ॥ (उत्तर) है परन्तु जैसा तुम सर्व शक्तिमान शब्दका अर्थ जानतेहो वैसा नहीं ॥ इत्यादि ॥

पाठकवृन्द ध्यान करना चाहिये जो सर्व शक्तिमान है उसको कोई क्यों कर बदल कर पृथक् शक्तिमान सिद्ध कर सक्ता है, जो अर्थ स्वामीजीने इस सर्व शक्तिमान शब्दसे सिद्ध किया है उस्से तो ईश्वरकी शक्ति नष्ट प्राय होती है, और इसके प्रतिकूल पृष्ठ १९२ पंक्ति २१ में लिख दिया कि जीव कर्म करनेमें स्वतन्त्र है ॥

पृष्ठ ११ पंक्ति १९ में " अग्नि " नाम लौकिक पदार्थका कहाथा उसके प्रतिकूल पृष्ठ १८३ पंक्ति १७ में " अग्नि " नाम ईश्वरका ही वाची कहाहै और इसी प्रकार सम्पूर्ण पुस्तकमें अनेक स्थानपर माना गया है ॥

पुन पृष्ठ १८६ पंक्ति १८ । १९ । में यह लिख कराकि

समाधिनिर्धूतमलस्यचेतसो निवेशितस्यात्मनियत्सुखन्नवेत् ॥
नशक्यतेवर्णयितुंगिरातदास्वयन्तदन्तकरणेनगृह्यते ॥ १ ॥

पंक्ति २० में लिखा है कि यह उपनिषदका वचन है परंतु यह लिखना स्वामीजीका सर्वथा झूठ पूर्वोक्त वचन दशों उपनिषदोंमें कहीं भी नहीं है ॥

पुन पृष्ठ १९३ पंक्ति १८ में लिखा है कि " ईश्वरको त्रिकाल दर्शी कहना मूर्खताका काम है ।

न्यायगनोको विचार करना चाहिये कि ईश्वर त्रकालदर्शी नही मी और कोनहै॥

पुनः पृष्ठ १०५ पंक्ति १७ से लिखा है कि

यआत्मनितिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मानवेदयस्यात्मा ॥
शरीरम् । आत्मनोन्तरोयमयतिसतआत्मान्तर्याम्यमृत ॥१॥

इसको स्वामीजी लिखते हैं कि " यहबृहदारण्यक " का वचन है महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयीमे कहते हैं कि हे मैत्रेयी । जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीवमें स्थिर और जीवात्मासे भिन्न है ॥ इत्यादि ॥

प्यारे पाठक गण यह लिखना भी स्वामीजीका सत्य नहीं है, क्योंकि पूर्वोक्त श्रुति बृहदारण्यककी नहीं किंतु शतपथकी है ॥

पुनः पृष्ठ १०६ पंक्ति २५ से लिखा है कि

जीवेशौचाविशु द्धचिद्भिभेदस्तुतयोर्द्वयो ॥
अविद्यातच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः ॥ १ ॥
कार्योपाधिरयंजीव कारणोपाधिरीश्वर ॥
कार्य्यकारणतांहित्वापूर्णबोधोऽवशिष्यते ॥ २ ॥

स्वामीजी लिखते हैं कि " ये संक्षेप शारीरक भाष्यमें कारिका है परंतु यह लिखना स्वामीजीका सर्वथा झूठ है क्योंकि पूर्वोक्त कारिका संक्षेप शारीरक और शारीरक भाष्य में कहीं भी नहीं है ॥

पुनः पृष्ठ २०८ पंक्ति २१ में लिखा है कि " जिस मन्त्रार्थका दर्शन जिस २ ऋषिको हुआ और प्रथम ही जिसके पहिले उस मंत्रका अर्थ किसीने प्रकाशित नहीं कियाथा" । दर्शन साकार वस्तुका होता है शब्दार्थ निराकार है, मालूम नहीं यह क्या गोलमाल है ॥

पुनः पृष्ठ २०९ पंक्ति १९ में लिखा है (प्रश्न) वेदकी कितनी शाखा हैं उत्तर एकसौ सत्ताईस ॥

प्रथम जब ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका छपी उनमें बिना किसी प्रमाणके ११२७ ही वेदकी शाखा वर्णन करीथी और बम्बाइ प्रकाशके पंचम भाग " मासिक " के पृष्ठ १ पर बड़ा मोटा लेख लिखा वेदकी ११३१ शाखा सिद्ध करी अब प्रश्न यह है कि इनमें से किसको प्रमाण किया जाय ? इसका उत्तर यदि कोई इस प्रकार देवे कि पिछले लेखोंको छोड़कर नवीन " सत्यार्थ प्रकाश "

कोही सत्य मानो, सो खैर यही सही अव इसीके पृष्ट ६०१ पंक्ति १८ में वेदोंकी ११२७ शाखा लिखी हैं सो क्या यह पूर्वापरविरोध नही है ?॥

पुनः पृष्ट २०९ पंक्ति २६ में जो यह श्रुति लिखी है " तदक्षतवहु स्यांप्र जायेयेति " स्वामीजी इसको तैतिरीयोपनिषद्का वचन लिखते हैं सो सर्वथा झूट है क्योंकि उक्त श्रुति छान्दोग्यकी है ॥

पुनः पृष्ट २११ पंक्ति २६ से लिखा है कि "सोमक्षइच्छा और कामना करता हुआ कि मैं बहुरूप अर्थात् जगदाकार हो जाऊ सकल्प मात्रसे सब जगद्रूप बनगया " ॥ इसके प्रतिकूल अनेक स्थानोंपर ईश्वरको इच्छा कामना रहित सिद्ध किया है, देखो पृष्ट २१२ पंक्ति ५ । ६ आदि० आदि० ॥

पुनः पृष्ट २२४ पंक्ति ७ से प्रश्नोत्तर लिखा है कि

(प्रश्न) मनुष्योंकी आदि सृष्टि किस स्थल पर हुई।

(उत्तर) त्रिविष्ट अर्थात् जिसको तिव्वत कहते हैं ॥

(प्रश्न) फिर वे यहाँसे कैसे आये

(उत्तर) जब आर्य्य और दस्युओंमें अर्थात् विद्वान जो देव अविद्वान जो असुर उनमें सदा लड़ाई वखेड़ा हुआ किया जब बहुत उपद्रव होनेलगा तब आर्य्य लोग सब भूगोलमें उत्तम इस भूमिके खण्डको जानकर यहां आकर बसे इसीसे इस देशका नाम आर्य्यावृत हुआ ॥

इसके प्रतिकूल पृष्ट ६०४ पंक्ति २३ से लिखा है कि " आर्य्यावर्त " देश इस भूमिका नाम इस लिये है कि इसमें आदि सृष्टिमे आर्य्य लोग निवास करते हैं, परतु इसकी अवधि उत्तरमें हिमालय दक्षिणमें विन्ध्याचल पश्चिममें अटक और पूर्वमें ब्रह्म पुत्रा नदी है इन चारोंके बीचमें जितना देश है उसको ' आर्य्यावर्त ' कहते और जो इनमें सदा रहते हैं उनकोभी आर्या कहते हैं ।

अब विचारवान पुरुषोंको विचारना चाहिये कि एक ग्रन्थ और अनेक प्रकारकी सम्मति फिर किसपर विश्वास किया जाय ॥

पुनः दूसरी बारकी छपी संस्कार विधिके पृष्ट १२० में लिखा पृथ्वी स्थिर है और नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ट २२८ पंक्ति २९ में लिखदिया घूमती है॥

पुनः पृष्ट २२९ पंक्ति १ से लिखा है

(प्रश्न) कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथ्वी नहीं घूमती दूसरे कहते हैं कि पृथ्वी घूमती सूर्य्य नहीं घूमता इसमें सत्य क्या माना जाय?

(उत्तर) ये दोनों अर्थ झूंठे हैं क्योंकि वेदमें लिखा है कि;

आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरम्पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः

यजु॰ अ॰ ३ म॰ ६ ॥—

अर्थात् यह भूगोल जलके सहित सूर्यके चारों ओर घूमजाता है इसलिये भूमि घूमा करती है ॥

पाठक वृन्द स्वामीजी महाराजने पूर्वोक्त मन्त्रके अर्थको ऐसा भ्रष्ट किया कि जो संस्कृतमें सारस्वत मात्रको भी जानता होगा तो वह स्वामीजी के इस छलसे वञ्चित न रहेगा देखिये अर्थ बदला सो बदला अनेक शब्द भी छोड़ दिये भला कहो तो सही उक्त मन्त्रमें " मातरम्पुरः पितरं, स्वः " यह जो लिखा है इसका अर्थ क्यों छोड़दिया इस विषयमें विस्तार सहित दूसरे भागमें लिखा जायगा ॥

पुनः स्वामीजी पृष्ठ २३६ में लिखते हैं कि जीव मुक्ति होकर पुनरपि मायामें आता है, और मग्न रहता है और जीवकी मुक्ति यह है कि दुःखोंसे छूटके आनन्द स्वरूप सर्व व्यापक अनंत परमेश्वरमें जीवका आनन्दमें रहना इसमें हमको शंका होती है कि वह मुक्त जीव ईश्वरकी ज्योति में मिलजाता है या उसीमें व्याप्त रहता है एक देशमें या सर्व देशमें मिलजाता है और निराकार ईश्वरमें साकार जीव किस तरें मिल सकता है । और मुक्तिका लक्षण लिखा है सो भी हमारी समझ में ठीक नहीं है क्योंकि सुख दुःख दोनोंही कर्माधीन हैं और ईश्वरभी जीवको सुख दुःख कर्माधीन देता है जब ये जीव दुःख देनेवाले कर्मोंसे छूट गया तथापि आपके कथनसे सुख देनेवाले कर्मोंसे नहीं छूटा तो मुक्ति किस तरह समझा जाय यदि कहोगे कि सर्व कर्मोंसे छूटके अतीन्द्रिय सुख भोगगा तो सम्पूर्ण कर्मोंसे रहित सिद्ध हुआ पश्चात् संसारमें किस तरह आसकता है और ईश्वर किस तरह ला सकता है क्योंकि जीवको ईश्वर कर्मोंके विना सुख दुःख नहीं दे सकता और मुक्ति होनेके बाद जीवके कोई कर्म बाकी नहीं रहता न उस स्थान पर नवीन कर्मोंका बंध क्योंकि मोक्षमें जीव निष्काम और अशरीर है तब कर्म बंधके विना जीवको ईश्वर मुक्तिसे संसारमें सुख दुःख देनेके लिये क्यों लाया ? विना अपराधके कोई सामान्य राजा भी किसीको दंड नहीं देता तो फिर जिसका नाम दयालु न्यायकारी ईश्वर है वह ऐसा अन्याय क्यों कर करे ॥

पुन॰ पृष्ठ २८९ पंक्ति ८ में लिखा है " ब्राह्मणके सोलहवें, क्षत्रियके बा ईसवें और वैश्यके चोवीसवें वर्षमें केशान्त कर्म्म क्षौर मुण्डन हो जाना चाहिये अर्थात् इस विधिके पश्चात् केवल शिखाको रखके अन्य डाढी मूंछ और शिरके बाल सदा मुडवाते रहना चाहिये अर्थात् पुन कभी न रखना और जो शीत प्रधान देश होतो काम चार हैं चाहै जितने केश रक्खे और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिरमें बाल रहनेसे उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है डाढी मूछ रखनेसे भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्टभी बालोंमे रहजाता है॥

अब हम पूछते हैं क्या पूर्वोक्त लेखमें गोलमालके व्यतिरिक्त किसी कार्य्य की सिद्धी भी है, और इसका कौनसा वचन मानने योग्य है ॥

पुन पृष्ठ २१३ पुराने " सत्यार्थ प्रकाश " तथा नवीन के पृष्ठ २६४ पंक्ति २० तथा पृष्ठ २७० पंक्ति १९ । २० । २१ । २२ में यह आज्ञा करी है कि चारों वर्णके प्राणियोंका एकही स्थानपर साथ भोजन होना चाहिये चौका धोती छूत्याछूत व्यर्थ है " परन्तु इस लेख में किसी वेद शास्त्रका प्रमाण नहीं दिया ॥

पुन पृष्ठ २६६ पंक्ति २८ में यह वचन लिखकर "वर्जयेन्मधुमासंच। मनु०"

इसका अर्थ यह लिखा है कि " जैसे अनेक प्रकारके मद्य, गांजा, भंग, अफीम आदि " प्यारे पाठक गण पूर्वोक्त पदका स्पष्ट अर्थ यह है कि शहद और मास त्यागने, देखो गांजा, भांग, अफीम तो स्वामीजीने शहदका अर्थ लगाया परतु मांसका अर्थ कहाँ गया? उसकी बनावट कुछ अवश्य करनी चाहियेथी

पुन पृष्ठ २७८ पंक्ति १४ में स्वामीजी " मोक्षमूलर साहिब " के विषयमें लिखते हैं कि वह हमारे देशकी सुणी सुणाई टूटी फूटी संस्कृत जानता है और जर्मन देशमें संस्कृत चिठीका अर्थ करना किसीको नहीं आता, यह वचन स्वामीजीका मानके उदय और द्वेषके कारणसे है ॥

प्रथम बारके छपे " सत्यार्थ प्रकाश " में अनेक ठिकानोंपर मांस खानेकी और होम करनेकी आज्ञा दई अब नवीन " सत्यार्थ प्रकाश "पृष्ठ २८७ पंक्ति ५ में लिखते हैं कि मांस भक्षण करने, मद्य पीने, पर स्त्री गमन करने आदि में दोष नहीं है यह कहना छोकड़ा पन है क्योंकि विना प्राणियोंके पीड़ादिये मांस प्राप्त नहीं होता और विना अपराध के पीड़ा देना धर्म्मका काम नहीं । प्रथम बारकी छपी "आर्य्याभिविनय ' के पृष्ठ २७ पर लिखा है कि हे ईश्वर

(उत्तर) ये दोनो आधे झूठे हैं क्योंकि वेदमें लिखा है कि;

आयगौ पृश्निरक्रमी दसं वन्मातरंपुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः यजु ० अ० ३ म० ६ ॥—

अर्थात् यह भूगोल जलके सहित सूर्यके चारों ओर घूमजाता है इस लिये भूमि घूमा करती है ॥

पाठक वृन्द स्वामीजी महाराजने पूर्वोक्त मन्त्रके अर्थको ऐसा भ्रष्ट किया कि जो संस्कृतमें सारस्वत मात्रको भी जानता होगा तो वह स्वामीजी के इस छलसे वञ्चित न रहेगा देखिये अर्थ बदला सो बदला अनेक शब्द भी छोड़ दिये भला कहो तो सही उक्त मन्त्रमें " मातरपुर' पितर, स्व " यह जो लिखा है इसका अर्थ क्यों छोडदिया इस विषयमें विस्तार सहित दूसरे भागमें लिखा जायगा ॥

पुन स्वामीजी पृष्ठ २३८ में लिखते हैं कि जीव मुक्ति होकर सुखको प्राप्तहोताहै, और प्रसन्न रहता है और जीवकी मुक्ति यह है कि दुखोंसे छूटके आनन्द स्वरूप सर्व व्यापक अनंत परमेश्वरमें जीवका आनंदमें रहना इसमें हमको शङ्का होती है कि वह मुक्त जीव ईश्वरकी ज्योति में मिलजाता है या उसीमें व्याप्त रहता है एक देशमें या सर्व देशमें मिलजाता है और निराकार ईश्वरमें साकार जीव किस तरें मिल सकता है । और मुक्तिका लक्षण लिखा है वो भी हमारी समझ में ठीक नहीं है क्योंकि सुख दु ख दोनोंही कर्म्माधीन हैं और ईश्वरभी जीवको सुख दु ख कर्म्माधीन देता है जब ये जीव दु ख देनेवाले कर्म्मसे छूट गया तथापि आपके कथनसे सुख देनेवाले कर्म्मोंसे नहीं छूटा तो मुक्ति किस तरह समझा जाय यदि कहोगे कि सर्व कर्म्मसे छूटके अतीन्द्रिय सुख भोगताहै तो सम्पूर्ण कर्म्मसे रहित सिद्ध हुआ पश्चात् संसारमें किस तरह आसकता है और ईश्वर किस तरह ला सकता है क्योंकि जीवको ईश्वर कर्म्मके बिना सुख दु ख नहीं दे सकता और मुक्ति होनेके बाद जीवके कोई कर्म्म बाकी नहीं रहता न उस स्थान पर नवीन कर्म्मका बंध क्योंकि मोक्षमें जीव निष्काम और अश रीर है तब कर्म्म बन्धके बिनाजीवको ईश्वर मुक्तिसे संसारमें सुख दु ख देनेके लिये क्यों लाया ? बिना अपराधके कोई सामान्य राजा भी किसीको दंड नहीं देता तो फिर जिसका नाम दयालु न्यायकारी ईश्वर है वह ऐसा अन्याय क्यों कर करे ॥

पुनः पृष्ठ २५९ पक्ति ८ में लिखा है " ब्राह्मणके सोलहवें, क्षत्रियके वा ईसवें और वैश्यके चोवीसवें वर्षमें केशान्त कर्म्म क्षौर मुण्डन हो जाना चाहिये अर्थात् इस विधिके पश्चात् केवल शिखाको रखके अन्य डाढी मूंछ और शिरके बाल सदा मुडवाते रहना चाहिये अर्थात् पुन कभी न रखना और जो शीत प्रधान देश होतो काम चार हैं चाहै जितने केश रक्खे और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिरमें बाल रहनेसे उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है डाढी मूछ रखनेसे भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्टभी बालोंमे रहजाता है॥

अब हम पूछते हैं क्या पूर्वोक्त लेखमें गोलमालके व्यतिरिक्त किसी कार्य्य की सिद्धी भी है, और इसका कौनसा वचन मानने योग्य है ॥

पुनः पृष्ठ २१३ पुराने " सत्यार्थ प्रकाश " तथा नवीन के पृष्ठ २६४ पक्ति २० तथा पृष्ठ २७० पक्ति १९ । २० । २१ । २२ में यह आज्ञा करी है कि चारों वर्णके प्राणियोंका एकही स्थानपर साथ भोजन होना चाहिये चौका धोती छूआछूत व्यर्थ है " परन्तु इस लेख में किसी वेद शास्त्रका प्रमाण नहीं दिया ॥

पुन पृष्ठ २६६ पक्ति २८ में यह वचन लिखकर "वर्जयेन्मधुमांसच। मनु०"

इसका अर्थ यह लिखा है कि " जैसे अनेक प्रकारके मद्य, गांजा, भंग, अफीम आदि " प्यारे पाठक गण पूर्वोक्त पदका स्पष्ट अर्थ यह है कि शहद और मास त्यागने, देखो गांजा, भांग, अफीम तो स्वामीजीने शहदका अर्थ लगाया परतु मांसका अर्थ कहाँ गया? उसकी बनावटकुछ अवश्य करनी चाहियेथी

पुन पृष्ठ २७८ पंक्ति १४ में स्वामीजी " मोक्षमूलर साहिब " के विषयमें लिखते हैं कि वह हमारे देशकी सुणी सुणाई टूटी फूटी सस्कृत जानता है और जर्मन देशमें सस्कृत चिठीका अर्थ करना किसीको नहीं आता, यह वचन स्वामीजीका मानके उदय और द्वेषके कारणसे है ॥

प्रथम वारके छपे " सत्यार्थ प्रकाश " में अनेक ठिकानोंपर मांस खानेकी और होम करनेकी आज्ञा दई अब नवीन " सत्यार्थ प्रकाश "पृष्ठ २८७ पंक्ति ९ में लिखते हैं कि मांस भक्षण करने, मद्य पीने, पर स्त्री गमन करने आदि में दोप नहीं है यह कहना छोकड़ा पन है क्योंकि विना प्राणियोंके पीड़ादिये मास प्राप्त नहीं होता और बिना अपराध के पीड़ा देना धर्म्मका काम नहीं। प्रथम बारकी छपी "आर्य्याभिविनय' के पृष्ठ २७ पर लिखा है कि हे ईश्वर

(मनसावाचा कर्मणा अज्ञान से जो पाप हमसे हुवा उनको क्षमा कर इसके प्रतिकूल नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ठ ३२३ पंक्ति ५ में लिख दिया कि " पाप कभी नहीं कहीं छूट सकता, विना भोगे अथवा नहीं कटते " वस जब पाप विना भोगे कटते वा छूटते नहीं फिर तो प्रार्थना करनी सर्वथा व्यर्थ है ॥

पुनः पृष्ठ ३३८ पंक्ति ६ में भागवतके प्रमाणसे लिखा है कि प्रहलादके बाप हिरण्यकश्यपने " एक लोहेका खंभा आगीमें तपाके उससे बोला जो तेरा इष्ट देव राम सचा होतो तू इसको पकड़नेसे न जलेगा प्रह्लाद पकड़नेको चला मनमें शंका हुई जलनेसे बचूगा वा नहीं ? नारायणने उस खंभे पर छोटी २ चीटियोंकी पंक्ति चलाई "

यह लिखना स्वामीजीका सर्वथा झूठ है भागवतमें लोहका खम्भा और उसपर चीटियोंका चलना कहीं भी नहीं लिखा ॥

पुनः पृष्ठ ३३८ पंक्ति २८ में " श्येनवायुवेगेनैजगामगोकुलमति " यह पद भागवतका बतलाकर इसपर मनमानी टीकाकी है परंतु हमको आश्चर्य इस बा. तका है कि यह वचन स्वकपोल कल्पित बनाकर स्वामीजीको क्या लाभ हुआ वर्तमान समयमें भागवत घर २ मिलता है, और उक्त पुस्तकमें उक्त पद कहींमीनहींहै॥

पुनः पृष्ठ ३४३ पंक्ति १६ पर " छादत्यर्कमिन्दुर्विधुंभूमिभा " इस पदको लिखकर स्वामीजी यह वचन सिद्धान्त शिरोमणिका बतलाते हैं परन्तु सिद्धांत शिरोमणिमें यह पद कहींभी नहीं है ॥

सम्वत् १९३३ की छपी संस्कार विधि पृष्ठ ९४९ पंक्ति २४ में यह मंत्र

नमः शंभवाय च मयोभवायच नमः शंकरायच

मयस्करायच नमः शिवायच शिव तरायच ॥

उक्त मंत्र में शिवको ईश्वर मानकर नमस्कार किया और इसके प्रतिकूल नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ ३०५ में "ओंनमः शिवाय" इसको बुरा लिखदिया,

जिन शिष्य लोगोंकी सहायता से स्वामीजी के आर्य्य समाज लाहौर और अमृतसर में स्थापित होकर सम्पूर्ण पंजाब में उत्तम फल लाया उनके प्रथम गुरु प्रसिद्ध श्री नानक साहिबको नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ठ ३६७ पंक्ति १२ में मलीन शब्दोंमें लिखकर दम्भी तक बतलाया सो नेकीका बदला यहीया॥

पुनः पृष्ठ ३९६ पंक्ति ९ से पृष्ठ ४०० तक स्वामीजी ने एक " आर्य्या वर्त देशीय " राज वंशावली " लिखी है उसकी समीक्षा आगे चलकर दूसर भागमें लिखी जायगी ।

अबतो पृष्ठ ४०१ से पृष्ठ ४७० तक (द्वादश समुल्लास) के अतिरिक्त पृष्ठ १ से लेकर पृष्ठ ६०८ तक जो कुछ जैन धर्म्मके विषय में स्वामीजी ने लिखाहै उसका उत्तर लिखा जाता है, इसके पीछे पृष्ठ ४७१ से लेकर पृष्ठ ६०८ तक की समीक्षा लिख यह लेख पूरा करेंगे ॥

इस स्थान पर यह लिख देना भी उचित है कि नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ ४ पंक्ति १७ से पंक्ति २९ तक स्वामीजीने सर्व दर्शनादि ग्रन्थ पुस्तकों द्वारा जो गड़बड़ाध्याय मचाया है सो सर्वथा व्यर्थही समझना वह लेख यह है,

यद्यपि जो १२ (बारवें) समुल्लास में चार्वाकका मत जो इस समय क्षीणा स्तसा है और यह चार्वाक बौद्ध जैनसे बहुत सबंध अनीश्वर वादादि में रखता है यह चार्वाक सबसे बड़ा नास्तिक है उसको चेष्टाका रोकना अवश्य है क्यों कि जो मिथ्या बात न रोकी जाय तो संसार में बहुतने अनर्थ प्रवृत्त हो जाँय चार्वाक का जो मत है वह बौद्ध और जैनका मत है वहभी १२ वें समुल्लासमें संक्षेप से लिखा गया है, और बौद्धों तथा जैनियोंका भी चार्वाक के मतके साथ मेल है और कुछ थोड़ासा विरोध भी है, और जैन भी बहुतसे अंशमें चार्वाक और बौद्धोंके साथ मेल रखते हैं और थोड़ीसी बातोंमें भेद है। इसलिये जैनों की भिन्न शाखा गिनी जाती है वह भेद बारहवें समुल्लास में दिखलाया है यथा योग वही समझ लेना जो इसका भिन्न है सो २ बारहवें समुल्लासमें दिखलाया है बौद्ध और जैन मतका विषय भी लिखा है। इनमें से बौद्धों के दीप वंशादि प्राचीन ग्रन्थों में बौद्ध मत संग्रह सर्व दर्शन संग्रह में दिखलाया है उसमें से यहाँ लिखा है।

पाठक वृन्द अब हम नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" की भूमिका से लेकर अंत तक फिर तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहते हैं, परंतु इसमें केवल उसी लेख पर ध्यान दिलाया चाहते हैं जो "जैनधर्म्म से" सम्बन्ध रखता है ॥

छोटे २ ग्रामों के रहने वाले बहुधा सीधे सादे अनेक मनुष्य अपने ग्रामकी चौपाड़ में बैठकर उसी ग्रामके किसी मुखिया मनुष्य से जब कभी यह प्रश्न करें कि आज कल हमारे देशमें राज किसका है ? और सबसे बड़ा हाकम कौन है ? तब वह मुखिया मनुष्य यद्यपि बिल्कुल चाहे कुछ भी न जानता हो परंतु मुखिया होने के अभिमानमें आनकर उत्तर देता है कि सम्पूर्ण हिन्दोस्थान और लन्दन में कम्पनी साहिब का राज है और कम्पनी साहिब एक स्त्री है जो लन्दनही में रहती है, उसके दो पुत्र हिन्दोस्थानमें रहते हैं एक बड़ा जंगी

लाट दूसरा छोटा मुल्की लाट है, बड़ा कलकत्ते छोटा शमल में रहता है, लश्करी लाट फौज सिपाह का बन्दोबस्त रखता है, मुल्की लाट धरतीका रुपया जिमींदारों से छोटे हाकिमों द्वारा वसूल कराकर लन्दन भेजता रहता है, इत्यादि॰॥

इसी प्रकार नवीन "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ट ४ पंक्ति २९ से आगे का निम्न लिखित लेख जो स्वामीजीने जैन धर्म्म विषयमें लिखा सो जानना लेख यह है,

जैनियों के निम्न लिखित सिद्धान्तों के पुस्तक हैं उनमेंसे ४ चार मूल सूत्र जैसे १ आवश्यक सूत्र २ विशेषावश्यक सूत्र ३ दशवैकालिक सूत्र और ४ पाक्षिक सूत्र। ११ ग्यारह अङ्ग, जैसे १ आचाराङ्ग सूत्र, २ सुयेडांग सूत्र, ३ थाणांग सूत्र, ४ समवायांग सूत्र, ५ भगवती सूत्र, ६ ज्ञाता धर्म कथा सूत्र, ७ उपासक दशासूत्र ८ अन्तगड़दशा सूत्र, ९ अनुत्तरोववाई सूत्र, १० विपाक सूत्र, और ११ प्रश्न व्याकरण सूत्र १२ बारह उपांग, जैसे १ उपवाई सूत्र, २ रावप्सेनी सूत्र, ३ जीवाभि गम सूत्र, ४ पन्नगणा सूत्र, ५ जम्बूद्वीप पन्नति सूत्र, ६ चन्दपन्नति सूत्र, ७ सूरपन्नति सूत्र, ८ निरियावली सूत्र, ९ कप्पिया सूत्र, १० कपवड़ीसया सूत्र, ११ पुप्फिया सूत्र, १२ पप्प चूलिया सूत्र, ॥ पांच कल्प सूत्र जैसे १ उत राध्यन सूत्र, २ निशीथ सूत्र ३ कल्प सूत्र, ४ व्यवहार सूत्र और ५ जीतकल्प सूत्र ॥ ६ छः छेद, जैसे १ महा निशीथ बृहद्वाचना सूत्र, २ महानिशीथ लघुवाचना सूत्र, ३ मध्यम वाचना सूत्र, ४ पिंडनिरुक्ति सूत्र ५ औघ निरुक्ति सूत्र, ६ पर्य्यूषणा सूत्र। १० दश पयन्न सूत्र, जैसे १ चतुस्सरण सूत्र, २ पचखाण सूत्र, ३ तंदुल वैयालिक सूत्र, ४ भक्ति परिज्ञान सूत्र, ५ महा प्रत्याख्यानसूत्र, ६ चंदा विजय सूत्र, ७ गणी विजय सूत्र, ८ मरण समाधि सूत्र, ९ देवेन्द्रस्तन सूत्र, १० संसार सूत्र, तथा नन्दी सूत्र योगोद्धार सूत्र, भी प्रमाणिक मानते हैं॥ ५ पञ्चाङ्ग जैसे १ पूर्व सब ग्रंथोंकी टीका २ निरुक्ति ३ चरणी ४ भाष्य ये चार अवयव और सब मूल मिलके पंचांग कहाते हैं इनमें ढूंढिया अवयवों को नहीं मानते और इनसे भिन्न भी अनेक ग्रंथ हैं कि जिनको जैनी लोग मानते हैं। इनका विशेष मत पर विचार १२ बारहवें समुल्लास में देखलीजिये। जैनियों के ग्रंथोंमें लाखों पुनरुक्त दोष हैं और इनका यहभी स्वभाव है कि जो अपना ग्रंथ दूसरे मत वाले के हाथ में हो वा छपा होतो कोई २ उस ग्रंथको अप्रमाण कहते हैं यह बात उनकी मिथ्या है क्योंकि जिसको कोई माने कोई नहीं इससे वह ग्रंथ जैन मत से बाहर नहीं हो सकता। हां जिसको कोई न माने और न कभी किसी जैनीने माना हो तब तो अग्राह्य हो सकता है परन्तु ऐसा कोई

ग्रन्थ नहीं है कि जिसको कोईभी जैनी न मानता हो इस लिये जो जिस ग्रन्थ को मानता होगा उस ग्रंथस्थ विषयक खण्डन मण्डन भी उसी के लिये समझा जाता है। परन्तु कितने ही ऐसे भी हैं कि उस ग्रंथको मानते जानते हों तोभी सभा वा सम्वादमें बदल जाते हैं इसी हेतु से जैन लोग अपने ग्रन्थों को छिपा रखते हैं दूसरे मतस्थको न देवे, न सुनाते और न पढाते इस लिये कि उनमें ऐसी २ असम्भव बातें भरी हैं जिनका कोई भी उत्तर जनियों में से नहीं दे सकता झूठ बात को छोड़देना ही उत्तम है।

पाठक वृन्द पूर्वोक्त लेखसे स्वामीजीका अजाण पणाँ ही नहीं किंतु धूर्त पणाँ भी सिद्ध होता है, और जो कुछ स्वामीजी ने लिखा सब मिथ्या और व्यर्थ ही है, लालबुझक्कड़ की तरह गप्प शप्प सुणी सुणाई बातोंपर मनमानी टीका लिख निज विद्वान बननेको उद्यमी हुये थे परंतु इस लिखने से तो उलटी उनकी अज्ञानता सिद्ध होती है, यद्यपि जिन जिन सूत्र सिद्धान्तोंका नाम स्वामीजी ने पूर्वोक्त लेखमें लिखा वह जैन सिद्धान्तके कोई २ ग्रंथ अवश्य हैं परंतु इतना लिखदेने से स्वामी जी जैन धर्म्म के जानकार नहीं कहला सकते जबकि उनके लेखमें अनेक स्वकपोल कल्पित और झूठे नाम जैनशास्त्रोंके देखनेमें आते हैं, और खयाल करनेकी बात है कि जैसे मुसलमान लोगोंके धर्म्म ग्रंथ 'कुरान' अंग्रेजों के धर्म्म ग्रंथोंका नाम बैबल इंजील तौरैत है, जिनको बहुधा मनुष्य भले प्रकार जानते हैं, परंतु अर्बी फारसी अंग्रेजी के पढे बिना उन पुस्तकों के नाम मात्र सुणकर कोई उनपर तर्क वा समीक्षा नहीं करसकता, इसी प्रकार बिना प्राकृत विद्याके पूर्ण व्याकरणी पंडित हुये जैन सिद्धान्त के गुढाशय को जान लेना स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे देह धारीयोंकी बुद्धिसे पृथक् था, और जो पत्र स्वामीजीने मेरठ से ठाकुरदास को लिखवाया उसमें सिद्ध कियायाकि मैं प्राकृत विद्या नहीं जानता। इससे यह सिद्ध होता है कि स्वामीजी ने नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" की भूमिका पृष्ट ४ पंक्ति २९ से पृष्ट ५ पंक्ति २८ तक जो लेख किया वह व्यर्थ झूठ स्वकपोल कल्पित महा मिथ्या है॥

पुनः पृष्ट ६ पंक्ति १४ से स्वामीजी लिखते हैं कि

मैं पुरान, जैनियों के ग्रन्थ, बायबल, और कुरानको प्रथमही बुरीदृष्टि से न देखकर उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषोंका त्याग तथा अन्य मनुष्य जातिकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करता हूं॥

प्यारे पाठक गण टुक सत्य कहना पूर्वोक्त वचन का स्वामीजीने कहाँतक

पालन किया और किस किस धर्म्म पुस्तक से क्या क्या सार ग्रहण किया ! हमको वा " सत्यार्थप्रकाश " के पृष्ट २७१ से पृष्ट ६०८ तक केवल दूसरों का खडन और झूठी निन्दा ही दिखलाई देती है ॥

मुरादाबादके जगन्नाथदास निज लिखित पुस्तक " दयानन्द पराजय " के पृष्ट ३ पंक्ति १८ से लिखते हैं कि " दयानन्दजी का कुछ लेख दिखलाता हूं जिससे सम्पूर्ण साधारण लोगों पर उनका छल कपट और अविद्वान् होना सम्यक् प्रकट होजाय " ॥

पाठक वृन्द जगन्नाथजी को आदि लेकर जिन जिन महाशयों ने स्वामी जी के लेखोंपर खंडन मंडन लिखा वे लोग चाहे जिन शब्दों में लिखें परन्तु हमतो जो कुछ लिख रहे हैं और आगे लिखेंगे उसमें स्वामीजी को कोईभी शब्द अनुचित नहीं लिखेंगे जो कुछ लिखा जायगा उनके ग्रन्थोंकी रचना काही खडन मंडन होगा, इस लिये आशा है कि इसपर दयानन्दीगण भी कुछ बुरा नहीं मानेंगे।

" सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ट ४१ पर स्वामीजीने अपने शिष्योंके समझानेके लिये वेदी, प्रोक्षणोपात्र, प्रणीता पात्र, आज्यस्थाली, चमसा, इन पांचों की मूर्ति बनाकर दिखलाई है तथा पृष्ट ९१ में पुत्र कन्या के विवाह सम्बन्ध के लिये फोटोग्राफ की मूर्त्तिको काममें लानेकी आज्ञा दिइ तो क्या देव मूर्ति से भाव शुद्ध होने और सानुकूल वस्तुके ज्ञान और स्मरण होनेमें संदेह करना वा बुरा कहना यह पक्षपात तथा हट नहीं तो और क्या समझा जाय ? ॥

पुन पृष्ट ८७ पंक्ति ४ में लिखा है,

तत्रा हिंसा सत्या स्तेयं ब्रह्मचर्या परिग्रहोयमा ।योग सूत्र०

भावार्थ हिंसा, झूठ, चोरी, स्त्री, परिग्रह, इनका त्याग करे।

पाठक महाशयों जैन शास्त्र में यही पांच बात मुख्य हैं, और इनहीको पंच महाव्रत वा अणुव्रत कहते हैं, अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह, इनका सर्वथा त्याग सोतो महाव्रत सो मुनिका धर्म्म और थोड़ा थोड़ा प्रमाण सहित त्याग सो अणुव्रत श्रावक का धर्म्म है, हमको आश्चर्य और खेद दोनो स्वामी जीकी लिखावट पर होते हैं, सो आश्चर्य्य तो इस बातका है कि जिस जैन धर्म्मके अनेक सूत्र सिद्धांतोंका नाम स्वामीजी अपने पुस्तककी भूमिकामें लिखते हैं, उनको इतना भी मालूम नहीं कि जैन धर्म्म का मूलतत्व क्या है, और

खेद इस बातका है कि बहुधा विषयोंको स्वामीजी जान बूझकर भी पक्षपाता धीन प्रतिकूल ही कहते हैं ॥

पुनः पृष्ट १३० पंक्ति १२ में स्वामीजी दशलक्षणयुत धर्म्म की महिमाँ लिखते हैं, और जैन धर्म्म के समान दशलक्षण धर्म्म की महिमाँ किसी धर्म्ममें भी नहीं फिर स्वामीजीको इस धर्म्मकी निन्दा करते कुछ लज्जा उत्पन्न नहीं होती ? ॥

पुनः पृष्ट २३० पंक्ति ७ में स्वामीजीने लिखा कि " जैनी कहते हैं कि पृथिवी घूमती नहीं किंतु नीचे २ चली जाती है " यह लिखना स्वामीजीका सर्वथा झूठ और मन घड़त है जैनके किसीभी शास्त्र में यह नहीं लिखा कि पृथिवी नीचै नीचै चली जाती है।

पुन॰ पृष्ट २४५ पक्ति ६ में लिखा है " जैनी लोग मोक्ष शिला शिवपुर में जाके चुप चाप बैठे रहना, मानते हैं "

जैनियों के इस उपरोक्त लिखने को स्वामी दयानन्द सरस्वती झूठ समझते हैं और आप एक विचित्र प्रकार की नई मोक्ष वर्णन करते हैं जिसको आजतक न किसी विद्वान ने कथन ही करा और न किसी ने प्रमाण किया अब हम दयानन्दकी मोक्षपर अपना मत प्रकट करते हैं ॥

स्वामीजीने अपनी वेद भाष्य भूमिका पृष्ट १८१ से जो मुक्तिका स्वरुप लिखा है उसमें पतजलीके योग शास्त्र के ग्यारहवें सूत्रका गौतम रचित न्याय शास्त्रके तीन सूत्रोंका व्यास कृत वेदांत सूत्रादि ग्रंथोंका शतपथ ब्राह्मका, ऋग्वेदके एक मन्त्रका, यजुर्वेदके एक मन्त्रका प्रमाण लिखा है।

अब बुद्धिमानों को विचारना चाहिये कि पतजली ने जो मुक्ति स्वरूप लिखा है वह ऋग्वेदके पूर्वोक्त मंत्रसे सर्वथा प्रतिकूल है, और गौतमजी की कही मुक्तिभी वेदमन्त्रों से भिन्न है, क्योंकि गौतमजी मुक्तिमें ज्ञान बिल्कुल नहीं मानते पाषाण तुल्य स्वपरमान रहित और सुख दु॰ख रहित मुक्ति कहते हैं, और आत्माको सर्व व्यापी मानते हैं, और भेद वादी हैं क्योंकि आत्मा स रुपामें अनन्त मानते हैं, और स्वामीजी अपनी वेदोक्त मुक्तिमें लिखते हैं कि उस मोक्षप्राप्त मनुष्यको पूर्व मुक्त लोग अपने निकट आनन्दमें रख लेते हैं और फिर वे परस्पर अपने ज्ञानसे एक दूसरेको प्रीति पूर्वक देखते हैं और मिलते हैं तथा विद्वान लोग मोक्षको प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहते हैं, अब सोचना चाहिये कि गौतम की मुक्तिमें तो मुक्तात्मा न कहीं जाता है, न कहीं आता है क्योंकि वह सर्व व्यापी है, सुख आनन्द से रहित होता है, स्वामीजी कहते हैं

कि जब नया जीव मोक्षमें जाता है उसको पहले के मोक्ष में गये हुये जीव अपने निकट रख लेते हैं। व्यासजी के पिता जो बादरी आचार्य्य थे उनका मुक्ति विषय में ऐसा मत है कि जब जीव मुक्त दशाको प्राप्त होता है तब वह शुद्ध मनमें परमेश्वरके साथ परमानंद मोक्षमें रहता है और इन दोनों से भिन्न इन्द्रियादि पदार्थों का अभाव हो जाता है। व्यासजीके मुख्य शिष्य जैमिनी का यह मत है कि जैसे मोक्षमें मन रहता है वैसेही शुद्ध संकल्पमय शरीर तथा प्राणादि और इन्द्रियोंकी शुद्ध शक्ति भी बराबर बनी रहती है, मुक्त जीव संकल्प मात्र सें ही शीघ्र छोड़भी देते हैं और शुद्ध ज्ञान सदा बना रहता है, व्यासजी का मुक्ति विषय यह मत है कि मुक्तिमें भाव और अभाव दोनोंही बने रहते हैं, अर्थात् क्लेश अज्ञान और अशुद्धि आदि दोषों का सर्वथा अभाव हो जाता है और परमानंद ज्ञान शुद्धता आदि सब सत्य गुणोंका भाव बना रहता है। इत्यादि वेदान्त शास्त्रके वचन हैं॥

इसी प्रकार स्वामीजी ने जिसजिस महात्माके वचनोंका ग्रहण किया उस उसका सिद्धान्त एक दूसरेके प्रतिकूल है, और स्वामीजी का सिद्धान्त इन सबके प्रतिकूल है। फिर जैनकी मोक्षपर तर्क करना बालचेष्टावत व्यर्थ नहीं तो और क्या समझा जाय इस विषयमें विस्तारसहित दूसरे भागमें लिखा जायगा

पुनः पृष्ट २७१ पंक्ति १६ में स्वामीजी लिखते हैं कि प्रथम समुल्लास में आर्य्यावर्तीय मत मतांतर, दूसरे में जैनियों के, तीसरे में ईसाइयों, और चौथेमें मुसलमानों के मतमतांतरों के खंडन मंडन के विषय में लिखें गे। तथा पृष्ट २७१ पंक्ति ८ में लिखा है कि वेद विरुद्ध पुराणी, जैनी, किरानी और कुरानी सब मतोंके मूल हैं वे क्रमसे एक के पीछे दूसरा तीसरा चौथा चला है॥

पाठक वृन्द यह लिखना स्वामीजी का सर्वथा व्यर्थ और झूठा है, मनुष्य मात्रका यह स्वाभाविक धर्म्म है कि जिस विषयको भले प्रकार जाननेकी सामर्थ रखता है, खंडन मंडन भी उसीका कर सकता है, स्वामीजी केवल काम चलाऊ संस्कृत के अतिरिक्त, प्राकृत, अर्बी, अंग्रेजी का एक अक्षर तक नहीं जानते और उनको यह भी मालूम नहीं कि सनातन आदि धर्म्म कौनहै, फिर वे खंडन मंडन क्योंकर कर सकते हैं जिस मनुष्यने बम्बई व कलकत्ता आंखों से न देखा हो वह उनकी गलियोंका अन्य मनुष्यों के सरोंमे वर्णन करके अपने आपको ज्ञाता सिद्ध किया चाहै तो सिवाय उपहास्य के और कोई फल उसको नहीं मिलता है॥

पुनः पृष्ठ २८१ पंक्ति २६ में स्वामीजीने ईर्षा और द्वेषसे जैनियोंको मुसलमान ईसाइयों के साथ मिलादिया यह ठाकुरदास के पत्र व्यवहार से चिढनेका फल है ॥

पुनः पृष्ठ २८७ पंक्ति ९ में लिखा है कि वेदादि शास्त्रोंका निंदक बौद्ध वा जैन मत मचलित हुआ है, इससे यह सिद्ध होता है कि स्वामीजी को ठाकुरदास ने और श्री झवेरसागरजी ने ऐसा जलाया है कि उनको जैन धर्म्म को बुरा कहते २ शांति नही होती ॥

पुनः पृष्ठ २८८ पंक्ति १ से ही लिखा है

जैनो में भी और प्रकारकी पोप लीला बहुत है सो १२ वें समुल्लास में लिखें गे बहुतों ने इनका मत स्वीकार किया परन्तु कितनेकही जो पर्वत, काशी, कनौज, पश्चिम, दक्षिण, देशवालेथे उन्होंने जैनोंका मत स्वीकार नहीं कियाथा वे जैन वेदका अर्थ न जानकर बाहरकी पोपलीला भ्रांति से वेदपर मानकर वेदोंकी भी निन्दा करने लगे । उसके पठन पाठन यज्ञोपवीतादि और ब्रह्मचर्य्यादि नियमों को भी नाश किया जहाँ जितने पुस्तक वेदादि के पाये नष्टकिये आर्य्योंपर बहुतसी राजसत्ताभी चलाई दु ख दिया जब उनको भय शंका न रही तब अपने मतवाले गृहस्थ और साधुओंकी प्रतिष्ठा और वेद मार्गियोंका अपमान और पक्षपात से दण्ड भी देनेलगे और आप सुख आराम और घमंड में आ फूलकर फिरने लगे ऋषभ देव से लेके महावीर पर्य्यन्त अपने तीर्थकरों की बड़ी २ मूर्तिया बनाकर पूजा करने लगे अर्थात् पाषाणादि मूर्तिपूजा की जड जैनियों से मचलित हुई । परमेश्वर का मानना न्यून हुआ पाषाणादि मूर्त्ति पूजा में लगे ऐसा तीनसौ वर्ष पर्य्यन्त आर्य्यावर्त्त में जैनोंका राज्य रहा प्रायः वेदार्थ ज्ञान आदिसे शून्य होगये थे इस बातको अनुमान से अढाई सहस्र वर्ष व्यतीत हुए होंगे ॥

प्यारे पाठक वृन्द स्वामीजीका पूर्वोक्त लेख बिना किसी प्रमाणके व्यर्थ और विद्वानोंके मानने योग्य नहीं हमने न किसी पुस्तक में देखा और न किसीसे सुना कि अमुक जैन राजाने वा साधु मुनिराजने अमुक धर्म्मकी अमुक पुस्तक नष्ट कराई । स्वामीजी की हठधर्म्मीका यह हाल है कि हमारे बार २ बौद्ध जैनको जुदा सिद्ध करदेने पर भी वह बौद्धकी बुराई को जैनियोंके शिर धरने लग रहे हैं, सो यह विद्वानोंका काम नहीं है ॥

पुनः पृष्ठ २८८ पंक्ति १६ में यह लिखा है

बाईस सो वर्ष हुए कि एक शंकराचार्य्य द्रविड़देशोत्पन्नब्राह्मण ब्रह्मचर्य्य से व्याकरणादि सब शास्त्रोंको पढ़कर सोचने लगे के अहह ! सत्य आस्तिक वेदमतका छूटना और जैन नास्तिक मतका चलना बड़ी हानि की बात हुई है, इसको किसी प्रकार हटाना चाहिये शंकराचार्य्य जी शास्त्रतो पढ़े ही थे परंतु जैन मतके भी पुस्तकों को पढ़े थे और उनकी युक्तिभी बहुत प्रबलथी उन्होंने विचारा कि इनको किस प्रकार हटावें। निश्चय हुआकि उपदेश और शास्त्रार्थ करने से यह लोग हटेंगे ऐसा विचारकर उज्जैन नगरीमें आये वहाँ उस समय सुधन्वा राजाथा जो जैनियोंके ग्रंथ और कुछ संस्कृत भी पढ़ाथा वहाँ जाकर वेदका उपदेश करने लगे और राजा से मिलकर कहा कि आप संस्कृत और जैनियोंके भी ग्रंथोंको पढ़े हो और जैनमत को मानते हो इस लिये आपको मैं कहता हूं कि जैनियों के पंडितोंके साथ मेरा शास्त्रार्थ कराईये इस प्रतिज्ञा पर जो हारे सो जीतने वालेका मत स्वीकार करले और आपभी जीतने वालेका मत स्वीकार कीजियेगा यद्यपि सुधन्वा राजा जैनमतमें थे तथापि संस्कृत ग्रंथ पढ़ने से उनकी बुद्धिमें कुछ विद्याका प्रकाश था इससे उनके मनमें अत्यन्त पशुता नहीं छाई थी क्योंकि जो विद्वान होता है वह सत्याऽसत्य की परीक्षा करके सत्यका ग्रहण और असत्यको छोड़ देता है। जबतक सुधन्वा राजा को बड़ा विद्वान् उपदेशक नहीं मिलाथा तबतक सन्देहमें थे कि इनमें कौनसा सत्य और कौनसा असत्य है जब शंकराचार्य की यह बात सुनी और बड़ी प्रसन्नता के साथ बोलेकि हम शास्त्रार्थ कराके सत्याऽसत्यका निर्णय अवश्य करावेंगे। जैनियोंके पंडितों को दूर दूरसे बुलाकर सभा कराई उसमें शंकराचार्य्यका वेदमत और जैनियोंका वेद विरुद्ध मतथा अर्थात् शंकराचार्य्यका पक्ष वेदमत का स्थापन और जैनियोंका खंडन और जैनियोंका पक्ष अपने मतका स्थापन और वेद का खंडनथा शास्त्रार्थ कई दिनोंतक हुआ जैनियोंका मत यहथा कि सृष्टिका कर्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं यह जगत् और जीव अनादि है, इन दोनोंकी उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता इससे विरुद्ध शंकराचार्य्यका मतथा कि अनादि सिद्ध परमात्माही जगतका कर्ता है यह जगत् और जीव झूठा है क्योंकि उस परमेश्वरने अपनी मायासे जगत् बनाया वही धारण और प्रलय कर्ता है और यह जीव और प्रपञ्चस्वप्नवत् है परमेश्वर आपही सब जगत् रूप होकर लीला कर रहाहै बहुत दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा परंतु अन्तमें युक्ति और प्रमाणसे जैनियोंका मत खंडित और शंकराचार्य्यका मत अखंडित रहा तब उन जैनियोंके पंडित और सुधन्वा राजाने वेदमत का स्वीकार करलिया।

जैनमतको छोडदिया पुन बड़ा हल्ला गुल्ला हुआ और सुधन्वा राजाने अन्य अपने इष्ट मित्र राजाओंको लिखकर शकराचार्य्यसे शास्त्रार्थ कराया; परन्तु जैनियोंका पराजय समय होनेसे पराजित होते गये, पश्चात् शंकराचार्य्यके सर्वत्र आर्य्यावर्त्त देशमें घूमनेका प्रबन्ध सुधन्वादि राजाओंने करादिया और उनकी रक्षाके लिये साथमें नोकर चाकर भी रखदिये उसी समयसे सबके यज्ञोपवीत होनेलगे और वेदोंका पठन पाठन भी चला दश वर्षके भीतर सर्वत्र आर्य्यावर्त देशमें घूमकर जैनियोंका खण्डन और वेदोंका मण्डन किया, परन्तु शकराचार्य्य के समय जैन विध्वस अर्थात् जितनी मूर्तियां जैनियोंकी निकलती हैं वे शकराचार्य्य के समयमें टूटीथी और जो विना टूटी निकलती हैं वे जैनियोंने भूमिमें गाड़दीथी कि तोड़ी न जायें वे अबतक कहीं २ भूमिमें से निकलती हैं शकराचार्य्यके पूर्व शैवमतभी थोड़ासा प्रचरित था उसका भी खण्डन किया वाम मार्गका खण्डन किया उस समय इस देशमें धन बहुतथा और स्वदेश भक्तिभीथी जैनियोंके मदिर शकराचार्य्य और सुधन्वाराजाने नहीं तुड़वायेथे, क्योंकि उनमें वेदादिकी पाठशाला करनेकी इच्छाथी जब वेदमतका स्थापन हो चुका और विद्या प्रचार करनेका विचार करतेही थे, इतनेमें दो जैन ऊपरसे कथन मात्र वेदमत और भीतरसे कट्टर जैन अर्थात् कपटमुनि थे शकराचार्य्य उनपर अति प्रसन्नथे उन. दोनो ने अवसर पाकर शकराचार्य्यको ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मन्द होगई, पश्चात् शरीरमें फोड़े फुन्सी होकर छ महीने के भीतर शरीर छूटगया तब सब निरुत्साही होगये, और जो विद्याका प्रचार होनेवालाथा वहभी न होने पाया जो उन्होंने शारीरकभाष्यादि बनायेथे उनका प्रचार शकराचार्य्यके शिष्य करने लगे अर्थात् जैनियोंके खडनके लिये ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या, और जीव ब्रह्मकी एकता कथन कीथी उसका उपदेश करने लगे दक्षिणमें शृंगेरी पूर्वमें भूगोवर्धन उत्तरमें जोशी और द्वारकामें सारदा मठ बांधकर शकराचार्य्य के शिष्य महन्त बन और श्रीमान् होकर आनन्द करने लगे, क्योंकि शकराचार्य्य के पश्चात् उनके शिष्योंकी बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी।

प्यारे पाठकवृन्द जो मनुष्य मादिक वस्तुका सेवन करता है वहतो उसी समय तक नशेमें रहता है कि जबतक उस मादिक वस्तुके नशेकी मर्यादा है परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती के हाथमें लेखनी आतेही, उनको ऐसा मदोन्मत्त बनादेती थी के वे मदोनुमत्तों की तरह जो मनमें आताथा अट्ट सट्ट लिख मारते थे । टुक विचार करने का स्थान है कि जिस शकराचार्य्य का होना सायनाचार्य्यने वैशाख शुक्ल १० शाक ७१० के रत्न शके कालड़ी नगरमें लिखाह

सम्पूर्ण इतिहास तथा तवारीखों से विक्रम् सम्वत् ८०० के पहिले और ७०० के पीछे सिद्ध होता है स्वामीजी ने विना किसी प्रमाण के उसको विक्रम से ३०० वर्ष पहिले हुआ लिखदिया। तथा सतधन्वा राजा लिखा सो विक्रम से पहिले कोई सतधन्वा राजाभी हुआ सिद्ध नहीं होता, शंकराचार्य्य का शास्त्रार्थ जो हुआ बौद्ध लोगोंके साथ हुआ, जैनियोंसे नहीं हुआ इसका प्रमाण शंकरका शिष्य माधवाचार्य्य अपने बनाये शंकर दिग्विजय में इस प्रकार लिखता है:-

" आसेतुरातुसाद्रि बौद्धानां वृद्धबालक नाहंतियः सहतन्योर्भृत्यं इत्यंवसंनृपा "

आनन्दगिरि निज रचित उसी पुस्तकके अर्थात् शंकर दिग्विजय के २६ अध्यायमें जिस प्रकार बौद्धोंके साथ शंकराचार्य्यका शास्त्रार्थ हुआ सो यह लिखता है

इद आह सर्वे प्राण्यहिंसा परमो धर्मः । परम गुरुभिरिदमुच्यते। रे रे सौगत नीचतर किं किं जल्पसि । अहिंसा कथ धर्म्मो भवितुमर्हति । यागीयहिंसा धर्म्म रूपत्वात् तथाहि अग्निष्टोमादिक्रतु छागादि पशुमान् यागस्य परमधर्मत्वात्। सर्व देव तृप्तिमूलत्वाच । तद्द्वारा स्वर्गादि फल दर्शनाम पशुहिंसा श्रुत्याचारत्परैरङ्गिकरणीया तद्व्यतिरिक्तस्यैव पाखण्डत्वात् तदाचाररता नरकमेव यान्ति। वेदानिन्दापरा ये तु तदाचारविवर्जिताः ते सर्वे नरकं यांति यद्यपि ब्रह्मबीजजाः॥ इति मनुवचनात् ॥ हिंसा कर्तव्येत्यत्रवेदा सहस्र प्रमाणं वर्तते ब्रह्मक्षत्रवैश्य शूद्राणां वेदेतिहासपुराणा चार. प्रमाणमेव तदन्याः पतितो नरकगामी चेति सम्यगुपदिष्ट सौगत परमगुरुं नत्वा निरस्तसमस्ताभिमान पद्मपादादि गुरुशिष्याणां पादरक्ष धारणाधिकारकुशल' सतत तदुच्छिष्टान्नभक्षणपुष्टतनुरभवत् ॥ इत्यनन्तानन्दगिरिकृतो षड्विंशत् प्रकरण ॥ २६ ॥

(अर्थ) सौगत कहता है कि अहिंसा परम धर्म्म है, तब शंकर कहता है, रे रे सौगत नीचोंमें नीच, क्या क्या कहता है? अहिंसा क्योंकर धर्म्म हो सकता है यज्ञ हिंसाको धर्म्मरूप होनेसे, सोई दिखाते हैं अग्निष्टोमादि यज्ञमें छागादि पशुका मारना परम धर्म्म है, और सर्व देवता तृप्त हो जाते हैं, और इस हिंसासे स्वर्ग मिलता है, इस वास्ते धर्म्म है, पशुहिंसा श्रुतिका आचार है, अन्यमतवाले लोकोंभी अंगीकार करणे योग्य है, वैदिक हिंसासे उपरांत सर्व पाखंड है, जो पाखंड मानते वे नरक में जाते हैं, जो वेदकी निंदा करते हैं और जो वेदाचार वर्जित हैं वे सर्व नरकमें जायगे, ब्रह्माका बीज क्यों न हो? यह मनुने कहा है ॥

हिंसा करणी इसमें वेदोंकी हजारों श्रुतियां प्रमाण देती हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र इनको वेद, इतिहास, पुराणोंका कहा प्रमाण है, इनसे अन्य कुछ

मानेवो नरकगामी है, यह सुणके सौगत शकरके पद्मपादादि शिष्योंका नौकर बनके उनकी जूतियोंका रखनेवाला हुआ और उनके उच्छिष्टसे मग्न रहनेलगा ॥

इससे सिद्ध होता है कि शकर जो मांस भक्षियोंका पक्षीथा उसने मांसभक्षी बौद्धोंहीको परास्तकिया, दयाधर्म्मी जैनियोंका परास्तकरना शकर जैसे मांस भक्षीसे क्योंकर बन पड़ताथा, यदि जैनियों से शास्त्रार्थ होता तो उनके किसी पंडित वा आचार्य्यका नामभी अवश्यहोता जिसको शकरने परास्तकिया परन्तु झूठ वचनके पांव नहीं होते इस लिये नाम कहांसे लिखते । इसविषयमें स्वामीजीका सम्पूर्ण लेख बिना प्रमाण और मिथ्या है यह कहना विद्वानोंका अत्यत सत्य है कि झूठ बोलनेवाले को अपने वाक्यका स्मरण नहीं रहता राजा विक्रमसे शकरस्वामीका होना तीनसौ वर्ष पहिले भी लिखते हैं और कहते हैं कि जो मूर्त्तियाँ पृथिवी तलसे अब जैनियोंकी निकलती हैं वे शकर स्वामीके समयकी टूटी फूटी तथा गाडी हुई हैं, अजी स्वामीजी महाराज आजकल जितनी मूर्ति पृथिवी तलसे जैनियोंकी निकलती हैं उन सबके ऊपर विक्रमराजा तथा शालिवाहनका सम्वत् खुदा होता है बिना सम्वत्की कोई मूर्ति पृथिवीतलसे नहीं निकली सो क्या सम्वत्भी उनपर शकरस्वामीके समय और राजा विक्रमसे ३०० तथा शालिवाहन से ४३५ वर्ष पहिलेही खोदागया था ? यथार्थ बाततो यहहै कि शंकरके समय कोई मूर्ति किसी भी धर्मकी पृथिवीमें नहीं गाडी गई किंतु जब महमूद गजनवी आदि दुष्ट यमन बादशाहोंका सम्पूर्ण हिन्दूमात्रपर अत्याचार बढा तो बहुधा मूर्तियाँ जैन वैश्नव सबही धर्मोकी गाड दीगईथी, और यह लिखना भी स्वामीजीका झूठ है कि शकरस्वामीने वाम मार्गियोंका खडन किया, क्योंकि आगम प्रकाश ग्रन्थका रचने वाला लिखता है कि शकर स्वामी असलमें शाक्त अर्थात् वाममार्गीथे, क्योंकि आनंदागिरि कृत शकरदिग्विजयमें लिखा है कि शंकरस्वामीने श्रीचक्रकी स्थापनाकरी और श्रीचक्र वाममार्गियोंका मुख्य देव है, शंकरदिग्विजयके ६५ में अध्याय में श्रीचक्रकी बहुत बड़ी कीर्त्ति गाई है, शृंगेरी द्वारिकादि ठिकानोंपर इनके मठमें श्री चक्रकी स्थापना है ।

पुन पृष्ट २९८ पक्ति २६ से स्वामीजी लिखते हैं कि “ शकराचार्य्य आदिने तो जैनियोंके मतके खडन करने ही के लिये यह मत स्वीकार किया हो क्योंकि देशकालके अनुकूल अपने पक्षको सिद्ध करनेके लिये बहुतसे स्वार्थी विद्वान् अपने आत्माके ज्ञानमें विरुद्ध भी करलेते हैं ” ।

इस लेखमे भी यही सिद्ध किया जा सक्ता है कि शंकर स्वामीका मत सिद्धान्त विद्वानोंके लिये माननीय नहीं था, और स्वामीजी लिखते हैं कि " दो जैन ऊपरसे कथन मात्र वेदमत और भीतरसे कट्टर जैन अर्थात् कपटमुनि थे शंकराचार्य्य उनपर अति प्रसन्न थे इन दोनोंने अवसर पाकर शंकराचार्य्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मन्द होगई इत्यादि० " सो यह भी स्वामीजीकी स्वकपोल कल्पना है शंकराचार्य्यका जीवनचरित्र शंकर दिग्विजय में विस्तार पूर्वक लिखा है उसमें यह वृतान्त कहींभी नहीं है, और स्वामीजी को झूठ लिखने और उसपर कदाग्रह वा हठ करनेकी इतनी उमंग है कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं है, यह विषय संसारमें किसीसे भी छुपाहुआ नहीं है कि राजाभर्तृहर विक्रमादित्यका बड़ाभाई था और कवि कालीदास राजा विक्रमकेही समय हुआ; परन्तु स्वामीजीने नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " में पृष्ठ २९९ पर यह लिखमाराकि विक्रमादित्यसे पीछे राजा भर्तृहर और पांचसौ वर्ष पीछे अर्थात् राजाभोजके समय बकरी चराने वाला कालीदास हुआ "

पुनः पृष्ठ ३०० पंक्ति १५ में लिखा है कि " जब राजा भोजके पश्चात् जैनीलोग अपने मंदिरोंमें मूर्ति स्थापन करने और दर्शन पर्शन करने को आने जाने लगे "

यह लिखना भी विना किसी प्रमाण के सर्वथा झूठ और मनोक्त है, क्यों कि राजा भोजसे पहिलेकी बनीहुई जैनकी लाखों मूर्ति जैनमंदिरोंमें विद्यमान हैं और यह लेख स्वामीजी के ही पूर्वोक्त लेखका विरोधी है ॥

पुनः पृष्ठ ३०१ पंक्ति २६ से लेकर पृष्ठ ३०२ पंक्ति १ तक यह लिखा ' और जैनियों की कथा में भी लोग जाने लगे जैनियों के पोप इन पुराणियों के पोपोंके चेलोंको बहकाने लगे तब पुराणियों ने विचारा कि इसका कोई उपाय करना चाहिये, नहींतो अपने चेले जैनी हो जायेंगे पश्चात् पोपोंने यही सम्मति की कि जैनियों के सदृश अपने भी अवतार मंदिर मूर्ति और कथाके पुस्तक बनावें इन लोगोंने जैनियोंके चौबीस तीर्थंकरों के सदृश चौबीस अवतार मंदिर और मूर्तियां बनाईं और जैसे जैनियोंके आदि और उत्तर पुराणादि हैं वैसे अठारह पुराण बनाने लगे ।

(क) यह लिखनाभी बिना किसी प्रमाणके सर्वथा मिथ्या है, परन्तु यह मानलेने में कुछ हानि नहीं है रामानुज और वल्लभाचार्य्यने जैनियों के धर्मकी प्रबलतासे जलकर नवीनमत खड़ेकिये तब अनेक बात जैनियोंकी लेकर उनको निज इच्छानुसार बदलभी दिया है ॥

पुन॰ पृष्ठ ३०८ पंक्ति ५ में स्वामी जी यह प्रश्नोत्तर लिखते हैं।

(प्रश्न) मूर्ति पूजा कहांसे चली ? (उत्तर) जैनियों से।

इसपर हमारी यह तर्क है कि मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १७५ में जो देवमूर्ति पूजन की आज्ञा है सो क्या स्वामीजी को यह निश्चय हो गया कि मनुस्मृति से पहिले भी जैनधर्म्म था ?।

पुनः पृष्ठ ३०८ पंक्ति ५ में दूसरा प्रश्न यह लिखा है,

(प्रश्न) मूर्तिपूजा जैनियों ने कहांसे चलाई? (उत्तर) अपनी मूर्खतासे (प्रश्न) जैनीलोग कहतेहैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्ति देखके अपने जीवका भी शुभ परिणाम वैसाही होता है, (उत्तर) जीव चेतन और मूर्ति जड़ क्या मूर्तिके सदृश जीवभी हो जायगा ? यह मूर्तिपूजा केवल पाखंड मतहै जैनियों ने चलाई है इस लिये इनका खंडन १२ वें समुल्लास में करेंगे। (प्रश्न) शाक्त आदिने मूर्तियों में जैनियोंका अनुकरण नहीं किया है क्योंकि जैनियों की मूर्तियों के सदृश वैष्णवाऽऽदिकी मूर्तियां नहीं हैं। (उत्तर) हां यह ठीक है जो जैनियों के तुल्य बनाते तो जैनमतमें मिलजाते इसलिये जैनोंकी मूर्तियों से विरुद्ध बनाई, क्योंकि जैनोंसे विरोध करना इनका काम और इनसे विरोध करना मुख्य उनका काम था जैसे जैनों ने मूर्तियों नगी, ध्यानावस्थित् और विरक्त मनुष्यके समान बनाई हैं उनसे विरुद्ध वैष्णवादिने यथेष्ट शृंगारित स्त्रीके सहित रंगराग भोग विषयासक्ति सहिताकार खड़ी और बैठी हुई बनाई हैं। जैनीलोग बहुतसे शंख घंटा घरियार आदि बाजे नहीं बजाते ये लोग बड़ा कोलाहल करते हैं तब वो ऐसी लीलाके रचनेसे वैष्णवादि समदायी पोपोंके चेले जैनियों के जालसे बचके इनकी लीला में आ फसे इत्यादि०॥

इस विषय में हम विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं देखते, स्वामी दयानन्द सरस्वती का यह हाल है कि एक वचनको जिस विषय में अपना उपकारी समझ ग्रहण करते हैं उसको जब वादानुवादमें खंडित होता जानते हैं तो शीघ्रही त्याग देतेहैं, और फिर काम पड़नेपर ग्रहण करलेते हैं, देखो इस नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " के पृष्ठ ४१ में वेदी प्रोक्षणी प्रणीता आज्यस्थाली चमसा के चित्रबनाकर उनके जाननेके लिये दिखलाये हैं, तथा पृष्ठ ९१ में वर कन्याके फोटोग्राफ मगाने भेजने का उपदेश दिया अब यहां शांतिमुद्राधारी वीतराग भगवानकी मूर्तिको बुरा कहने लगगये यह हठ दुराग्रह नहीं तो और क्या समझा जाय ? ॥

सत्य बाततो यहहै कि मूर्ति के बिना संसारमें कोईभी कार्य्य नहीं चले। जितने धर्म्माश्रम हैं सब में मूर्तिपूजा चल रही है, कुछ इसी बातपर ध्यानदेना उचित नहीं कि मूर्ति पूजा फल पुष्पादिक सेही होती है, नहीं मित्र ! नदी, पहाड़, बन, नगर, देशादिकके चित्र (नकशे) बनाकर उनसे लाभलेना भी मूर्ति पूजामें गिणा जाता है, और सच्चे मनसे विचार किया जाय तो पुस्तक मन्थादिकभी मूर्तिही हैं ॥ पुस्तक वाल्मीकीय रामायण ४४ सर्ग श्लोक ४२।४३ में लिखा है कि रावण शिवजीकी पूजा करता था सो स्वामी दयानन्द सरस्वतीको इसपरभी संतोष न हुआ तो हम क्या करैं क्योंकि येतो इस पुस्तक पर बड़ा भरोसा रखते थे।

पुन पृष्ठ ३७८ पंक्ति ९ से स्वामीजी लिखते हैं कि " यह मूर्तिपूजा अढाई तीन सहस्र वर्षके इधर २ वाम मार्गी और जैनियोंसे चलीहै प्रथम आर्य्यावर्त में नहीं थी और ये तीर्थभी नहीं थे जब जैनियों ने गिरनार, पालीठाना, शिखर, शत्रुंजय, और आबू आदि तीर्थ बनाये उनके अनुकूल इन लोगोंने भी बनालिये जो कोई इनके आरम्भकी परीक्षा करना चाहे वे पंडोकी पुरानी से पुरानी बही और तांबे के पत्र आदि लेख देखे तो निश्चय हो जायगा कि ये सब तीर्थ पांचसौ अथवा एक सहस्र वर्षसे इधरही बने हैं सहस्र वर्षके उपर का लेख किसीके पास नहीं निकलता इससे आधुनिक हैं " ।

प्यारे पाठक वृन्द यहभी लेख स्वामीजीका यथार्थ नहीं है, मूर्ति पूजाके पुरातन होनेका प्रमाणतो वाल्मीकीय रामायणमें शिवजीकी पूजा करना रावणका तथा मनुस्मृति अध्याय २-श्लोक १७६ में ऊपर लिखागया बतनाहीबहुत है अब तीर्थोंके विषय में यह कहा जाता है कि शिखर महात्म्य, गिरनारमहात्म्य, सिद्धाचलमहात्म्य, को पक्षपात रहित होकर देखने से भले प्रकार निश्चय होसक्ताहै, कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीका कहना और लिखना कहां तक सत्य है इसी लिये हम इस विषयमें विशेष लिखना नहीं चाहते ॥

पुनः स्वामीजी पृष्ठ ३८४ पंक्ति १० में लिखते हैं कि " जैन लोगभी नमूकार मंत्र जपकर पाप छूटना " तथा पृष्ठ ३८६ पंक्ति २७ में " मुसल्मान देखोतो पुरानी, किरानी, जैनी और कुरानी भारही हैं तथा पृष्ठ ३८७ पंक्ति २५ से जैनियों के पास जाकर पूछा उन्होंने भी वैसाही कहा, परन्तु इतना विशेष कहा कि 'जिनधर्म' के बिना सब धर्म खोटे. जगत्का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं, जगत अनादि कालसे जैसाका वैसा बना और बना रहेगा आ तू हमारा

पेला होंजा, क्योंकि हम सम्यक्त्वी अर्थात् सब प्रकारसे अच्छे हैं। उत्तम बातोंको मानते हैं जैन मार्गसे भिन्न सब मिथ्यात्वी हैं "

उक्त तीनों लेख स्वामीजी के पक्षपात रूपी अग्निकर दग्ध हुये हृदयकी साक्षी दे रहे हैं, संसारके सम्पूर्ण प्राणी अपनी २ उन्नतिका उपाय करते हैं, और जिस धर्म्मको ग्रहण करते हैं उसको मोक्षका द्वार बतलानेवाला समझकर स्वीकार करते हैं, परन्तु यह जैन धर्म्मके किसीभी पुस्तकमें नहीं लिखाकि मिथ्या दृष्टी अभव्योंको बुला बुला कर अपना शिष्य बनाना चाहिये, यह केवल स्वामीजीकी मन घडत लीला उस दु:खका कारण है जो लाला ठाकुरदासजी के पत्र व्यवहार तथा श्रीमान साधु झवेरसागरजी के नोटिस लगानेको देखकर उनको उत्पन्न हुआया ।

पुन पृष्ठ ३९३ पंक्ति १५ में स्वामीजी लिखते हैं कि " जब ऐसे है तभी तो वेद मार्ग विरोधी वाम मार्गादि समदायी, ईसाई, मुसलमान जैनी आदि बढ गये अबभी बढते जाते हैं " ॥

यह लिखना भी स्वामीजी का ठीक नहीं है क्योंकि प्रथम कालमें जितने जैनी इस आर्य्यावर्तमें थे उनकी अपेक्षा तो अब रुपयेमें एक पैसा भी नहीं फिर बढते जाना क्योंकर सिद्ध होगया ? ॥

अब स्वामी दयानन्द सरस्वती रचित नवीन " सत्यार्थ प्रकाश "के द्वादश समुल्लासकी भूमिका का खंडन लिखा जाता है, इस खंडन में जितना लेख स्वामीजीका है उसकी आदिमें (द) और जितना उत्तर उसकी आदिमें (क) यह अवश्य होगा पाठक महाशयोंको जानना और स्मरण रखना चाहिये ॥

(द) अब आर्य्यावर्तस्थ मनुष्यों में सत्याऽसत्य का यथावत् निर्णय करानेवाली वेदाविद्या छूटकर अविद्या फैलके मतमतान्तर खडेहुये, यही जैन आदि के विद्या विरुद्ध मत प्रचारका निमित्त हुआ क्योंकि वाल्मीकीय और महाभारतादि में जैनियोंका नाम मात्र भी नहीं लिखा और जैनियोंके ग्रन्थोंमें वाल्मीकीय और भारतमें कथित् " राम कृष्णादि " की गाथा बड़े विस्तार पूर्वक लिखीहैं इससे यह सिद्ध होताहै कि यह मत इनके पीछे चला क्योंकि जैसा अपने मतको बहुत प्राचीन जैनीलोग लिखतेहैं वैसा होतातो वाल्मीकीय आदि ग्रंथों में उनकी कथा अवश्य होती इस लिये जैनमत इनग्रंथोंके पीछे चलाहै ॥

(क) उक्तलेख करनेसे स्वामी दयानन्द सरस्वती का केवल पक्षपातही नहीं किंतु यहभी सिद्धहोताहै कि स्वामीजी ने " वाल्मीकीय रामायण" और

" महाभारत " का कभी दर्शन भी नहीं किया, यदि किया होता तो ऐसा झूठालेख से भूलकरभी नहीं लिखत, देखो योगवासिष्ठ नाम पुस्तक के कथारम्भमें लिखाहैकि ब्रह्माजीने भारद्वाजको कहा तेरा गुरु वाल्मीक जहां रहता है तू उसके पासजाकर आत्मबोध महारामायणका श्रवणकर, जो तेरे गुरुने आरम्भ किया है, इतना कहा और भारद्वाजको साथ लेकर ब्रह्माजी वाल्मीकजी के पास आये और कहने लगे हे मुनिओं में श्रेष्ठ वाल्मीक यह जो रामके स्वभाव के कथनका तुमने आरम्भ किया है तिस उद्यमका त्याग नहीं करना इसका आदिसे अन्त पर्य्यन्त समाप्त करना, इतना कह ब्रह्माजी अन्तर्ध्यान होगये, और वाल्मीकजी ने कथा लिखना आरम्भ कर समाप्त करी ॥

उक्त कथाके छत्तीस हजार श्लोक हैं उसमें प्रथम वैराग प्रकरण अहंकार निषेधाध्याय में रामचंन्द्रजी ने वसिष्टजीसे ऐसा कहा है

॥श्लोक॥ नाहं रामो नमे वाछा विषयेषु न मे मन ।
शांति मा शितु मिच्छामि—वीतरागो जिनो यथा॥१॥

इसमें रामचन्द्रजी जिन समान होनेकी इच्छा करते हैं, अब खयाल करना चाहिये, यह वचन हमने अपनी तर्कसे बनाकर तो नहीं लिखा सत्य कहना वाल्मीकीय रामायण में जैनका विषय है कि नहीं ? ॥

(वादीका तर्क) हम इस उत्तर को ठीक नहीं मानते क्योंकि योग वासिष्ठको तो स्वामीजी नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ठ ७१ पंक्ति २० में स्वत' अप्रमाणीक कथन कर चुके है, हमतो केवल वाल्मीकीय रामायण का प्रमाण चाहते हैं ॥

(हमारा उत्तर) अच्छा साहिब इसी प्रकार सही, देखो बाबू हरिश्चन्द्रजी भारतेन्दु काशी निवासी ने एक पुस्तक लिखा जिसकानाम "रामायणका समय" है उक्त पुस्तकके पृष्ठ १ पंक्ति ६ मे वाल्मीकीय रामायण विषय इस प्रकार लिखाहै।

अयोध्याके वर्णनमें उसकी गलियों में जैन फकीरोंका फिरना लिखाहै इससे प्रकटहै कि (वाल्मीकीय) रामायण के बनने से पहिले जैनियोंका मतथा।

तथा इसी पुस्तक के पृष्ठ ८ पंक्ति १६ से यह लिखा है " १०८ सर्ग में जाबालिमुनिने चार्वाक मत वर्णन किया है। और फिर १०९ सर्ग में बुधका नाम और उनके मतका वर्णन है। इससे प्रगट है कि ये दोनो वेदके विरुद्ध मत उस समयमें भी हिन्दुस्थानमें फैले हुये थे। अभी हम उपर बालकाण्ड में जैनियोंके उसकाल्में रहनेका जिक्र कर चुके हैं इत्यादि० " ॥

(क) पाठकवृन्द कहा सो सही इससे बढकर और प्रमाण क्या होसकताहै ?॥

(वादीका प्रश्न) अच्छा साहिब यह तो मानलिया अब महाभारत में भी तो कोई जैनका प्रमाण वतलाओ ? ॥

(हमारा उत्तर) देखो मित्र महाभारतमें श्री नेमनाथजी की इस प्रकार बडाई लिखी है यह श्री नेमनाथजी जैनियोंके बाईसवें तिर्थकर हैं ॥

(श्लोक)

युगेयुगे महापुण्य दृश्यते द्वारिकापुरी ।
अवितीर्णो हरिर्यत्र प्रभासेशशीभूषण ॥ १ ॥
रेवताद्रो जिनोर्नेमिर्युगादिर्विमलाचले ।
ऋषीणामा श्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥२॥

(वादीका तर्क) यह श्लोक महाभारतमें पीछेसे मिलादिये है असलमें तो ऐसा सुना जाताहै कि यह श्लोक प्रभास पुराण के हैं ॥

(हमारा उत्तर) प्रभास पुराण भारतसे कोई जुदा पुस्तक नहीं है क्योंकि पुराण केवल अष्टादश हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं, ब्रह्म पुराण १ पद्म पुराण २ विष्णु पुराण ३ शिव पुराण ४ नारदीय पुराण ५ मारकण्डेय पुराण ७ भविष्य पुराण ८ ब्रह्म वैवर्त पुराण ९ लिङ्ग पुराण १० वाराह पुराण ११ स्कन्द पुराण १२ वामन पुराण १४ मत्स्य पुराण १५ गरुड पुराण १६ ब्रह्मांड पुराण १७ भागवत १८ इन अष्टादश पुराणोंके अतिरिक्त कोई उन्नीवाँ प्रभास पुराण नहीं किंतु महाभारतही है परन्तु तुम यह श्लोक रहने दो हम महाभारत काही और प्रमाण देते हैं ॥

(श्लोक)

आरोह स्वरथ पार्थ गांडीवचकरेकुरु निर्जिता मेदिनींमन्ये नि-ग्रंथो यदिमन्मुख ॥ १ ॥

यह श्लोक उस समयका है जब अर्जुन महाभारत में युद्ध करनेको चला और उसके उत्तम शकुन प्राप्त होनेपर कृष्ण बोले हे ! अर्जुन रथमें चढ और गांडीवधनुष्य हाथमें ले मैं मानताहूं कि मैंने पृथिवी जीतली, क्योंकि निर्ग्रंथ मुनि सन्मुख आये बहुत शुभ शकुन हुआ ॥

(वादीका तर्क) उक्त श्लोकमें निर्ग्रंथ का नामहै स्पष्ट जैनका विषयनहीं है॥

(हमारा उत्तर) लो स्पष्टभी दिखलाते हैं ॥

(श्लोक)

अकारादि हकारात मूर्द्धाधोरेफसयुत । नादविन्दु कलाक्रां त चन्द्रमडल सन्निभ ॥ १ ॥

एतदेव परतत्व योविजानातिभावत ससार वन्धन छित्वा सयाति परमागतिम् ॥ २ ॥

(अर्थ) अकार आदिमें हकार अन्तमें और नीचे ऊपर रकार और नाद पिन्दु सहित चन्द्रमांके मंडलकी तुल्य ऐसा अर्ह जो तत्व है यही परम तत्व है इस तत्वको, जो भावसे जाने सो संसार के वन्धनको काटकर वैकुंठको जाता है

(वादीका प्रश्न) क्या इस विषयमें कोई मनुस्मृतिका भी प्रमाण है ? ॥

(हमारा उत्तर) हाँ ! है, देखो वृहत्मनुस्मृति में यह श्लोक है ।

कुलादिवीजं सर्वेषा माद्यो विमल वाहन ।
चक्षुष्मांश्च यशस्वीचाऽभिचन्द्रः प्रसेनजित् ॥ ८६ ॥
मरुदेवश्च नाभिश्चभरते कुलसतमा ।
अष्टमे मरुदेव्याच नाभोर्जातो युगेश्वर ॥ ८७ ॥

उक्त श्लोक जैनकी सनातनता सिद्ध करतेहैं, भावार्थ जैनियोंने जिनको युगकी आदिमें कुलकर करके मानाहै, मनुस्मृति में उनकोही मनु करके मानाहै॥ और देखो ! जिस व्यासने वेदोंको संहितारूप किया उसने एक ब्रह्म सूत्र बनाया जिसके द्वितीयाध्याय पादके इस " नैकस्मिन्नसंभवात् ३३ " इस सूत्र पर शंकराचार्य्यने निज भाष्यमें जैनकी सप्तभंगी वाणीका खंडन लिखा इससे सिद्ध हुआ व्यासके समय जैनधर्म्मथा।

(वादीका प्रश्न) अच्छाजी तो क्या इस प्रकारका लेख वेदोंमेंभी कहीं मिल सकता है ? ॥

(हमारा उत्तर) हाँ ! है, देखो ऋग्वेदका मंत्र

ओंत्रैलोक्य प्रतिष्ठितान चतुर्विंशति तीर्थकरान्
ऋषभाद्यान वर्द्धमानांतान सिद्धान शरण प्रपद्ये ।

और यजुर्वेदमें भी कहा है, ॥ मंत्र ॥

ओँनमोऽर्हतो ऋषभाय ओँ ऋषभ पवित्र पुरहूत मध्वर। यज्ञे षुनग्न परमं माहसस्तुतावार शत्रुंजयत शुरिंद्रंमाहुतिरितिस्वाहा॥

पुनः और मत्र ॥

ओँत्रातार मिन्द्र ऋषभ वदंति अमृतारमिन्द्र हवे सुगुतसुपार्श्व। मिन्द्रहवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमान पुरहूत मिद्रमाहुतिरितिस्वाहा॥

पुन: नमकी आहुतिका मंत्र ॥

ओँनग्न सुधीर दिग्वासस ब्रह्मगर्भ सनातनं ऊपैमिवीर पुरुष मर्हंत मादित्य वर्णं तमस पुरस्तात स्वाहा ॥

पुन: ऋग्वेदमें नग्न महिमा ।

ओँ पवित्र नग्नमुपस्पृसा महे येषा नग्न येषा जात येषा बीर सुबीर।

पुन ऋग्वेद म० १ अ० १४ सू० १०

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि ।

क्यौं साहिब सत्य कहना वेद मन्त्रोंसे जैनधर्म्म की अनादि सिद्ध है या नहीं ? ॥

(द) कोई कहैकि जैनियों के ग्रंथों में से कथाओंको लेकर वाल्मीकीय आदि ग्रन्थ बनेहोंगे तो उनसे पूछना चाहिये कि वाल्मीकीय आदिमें तुम्हारे ग्रन्थोंका नाम लेख भी क्यों नहीं ? और तुम्हारे ग्रन्थोंमें क्यों है ? क्या पिताके जन्मका दर्शन पुत्र कर सकता है ? कभी नहीं। इससे यही सिद्ध होता है कि जैन बौद्ध मत शैव शाक्तादि मतोंके पीछे चला है ॥

(क) स्वामीजी राम लक्ष्मण कृष्ण बलदेव तथा वाल्मीक व्यासादिक का बैबल तौरेत इन्जील कुरान में कुछभी वर्णन नहीं तो क्या यह सब पुस्तक भारत रामायणसे पुराने सिद्ध हो जायँगे ? कभी नहीं इसीप्रकार जैनोंका कथन भारत रामायणमें न होनेसे जैन नवीन नहीं हो सकता परन्तु हमने तो भारत रामायण क्या वेदोंमें भी जैन सिद्ध करादिया और जिनको आवागमन पर दृढ विश्वासहै वे यहभी कह सकते हैं कि पुत्र पिताके जन्मका उत्सव देख सकताहै परंतु यह गूढ चर्चा है यहाँ विस्तार पूर्वक लिखनेका अवसर नहीं है ॥

(द) अब इस १२ बारहवे समुल्लास में जो २ जैनियों के मत विषयक

लिखा गया है सो उनके ग्रन्थोंके पते पूर्वक लिखा है इस में जैनीलोगोंको बुरा न मानना चाहिये क्योंकि जो २ हमने इनके मत विषय में लिखा है वह केवल सत्याऽसत्यके निर्णयार्थ है नकि विरोध वा हानि करनेके अर्थ ॥

(क) स्वामीजी अपराध क्षमा आपने ऐसी बड़ी जन्मही नहीं लिया या जो यथार्थ और पक्षपात रहित लेख करते। स्वकपोल कल्पना करना और निर्दोषीको सदोष कहना यह तो आपका मुख्य उद्देश ॥

(ट) इस लेखको जब जैनी बौद्ध वा अन्य लोग देखेंगे सबको सत्याऽसत्यके निर्णय में विचार और लेख करनेका समय मिलेगा और बोधभी होगा जबतक वादी प्रतिवादी होकर प्रीतिसे वाद वा लेख नकिया जाय तबतक सत्याऽसत्य का निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान लोगोंमें सत्याऽसत्य निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानोंको महा अन्धकार में पड़कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है इस लिये सत्यके जय और असत्यके क्षयके अर्थ मित्रतासे वाद वा लेख करना हमारा मनुष्य जातिका मुख्य काम है। यदि ऐसा नहोतो मनुष्योंकी उन्नति कभीनहो।

(क) स्वामीजी किसी विद्वान गुरुके शिष्य होकर विद्यापठन में तो अपना अपमान समझते हैं और परम दयामय सनातन जैनधर्मका सारांश जाननेके अभिलाषी हुये भाषा विना पढ़नेसे जो अपना मनोरथ सिद्ध किया चाहते थे यह कब होसकता है, जो उनके मत श्रद्धालु हैं उनको तो वादविवादसे मना करदी रखा है ? और जो सर्वाङ्ग उनका सामर्थ नहीं इसलिये स्वामी दयानन्द सरस्वतीका सम्पूर्ण श्रम व्यर्थ है ॥

(ख) और यह बौद्ध जैनमत का विषय बिना इनके अन्य मत वालोंको अपूर्व लाभ और बोध करनेवाला होगा, क्योंकि ये लोग अपने पुस्तकोंको किसी अन्य मतवालेको देखने पढ़ने वा लिखने को भी नहीं देते। बड़े परिश्रमसे मेरे और विशेष "आर्यसमाज" मुम्बईके मन्त्री "सेठ सेवकलाल कृष्णदास" के पुरुषार्थ से ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं तथा काशीस्थ "जैनप्रभाकर" यन्त्रालयमें छपने और मुम्बईमें "प्रकरणरत्नाकर" ग्रन्थके छपनेसे भी सब लोगोंको जैनियोंका मत देखना सहज हुआ है। भला यह किन विद्वानोंकी बात है कि अपने मतके पुस्तक आपही देखना और दूसरोंको न दिखलाना ॥

(क) जो किसी पुस्तक लगें वहीं विद्वान सत्पात्र है और उनका यही परम धर्म है कि सब ... ... लोग पढ़ने सीखने पर

आदिको म्लेच्छ चाण्डालादिक के स्पर्शसे सदैव इसलिये बचाया करते हैं कि उनके संसर्गसे वह अग्राह्य हो जाता है। इसी प्रकार जैनीलोग अपने धर्म्म ग्रंथों को (जो उनके आत्माको निर्मल करने वाले हैं) ऐसे प्राणीको नहींदेते जो उसके देखनेका अधिकारी नहीं । इस विषयमें स्वामीजीका लिखना ऐसा है जैसे कोई भङ्गी ढेढ चमार किसी क्षत्रिय कुलोत्पन्न राजकन्या से विवाह करने की अभिलाषा कर खेदके अतिरिक्त और कुछ लाभ नहीं पावे। और जो पुस्तक छापेमें छपकर बाजारमें बिकने लगती है उसको जैनी लोग ऐसा समझते हैं कि जैसे किसी उत्तम कुलकी जन्मी कन्या धर्म्म और न्यात भ्रष्ट हो वेश्याहोगई॥

(द) इसी से विदित होता है कि इन ग्रन्थोंके बनाने वालोंको प्रथमही शंकाथी किइन ग्रंथों में असंभव बातें हैं जो दूसरे मतवाले देखेंगे तो खंडन करेंगे और हमारे मतवाले दूसरों के ग्रंथ देखेंगे तो इसमतमें श्रद्धा नहीं रहेगी। अस्तु जो हो परन्तु बहुत मनुष्य ऐसेहैं कि जिनको अपने दोषतो नहीं दीखते किंतु दूसरोंके दोष देखनेमें अत्युद्युक्त रहते हैं। यह न्यायकी बात नहीं क्योंकि प्रथम अपने दोष देख निकालके पश्चात् दूसरेके दोषोंमें दृष्टि देके निकालें। अब इन बौद्ध जैनियोंके मतका विषय सब सज्जनोंके सन्मुख धरताहूं जैसाहै वैसा विचारें।

(क) प्यारे पाठकगण सब दूसरोंहीको उपदेश देना जानतेहैं खुद स्वामीजी कोही हठके अतिरिक्त और कुछ नहीं आताथा यह क्योंकर सिद्ध हुआ कि जैन ग्रंथकारोंको प्रथमहीसे शंकाथी ? जैन आम्नायके लाखों ग्रंथ इस समय भी पृथिवीपर विद्यमान हैं किसकी मजाल है जो उनपर लेखनी चलावे हां स्वामीजीकी तरह व्यर्थ गाल बजानेका सा काम हरकोईभी कर जानता है, यदि स्वामीजी सत्यवक्ताथे तो साफ क्यों न कहदियाकि हमारे माता पिताका यह नाम है, और जैसे यार (जार) पुरुष किसी भले घरकी स्त्रीका मुख ढका देखकर कहैकि यह चक्षु रहित वा नकटी है, तो उसके इस कहनसे वह लज्जा त्याग मुख नहीं दिखावेगी । इसी प्रकार स्वामीजीके कहनसे कोई जैनी अपने धर्म्म ग्रन्थोंको गलियारेकी गेन्द नहीं बना सक्ता ! खैर ! पाठक वृन्द दूसरे * भागमें हम इसी उत्तर लिखेंगे जो स्वामीजी की यथार्थ पोल खोले इस भूमिका का

---

* सम्पूर्ण 'सत्यार्थ प्रकाश' चतुर्दश समुल्लास का उत्तर दूसरे भागमें प्रगट होना था लिखा गयाहै परंतु उसके छपनेमें अभी इसका अमावस्यक विलम्ब मालूम होताहै, इसलिये [illegible] शादन मनुष्यका उत्तर 'जैन सुधा बिन्दु' नामसे छुपा छपाया गयाहै

का उत्तर, सो इतना ही बहुत है। इति "सत्यार्थ प्रकाश" द्वादश समुल्लास भूमिका या समीक्षा समाप्त ॥

पुन पृष्ठ ५९८ पंक्ति ० में स्वामीजी लिखते हैं कि "जो दूसरे मतोंको कि जिसमें हजारों क्रोडों मनुष्यहैं झूठा बतलावे और अपनेको सच्चा उससे परे झूठा दूसरा मत कौन हो सकताहै ? क्योंकि किसी मतमें सर्व मनुष्य बुरे और भले नहीं होसकते" ॥

न्याय वानोंको दुक ध्यान देना उचित है कि पूर्वोक्त लेखसे खुद स्वामी जीही झूठे मिथ्या वादी सिद्ध होतेहैं, और जैन बौद्ध पुराणी ईसाई मुसल्मान सब सच्चे ठहरते हैं क्योंकि स्वामीजीने उक्त सब धर्म्मोंको झूठा बतलाया है ॥

पुन पृष्ठ ६०१ पंक्ति १४ से लिखाहै कि "चारों वेदोंके ब्राह्मण, छः अंग छः उपांग चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदोंकी शाखा जोकि वेदोंके व्याख्या रूप ब्रह्मादि महर्षियोंके बनाये ग्रन्थ हैं उनको परत प्रमाण अर्थात् वेदोंके अनुकूल होनेसे प्रमाण और जो इनमें वेद विरुद्ध वचन है उनको अप्रमाण मानता हूं ॥

इसपर मंगल देव पराजय पृष्ठ ३१ पंक्ति २ पर लिखाहै कि "यहां ब्रह्मादि महर्षियोंके बनाये ग्रंथोंमें वेद विरुद्ध वचन कहनेसे स्पष्ट सिद्धहै कि स्वामीजी को ब्रह्मादि महर्षियोंसे अधिक विद्वान होनेका अभिमान था और उनका अज्ञान उन्हींके लिखे हुए सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थोंसे सम्यक् प्रकट है" ॥

आर्य्योदेश्य रत्नमालाकी संख्या २० में मुक्तिका स्वरूप इस प्रकार लिखाहै ॥

२० मुक्ति ॥ अर्थात् जिससे सब बुरे कामों और जन्म मरणादि दुःख सागरसे छूटकर सुख स्वरूप परमेश्वरको प्राप्त होके सुखहीमें रहना मुक्ति कहातीहै ॥

इसके प्रतिकूल नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ ६०२ पंक्ति २१ में यूं लिखाहै ॥

१- "मुक्ति" अर्थात् सब दुःखोंसे छूटकर बंध रहित सर्व व्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टिमें स्वेच्छासे विचरना नियत समय पर्यन्त मुक्तिके आनन्दको भोगके पुन संसारमें आना" इसी प्रकार आर्य्योदेश्य रत्नमालाके प्रतिकूल नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" में अनेक वचन हैं ॥

जो आर्य्य राजपत्रावली स्वामीजीने नवीन "सत्यार्थ प्रकाश" के पृष्ठ ३९७ से ४०० तक लिखी है उसके विषयमें लिखा है कि यह विषय विद्यार्थी

सम्मिलित " हरिश्चन्द्र चन्द्रिका " और " मोहन चन्द्रिका " से अनुवाद किया है। यह पाक्षिकपत्रिका श्रीनाथद्वारेसे निकलती है इसके सम्पादकने मार्गशिर्ष शुक्लपक्ष १०। २० किरण अर्थात् दोपाक्षिक पत्रमें छापाथा । और अनुभव होताहै कि स्वामीजीके पास यह पत्रिका पौषमासमें आई होगी जो पुस्तकके पृष्ट ३९५ के पश्चात् सम्मिलित हुई, इससे यह स्पष्ट जाना जाता है किजब पौष मास तक " सत्यार्थ प्रकाश "के ४०० सौ पृष्ट पूरे हुए तो पूरा ग्रंथ स्वामी जीके उदयपुर रहते २ ही पूरा होगया होगा परतु स्वामीजीने उसके अन्तमें पूर्ण होनेका सम्वत् मास दिन तारीख कुछ भी नहीं लिखा मालूम नहीं ऐसा क्यों हुआ ? इति सत्यार्थ प्रकाश समीक्षा सम्पूर्णम् ॥

आश्विन सम्वत् १९३९ में ऋग्वेद भाष्यअंक ४२। ४३ छपकर प्रकाशित हुआ। कार्तिक सम्वत् १९३९ में यजुर्वेद भाष्य अंक ४२। ४३ वेदिक यंत्रालय प्रयागसे छपकर प्रकाशित हुआ और स्वामीजी के उदयपुर रहते हुये ही अजमेर नगरसे प्रकाशित होनेवाले " देश हितैषी " नाम पत्र संख्या ७ मास कार्तिक सम्वत् १९३९ में मुन्शी इन्द्रमणि मुरादाबाद निवासिका दिया हुआ निम्न लिखित विज्ञापन प्रकाशित हुआथा ॥

॥ मुन्शी इन्द्रमणिजी का दिया हुआ विज्ञापन ॥

प्रकट होकि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी की सम्मतिसे जगन्नाथदास की प्रश्नोतरी के खण्डनमें एक व्याख्यान सर्वथा मिथ्या देशहितैषी नामक मासिक पत्र अजमेर में एक उचितवक्ताके नामसे मुद्रित हुवा है, और उसमें प्रायःमेरा नामभी निन्दाके साथ लिखाहै उसका उत्तरभी शीघ्रही मासिक पत्रके द्वारा (जो कि हम धर्म्माधर्मके निर्णयमें प्रचरित करना चाहते हैं) मुद्रित होकर सज्जनोंके अवलोकनार्थ प्रकाशित किया जायगा, वरन व्याख्यानके अन्तमें जो यह लिखाहै कि जगन्नाथदास और इन्द्रमणिकी प्रतिज्ञासे विरुद्ध करना आदि अन्यथा व्यवहारोंको जो कोई सज्जन पुरुष जानना चाहै वह आर्य्यसमाचार मेरठके लाला रामसरन दास आदि भद्रपुरुषोंसे पूछ देखे कि अन्य मार्गियोंसे विवाद विषय की शांति कारक व्यवहार प्रसंगमें इन्होंने कैसा २ विपरीत व्यवहार किया है मैंने अद्य पर्यन्त उस विषयको स्वामीजीकी अति निन्दाका कारण जानकर मुद्रित नहीं कराया परन्तु जब कि मे उलटा चोर कोतवालको डांटे,

इस प्रकार के महान अधर्मी मिथ्या निन्दा लोगोंसे करने और उपयुक्त मत नर इस विषयको प्रकाशित कर देना अत्यावश्यक जाना। विदित हो कि जिस समय पुरुषक मुसल्मानोंके झगड़ेमें ५००) रुपये दण्ड हुआ तो स्वामीजी ने समाजोंको पत्र लिखेकि मुन्शी इन्द्रमणिजीकी सहायताके लिये चन्दा करके इधर तथा लाला रामशरण दास सभासद् आर्य समाज मेरठके पास भेजो यहांसे एकत्र करके मुन्शीजीके पास भेजा जायगा जिससे कि वह उक्त दण्ड तथा हानीके लिये अपना मुकद्दमा लड़ावें स्वामीजी के इच्छानुसार लाहोर अमृतसर रुड़की, फर्रुखाबाद फीरोजपुर, शाहजहांपुर, औरंगाबाद, दानापुर, गुरदासपुर, जालन्धर मुल्तान रावलपिंडी आदि के सज्जनोंने यथोचित द्रव्य इकट्ठा करके स्वामीजी तथा लाला रामशरण दासजीके पास भेजना प्रारम्भ किया जब कि उक्त मुकद्दमेका अर्थात् जमी मुरादाबादमें दायरथा तो मुन्शीजीको ६००) डिस्ट्रिक्ट जज साहिब बैरिस्टर द्वारा कोर्टके पास भेजनेकी आवश्यकता हुई तब मैंने आप मेरठ जाकर लाला रामशरणदाससे कहा कि ६००) रुपये बैरिस्टर साहिबके पास भेजने हैं जिसमें ५००) चारसौ तो मेरे पास हैं १००) चन्देके रुपये मेंसे जो तुम्हारे पास जमा हुआ है देदीजे लाला साहिबने उत्तर दिया कि यहांसे तो अभी तुमको रुपया न मिलेगा वहीं से कुछ यत्न करके भेजदो फिर मैंने उनसे प्रश्न कियाकि अब तक आपके पास कितना रुपया जमा हुआ है तो उत्तर दिया कि समाजसे बतलानेकी आज्ञा नहीं है, यद्यपि जिसकी सहायताके लिये सज्जनोंने धन भेजा उसको देना क्या पर भी न बतलाया जायकि कितना रुपया, निदान मैं वहांसे अपने स्थानको चला आया और एक सज्जनकी सहायता से बैरिस्टर साहिबको ६००) रुपये भेजदिये, फिर जब जजी मुरादाबाद से ८०) जुर्मानेमें से ४००) रुपये कम होकर १००) रुपये शेष रहे तब लाला रामशरनदासजी मुरादाबाद आये मैंने उनसे कहा कि हाईकोर्टमें अर्थात् नगरमें रुपये भेजिये तब भी लाला साहिबने वही उत्तर दियाकि यहांसे तो रुपया न मिलेगा, तुमहीं यत्न करके हाईकोर्टका अपील करदीजे, फिर लाला रामशरणदासजी अपने स्थानको चले गये और मैंने रुपये के लिये कई बार स्वामीजी से तथा लाला रामशरण दासजी से लिखा मुझे लाला साहबसे कुछ उत्तर न मिला तब मैंने भारत मित्र पत्रमें यह छपवाया कि जिन सज्जनोंने इस मुकद्दमें में सहायता करनी हो वह अब रुपया चाहे मुझे मेरे पास भेज अथवा लाला

* [illegible]
[illegible]

का मेजा हुआ द्रव्य मेरे को नहीं मिलता, फिर स्वामीजी को लिखाकि इस मुकद्दमे के लिये आपके तथा रामसरणदासके पास धन जमा हुआ और हमको नहीं मिलता, यदि आपका विचार ऐसाही है तो स्पष्ट लिखदीजे हम हाईकोर्टका अपील न करें ? इस लिखा पढीके उपरान्त स्वामीजीने (६००) रुपये तो भेजे और शेषधन रामसरणदासजीके पास रहा, हाँ जिन महाशयोंने मेरे पास धन भेजा वह मेरे पास पहुंचा और उन्होंके सहायसे इस मुकद्दमे का काम चला, यहां यह विषय सक्षेपसे निवेदन किया गया विस्तार पूर्वक फिर प्रकट किया जावेगा ! अब बुद्धिमान न्याय करें कि जो धन सज्जनोंने मेरी सहायता के निमित स्वामीजी तथा रामसरणदासजीके पास भेजा, और उन्होंने वह सम्पूर्ण मुझको न दिया किंतु आप उसके स्वामी बनबैठ, तो अन्य मार्गियोंके विवाद विषयकी शांतिकारक व्यवहार प्रसगमें स्वामीजी और रामसरणदासजीने विभीत व्यवहार कियाहै या मैंने (इन्द्रमणि मुरादाबाद)

स्वामीजी की मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारीसे भी अधिक भीतथी उनकी बडाई आर्य्यसमाचार मेरठ सख्या ८ जिल्द ४ में इस प्रकार लिखी है,

ऋषि सिफ्त मुनि वकूअत चशमय इस्लाह मन्बअ फलाह हिकमत पनाह फजीलत दस्तगाह सिदक मुजिस्सम् महतरम मुकर्रम मखजम जनाब मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी ।

मार्गशिर्ष सम्वत् १९३९ में ऋग्वेद भाष्य अक ४८ । ४९ वेदिक यन्त्रालय प्रयागसे मुद्रित होकर प्रकाशित हुवा ।

पौष सम्वत् १९३९ में वेदिक यन्त्रालय प्रयागसे स्वामीजी रचित पुस्तक अव्ययार्थ१ आख्यातिक१ सौवर१ पारिभाषिक१ धातुपाठ१ गणपाठ१ उणादिकोष१ यह सात पृथक् पृथक् और यजुर्वेदभाष्य अक ४४ । ४५ छपकर प्रकाशित हुये । और पौष शुक्ला१ बुधवारका लिखा एक लेख माघ सम्वत् १९३९ के देशहितैषीमें उचित वक्ताके नामसे प्रकाशित हुआ जिसको मुन्शी इंद्रमणिजी मुरादाबादी खास स्वामीजीका ही लिखा हुआ ख्याल करते हैं नकल उसकी यह है, श्रीयुत देशहितैषी सम्पादक समीपेषु,

मान्यवर नमस्ते ।

विदित होयकि एक मुन्शी इन्द्रमणिजी के विज्ञापनरूप मेरे पास आया इसका उत्तर बहुत लम्बा है परन्तु इस समय इस पत्रके थोडेसे उत्तरको आप अपने पत्रमें स्थान देके मुझको कृतार्थ कीजिये । यदि मुन्शी इन्द्रमणिजी अपने

लेखानुसार सच्चे होंतो उस व्यवहारमें अन्यत्रसे जितना आय व्यय हुआहो आपके पत्र (दे० हि०) में छपवाके प्रसिद्ध करें और इसी प्रकार लालारामशरणदासजी भी करें। जिसके देखनेमें सज्जन लोगोंको स्वयं सत्यासत्यका विचार होजायगा । अर्थात् समझ लेंगे । और उस हिसाबके नीचे यह भी लिखाहोकि जिस २ भद्र आर्य्य जनने मुन्शीजी और मुसलमान मुरादाबादके झगड़ेमें जितने २ रुपये जिस २ के पास भेजे होंय और जिसकी २ रसीदभी उनके पास हो नाम लेख पूर्वक वह २ देशहितैषी पत्र सम्पादकके पास भेजें और उस २ के पत्रको आप अपने पत्रमें छापकर प्रसिद्ध करादिया करें जिससे सत्य और असत्य सबके साम्हने प्रकाशित होजाय. इसमें सत्यतो यह है कि मुन्शीजी झूठा अपराध स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और लाला रामशरणदास रईस मेरठके ऊपर आरोपित करते हैं वह सब अपराध मुन्शीजीहीका है क्योंकि जब मुन्शीजी पर मजिस्ट्रेट मुरादाबादने ५००) रु० दण्ड कियेथे उसके पश्चात् मुन्शीजी मेरठमें आये (जहां उस समय स्वामीजीभी उपस्थित थे) और कहाकि यह विवाद सब वेदमतानुयाइयोंके ऊपर समझना चाहिये न केवल मुझपर इस पर स्वामीजी और अन्य सब सज्जनोंने कहा कि यह ठीक है क्योंकि मुन्शीजीने वेदमतकी रक्षाके लिये इतना बड़ा परिश्रम किया है इस लिये इस समय इस कार्य्यमें सब वैदिकोंको सहाय करना उचित है, इसपर सबकी यही सम्मतिहुई कि इस बातके लिये एक सभा नियतहो और चन्दा इकट्ठा करे जिससे उसके आय व्ययका हिसाब वह सभारक्खे और मुन्शीजीको उसमें से इतना धन दिया जायकि जितना खर्च उचित होना होय । अन्तको यह सभा मेरठमें नियत हुई और मुन्शीजीसे कहाकि जो कोई आपके पास रुपये भेजे उसको आपभी इस सभाके कोषाध्यक्ष लाला रामशरणदासजी के पास भेज दिया करें और उसके आय व्ययकी पड़ताल (जांच) यह सभा किया करे और हिसाबभी लेवे इन सब बातोंको मुन्शीजीने भी स्वीकार स्वामीजी आदिके सन्मुख कियाथा और यहभी उसी समय निश्चय हुआथाकि सिवाय उस सभाके सभासदोंके दूसरोंसे इस धनकी आयव्यय व संख्या प्रसिद्ध तबतक नकरनी चाहिये कि जबतक यह कार्य पूरा नहोजाय, यदि चंदेका धन कम आवे और खर्च अधिक करना होय तो किसी योग्य धनाढ्य पुरुषसे सभा उधार कार्य्य करे इसी लिये लाला रामशरणदासजी ने जमा हुए धनकी संख्या मुन्शीजीको नहीं बतलाईथी। क्योंकि सभाकी आज्ञा बतलानेकी नहीं थी इस कुचक्रमें मुन्शीजीने दोष लगाना शून्य है मुन्शीजीकी बुद्धिमत्ताको इससे सब सज्जन लोग समझ सकते हैं कि जब

मुन्शीजीको संख्या न बतलानेमें लाला रामशरणदासजी का दोष है? वा इस पर क्रोधित होकर यथा तथा कुवाच्य कहने लिखने में मुन्शी इन्द्रमणिजीका ? इस विपरीत व्यवहारका कारण यह विदित होवाहै कि जब इधर उधरसे बहुत धन मुन्शीजीके पास आने लगा तब लोभके वशमें होकर जो पूर्वकृत नियमानुसार अर्थात् जितना धन मुन्शीजीके पास आवे वह मेरठ सभाके कोषाध्यक्ष लाला रामशरणदासजी के पास तो भेजना दूर रहा किंतु जब लाला रामशरणदासजी ने कईबार पत्र भेजकर हिसाब मांगा तो मुन्शीजीने मौन साधके हिसाब नहीं दिया,-तब लाला रामशरणदासजी को निश्चय हुआकि मुन्शीजीके मनमें कुछ अन्य आशाहै इसबात के निश्चयार्थ लाला श्याम सुन्दर रईस मुरादाबादके पास लाला रामशरणदासजी ने पत्रभेजा कि मुन्शीजीसे हिसाब पूछकर मेरे पासभेजो उनकोभी मुन्शीजीने हिसाब नहीं दिया किंतु इस सर्व वैदिक मतके रक्षार्थ धनको अपना निज धनही समझ लिया तबसे लाला रामशरणदासजीने मुन्शीजीको धन देना बंद किया और स्वामीजीको पत्र द्वारा विदित किया तब स्वामीजीने उत्तर दियाकि इस समय इस बातके होनेसे कार्य्यमें विघ्न होगा कार्य्य होने दीजिये और ६००) रु० जो मांगतेहैं देदीजिये तब उन्होंने देदिये और इससे अधिक धन मुन्शीजीको कितना दिया और कितना लाला रामशरणदासजी के पास जमा रहा यह बात हिसाब छपने से सबको प्रसिद्ध होजायगी और स्वामीजीने उक्त लाला श्याम सुन्दर कोठीवाले रईस मुरादाबादको पास पत्र भेजाकि मुन्शीजीसे हिसाब लेकर लाला रामशरणदासजी के पास भिजवा दीजीये उन्होंने उत्तर दिया कि मुन्शीजी हिसाब नहीं बतलाते धन्यरे धन, तेरे में बड़ी आकर्षण शक्तिहै तू बड़ों २ को भी धर्मसे डिगाकर नीचे गिरा देता है, फिर जब देरहदूनसे आते समय मेरठके स्टेशनपर लाला रामशरणदासादिसे मेलहुआ तब मुन्शीजीके विषयकी बात सुन बड़ा आश्चर्य मानके उनसे (स्वामीजीने) कहाकि मैं कोयल इसी लिये ठहरके वहां मुन्शीजीको बुलाकर समझा दूंगा स्वामीजीने कोयलमें आकर मुन्शीजीको बुलानेके लिये तार दिया उसके उत्तरमें मुन्शीजीने तारमें खबरदी कि मैं बीमार हू नारायणदास प्रयागको गयाहै अर्थात् मैं नहीं आसक्ता। पश्चात् स्वामीजीने आगरेमें आकर मुन्शीजीके पास पत्र भेजा कि यदि यह बात सत्य है तो इसमें आपकी बड़ी निंदा होगी आप यहां शीघ्र आईये। मुन्शीजीने क्रोधित होके असभ्यताकी बात जोकि उनके लिखने योग्य नथी लाला रामशरणदासजी की निंदा पूर्वक बहुतसी लिखी और यहभी उसपत्रमें लिखाकि आप लाला रामशरणदासजीसे हिसाब मंगवाइये तब स्वा-

मीजीने लाला रामशरणदासजीको लिखाकि आप हिसाब लिखकर मेरे पास यहां भेज दीजिए जब मैं आपके हिसाबको मुन्शीजीको दिखा दूंगा तब वे भी अपना हिसाब देंगे इसके थोड़ेही दिनोंके पश्चात् मुन्शीजी तथा लाला जगन्नाथ दासजी आदि मथुरा होते हुए आगरेमें स्वामीजीके पास आये जब स्वामीजीने उनसे कहाकि हिसाब लाये हो या नहीं तब मुन्शीजीने कहाकि हां लायेहैं, परन्तु पहिले लाला रामशरणदासजीका हिसाब मगवालें तब हमभी दिखादेंगे तब स्वामीजीने कहाकि जब आपकेपास हिसाब है तो क्यों नहीं दिखलाते तब पुनः मुन्शीजी और लाला जगन्नाथदासजी ने कहाकि उनका हिसाब आने दीजिये तब दिखलावेंगे पाठकगणों परमेश्वरकी कृपा और लाला रामशरणदासजीकी सचाईसे दूसरेही दिन मेरठसे हिसाब आगया स्वामीजीने मुन्शीजी तथा लाला जगन्नाथदासको दिखलादिया पश्चात् स्वामीजीने कहाकि अबतो तुम दिखलाओ तब मुन्शीजीके कहनेसे लाला जगन्नाथदासजी ने थैलेको हाथ लगाया इधर उधर हाथ फेरफार कर कहाकि मुन्शीजी वह हिसाबका कागज़तो मैं मुरादाबादहीमें भूल आया सभ्यगणों ! देखो ! क्या मिली हुई गुरु चेलेकी भक्ति है तब स्वामीजीने कहाकि जितना स्मरण हो उतनाही कलम लिखवाइये, तब मुन्शीजी लिखवाने लगे अनुमान है कि २०००) दो हजार तक का हिसाब तो लिखवाया और कहने लगे कि अब मुझे याद नहीं है हम मुरादाबाद पहुंचकर शीघ्र हिसाब भेजदेंगे सो आजतक नहीं भेजा। अब आपलोग इन बातोंसे विचार लेवेंकि मुन्शीजी सच्चेहैं या लाला रामशरणदासजी फिर मुन्शीजी और लाला जगन्नाथजी व्यर्थ विसंवाद करने लगे और कहाकि २५०) लाला किशनदासजीने भेजेथे सो इस हिसाबमें जमा क्यों नहीं ? तब स्वामीजीने कहाकि वे रुपये तो गुरदासपुरसे मेरेनाम आयेथे मैंने लाला रामशरणदासजीको दियेथे न मालूम उन्होंने जमा क्यों नहीं किये इसका समाचारभी लिखकर मंगवा दूंगा। स्वामीजीने उसी दिन लाला रामशरणदासजीको पत्र लिख उत्तर मंगवाया तब उन्होंने लिखाकि यह मेरे मुन्शीकी भूलसे लाहोरसे रुपयोंके साथ गुरदासपुरके भी २५०) जमालिखे गये हैं अर्थात् जिस दिन १५०) लाहोर समाजसे आयेथे उसीदिन २५०) के नोट आपनेभी दियेथे भूलसे ४००) लाहोर समाजके नामसे जमा रिये अब मुन्शीजी इसका निश्चय करलेवें अर्थात् इन २५०) रु० के सिवाय किसीने स्वामीजीके पास रुपया नहीं भेजा यदि भेजाहोतो जिसके पास स्वामीजीके हस्ताक्षरकी रसीद होगी सच्ची सिद्धमें परन्तु ... किंतु स्वामीजीकी कुछ इसमें विपरीत बात होतो स्वामीजी प्रतिज्ञा पूर्वक कहते हैं कि

सिवाय २५०॥) के मेरे पास । एक कौडीभी किसीकी नहीं आई क्योंकि जो कोई स्वामीजीसे पूछता वा पत्र भेजताथा तो स्वामीजी यही उत्तर देतेथे कि जो भेजना होसो लाला रामशरणदासजी के पास मेरठ सभाको भेजो क्योंकि उसी सभाके आधीन यह सब प्रबन्ध है।इस उत्तम प्रबन्धको तोडनेवाले मुन्शीजीहैं कि जिन्होंने भारतमित्रादि समाचारोंमें अपना मतलब सिद्ध करनेके लिये अडबंड छपवाकर स्वप्रयोजन सिद्ध किया और अपनी प्रशंसाकर बट्टा लगाया शोकहै यह 'धन' बुरी बलाहै, जो बडे २ चतुरोंको भी फसा लेताहै उसी दिन स्वामीजीने मुन्शीजीसे कहाकि हिसाब ठीक २ मेरठ सभामें भेजदीजिये जो एक नियम हुवाहै उसका तोडना अच्छा नहीं आप पूर्वकृत नियमानुसार बर्तिये जिससे प्रीतिपूर्वक सब सहायक रहें इसीमें अच्छाहै, विरोध होना अच्छानहीं तबतो मुन्शीजी और लाला जगन्नाथदासजी दोनों क्रोधाविष्ट होकर कहने लगे कि हमसे हिसाब लेनेवाला कौनहै इसके मालिक हम हैं हमारे पर यह सब मामला चला है हमारे नाम चन्दा जो आता है हमाराहीहै और लाला जगन्नाथदासजी बोले कि यदि आपसे कोई वैदिक यन्त्रालयका हिसाबपूछे क्या आप देंगे स्वामीजी बोले कि कछु लेतेहो यह आजहीलो यहां कोई बात गुप्त नहीं किंतु जब कोई आर्य्यसमाजका प्रतिष्ठित सभासद हिसाब लेना चाहे उसको कोई अटकाव नहीं फिर स्वामीजीने मुन्शीजीको एकांतमें लेजाके समझाया * कि ऐसीबात करना आपको उचित नहीं है एकतो यहबात जो मेरठमें आपने कहीथी, कि यह सब वैदिक धर्म्मवालोंका मामलाहै मेरा एकलेका नहीं और इससे विरुद्ध आजकी बातहै कि मेरेही अकेलेका मामला आदिहै । सुनिये मुन्शीजी यदिमें आपको पहलेसे ऐसा जानता तो आपके साथ एक क्षणमात्र भी न ठहरता और आपका कुछभी सामर्थ्य नहींथा कि अकेले इस प्रकार सहाय प्राप्त करसकते । ऽस्तुमेंतो उसी बातको समझाऊं कि यह सब वैदिक मतानुयाईयोंके साथकी बात है । तब तो मुन्शीजी कुछ शांति हुए, पीछे स्वामीजीने कहाकि अस्तु अब शेष कार्य्य आप सिद्ध कीजिये और प्रयागमें दो पुरुषोंका नाम लिखवाया कि उनकी सम्मतिसे सब काम कीजियेगा, और मुरादाबादमें पहुंचके हिसाब मेरठमें शीघ्र भेज दीजियेगा मुन्शीजीने कहा कि जावेही भेज दूगा सोभी न किया और न हिसाब भेजा करते और भेजते तो जब उनके मनमें शुद्ध भाव होता प्रयागमें भी गुप्त व्यय कर कराके (जैसाकि मुरादाबाद जल्सेमें व्यय व्यवस्था हुईथी) अपनी नियतका फल पाकर घरचले

* यह प्रगट है कि बहुधा बातोंमें स्वामीजी गुप्त भावसेभी काम करते थे ।

फिरभी न जाने किस २ सज्जन पुरुषके पुरुषार्थसे श्रीमान् गवर्नर महाराज बहादुरसे प्रार्थना करके १०६) रु० का दण्डभी माफ करोया गया, अबभी मुन्शीजी अपनी बातको सच्चा करना चाहैं तो मुसल्मानोंके साथ मेलेमें जहांसे जितना २ धन जिस २ ने भेजा हो उन्ह नाम पता धन नाम ना आदि लिखें और जितना २ जिसकार्य्यमें व्यय हुआहै गुह प्रसिद्ध सब पत्रोंमें छपवावें और जितना धन उस मामलेके विषयमें व्ययसे शेष रहाहो मेरठ सभामें भेज देवें क्योंकि जो मेरठ सभाका यह विचार निश्चय था कि यदि मुन्शीजीके मामलेसे चन्देका धन बचेतो उसका क्या किया इसपर सबकी यही सम्मति हुईथी कि उस धनको ॥) आने ब्याजमें किसी ध्यके पास रक्खा जाय और जब अन्य मतावलम्बियोंके साथ वैदिक आ का विवाद राजन्याय घरमें चले तब उसीमेंसे इसका व्यय किया जाय अन्यत्र क्योंकि यह धन इसी बातके लिये इकट्ठा किया जाता है और ऐसा जीपर कष्ट पड़ाहै सम्भवहैकि अन्यपरभी कभी न कभी आन पड़े इस इस धनकी स्थिरता और उन्नति सदा करनी जाना चाहिये । परतु पाठक ी इस परोपकारक कार्य्यको मुन्शीजीके लोभने पड़ने न दिया अब बुद्धि लोग विचार लेवेंकि इसमें स्वामीजीका और लाला रामशरणदासजीका यों व्यवहार है वा मुन्शी इन्द्रमणिजीका अधिक लिखना बुद्धिमानों के सामने ध्यक नहीं क्योंकि भाग्यजन थोड़ेही लिखसे बहुत समझ लेते हैं, अलमिति रेण बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥ निधि रामाङ्क चन्द्राङ्के पौष मासे सिते दले प्रतिपत्भौ वासरेहि पत्र मेतन्मलेखिषम् ॥१॥ सम्वत् १९३९ पौष शुक्ल० १ बुधवासरे ।

(यही आपका परम मित्र उचित वक्ता)

॥ देशहितैषी ॥ हमने अपने नियमानुसार दोनों महाशयों के पत्र प्रकाश कर दिये अब हम इतना और कह सक्तेहैं कि जिस प्रकारसे पत्र मेरठ " उचित वक्ता " ने जो मुन्शीजीके प्रति लिखा है कि " अ बातको सच्चा करनेके लिये इस मामलेमें जहां २ से जितना २ रुपया जिस २ भेजा हो उनका नाम धन ठिकानादि सहित लिखें और जितना जिस २ र्यमें खर्च हुआ हो प्रसिद्ध सब समाचारोंमें छपवा दें इत्यादि " वास्तवमें बहुत उत्तम बात है और ऐसा करनेसे मुन्शीजीका निर्दोष भी प्रत्यक्ष लगाका और इसे मुन्शीजी इससे निरुद्ध अपना अमूल्य समय वृथा किन्तु पादमें समाचारोंके काम्य नामें प्रकाशित किया करो कभी इस कार्यको

नहीं बच सके और यह हम सत्य कहते हैं कि जो सच्चा होता है उसको टालम टोल करनेसे क्या प्रयोजन। यदि मुन्शी इन्द्रमणिजी सच्चे हैं तो अपना हिसाब समाचार पत्रोंद्वारा प्रकाशित कर अपनी सत्यता का परिचय दिखावें अन्यथा व्यवहार करनेसे मुन्शीजीके लिये अच्छा फल नहीं निकलते देखता, दूसरे अब हम श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज और लाला रामशरणदासजीसे भी सविनय प्रार्थना करते हैं कि, यदि हमारे पत्र प्रेरक उचित वक्ताका यह कथन सत्यहै तो आप महाशयोंकोभी उचित है कि जितना २) रुपया मुन्शी इन्द्रमणिजीके मुकदमेके विषयका आपलोगोंके पास आयाहै उसको किसी समाचार-पत्रद्वारा प्रकाशित कर इस विषयको शीघ्र निर्णय करना योग्य है और जब यह निश्चय होजाय कि इतना रुपया मुन्शीजीकी सहायता में आया और इतना खर्च होकर इतना बचा तब बचे हुये धनको उसी नियमानुसार (जो मुन्शीजी आदिने मेरठ समाजमें स्वीकार कियाथा) किसी महाजनकी कोठीमें सूदपर देदिया जाय और जब जब अन्यमतवालोंसे वैदिक मतावलम्बियोंका झगड़ापड़ेतो इस रुपयेसे सहायता लीजायाकरे॥ (सम्पादक देशहितैषी)

पूर्वोक्त लेखका यथार्थ उत्तर कई मास पीछे मुन्शीजीके शिष्य लाला जगन्नाथदासने उर्दू अक्षरोंमें पुस्तकाकार सुदर्शन यन्त्रालय मुरादाबादमें छपाकर प्रकाशित किया जिसमें प्रथमही यह लिखा है,

मुन्शी इन्द्रमणिका इल्तिमास स्वामी दयानन्द सरस्वतीका सन्यास मवल्लफ पंडित जगन्नाथदास मतबअ सुदर्शन मुरादाबादमें मुन्शी नारायणदासके अहतमाम से मतबूअ हुआ

अब उर्दूसे नागरीमें उल्था करके हम यहां लिखते हैं।

परमात्मा जयति ।

सत्यमेव जयतेनानृतं सत्येनपन्था विततो देवयानः ॥

आर्य्यभाइयोंको विदित होकि स्वामी दयानन्द सरस्वतीने एक लेख खेद कारक सर्वथा मिथ्या मुन्शी इन्द्रमणिकेविषयमें "देश हितैषी" मासिकपत्र मास माघ सम्वत् १९३९ मुताबिक मासफरवरी सन् १८८३ ई० में अन्य मनुष्यके नामसे मुद्रित कराया है यह कार्य्य महानिंदनीय है आर्य्य पुरुषोंके करने योग्य नहीं है क्योंकि जैसा आत्माहोताहै, उसके प्रतिकूल चलना महापापहै जैसे कहाहै,

ो फिरभी न जाने किस २ सज्जन पुरुषके पुरुषार्थसे श्रीमान् गवरनर जनरल
हेब बहादुरसे प्रार्थना करके १०७)।८० का दण्डभी माफ कराया गया।
' अबभी मुन्शीजी अपनी बातको सच्चा करना चाहैं तो मुसल्मानोंके साथ
मामलेमें जहांसे जितना २ धन जिस २ ने भेजा हो उन सबका धन ग्राम
ठेना आदि लिखें और जितना २ जिसकार्य्यमें व्यय हुआहै वह प्रसिद्ध सब
चारोंमें छपवादें और जितना धन उस मामलेके विषयमें व्ययसे शेष रहाहो
को मेरठ सभामें भेज देवें क्योंकि जो मेरठ सभाका यह विचार निश्चय
या कि यदि मुन्शीजीके मामलेसे चन्देका धन बचेतो उसका क्या किया
र इसपर सबकी यही सम्मति हुईथी कि उस धनको ॥) आने ब्याजमें किसी
व्यके पास रक्खा जाय और जब अन्य मतावलम्बियोंके साथ वैदिक धा
का विवाद राजन्याय घरमें चले तब उसीमेंसे इसका व्यय किया जाय अन्यत्र
। क्योंकि यह धन इसी बातके लिये इकट्ठा किया जाता है और जैसा
शीजीपर कष्ट पड़ाहै सम्भवहैकि अन्यपरभी कभी न कभी आन पड़े इस
पे इस धनकी स्थिरता और उन्नति सदा करते जाना चाहिये । परन्तु पाठक
ों। इस महोपकारक कार्य्यको मुन्शीजीके लोभने बढने न दिया। अब बुद्धि
न लोग विचार लेवैंकि इसमें स्वामीजीका और लाला रामशरणदासजीका
यथा व्यवहार है वा मुन्शी इन्द्रमणिजीका अधिक लिखना बुद्धिमानोंके सामने
वश्यक नहीं क्योंकि भाग्यजन थोड़ेही लेखसे बहुत समझ लेते हैं, अलमिति
स्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ॥ निधि रामाङ्क चन्द्रेऽब्दे पौष मासे सिते दले भृगुवासरे
ारेहि पत्रं मेतल्लेखविषयम् ॥१॥ सम्वत् १९३० पौष शुक्ला० ९ बुधवासरे।

(वही आपका परम मित्र उचित वक्ता)

— ॥ देशहितैषी ॥ हमने अपने नियमानुसार दोनों महाशयों के पत्र
यावत् प्रकाश कर दिये अब हम इतना और कह सकतेहैं कि जिस प्रकारसे
मारे पत्र प्रेरक "उचित वक्ता" ने जो मुन्शीजीके प्रति लिखा है कि "उन
की बातको सच्चा करनेके लिये इस मामलेमें जहां २ से जितना २ रुपया जिस २
भेजा हो उनका नाम धन ठिकानादि सहित लिखें और जितना जिस २
र्य्यमें खर्च हुआ हो प्रसिद्ध सब समाचारोंमें छपवा दें इत्यादि" वास्तवमें
ह बहुत उत्तम बातहै और ऐसा करनेमें मुन्शीजीको लेशमात्र भी कष्ट
हीं लगताथा और ऐसे मुन्शीजी इसके विरुद्ध अपना अमूल्य समय वृथा खोते
उनु बादसे समाचारोंके कालम काले, भले ही किया करो कभी इस कलङ्कसे

नहीं बन सके और यह हम सत्य कहते हैं कि जो सच्चा होता है उसको टालम टोल करनेसे क्या प्रयोजन। यदि मुन्शी इन्द्रमणिजी सच्चे हैं तो अपना हिसाव समाचार पत्रोंद्वारा प्रकाशित कर अपनी सत्यता का परिचय दिखावें अन्यथा व्यवहार करनेसे मुन्शीजीके लिये अच्छा फल नहीं निकलते देखता, दूसरे अब हम श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज और लाला रामशरणदासजीसे भी सविनय प्रार्थना करते हैं कि यदि हमारे पत्र प्रेरक उचित वक्ताका यह कथन सत्यहै तो आप महाशयोंकोभी उचित है कि जितना ७) रुपया मुन्शी इन्द्रमणिजीके मुकदमेके विषयकी आपलोगोंके पास आयाहै उसको किसी समाचार पत्रद्वारा प्रकाशित कर इस विषयको शीघ्र निर्णय करना योग्य है और जब यह निश्चय होजाय कि इतना रुपया मुन्शीजीकी सहायता में आया और इतना खर्च होकर इतना बचा उस बचे हुये धनको उसी नियमानुसार (जो मुन्शीजी आदिने मेरठ समाजमें स्वीकार कियाथा) किसी महाजनकी कोठीमें ॥) के सूदपर देदिया जाय और जब जब अन्यमतवालोंसे वैदिक मतावलम्बियोंका झगड़ापड़ेतो इस रुपयेसे सहायता लीजायाकरे॥ (सम्पादक देशहितैषी)

पूर्वोक्त लेखका यथार्थ उत्तर कई मास पीछे मुन्शीजीके शिष्य लाला जगन्नाथदासने उर्दू अक्षरोंमें पुस्तकाकार सुदर्शन यन्त्रालय मुरादाबादमें छपाकर प्रकाशित किया, जिसमें प्रथमही यह लिखा है,

मुन्शी इन्द्रमणिका इश्तिहार स्वामी दयानन्द सरस्वतीका सन्यास-मवलफ पंडित जगन्नाथदास मतबअ सुदर्शन मुरादाबादमें मुन्शी नारायणदासके अहतमाम से मतबूअ हुआ।

अब उर्दूसे नागरीमें उल्था करके हम यहां लिखते हैं।

परमात्मा जयति।

सत्यमेव जयतेनानृतं सत्येनपन्था विततो देवयानः॥

आर्य्यभाइयोंको विदित होकि स्वामी दयानन्द सरस्वतीने एक लख खेद कारक सर्वथा मिथ्या मुन्शी इन्द्रमणिकेविषयमें "देश हितैषी" मासिकपत्र मास माघ सम्वत् १९३९ मुताबिक मासफरवरी सन् १८८३ ई०में अन्य मनुष्यके नामसे मुद्रित कराया है यह कार्य्य महानिंदनीक है आर्य्य पुरुषोंके करने योग्य नहींहै क्योंकि जैसा आत्माहोताहै, उसके प्रतिकूल चलना महापापहै जैसे कहाहै,

अन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सुभाषते ।
किनवेन कृतपाप चौरिणात्मा पहारिणा ॥ १ ॥

अबमें प्रथम उसलेखको लिखता हूं फिर उत्तर लिखताहूं जिस्से आर्य्यगण सत्यासत्यका भलीप्रकार निर्णय करसकें *

जिनसाहिबोंने मुन्शीजीको जरचन्दादिया उन्होंने उनको अपने हस्ताक्षरी रसीददेदई इस लिये स्वामीजीको उनसे हिसाब मागना उचित नहीं है वस मुन्शीजीको क्या जरूरत है कि आमदनी व खर्चका हिसाब मुद्रितकरावें हां स्वामी दयानन्द सरस्वतीको प्रथम दिनसेही उचितथा कि अपनी निर्दोषता सिद्ध करनेके लिये सारी आमदनी व खर्चचन्दका हिसाब मुन्शीजीको देते कि स्वामीजीने जा बजा लोगोंको पत्र लिखेकि मुन्शी इन्द्रमणिके मुकद्दमेके लिये चन्द एकत्र करके हमारे पास भेजो, इसी प्रकार लाला रामशरणदासको मुकद्दमेके कचहरीमें दायर रहते रहते उचितथाकि चन्द केद्रव्यकी सख्यासे मुन्शीजीको सूचित करतेकि उन्होंने मुन्शी इन्द्रमणिजीके नामसे स्थान २ से चन्दालकर अपने घर अमानतके तौरपर जमा किया आश्चर्य है कि इन दोनो महाशयोंने अबतकभी कुछ प्रकट नहीं किया कि कितना रुपया उनके पास आया और कितना खर्च हुआ और कितना शेष है न्यायवान विचारें कि क्या इनको यही उचितथाकि चन्देका रुपया नतो मुकद्दमेमें लगावें और न मुन्शी इन्द्रमणिको देवें अबढाई वर्ष पीछे जब उनको मुन्शी इन्द्रमणिने दबायातो झूठे बहाने करनेलगे मुन्शी इन्द्रमणिका वाक्य झूठ नहीं किंतु अक्षर २ सत्य है कि स्वामीजी और उक्त लालाजीने बहुधा शहर नगरोंके योग्य आर्य्य पुरुषोंको पत्र पठाये कि मुन्शी इन्द्रमणि के मुकद्दमे के लिये चन्द करके हमारे पास रुपया रवाना करो हमअर्यूकान्त् उनको दे देंगे (परंतु प्रथमसे ही उनको एक कौडी देनेका इरादा नहीं था) जब उक्त मुकद्दमेका अपील जजी मुरादाबादमें दायरथा मुन्शी इन्द्रमणिको छःसौ रुपये बैरस्टर हिलसाहिब के पास भेजने की आवश्यकता हुई तो मुन्शीइन्द्रमणिने खुद मेरठ जाकर लाला रामशरणदाससे कहा कि छःसौ रुपया बैरस्टर साहिबके पास भेजनाहै चारसौतो मेरे पासहै दोसौ चन्दके रुपयेमेंसे जो आपके पास बतौर अमानत जमा हैं इनायतकीजे, लाला रामशरणदासने जबाब दिया

* लाला जगन्नाथदासने अपनी पुस्तक इस तरहसे रची है कि प्रथम स्वामीजीका लेख फिर अपना परंतु हम यहां केवल लाला जगन्नाथदासजीकाही लेख प्रकट करते हैं क्योंकि स्वामी दयानन्द सरस्वतीका लेख ऊपर मुद्रित किया जाचुका है ।

कि यहांसे तो अभी तुमको कुछ न मिलेगा, मुरादाबादहीसे तदबीर करके भेजदो और इस सम्पूर्ण कार्य्यके कार्य्याध्यक्ष स्वामी दयानन्दजी हैं इस लिये यह अपराध उनकाही है, किंतु लाला रामशरणदास का विशेष अपराध नहीं है उन्होंने तो व्यर्थ स्वामीजीकी बातोंमें आकर बदनामीका टोकरा शिर पर उठाया जो गुरु कि अधर्म्मका उपदेश करे उसको शीघ्र त्याग देना चाहिये। देखो !

गुरोरप्यव लिप्तस्य कार्याकार्य मजानतः
उत्पथ प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥१॥

फिर जो तुम कहतेहो कि बिल्कुल कसूर मुन्शीजीका है सो महामिथ्या है, क्योंकि जब लोगोंने मुन्शीजीके मुकदमेंके लिये स्वामीजी और लाला साहिबके पास रुपया भेजा और स्वामीजीने उस रुपयेको खुद गड़प करना चाहातो ऐसी हालतमें स्वामीजीसे मतालबा करना मुन्शीजीका अपराध क्योंकर हो सकता है किस वास्तेकि स्वामीजी और लालासाहिब मुन्शीजीके पास रुपया पहुचानेके मार्गमें वह रुपया स्वामीजीके व्ययके लिये एकत्रित नहीं हुआया यहांसे आर्य्य भाई मूठ सचका स्वतः निर्णय कर सकते हैं।

स्वामीजी अपने लेखसे यह सिद्ध करते हैं कि मुन्शीजीने स्वामीजीसे खुद चन्दा एकत्रित करनेकी प्रार्थना करी परन्तु यह सर्वथा झूठ है, यथार्थ तो यहहै कि स्वामीजीने मुन्शीजीको आपही तारदेकर बुलाया परन्तु जब मुन्शीजी तार पहुचने परभी मेरठ नहीं गये तो स्वामीजीने चिठ्ठी भेजकर मुन्शीजीको बुलाया तब वे प्यारे लाल तहसीलदार साबिक तहसील सम्भलको साथ लेकर स्वामीजी के पास गये अगर मान लिया जावे उन्होंने यह ही कहा कि मुकदमा मजकूर कुल वेदमतानुयाइयों के ऊपर है तो उसमें कोई बुराईकी बात नहीं है कि यथार्थमें झगड़ा सम्पूर्ण वैदिक मतवालोंपरथा इस हेतु उक्त मामलेमें वह लोग भी भागी हुये जो कि स्वामीजीके प्रतिकूलथे जैसे लाला मथुरादास जनरल अकौंटैंट हेडकिलार्क और लाला निहालचन्द ठेकेदारजेल और सेठ रामरतन इस प्रकारके और बहुधा मनुष्य हैं, कि जिनके नामसे स्वामीजी भली प्रकार भेदी हैं, निदान मुन्शी इन्द्रमणिने स्वामीजी या लाला रामशरणदाससे चन्द करनेके लिये किसी समय भी प्रार्थना नहीं की, मुरादाबादमें चन्दाके लिये कमीशन होनेवालीथी कि समाचार सुनकर धर्म्मके जोशमें आकर स्वामीजी आदिक भी शामिल हो गये इस बातकी साक्षी के वास्ते लाला रामशरणदासका एकखत रजिस्ट्री शुदा जो कि लाला श्यामसुन्दर रईस मुरादाबाद के नाम आया

था इस प्रकार है।

नवाजिश फर्माय चन्दः लाला श्यामसुन्दर साहिब मादइनायतकुम्

बाद नमस्तेके गुजारिश यह है कि जुबानी मास्टर सादीरामके मालूम हुआ कि जनावका इरादा वास्ते चन्द' करने खर्च मुकद्दमे मालूमेके बादका है याने जो कुछ मुकदमें में खर्च होवे उसका चन्दः बादको वसूलकिया जावे, स्वामीजी महाराजसे जो इसका जिक्र हुआ तो यह करार पाई के चन्द' एकत्रित करना मुकदमेंसे पहिले चाहिये, पीछे दिक्कत होगी और बहुतकम वसूल होगा इस वास्ते चन्द भी आपको तकलीफ देता है कि मेरीराय नाक़िसमें भी स्वामीजीका कहना यथार्थ है तदानुसार करना ही उचित है, और यह भी जानना चाहता हू कि उक्त मुकदमें के विषय कमेटीकी क्या सम्मति निश्चित हुई, यदि अभीतक कमेटी नहीं हुई होतो इसका शीघ्र प्रबन्ध होना चाहिये और उसकी सम्मति के समाचार मुझदासको भी शीघ्र पठाईये, और मुन्शी इन्द्रमणि साहिबको इस्से पहिले निज निवेदन पत्र द्वारा लिखा था कि उक्त महाशय राजा कश्मीर और राजा बलरामपुर व राजा पटियालाका मुकदमें के हालसे भेदी करें और जैसी कोशिश के नवाब रामपुरनेकी है वैसी ही इन महाशयोंसे करार जावे ज्याद' नमस्ते। रकीमें नियाज रामशरणदास अज् मेरठ. मवर्रख' १ अगस्त् सन् १८८० ई०

इस पत्रके लेखसे प्रकट है कि मुन्शी इन्द्रमणि के मित्रोंका विचार उक्त मुकदमें के पूर्ण होनेपर चन्द करनेका था परंतु स्वामी दयानन्द सरस्वती और लाला रामशरणदासने उनको मुकद्दमें के फैसला होनेसे पहिले ही चन्दः करनेपर उपस्थित किया, अब एक कथा और भी सुनिये कि स्वामीजीने तो यों द्वासा झूठ बोला कि मुन्शी इन्द्रमणि चन्द' के लिये हमसे प्रार्थी हुये किंतु उनके चेले लाला जवाहरसिंह सेक्रेटरी आर्य्यसमाज लाहौरने इस कहावत के अनुसार "बड़ेमियाँसो बड़ेमियाँ छोटेमियाँ सुब्हान अल्लाह" झूठ बोलनमें आकाश पातालको मिला दिया. वृतान्त इस प्रकार है कि तारीख २१ जनवरी सन् १८८१ ई० को आर्य्यसमाज लाहौर के साम्हने मुन्शी इन्द्रमणि की निंदा और बुराईमें अपने आपको कलङ्कित करके कहने लगे कि हमारे पास लाला रामशरणदासकी चिट्ठी मेरठसे आई है, उसमें लिखा है कि जब तारीख मुकदमें में बीसदिन रहगये तब इन्द्रमणि खुद मेरठ आया और हमारे मकानपर आकर लम्बा पड़ गया और कहने लगा कि अब हमको तुम ही बचाने वाले हो उस समय हमने उससे कहा कुछ डर नहीं है, और उसी समय हमने एक मकान

कर दिया और एक आदमी जिसका नाम शादीलाल है उसके साथ किया कि मुकदमे के अंततक वह इन्द्रमणि के संग मुरादाबादमें रहा और अब इन्द्रमणिने भारत मित्र कलकत्तेमें यह लिखवाया कि जिन महाशयोंको मेरे झगडेकी सहायता के लिये द्रव्य देना स्वीकार हो वह सीधा मेरे पास भेजदेवे दूसरी जगहका भेजा रुपया मुझको नहीं मिलता उस समय बहुधा मनुष्योंने सीधा मुरादाबाद रुपया भेजा, जब हमने इन्द्रमणिसे कहा कि अब तक तुम्हारे पास कितना रुपया आया और कितना खर्च हुआ हम आमदनी और खर्चका हिसाब हमको लिखकर दो तो इन्द्रमणिने हिसाब देनेसे इनकार किया तब हम भी रुपया देनेसे चुपकरगये क्योंकि हमने रुपया उसके झगड़ा मिटानेकी सहायता के लिये इकट्ठा किया था कुछ उसके घरके खर्चके लिये नहीं किया था और इन्द्रमणिने जो विज्ञापनमें लिखा है कि मेरे तो केवल छ'सौ रुपया हाथ आया शेष स्वामीजी और लाला रामशरणदासके पास रहा यह भी झूठ है, हमारे तो नवसौ छप्पन ९५६) रुपये और कई आने खर्च हुये और चारसौ कई रुपये हमारे पास बतौर अमानत शेष हैं, जिस कामके लिये लोग कहेंगे उसमें लगावेंगे यहाँ तक चिट्ठीका लेख है जो कि जवाहिरसिंह के कहने मूजिब कोई चिट्ठी रामशरणदासने उनके पास भेजी हो हमको बिल्कुल विश्वास नहीं है किंतु यह लाला जवाहिरसिंह कीही मनघड़त तुहमत उक्त लाला साहिबपर मालूम होती है, सो हम जानते हैं कि आर्य्यसमाजमें नाम लिखानेका स्यात् यही फल हो, और स्यात् यह लेख लाला रामशरणदासने किया है तो बड़े आश्चर्य और खेदकी बात है, स्वामीजीका लेख लालाजीको झूठा करता है और उक्त लालाजीका लेख स्वामीजीके लेखको मिथ्या सिद्ध करता है क्योंकि स्वामीजीने देशहितैषी पत्रमें मुद्रित कराया है कि मुन्शी इन्द्रमणि मेरठमें आये और कहा कि यह मुकदमा सब वेदमतानुयाइयोंपर है और लाला रामशरणदास जवाहिरसिंहको लिखते हैं कि तारीख मुकदमेसे २० दिन पहिले इन्द्रमणि खुद मेरठ आकर हमारे मकानपर लम्बा पड़ गया और कहने लगा कि अब हमको तुम ही बचाने वाले हो इत्यादि० ।

देखो आर्य्य भाईयों गुरु सच्चे हैं या चेले? परमेश्वरका धन्यवाद है कि मुन्शी इन्द्रमणिके सत्यके प्रभावसे गुरु चेलेको झूठा करता है और चेला गुरूको इस झूठका क्या ठिकाना है कि तारीख मुकदमेसे २० दिन पहिले मेरठ आया हे आर्य्य भ्रातृगण इस विषयमें अदालत गवाह है कि तारीख २२ जौलाई सन् १८८० ई० को मुन्शी इन्द्रमणिपर मजिस्ट्रेट मुरादाबादने मुकद्दमा कायम

किया और दूसरे दिन अन्वरावकी सावीरुयी तीसरे दिन पांचसौ रुपये जु रमाना करके मुकद्दमेका अंत करदिया वस २० दिनका कब अवकाश मिला कि मेरठ जानेकी नौबत पहुची, अगर लाला रामशरणदासकी यह मुराद है कि जर्जीमें अपील के पेश होनेसें २० दिन पहिले मुन्शी इन्द्रमणि मेरठ आये तो यह भी जूठ है, क्यौंकि उस समय मुन्शी इन्द्रमणिको क्या भय था कि लाला रामशरणदासकी ईश्वरतापर भरोसा करके उनके मकानपर लम्बे पड़ते और कहते कि अब हमको तुम ही बचाने वाले हो क्यौंकि मुल्लाँकी दौड़ मस्जिद तक अब फल अधिकतर यहथा कि जर्जी मुरादाबादसे अपील नामंजूर होकर मजिस्ट्रेटका हुक्म बहाल रहता और पांचसौ रुपये दंड के ये उनमेंसे चारसौ नहीं छूटते, भय था तो पहिली कचहरीमें ही थाकि दो वर्ष तककी कैद भी सम्भवथी, मुन्शी इन्द्रमणि तो एक परमात्माका दास है, ब्रह्मा के साम्हने भी लम्बा नहीं पड़ेगा और हरगिज़ नहीं कहेगा कि हमको तुम ही बचाने वाले हो क्यौं कि लम्बा पड़ना केवल परमात्माके सन्मुख उचित है कि साष्टाङ्ग दंडवत परमेश्वरके व्यतिरिक्त और किसीको नहीं करी जाती है, और वही सबको कष्टों से बचानेवाला है, हमने फर्ज कियाकि मुन्शी इन्द्रमणि उस झगड़े के भयसे कोई अनुचित उपाय भी करे परंतु लाला रामशरणदासका आश्चर्य पण कहाँ गया कि अपनेको दंडवत करानेको प्रसन्न हुये, और अपने मनमें विचार बैठे कि हमही मुन्शी इन्द्रमणिको आफतसे बचाने वाले हैं, इस राक्षसी विचारका क्या ठीक है, इसी विरतेपर लालासाहिब अपने समाजको राजधानी बनाया चाहते हैं और एक लाख रुपया सब समाजोंसे जमाकरके उपदेशक मंडली खड़ी करनेका इरादा करते हैं स्यात् के पैगम्बराजाकी तरह अपनी ईश्वरता प्रगट करावेंगे और यही उपदेश सुनवावेंगे कि सम्पूर्ण समाजी जन लाला रामशरणदास के मकानको किबला व काबा (ईश्वरका मकान बैकुंठ) खयाल करें और सब ओरसे उधरको ही झुकें, फिर यह जो लाला साहिब लिखते हैं कि उसी समय हमने एक वकील कर लिया सरासर झूठ है और उनके झूठ होनेपर अदालत मुरादाबाद और हाईकोर्ट गवाह हैं कि मजिस्ट्रेट के यहाँ मुन्शी इन्द्रमणिके वकील बाबू नरेन्द्रचन्द्र और बाबू बैजनाथ थे और जर्जीमें मिस्टर हिल साहिब बैरस्टिर और बाबू रत्नचन्द्र और बाबू नरेन्द्रचन्द्र और लाला धर्मोदास वकील हाईकोर्ट और बाबू बैजनाथ वकील जर्जीने तनमनसे पैरवी कीथी, अब लाला रामशरणदास और लाला जवाहिरसिंह सपथ पूर्वक कहें कि इनमें से उनका भेजा हुआ वकील कौनसा है, और किसने उनकी गांठसे फीसपाई है.

फिर लाला साहिबने जो लिखा है कि एक आदमी जिसका नाम शादीलाल है उसके साथ भेजा, इसका उत्तर यह है कि मुन्शी इन्द्रमणिके अभाग्य वस ला ला शादीरामकी भी मान हानि हुई, उक्त वचनसे सिद्ध होता है कि चिठ्ठीका विषय सर्वथा जवाहिरसिंहकी बनावट है लाला रामशरणदास मास्टर शादीरा मके विषय भूलकर भी ऐसे शब्द न लिखें क्योंकि मास्टर शादीराम लाला रा मशरणदासके सद्वृ हैं, फिर लाला साहिबने जो लिखा है कि जब इन्द्रमणिने भारतमित्र कलकत्तेमें यह लिखवाया * उसका उत्तर यह है कि जिलेमें मुकद्दमाँ दायरथा और मिस्टर हिल साहिबके पास छः सौ रुपये भेजनेकी आव श्यकताथी उस समय मुन्शी इन्द्रमणि मेरठ गये और लाला रामशरणदाससे कहा कि चन्द° के रुपये मेंसे दो सौ रुपये इनायत कीजिये तव लाला साहिबने जवाव दिया कि रुपया यहाँसे न मिलेगा, इस बातसे मुन्शी इन्द्रमणिने समझ लिया कि लाला साहिब के दिलमें कुछ हेरफेर है, तब तो उन्होंने शीघ्रतासें भारत मित्रादि अखबारोंमें मुद्रित करा दिया कि जिन साहियोंको मेरे झगड़े की सहायताके लिये चन्दः देना स्वीकार हो वह मेरेही पास सीधा मुरादाबाद भेज दें दूसरोंकी मारफ़त भेजा हुआ चन्द° मुझको नहीं मिलता, भारत मित्रा दिके मुद्रित होते ही स्वामीजी के शुद्ध अन्तष्करणकी गन्ध सारे आर्य्यावर्तमें फैल गई, क्योंकि लाला रामशरणदासके अधिदेव वा भैरिक स्वामीजी थे, फिर लाला साहिब जो लिखते हैं कि उस समय बहुधा मनुष्योंने सीधे मुरादाबाद रुपया भेजा इसका उत्तर यह है कि भारत मित्रादिमें प्रकाशित हो जानेपर स्वा मीजी के मनका भेद, लोगोंको विदित हुआ तो अवश्य उनके पास चन्दः भे जनेसे बहुधा मनुष्य रुक गये और भेजने वालोंने सीधा मुन्शीजी के पास भे जना प्रारम्भ किया, इससे यह सिद्ध होता है कि चन्द॰ देने वालोंको केवल मुन्शी इन्द्रमणिकी ही सहायता करनी मियेथी, और स्वामीजीको उनके ही नामसे चन्द° दिया था परन्तु जब लोगोंको अखबारोंद्वारा स्वामीजीका हाल खु ला तो कुल लोगोंने स्वामीजीके पास चन्द° भेजनेसे हाथ खैंच लिया, अब स्वा मीजी कहते हैं कि चन्द हमारी बदौलत था सर्वथा झूठ है, फिर लालासाहिब जो लिखते हैं कि इन्द्रमणिने हिसाब देनेसे इनकार किया उसका उत्तर यह है कि जब मुन्शीजीने स्वामीजीकी नीयतमें अन्तर देखा तो शीघ्र भारत मित्रादि पत्रोंद्वारा प्रकाशित कराया और उनसे कहा कि तुम हमसे हिसाब लेनेके म

* । ऐस प्रथम आ चुका है

किया और दूसरे दिन शम्बरावकी गवाहीलयी तीसरे दिन पांचसौ रुपये जु रमाना करके मुकद्दमेका अंत करदिया पस २० दिनका कब अवकाश मिला कि मेरठ जानेकी नौबत पहुंची, अगर लाला रामशरणदासकी यह मुराद है कि जजीमें अपील के पेश होनेसे २० दिन पहिले मुन्शी इन्द्रमणि मेरठ आये तो यह भी झूठ है, क्योंकि उस समय मुन्शी इन्द्रमणिको क्या भय था कि लाला रामशरणदास की ईश्वरतापर भरोसा करके उनके मकानपर लम्बे पड़ते और कहते कि अब हमको तुम ही बचाने वाले हो क्योंकि मुल्लोंकी छोड़ मस्जिद तक अत फल अधिकतर यहथा कि जज्जी मुरादाबादसे अपील नामंजूर होकर मजिस्ट्रेटका हुक्म बहाल रहता और पांचसौ रुपये दंड के थे उनमेंसे चारसौ नहीं छूटते, भय था तो पहिली कचहरीमें ही याकि दो वर्ष तककी कैद भी सम्भवथी, मुन्शी इन्द्रमणि तो एक परमात्माका दास है, ब्रह्मा के साम्हने भी लम्बा नहीं पड़ेगा और हरगिज़ नहीं कहेगा कि हमको तुम ही बचाने वाले हो क्योंकि लम्बा पड़ना केवल परमात्माके सन्मुख उचित है कि साष्टाङ्ग दंडवत परमेश्वरके व्यतिरिक्त और किसीको नहीं करी जाती है, और वही सबको कष्टों से बचानेवाला है, हमने फर्ज़ कियाकि मुन्शी इन्द्रमणि उस झगड़े के भयसे कोई अनुचित उपाय भी करे परंतु लाला रामशरणदासका आश्चर्य पण कहाँ गया कि अपनेको दंडवत करानेको प्रसन्न हुये, और अपने मनमें विचार बैठे कि हमही मुन्शी इन्द्रमणिको आफतसे बचाने वाले हैं, इस राक्षसी विचारका क्या ठीक है, इसी विरतेपर लालासाहिब अपने समाजको राजधानी बनाया चाहते हैं और एक लाख रुपया सब समाजोंसे जमाकरके उपदेशक मंडली खड़ी करनेका इरादा करते हैं स्यात् वे मैनराजाकी तरह अपनी ईश्वरता प्रगट करावेंगे और यही उपदेश सुनवावेंगे कि सम्पूर्ण समाजी जन लाला रामशरणदास के मकानको क़िबला व काबा (ईश्वरका मकान बैकुंठ) ठहराएं करें और सब ओरसे उधरको ही झुकें, फिर यह जो लाला साहिब लिखते हैं कि उसी समय हमने एक वकील कर लिया सरासर झूठ है और उनके झूठ होनेपर अदालत मुरादाबाद और हाईकोर्ट गवाह हैं कि मजिस्ट्रेट के यहाँ मुन्शी इन्द्रमणिके वकील बाबू नगेन्द्रचन्द्र और बाबू बैजनाथ थे और जज्जीमें मिस्टर हिल साहिब बैरिस्टिर और बाबू रत्नचन्द्र और बाबू नगेन्द्रचन्द्र और लाला माधोदास वकील हाईकोर्ट और बाबू बैजनाथ वकील जज्जीने तनमनसे पैरवी कीथी, अब लाला रामशरणदास और लाला जवाहिरसिंह शपथ पूर्वक कहें कि इनमें से उनका भेजा हुआ वकील कौनसा है, और किसने पत्रकी गांठसे फीसमपाई है,

फिर लाला साहिबने जो लिखा है कि एक आदमी जिसका नाम शादीलाल है उनके साथ भेजा, इसका उत्तर यह है कि मुन्शी इन्द्रमणिके अभाग्य वस लाला शादीरामकी भी मान हानि हुई, उक्त वचनसे सिद्ध होता है कि चिट्ठीका विषय सर्वथा जवाहिरसिंहकी बनावट है लाला रामशरणदास मास्टर शादीरामके विषय भूलकर भी ऐसे शब्द न लिखें क्योंकि मास्टर शादीराम लाला रामशरणदासके तद्वत् हैं, फिर लाला साहिबने जो लिखा है कि जब इन्द्रमणिने भारतमित्र कलकत्तेमें यह लिखवाया * उसका उत्तर यह है कि ज़िलेमें मुकद्मों दायरया और मिस्टर हिल साहिबके पास छ सौ रुपये भेजनेकी आवश्यकताथी उस समय मुन्शी इन्द्रमणि मेरठ गये और लाला रामशरणदाससे कहा कि चन्दः के रुपये मेंसे दो सौ रुपये इनायत कीजिये तब लाला साहिबने जवाब दिया कि रुपया यहाँसे न मिलैगा, इस बातसे मुन्शी इन्द्रमणिने समझ लिया कि लाला साहिब के दिलमें कुछ हेरफेर है, तब तो उन्होंने शीघ्रतासे भारत मित्रादि अखवारोंमें मुद्रित करा दिया कि जिन साहिबोंको मेरे झगड़े की सहायताके लिये चन्दः देना स्वीकार हो वह मेरेही पास सीधा मुरादाबाद भेज दें दूसरोंकी मारफत भेजा हुआ चन्दः मुझको नहीं मिलता, भारत मित्रादिके मुद्रित होते ही स्वामीजी के शुद्ध अन्तष्करणकी गन्ध सारे आर्य्यावर्तमें फैल गई, क्योंकि लाला रामशरणदासके अधिदेव वा प्रेरिक स्वामीजी थे, फिर लाला साहिब जो लिखते हैं कि उस समय बहुधा मनुष्योंने सीधे मुरादाबाद रुपया भेजा इसका उत्तर यह है कि भारत मित्रादिमें प्रकाशित हो जानेपर स्वामीजी के मनका भेद, लोगोंको विदित हुआ तो अवश्य उनके पास चन्दः भेजनेसे बहुधा मनुष्य रुक गये और भेजने वालोंने सीधा मुन्शीजी के पास भेजना प्रारम्भ किया, इससे यह सिद्ध होता है कि चन्द देने वालोंको केवल मुन्शी इन्द्रमणिकी ही सहायता करनी मियेथी, और स्वामीजीको उनके ही नामसे चन्द दिया था परन्तु जब लोगोंको अखबारोंद्वारा स्वामीजीका हाल खुला तो कुल लोगोंने स्वामीजीके पास चन्दः भेजनेसे हाथ खेंच लिया, अब स्वामीजी कहते हैं कि चन्दः हमारी वसौल्त था सर्वथा झूठ है, फिर लालासाहिब जो लिखते हैं कि इन्द्रमणिने हिसाब देनेसे इनकार किया उसका उत्तर यह है कि जब मुन्शीजीने स्वामीजीकी नीयतमें अन्तर देखा तो शीघ्र भारतमित्रादि पत्रोंद्वारा प्रकाशित कराया और उनसे कहा कि तुम हमसे हिसाब लेनेके य

* इसका लेख प्रथम आ चुका है

जाज नहीं हो तुमने हमारे नामसे लाहौर व अमृतसर व फीरोजपुर व जेहलम् व बटाला व मुल्तान वगैरह से चन्दा जमा किया और अबतक एक कौड़ी मुकद्दमें में न लगी, इस वास्ते तुम हमको हिसाब दो कि तुमने अपने तईं मुन्शी इन्द्रमणिका एजट प्रकट किया है फिर लाला साहिबने जो लिखा है कि तब हम भी रुपये देनेसे चुप हो रहे उसका उत्तर यह है कि तुमने दिया ही क्या? जो देने से चुप हो रहे, जबकि प्रथम बारही तुमने दोसौ रुपये देनेमें टालमटोल कर लाई फिर किसमुंहसे कहते हो कि हम भी रुपये देनेसे चुप हो रहे, फिर लाला साहिब जो कहते हैं कि हमने रुपया उसके मुकद्दमें के लिये इकट्ठा किया था उसका जवाब यह है कि धन्यवाद है परमात्माको कि स्वामीजीके चेलेहीने उनकी इस धर्मोपर गवाहीदी क्योंकि स्वामीजीने मुन्शी इन्द्रमणिको आगरह मे निज पत्र तारीख ° नवम्बर सन् १८८० ई० द्वारा लिखा है कि यह चन्दा का रुपया वैदिक फंड कहलावेगा और आर्य्योंके लिये इस फंड में रुपया जमा होता रहेगा। वह चिट्ठी स्वामीजीकी हमारे पास मौजूद है, जिसका दिल चाहै देख ले स्वामीजीकी लिखावटसे प्रगट है कि इस चन्दे में मुन्शी इन्द्रमणिका प्रधानता नहीं है किन्तु यह द्रव्य सर्वत्र आर्य्यों के लिये है, इतनेपर भी अगर किसीको स्वामीजीकी ईमानदारी और सचाईमें शंका रहै तो आश्चर्यकी बात है। हां यह सत्य है कि आरम्भमें स्वामीजी और लाला रामशरणदासकी नीयत यहीथी कि मुन्शी इन्द्रमणिके मुकद्दमेंके लिये चन्दा करके रुपया एकत्र करें परन्तु जब इधर उधरसे अधिक द्रव्य आगया तो स्वामीजीके मनमें दम्भ उत्पन्न हुआ बस लालासाहिबको कि असलमें स्वामीजीके लालाही थे अमानतमें खयानत करनेपर खड़ा करके उचित अनुचित मनमानी कहने लगे, फिर लालासाहिब जो कहते हैं कि हमारे नौ सौ छप्पन रुपये कईबार खर्च हुये और बाकी कई रुपय हमारे पास बतौर अमानत के शेष हैं, उसका उत्तर यह है कि मुन्शी इन्द्रमणि लालासाहिब को मिथ्या वादा नहीं करते चन्दा का रुपया उनके पास था उन्होंने जिस काममें उचित समझा वहां लगाया मुन्शी इन्द्रमणिको इसमें कुछ उजूर नहीं है, मुन्शी इन्द्रमणिको तो यही कहना है कि लाहौर व अमृतसर व जेहलम् व बटाला व फीरोजपुर व हैदराबाद, वगैरहसे स्वामीजी और लालासाहिबके पास कई हजार रुपया चन्दा का जमा हुआ उस में से उन्हों ने हमको केवल ११० सौ रुपये दिये, अढ़ाई वर्ष पीछे अब कहते हैं कि हमारे पास बारसौ कई रुपये शेष रहे हैं, फिर लालासाहिब जो कहते हैं कि जिसका मर्ग लोग मांगेंगे उसमें लगावेंगे उसका जवाब इस तरहपर है कि या ईमानदारी है

अढ़ाई वर्ष तक तो कुछ जाहर न किया अब मूर्खोंकी रायके मारी हुयेकि जो कुछ लोग करेंगे वही करेंगे। लोग कौन होतेहैं कि इस मामलेमें सम्मति देवें, और जिन महाशयोंके पाससे वह रुपया आया है वे पहिले ही अपनी सम्मति देचुके हैं, बरन बहुधा महाशयोंने मुन्शी इन्द्रमणिको पत्र लिखेहैं कि हमने इतना रुपया तुम्हारे मुकदमेके खर्चके वास्ते स्वामीजी और लाला रामशरणदासके पास मेरठ भेजाहै वे बहुत शीघ्र आपके पास भेजेंगे। इस आशयके अनेक पत्र चन्दःदेनेवालोंके हमारे पासहैं आगे चलकर कुछ प्रकाशित करेंगे, जो चिट्ठीकि जवाहिरसिंह सेक्रेटरीने आर्य्य समाज लाहौरमें तारीख २१ जनवरी सन् १८८१ ई०को लाला रामशरणके नामसे अपने झूठे व्याख्यानमें पढ़ीथी यहांतक उसका उत्तर हुआ अब फिर स्वामीजीके लेखपर उत्तर आरम्भ होता है स्वामीजी "सब" शब्दसे आपका क्या प्रयोजन है? क्या सब मेरठ समाजके सभासदोंकोही आप सब कहतेहो वा चन्द:देनेवालोंको? और क्या उस सभाके नियत होनेसे पहिले आपने कुल चन्द:देने वालोंको सभा के हालकी सूचनादीकि इस तरहपर सभानियत हुईहै, चन्दः इकट्ठा किया जावे और उसमेंसे कुछ मुन्शी इन्द्रमणिके मुकदमेमें खर्च होवे और शेष द्रव्य किसी साहूकारके पास आठ आना सेकड़ा व्याजपर जमा रहे, या चन्दःदेने वालोंको यह लिखाया कि मुन्शी इन्द्रमणिके मुकदमेके खर्चके लिये चन्दा जमा करके स्वामीजी या रामशरणदासके पास रवाना करो यहांसे मुन्शीजीके पास भेजा जायगा, यदि आपने सभाके नियत होनेके समाचार चन्दादेने वालोंको विदित कर दिये थे तो उन्होंने मुन्शी इन्द्रमणिको इस विषयके पत्र क्योंलिखेकि हमने अमुक तारीखको इतना रुपया तुम्हारे मुकदमेके खर्चके वास्ते स्वामीजी या लालासाहिबके पास भेजा है वह आपके पास भेजेंगे, बल्कि यहभी लिखतेकि इस तरह सभा नियत हुई है कि चन्द:के रुपयेमेंसे कुछ रुपया तुम्हारे मुकदमेके खर्चमें लगेगा और शेष एक साहूकारके पास व्याजू जमा रहैगा, लेकिन उन पत्रोंमें इस बातका नाम निशान तक नहीं है, अगर आपने सभाके हालसे उनको भेदी नहीं किया किंतु केवल यही लिखादिया कि उक्त मुकदमेके लिये रुपया इकट्ठा करके हमारे पास रवाना करो यहांसे मुन्शीजीकी सेवामें भेजा जावेगा तो आपकी मक्कारी और फरेब बाजी सिद्ध हुई, और जो तुम यह कहोकि मेरठ समाजके सभासदोंने सभा बनाई तो हम कहतेहैं कि उनको क्या अधिकार है कि बिना आज्ञा चन्दादेने वालोंके सभा नियत करैं। और झूठ सबको इसीपर खुल जायगाकि आर्य्यभ्रातृगण मेरठ

समाजके सभासदोंसे सभा नियत होनेका हाल पूछें मैं आशा करता हूं कि वे लोग धर्मको नहीं त्यागेंगे क्योंकि आर्योंमें नाम लिखाया है आगे उनकी इच्छा मनमें आवे सो करें सत्यही परमात्माको प्याराहै, फिर स्वामीजी कहते हैं कि मुन्शीजीको खर्चके लायक रुपया दियाजाय उसका उत्तर यह हैकि लाला रामशरणदासजी उक्त सभाके प्रधानथे औरउन्होंने सभाके नियमको तोड डाला धन्यवाद क्योंकि जिस समय प्रथमवार मुन्शी इन्द्रमणि दोसौ रुपये के लिये मेरठ गयेतो उन्होंने जवाब दिया कि अभी तुमको यहांसे रुपया न मिलेगा जहांतक जैसा हो सके कारखाई करलो स्वामीजी साहिबने उदय पुरमें बैठकर सभाका मजमून खूब घडा कि जिस्से लालासाहिब भी बदनाम हुए। क्या वह सभा स्वामीजी और लाला रामशरणदासने की या सब चन्दा देने वालोंकी सलाहसे हुई? जो गुरु और चेलेने घरमें बैठकर जो दिलमें आया वह खुद मन घडत मजमून गांठकर सभानाम धर दिया सो खैर परन्तु चन्दा देनेवालोंको समाचार तक नहीं दियाकि इस तरह सभा नियत हुईहै, फिर क्योंकर माना जायकि वह सभा चन्दादेने वालोंके जाणपणे नियतहुई, अब तक भी सभाका कुछ चर्चाही नहीं था अढाई वर्ष पीछे यह ढकोसला बनाया इसी का नाम इमानदारी है, अगर स्वामीजी अपनी बातपर सच्चे हैं और क्योंकि उनके सभा नियत हुई है तो जिस समय लाला रामशरणदास लाला शार्दूलराम सहित अक्तूबर सन् १८८१ ई० में मुरादाबाद पधारे तो लाला श्याम सुन्दर रईस मुरादाबाद के मकानपर मुन्शी इन्द्रमणि को अलग लेजाकर उन्होंने किस वास्ते कहाकि मेरे पास जिसकदर चन्दका द्रव्य शेषहै मैं जो स्वामीजीकेपास भेजदूंगा उनको उचितहै कि आपकोदें, इससे सिद्ध होता है कि उक्त लालासाहिब भी सभाके हालसे भेदी नहीं यदि असलमें कोई सभा होती और लालासाहिबको मालूम होतातो वे मुन्शी इन्द्रमणिसे यही कहते कि तुम नियत सभाके प्रतिकूल करते हो कि स्वामीजीसे चन्द का द्रव्य मांगते हो, फिर स्वामीजी जो लिखतेहैं कि इन सारी बातोंको मुन्शीजीनेभी स्वामीजी आदिके सन्मुख स्वीकार कियाथा उसका उत्तर यहहै कि यदि मुन्शी इन्द्रमणिने आपको सारी बात स्वीकार करलीथी तो किस वास्ते लाला रामशरणदाससे दरियाफ्त कियाकि आपके पास अबतक कितना रुपया चन्दका आया है, और उक्त लालासाहिबने उसका जवाब किस वास्ते इसतरहपर लिखाकि बतलानेके लिये सभाकी आज्ञा नहीं है यदि स्वामीजी सच्चे होते और सभाका नियत होना भी सच होतातो लाला रामशरणदास मुन्शी इन्द्र-

मणिके प्रश्नका यही उत्तर देते कि सभामें तुम इस बातको स्वीकार करचुके होकि तुम्हारे लिये चन्दाकी सख्या बतलाई नहीं आयगी। लेखका विषयहै कि कहां तक झूठ बनाओगे क्या सन्यासियोंका यही धर्म्म है? फिर लोगोंको यह धोखा देनाकि स्वामीजीके सन्मुख मुन्शी इन्द्रमणिने सारी बातें स्वीकार कीथी आपही मुद्दई और आपही गवाह सत्य तो यह है कि जब भनायको झूठे दावेपर कोई गवाह न मिलातो अपने दावेको उचितवक्तासे कि मनुष्य मूर्ख है सम्बन्ध करके आपही गवाह बने क्या आर्य्योंका जालसाजीही धर्म्म है? आर्य्याभाई इन्साफ करैंकि सभा नियत करनेके खुद स्वामीजी मुद्दई हैं, फिर उनकाही साक्षी देना क्योंकर स्वीकारने योग्य है इसके अतिरिक्त लाला श्याम सुन्दरसे जोकि मुरादाबादके एक साहूकार हैं और लाला रामशरणदासके मर्य्यामास्टर दुर्गाचरणसाहिबने सख्या १० का "देश हितैषी" पत्र देखकर कहाकि आपकोभी उस सभाके हालकी खबर है तो लाला श्यामसुन्दर साहिबने इनकार साफ कियाकि मुझको बिल्कुल खबर नहीं है, यहांसे प्रकटहै कि यदि कोई सभा होती तो लाला श्यामसुन्दर अवश्य भेदी होते क्योंकि मुकदमेंके बने रहते लाला रामशरणदास अनेक वार मुरादाबाद पधारे और कई कई दिनतक लाला श्यामसुन्दर साहिबके मकानपर सुशोभित रहे और मास सितम्बर सन् १८८१ ई० में ही वे उक्त लालासाहिबके मकानपर थे परन्तु सभाका कुछभी जिकर नहीं किया तथा मास अक्टूबर सन १८८२ ई० में लाला श्याम सुन्दरजी मेरठ आर्य्यसमाजके वार्षोत्सवपर मेरठ पधारे और लाला रामशरणदासके पास रहे और मुन्शी इन्द्रमणि की निन्दाके प्रश्न पढे गये परन्तु सभा का कोई वर्णन नहीं हुआ, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि सभाकी कथा उदयपुरमें बैठकर बनाई गई, इसके अतिरिक्त जब मुकद्दमां जज्जी मुरादाबादमें पेशथा और उसके लिये लाला रामशरणदासमुरादाबाद पधारे थे तो लाला अमररत्न लघु भ्राता श्यामसुन्दर साहिबने उनसे पूछाकि अब तक मुन्शी इन्द्रमणिके मुकदमेंमें चन्देका रुपया कितना आपके पास आया है तो यही उत्तर दियाकि बतलानेके लिये समाजकी आज्ञा नहीं है, देखो उससमयतकभी यदि सभाका कुछ प्रबन्ध होता तो अवश्य लाला रामशरणदास लाला अमररत्न साहिबको यही उत्तर देतेकि अमुक समय मेरठमें सभा नियत हुईथी उसमें यही निश्चित हुआथाकि चन्देके रुपयेकी सख्या किसीको न बतलाई जावे, इस वास्ते मैं नहीं बतलासका, लेकिन लाला रामशरणदासने इस प्रकारका वार्तालाप नहीं किया बडे आश्चर्यकी बात

हैकि मेरठ शहरमें ऐसी बड़ी सभा नियत हो और जिन मनुष्योंका उससे म
म्बन्ध है उनको भी उसकी खबर नहो, इसके सिवाय जिस समय मुन्शी
इन्द्रमणिका विज्ञापन लाहौरमें पहुंचा तो जवाहिरसिंह मेक्रेटरीने लाला राम-
शरणदाससे यथार्थ हाल दरियाफ्त किया तुम्हारे और मुन्शी इन्द्रमणिके मध्य
क्या झगड़ा है, और लाला साहिबने उसका उत्तर लिखा जवाहिरसिंहने २१
जनवरी सन् हालके दिन मुन्शी इन्द्रमणिकी निन्दायुत एक व्याख्यान दिया
और लाला रामशरणदासका भयमी पत्र सुनाया परन्तु उक्त पत्रमें सभाका
कुछ वर्णन नहीं था, यदि सभा नियत होती तो अवश्य लाला रामशरणदास
अपने पत्रमें उसके समाचार लिखते और जवाहिरसिंहभी अवश्य व्याख्यान
में कहतेकि अमुक समय मेरठमें इस विषयकी एक सभानियत हुईथी और
मुन्शी इन्द्रमणिने सारीयात स्वीकार करलीथी अब धर्म सभाके प्रतिकूल कर
ते हैं, लेकिन जवाहिरसिंहने सभाका कुछभी वर्णन नहीं किया इससे सिद्ध
हुआकि सभाका ढकोसला दोनो गुरु चेलोंने नहीं किंतु एकल गुरुजीने उदय
पुरमें खड़ा किया है, हमारी आर्य्यभाईयोंसे यही प्रार्थनाहै कि पक्षपात को
छोड़कर इनसाफ करें कि जब मुन्शी इन्द्रमणिने उनको दबायाकि चन्दे का
शेष धन मुझको दो मैं मुसल्मानोंके साथ वादानुवादमें खर्च करूंगा उससमय
स्वामीजीने सभाका ढकोसला बनाकर हितैषी पत्रमें अन्यके नामसे मुद्रित
कराया, आर्य्यभाई उनसे पूछेंकि किस मिति तिथि वार सम्वत् में वह सभा
नियत होगईथी ? और उसके कौन २ सभासद थे ? क्योंकि मैं खूब जानताहूं
कि सब लोग उनके लिये झूठ न बोलेंगे किंतु लाला रामशरणदासही परमेश्वर
को देखके सपथ पूर्वक कहेंकि उक्त सभा किसदिन नियत हुइ और इन्द्रमणिने
कब सारी बातें स्वीकार करी, मुझको आशाहै कि उक्त लाला साहिब मुझ
करभी झूठी गवाही नहीं देवेंगे, यद्यपि उनको स्वामीजीकी ऐसीही खातिर
मंजूरहो और सभासदोंने भी खूब न्यायकियाकि अन्य सभासदोंको तो चन्दे
की संख्या बतलाई जाय और मुन्शीइन्द्रमणिसे गुप्तरहै वे अन्य सभासदोंसे
भी न्यून हुये जिनसे मुकद्दमेके लिये बहु चन्दा किया गयाथा । हम कहतेहैं
कि यदि मुन्शी इन्द्रमणि उक्त सभामें आये तो अवश्य सभासदभी बने फिर
उनसे चन्देकी रकम गुप्त रखना क्यों ? और जो मुन्शीजी सभामें नहीं आये
तो स्वामीजी आदिके सन्मुख किसने स्वीकार किया ! कहांतक झूठ रचा जाय,
याद मान लिया जायकि सभामें यह नियम हुआथाकि मुन्शी इन्द्रमणिको
चन्देकी संख्या न बतलाई जाय तो सभाको बड़ीभी क्षतिथीकि चन्देसे

वालोंको यहलिखतीकि तुमभी चन्द के लिये द्रव्यकी संख्या मुन्शी इन्द्रमणिको न बतलाना, परन्तु सभासदोंने किसी समाजकोभी न लिखा, इस लिये बहुधा चन्द देने वालोंने चन्द देनेके समय मुन्शी इन्द्रमणिको पत्र लिखेथेकि हमने इतनारुपया तुम्हारी सहायताके लिये स्वामीजी या लाला साहिबके पास भेजाहै, उनसे तुमको मिलेगा, वे पत्र शीघ्र प्रकाशितहोंगे फिर जब स्वामीजी जनवरी सन् १८८१ ई० में मुकाम आगरेमेंथे तो मुन्शी कन्हैयालाल अलख धारी * (जिनके सत्य शील और गुणके स्वतः स्वामीजी मानकारहैं) आगरेमें आये और कुछ दिन ठहरकर लुधियाने जाके मुन्शी इन्द्रमणिको एक पत्र लिखा जिसकी पूरी नकल इस प्रकार है ।

नवाजिश व इनायत फरमाय मुन्शी इन्द्रमणि साहिब ज़ाद इनायत हु,

"बाद सलाम व नियाजके गुज़ारिश है कि ब्दरियाफ्त मंजूरी अपील के कुछ भरोसा होता है मगर जबतक यह बात नहो कि जैसी आपकी किताबें चाककी गई प्रतिपक्षीकी भी जलाई जावें और जुरमाना मुआफ होकर तरफैनसे मुचल्का लिया जावे तब तक मेरा दिल खुश न होगा, हुक्म अखीर के मुंतेका मुंतिजर हु, स्वामी दयानन्द सरस्वती आगरेमें थे मैंने अपने एक इष्ट मित्रद्वारा उनसे पूछा था कि चन्द का क्या हाल है तब उत्तर मिला कि छ' हजार रुपये मेरठमें एककी दुकानपर जमा हैं, मुन्शीजीने उसमेंसे बहुत रुपया खर्च किया, और हिसाब नहीं दिया, मुझको इस मुआमलेसे कुछ गर्ज नहीं है, परतु खेद है कि हमारे हिंदुओंमें भी ऐसी रसमें जारी होगई हैं कि जिनका अंजाम बखैर नहीं है, हम इस बातको पसन्द नहीं करते कि जो रुपया आपके वास्ते जमा हुआ हो उसका हिसाब तलब करें, हम इसमें खता स्वामीजीकी तरफ समझते हैं, आशा है कि खैरियत मिजाजसे इत्तलादीजैगा में अच्छी तरह हू जियादः नियाज, १५ जनवरी सन् १८८१ ई०—

"अब आर्य्य भाई ग़ौर करेंकि जब उक्त सभामें यही नियम हुआ था कि चन्द" की संख्या सभासदोंके अतिरिक्त और किसीको न बतलाई जायगी तो खुद स्वामीजीने मुन्शी बखतावरसिंह ‡ और मुन्शी कन्हैयालाल अलख धारी को किस वास्ते बतलाया, यह नियम तोड़ना नहीं था तो क्याथा ? इससे भी सिद्ध हुआ कि स्वामीजीने सभाका ढकोसला उदयपुरमें घड़ा है, आश्चर्य इस बातका है कि लाला रामशरणदासके कथनानुसार नौसौ छप्पन रुपये कई आ-

* कन्हैयालालजीकी बाबत आर्य्यसमाचार मेरठसे टेकर, पहिले हम लिख चुके हैं

‡ मुन्शी बखतावरसिंह के आर्य्यदर्पणका लेख ओक्टूबर सन् १८८० ई० में पहिले आ चुका है।

ा चन्दा में से खर्च हुये और चारसौ कई शेष अमानत रहे अब आर्य पु
विचारें कि यह तो पांच सौ रुपयेका हिसाब हुआ, चार हजार छः सौ
ा गये ? यही स्वामीजीकी सत्यता है। अगर एक लाख रुपया उपदेशक दे
के बहानेसे उन्होंने जमा करलिया तो क्या रंग लावेगा? कर्ज लेकर ता
र मुकद्दमें में क्या लगाते जबकि आपके पास चन्दः का अधिक द्रव्य जमा
और मुन्शी इन्द्रमणिको वरिष्टरके पास भेजनेके लिये दोसौ रुपयेकी आव
नाथी उस समय भी आपने कौड़ी नदी, बस आपकी नियम प्रतिकूलतामें
शंका नहीं है, मुन्शी इन्द्रमणिके वास्ते चन्दे की संख्या बतलाने में सभा किस
रुकी क्योंकि सभाने मनसूबा गांठा था कि चन्दा के रुपये गद्दप करले, यदि मु
इन्द्रमणिको संख्या मालूम होगी तो सभासे मवाखजा करेंगे, इस वास्ते
ने पेशबन्दीकेलिये मुन्शी इन्द्रमणिको जुदा किया, वाहरी सभा तेरी सत्य
ता और यही समझ इसको कोई भी ईमानदारी नहीं कहेगा, कि जिसके
से चन्दा इकट्ठा होवे उसको संख्यामात्र भी न बतलाई जावे. इसको चतुराई
लोग जानेंगे कि जो गुरुजीके अधर्मको भी धर्म समझते हैं और पराया
मारनेपर कमरबन्दी कर रहे हैं, जबकि स्वामीजीकेपास इधर उधरसे च.
का रुपया बहुतजमाहोगया तब लाला के आधीनहोकर उसके गद्दप
की नीयतकी, जिसके नामसे चन्दा लिया उसको देना तो जुदा रहा सं
तक बतलाना भी उचित न समझा इसीका नाम सन्यास है, और यही स्या
ा मसला है, निःशङ्क इससे सम्पूर्ण प्राणी जान सकते हैं कि लाला रामशर
ा इतना ही कसूर है कि चन्दःका द्रव्य गद्दप करनेमें स्वामीजीके आधीन
पूरा अपराध स्वामीजीका है, कि पृथ्वीको शिरपर उठाया और उक्त ला
ाहिबको अपना शरीक किया, मुन्शी इन्द्रमणिने तो उनकी सेवामें यह नि
न कियाथा कि धर्म विषयक वादानुवाद अभी पूरा नहीं हुआ है, स्वामी
और लाला साहिबको कुछ अधिकार नहीं है कि यह दोनों तो इसकामके
ः चन्दा का रुपया इधरसे लेकर उधर पहुंचादेवें परंतु यह तो गुरु चा
् बनबैठे, नाना प्रकारसे इनको समझायागया कि इस रुपयेमें मुसल्मा
ा नालिश दायर करो परंतु उन्होंने चुप करली, फिर स्वामीजी कहते हैं कि
ीजीने अनुचित वाक्य कहे यह सर्वथा झूठ है किंतु गुरु उन्होंने अनेक अप
ोंसे भी पत्र भागोंमें मुन्शीजीके नाम पठाये वे सब हमारे पास हैं जिला
समय पाते नहीं लिखे और द्रव्य तो स्वामीजीने लियाकि मुन्शी इन्द्रम
ि नामसे छः हजार रुपया इकट्ठाकर उनको यहाँ कठिनतामें कष्ट मार्गी

दिये अब अढाई वर्ष पीछे चौद सौ रुपयेका हिसाब प्रकट करते हैं शेषका आ-चमन करगये इस दम्भका कारण यह है कि ससारी लालचने उनको भुला दिया खेदका स्थान है कि लाला रामशरणदास भी उनके कारण व्यर्थवद नाम हुये, हम परमात्माको मध्यस्थ करके कहते हैं कि मुन्शी इन्द्रमणिने उनसे किसी प्रकारका नियम नहीं किया यदि मुन्शी इन्द्रमणिने स्वामीजीसे यह प्रण किया था कि अपने पासका आया हुआ चन्द का द्रव्य भी उक्त लाला साहिबके पास भेजतारहूंगा तो स्वामीजीने मुन्शी इन्द्रमणिको इस विषयकी चिट्ठी मेरठसे क्यों लिखीकि इतना रुपया चन्द' का पञ्जाबसे मेरठ आया है, और फर्रुखा बाद वगैरः से आनेवाला है सब आपके पास भेजा जाता है (यह चिठी अगस्त सन् १८८० ई० की भाद्रपद सम्वत् १९३७ में ऊपर लिखीजाचुकी है) इसके अनुसार लाला आनन्दीलाल मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठका खत तारीख २७ अगस्त सन् १८८० ई० तीन टुकड़े नोटके सहित मुन्शी इन्द्रमणिके पास आया कि यह नोट तुम्हारे मुकद्दमेकी सहायता के लिये लाहौरसे आये हैं सो आपके पास पहुंचते हैं। अब आर्य्य भाई न्याय करैंकि यदि मेरठ में कोई सभा नियत होती और मुन्शी इन्द्रमणिने उस सभामें प्रणकिया होता तो उसके प्रतिकूल मुन्शीजीके पास लाहौर के नोट मेरठसे किस वास्ते रवाने किये जाते, क्योंकि स्वामीजीके कथनानुसार प्रणतो यहथाकि सब स्थानोंका चन्द लालासाहिब के घर जमा रहै और मुन्शी इन्द्रमणि भी उनहीके खजानेमें दाखिल करते र हैं। यहाँ तक तो स्वामीजीकी नीयत शुद्धथी पीछे उनके मनमें यह विचार पैदा हुआ कि चन्द का द्रव्य मुन्शी इन्द्रमणिको न देना चाहिये लालासाहिबके पास इकट्ठा रहना उचित है बस २८ अगस्त् सन् १८८० ई० को लाला आनन्द लाल मन्त्रीसे इस आशयका पत्र मुन्शी इन्द्रमणिजी के पास भिजवाया कि उक्त नोटके टुकड़े वेद भाष्यकी सहायतार्थ फर्रुखाबादको भजे जाने थे हमारे समाज के चपरासीकी भूलसे तुम्हारे पास चले गये इस लिये उनको मेरठ लौटा दीजिये, बस वे नोट उसी समय लौटा दिये गये अब विद्वान् पुरुष विचार करैं कि चपरासीकी भूलसे यह होसक्ताथा कि मुरादाबादके लिफाफेमें फर्रुखाबादका खत रखदे और फर्रुखाबादके लिफाफेमें मुरादाबादका या नोट जिस लिफाफेमें रखने चाहियें उसमें न रक्खे दूसरेमें रख दे परन्तु यह तो बतलाओ कि नोटोंकी साथ जो पत्रथाकि यह नोट तुम्हारे मुकद्दमेकी सहायताके लिये लाहौरसे आये थे इस वास्ते अब तुम्हारे पास भेजे जाते हैं, यह किसने लिखा था? क्या यह जालसाजी भी चपरासीहीकीथी? अब स्वामीजी अपने धर्म्म और

ानसे वर्णन करेंगे कि यह सारी कार्रवाई किसकी आज्ञासे हुई थी, इसके अ
रिक्त विद्वान खूब जानते हैं कि रुपयेका खर्च मुन्शी इन्द्रमणिके पास था यह
ा प्रण क्यों करते कि जितना रुपया मुझको मिलेगा मैं लाला रामशरणदास
पास भेजदूंगा क्योंकि उल्टे पत्थर पहाड़को कोई नहीं लादता किन्तु स्वामी
और लालाजगदीशदीन मुन्शीजीसे प्रण कियाथा कि हम तुम्हारे मुकद्दमें
खर्चेके वास्ते यह जमा करते हैं जिस समय आपको आवश्यकता हो हम
रुपये मंगा लेना, और इसी प्रकार चन्दा देने वालोंसे भी प्रण कियाकि मु
लोग मुन्शी इन्द्रमणिके मुकद्दमे के लिये चन्दा फराहम करके हमारे पास भे-
हम उक्त मुकद्दमेमें खर्च करेंगे, जब चारों ओरसे आशासे अधिक रुपया
या शीघ्र गुरु चेलेने निज प्रणत्यागदिया, क्योंकि अभी एक महीना भी न
याकि मुन्शी इन्द्रमणिने मिस्टर हिम साहिब बैरिस्टर के लिये दोसौ रुपये
ो तो उनको जवाब साफ दियाकि तुमको यहांसे कुछ न मिलेगा अब स्वा
ी परमात्माको अन्तर्यामी जानकर कहें कि उन्होंने यह प्रण किया था
ि और फिर तोड़ दिया या नहीं बस मुन्शीजीने शीघ्र ही भारतमित्रादि प-
ो इनके प्रण तोड़नेका प्रकाशित कर दिया, और जानलियाकि इनका
विचार कुछ और है, इस सूरतमें यह गुरु चेले कौन हैं जो मुन्शी इन्द्रमणि
हिसाब लेवें, क्या उन्होंने कोई खजाना उनके आधीन कर रक्खा है! य-
ो यही है कि इन दोनों महाशयोंने अपने बचावके लिये यह ढंग रचा है कि
ी इन्द्रमणि हिसाब नहीं देते, विद्वान खूब जानते हैं कि मुन्शी इन्द्रमणि इ
ो किस चीजका हिसाब देवेंकि आरम्भसे ही उनकी स्वार्थ साधनता देख
उनसे पृथक् हो गए थे, और भारत मित्रादि पत्रोंमें विज्ञापन दे चुके कि इ
पास हमारे मुकद्दमेके लिये कोई साहिब रुपया नहीं भेजेंकि जितना अब
इनके पास चन्दा आया है उसमेंसे कौड़ी देना नहीं चाहते किन्तु मुन्शी इ
ी इनसे हिसाब मांग सकते हैं कि उन्होंने इनके मुकद्दमेके वास्ते अपने
ा रुपया जमा किया, और मुन्शी इन्द्रमणिके पास भेजनेके जिम्मेदार बने।
भाई विचार करें कि इस इमानदारीका क्या ठिकाना है कि जो रुपया
ा मुन्शी इन्द्रमणिके मुकद्दमे के वास्ते चन्दा किया गया है उसको सम्पूर्ण
क समकी रक्षाके लिये नियत करते हैं, स्वामीजी महाराज यह रुपया वेदि
मकी सहायताके लिये बिल्कुल ही नहीं है, किन्तु केवल एक मुकद्दमेके लिये
ी मुन्शी इन्द्रमणिपर मुसल्मानोंकी तरफसे दायर हुआ, स्वामीजी महाराज
ी तक मूढ़ बनाते रहेंगे, हक मचाल करोकि आपने इसमें चालें चला करा

है, और अब क्या कहते हो जब आप सन् १८८० ई० में बमुकाम आगरह रायगिरधरलाल साहिब वकीलकी कोठीपर विराजमानथे उस समयका आपका हस्ताक्षरीपत्र तारीख २९ नवम्बरका हमारे पास मौजूद है उसमें आपने लिखा है कि अब यह रुपया बराबर वेदिक फंड कहलावेगा, फिर जब मुन्शी इन्द्रमणिने सर्व पत्रके उत्तरमें आपकी इस लिखावटका खंडन किया तो आपने उसका उत्तर ६ दिसम्बर सन् १८८० ई० में लिखाकि वेदिक फंड मुन्शीकी भूलसे लिखा गया है, हमने तो यह लिखवायाथाकि यह वेदिकमतकी सहायताका फंड कहलावेगा। आपकी यह चिट्ठी भी हमारे पास मौजूद है, अब रिसाले हितैषी अजमेरके मजमूनमें आपने वेदिकमतके प्रथम शब्द सर्वे बढाया है, एक पत्र स्वामीजीके हस्ताक्षरी तारीख २४ नवम्बर सन् १८८० ई० का लाला श्यामसुन्दर रईस मुरादाबादके नामका हमारे पास है उसमें स्वामीजीने लिखाया है कि चन्द किसीकी मातिलाभके वास्ते नहींहुआ केवल देशकी भलाईके लिये है, स्वामीजीकी एक दूसरीसे प्रतिकूल लिखावटसे यही सिद्ध होता है कि आपने रुपया गड़प करनेकेलिये भांतिभांतिके झूठ बनाये, फिर यह जो आपने लिखा है कि उस समयसे लाला रामशरणदासने मुन्शीजीको रुपया देना बन्दकर दिया उसका उत्तर यह है कि उक्त लालाजीने मुन्शीजीको दिया ही क्यायाकि जिसके पीछे देना बन्दकर दिया, जिस समय बेरिस्टर साहिबको देनेके वास्ते मुन्शी इन्द्रमणिने दोसो रुपये चन्दः के रुपयेमेंसे मांगे तो उन महात्मा धर्म्मावतारने साफ जवाब दियाकि यहांसे कुछ नहीं मिलेगा, बस मुन्शी इन्द्रमणिने जान लियाकि कुछ दालमें काला है, और स्वामीजीने विश्वासकी शराबमें नमक मिलाया है फिर आप जो कहते हैं कि स्वामीजीने कहाकि काममें हर्ज होगा यह सर्वथा झूठ है, कि काममें हर्ज न हो यह समझकर आपने मुन्शी इन्द्रमणिको रुपया हरगिज नहीं दिया बल्कि जब उन्होंने लगातार आपको इस विषयके पत्र लिखे कि यदि इस समय भी रुपये न दोगे तो हम चन्दः देने वालोंको खबर करेंगे कि स्वामीजीने आरम्भ मुकद्दमेंसे मेरे नामपर चन्द जमा किया और अबतक मुझको एक कौड़ी भी नहीं दी तब आपने अपनी बदनामीसे डरकर छः सौ रुपये मुन्शी इन्द्रमणिको दिये यदि आपको यह खयाल होता कि काममें हर्ज नहोवे तो आरम्भ मुकद्दमे में बेरिस्टर साहिबके लिये मुन्शीजीको दोसो रुपये देनेसे हरगिज इनकार न करते। मुद्दत गुजरीकि मुन्शी इन्द्रमणि स्वामीजीसे चन्दः के रुपयोंका हिसाब मांगते रहे और स्वामीजी बहानोंके साथ टालते रहे, हिसाब तो जुदा रहा चन्द की संख्यातक मुन्शीजी

का नहीं बतलाई अब तक मुनशी कहते थे कि हमने मुन्शीजीको छ'सौ रुपय दिये हैं, और यह भी स्वीकार करते थे और करते हैं, अब उसपर मुझी यह म गाया कि कितना रुपया मुन्शीजीको दिया और कितना उक्त लाला साहिबके पास जमा रहा यह बात स्वामीजीको याद होगी कि उन्होंने आगरहमें मुन्शी अलखधारीके एक मित्रसे कहाया कि चन्देका छ'हजार रुपया मेरठमें एक दू कानपर जमा है, अब देखिये छ'हजार रुपयेमेंसे कितनेका हिसाब मुद्रित क राते हैं कितना अपने पास शेष बतलाते हैं और कितना उक्त लालासाहिबके पास जमा बतलाते हैं यदि हिसाब ठीकठीक मुद्रित करादेंगे तो लोगोंको मा लूम होजावेगा के चन्देका इतना रुपया स्वामीजी और लालासाहिबके यहाँ बतौर अमानतके जमा है, परंतु दोनो महाशयोंका छुटकारा उस समय सम्भव है जब कि कौड़ी कौड़ी चन्दे का द्रव्य मुन्शी इन्द्रमणिको दे देवें, क्योंकि हम चन्देके अधिकारी नहीं हैं, और उन्हीं के नाममे चन्दा इकट्ठा किया गया है। अगर लाला रामशरणदास आदिने मुन्शी इन्द्रमणिके विषय कुवाक्य बोले तो बेजाने मुन्शीजीसे उनके विषय अबतक कोई अपराध नहीं हुआ मुन्शीजी तो सम्पूर्ण आर्योंके तनमनसे शुभचिंतक हैं यदि लाला रामशरणदास आदिने स्वामीजीसे यही कहाकि मुन्शीजी हिसाब नहीं देते तो यथार्थमें सत्य और उ चित है कि मुन्शी इन्द्रमणि प्रथम दिवसहीसे कहते हैं कि स्वामीजी और ला लासाहिबको मुझसे हिसाब लेनेका अधिकार नहीं है कि उन्होंने कोई कारखा ना या खज़ाना मेरे आधीन नहीं किया बल्कि उनको उचित है कि मुझको च न्दे के द्रव्यका हिसाब समझावें कि क्या आया और कितना खर्च हुआकि उ न्होंने मेरे नामसे चन्दा इकठा किया, सो हिसाब लेना तो एक तर्फ रहा आज तक उसकी संख्या भी मुझको नहीं बतलाते और जिस दिनसे मैंने गल्पा दू सनेका तकाजा आरम्भ किया है, इधर उधर मेरी निन्दा करते फिरते हैं बल्कि इतनेपरभी सन्तोष न करके मेरे विषय मिथ्या भाव मुद्रित कराते हैं, स्वामी जीका शोभनजाना और वहाँ बिराजना इसी वास्ते था कि शोभनमें बाबू तो ताराम और रायबद्रीदास आदि वकीलोंने उक्त मुकद्दमेके लिये कुछ चन्दा इ कठा किया था कि जिस समय स्वामीजीको यह समाचार मिला तो चन्दा लेनेके लिये दौड़े भूनसे शोभन आये, परंतु मुन्शी इन्द्रमणिने पहिले ही बाबू तोताराम मको निज पत्रद्वारा प्रकट करदिया था कि यदि आपने चन्दा भेजना है तो मुझ सीधा मेरे नाम रवाना करें दूसरोंको दिया हुआ रुपया बहुधा मार्गहीमें गदप होता है. बस जब स्वामीजीने बाबूसाहिबसे चन्देका जिकर किया तो उन्होंने

मुन्शी इन्द्रमणिका खत दिखलाया तब स्वामीजी खेदित होके कहने लगे कि चन्देका द्रव्य किसी साहूकार के पास भेजना चाहिये जिसके पाससे रुपया आचुका है। यह सारा हाल बाबू तोताराम वकील कोयलके कार्ड नागरीसे जोकि स्वामीजीके कोयल आनेके पीछे मुन्शी इन्द्रमणिके पास उक्त बाबूसाहिबने भेजा या प्रकट होता है, यथार्थ नकल उसकी यह है।

मिश्रवर आपका पत्र आया, यहाँका चन्दा मेरे प्रबन्धमें जमा हो रहाहै, जिस समय भेजनेके लायक इकट्ठा हो जायगा तबही आपकी खिदमतमें पहुँचैगा, स्वामी दयानन्दजीके कहनेसे जानागया कि चन्देका रुपया किसी साहूकारके पास भेजना चाहिये जिसके यहाँसे रुपया आचुका है परंतु मेरा इरादातो आपके पास भेजनेका है, आप जो उचित समझें वह करें।

(तोताराम मुहतमिम भारत बन्धु)

बाबू साहिबके पत्रमें शब्द किसी साहूकार से स्वामीजीकी मुराद लाला रामशरणदाससे है और (जिसके यहाँसे रुपया आचुका है) इससे स्वामीजी की गर्ज यह है कि चन्देका रुपया लाला रामशरणदासहीके पास भेजना उचित है कि उनके यहाँसे रुपया बतौर कर्जेके मुकद्दमेके खर्चके लिये आ चुकाहै, देखो यह कितना बड़ा झूठ है, लाला रामशरणदासने तो चन्देहीके रुपयेमेंसे मुन्शीजीको दोसौ रुपये न दिये अपने घरसे कर्जतो क्या देते यहासे मालूम होता है कि स्वामीजीका अभिप्राय यहीथाकि किसी बहानेसे चन्देका रुपया उक्त लालाके खजानेमें दाखिल करादें फिर इस स्थानसे यह भी सिद्ध होता है कि चन्दा स्वामीजीकी कोशिशसे नहीं हुआ किंतु वे घर २ मांगते फिरे और नहीं मिला, जितनी चिट्ठीयाकि मुन्शीजीके नाम आगरहमें स्वामीजीने लिखीथी वह सब हमारेपास मौजूद हैं, उनकी लिखावटमें अत्यंत असभ्यता भरी हुई है, और जो जवाबकि मुन्शी इन्द्रमणिने उनकी चिट्ठियोंके स्वामीजीको तहरीर किये थे उनकी नकलभी हमारे पास है, जिन साहिबोंको उनका देखना मंजूर होवे वे मुलाहिजाकरलें स्थानाभावसे नकल करना उचित नहीं समझा, हाँ! यह बात अवश्य सत्यहै कि आपलोगोंने निजप्रण छोड़कर आवश्यकताके समय चन्देके द्रव्यमेंसे दोसौ रुपये देनेसे इन्कार किया, किंतु संख्या तक नहीं बतलाईकि कितना रुपया अब तक यहां जमा हुआ है बस विचारलो इसमें आपही की निन्दा होगी कि मुन्शीजीके नामसे हजारों रुपया इकठा किया और उनको बड़ी कठिनतासे केवल छःसौ रुपये दिये शेषको आपही डकार गये, और यह स्वामीजीकी बड़ी तुहमत है कि मुन्शीजीने

को नहीं बतलाइ अब तक तुमभी कहते थे कि हमने मुन्शीजीको छ' सौ रुपये दिय हैं, और वह भी स्वीकार करते थे और करते हैं, अब उसपर तुर्रा यह लगाया कि कितना रुपया मुन्शीजीको दिया और कितना उक्त लाला साहिबके पास जमा रहा यह बात स्वामीजीको याद होगी कि उन्होंने आगरहमें मुन्शी अलखधारीके एक मित्रसे कहाया कि चन्दःका छ' हजार रुपया मेरठमें एक दूकानपर जमा है, अब देखिये छः हजार रुपयेमेंसे कितनेका हिसाब मुद्रित कराते हैं कितना अपने पास शेष बतलाते हैं और कितना उक्त लालासाहिबके पास जमा बतलाते हैं यदि हिसाब ठीकठीक मुद्रित करावेंगे तो लोगोंको मालूम होजावेगा के चन्दःका इतना रुपया स्वामीजी और लालासाहिबके यहाँ बतौर अमानतके जमा है, परंतु दोनो महाशयोंका छुटकारा उस समय सम्भव है जब कि कौड़ी कौड़ी चन्दःका द्रव्य मुन्शी इन्द्रमणिको दे देवें, क्योंकि इस चन्दःके अधिकारी वही हैं, और उन्हीं के नामसे चन्दा इकट्ठा किया गया है। अगर लाला रामशरणदास आदिने मुन्शी इन्द्रमणिके विषय कुवाक्य बोले तो वेजाने मुन्शीजीसे उनके विषय अबतक कोई अपराध नहीं हुआ मुन्शीजी तो सम्पूर्ण आर्य्योंके तनमनसे शुभचिंतक हैं यदि लाला रामशरणदास आदिने स्वामीजीसे यही कहाकि मुन्शीजी हिसाब नहीं देते तो यथार्थमें सत्य और उचित है कि मुन्शी इन्द्रमणि प्रथम दिवसहीसे कहते हैं कि स्वामीजी और लालासाहिबको मुझसे हिसाब लेनेका अधिकार नहीं है कि उन्होंने कोई कारखाना या खजाना मेरे आधीन नहीं किया बल्कि उनको उचित है कि मुझको चन्दः के द्रव्यका हिसाब समझावें कि क्या आया और कितना खर्च हुआकि उन्होंने मेरे नामसे चन्दा इकठा किया, सो हिसाब देना तो एक तर्फ रहा आज तक उसकी संख्या भी मुझको नहीं बतलाते और जिस दिनसे मैंने संख्या पूछनेका तकाजा आरंभ किया है, इधर उधर मेरी निन्दा करते फिरते हैं बल्कि इतनेपरभी संतोष न करके मेरे विषय मिथ्या लेख मुद्रित कराते हैं, स्वामीजीका कोयलजाना और वहाँ विराजना इसी वास्ते थाकि कोयलमें बाबू तोताराम और रायबद्रीदास आदि वकीलोंने उक्त मुकद्दमेके लिये कुछ चन्दः इकठा किया था कि जिस समय स्वामीजीको यह समाचार मिलेतो चन्द लेनेके लिये देहरे दूनसे कोयल आये, परंतु मुन्शी इन्द्रमणिने पहिले ही बाबू तोतारामको निज पत्रद्वारा प्रकट करादिया था कि यदि आपने चन्दः खोला है तो पहमीधा मेरे पास रवाना करें दूसरोंको दिया हुआ रुपया बहुधा मार्गहीमें गड़प होता है, पस जब स्वामीजीने बाबूसाहिबसे चन्दःका जिकर किया तो उन्होंन

मुन्शी इन्द्रमणिका खत दिखलाया तब स्वामीजी खेदित होके कहने लगे कि चन्दे का द्रव्य किसी साहूकार के पास भेजना चाहिये जिसके पाससे रुपया आचुका है। यह सारा हाल बाबू तोताराम वकील कोयलके कार्ड नागरी से जोकि स्वामीजीके कोयल आनेके पीछे मुन्शी इन्द्रमणिके पास उक्त बाबूसाहिबने भेजा था प्रकट होता है, यथार्थ नकल उसकी यह है

मित्रवर आपका पत्र आया, यहाँका चन्द मेरे प्रबन्धमें जमा हो रहा है, जिस समय भेजनेके लायक इकट्ठा हो जायगा तबही आपकी खिदमतमें पहुचैगा, स्वामी दयानन्दजीके कहनेसे जानागया कि चन्देका रुपया किसी साहूकारके पास भेजना चाहिये जिसके यहाँसे रुपया आचुका है परंतु मेरा इरादातो आपके पास भेजनेका है, आप जो उचित समझें वह करें।

(तोताराम मुहत्मिम भारत बंधु)

बाबू साहिबके पत्रमें शब्द किसी साहूकार से स्वामीजीको मुराद लाला रामशरणदाससे है और (जिसके यहांसे रुपया आचुका है) इस्से स्वामीजी की गर्ज यह है कि चन्देका रुपया लाला रामशरणदासहीके पास भेजना उचित है कि उनके यहाँसे रुपया बतौर कर्जके मुकदमेके खर्चके लिये आ चुकाहै, देखो यह कितना बड़ा झूठ है, लाला रामशरणदासने तो चन्देहोंके रुपयेमेंसे मुन्शीजीको दोसौ रुपये न दिये अपने घरसे कुछतो क्या देवे यहासे मालूम होता है कि स्वामीजीका अभिप्राय यहीयाकि किसी बहानेसे चन्देका रुपया उक्त लालाके खजानेमें दाखिल कराद फिर इस स्थानसे यह भी सिद्ध होता है कि चंद स्वामीजीकी कोशिशसे नहीं हुआ किंतु वे घर २ मांगते फिरे और नहीं मिला, जितनी चिट्ठीयांकि मुन्शीजीके नाम आगरहमें स्वामीजीने लिखीथी वह सब हमारेपास मौजूद हैं, उनकी लिखावटमें अत्यंत असभ्यता भरी हुई है, और जो जवाबकि मुन्शी इन्द्रमणिने उनकी चिट्ठियोंके स्वामीजीको तहरीर किये थे उनकी नकलभी हमारे पास है, जिन साहिबोंको उनका देखना मंजूर होवे वे मुलाहिजाकरलें स्थानाभावसे नकल करना उचित नहीं समझा, हाँ। यह बात अवश्य सत्यहै कि आपलोगोंने निजमत छोड़कर आवश्यकताके समय चन्दे के द्रव्यमेंसे दोसौ रुपये देनेसे इन्कार किया, किंतु सख्या तक नहीं बतलाईकि कितना रुपया अब तक यहां जमा हुआ है बस विचारलो इसमें आपही की निन्दा होगी कि मुन्शीजीके नामसे हजारों रुपया इकठा किया और उनको बड़ी कठिनतासे केवल छ सौ रुपये दिये शेषको आपही डकार गये, और यह स्वामीजीकी बड़ी तुहमत है कि मुन्शीजीने

मुन्शी इन्द्रमणिजी स्वामीजीके पास और आगरेमें रहे परंतु लाला रामशरण दासकी कोई चिट्ठी नहीं आई यदि आई होगी तो स्वामीजीने गुप्त रक्खी होगी अब दो वर्ष पीछे यह ढकोसला बनाया कि रामशरणदास के मुन्शीकी भूलसे लाहौर गुरुदासपुर के रुपये मिलाकर जमाकरदिये इस झूठका क्या ठिकाना है, । और यह भी सर्वथा झूठ है कि लाहौर और गुरुदासपुरके रुपये एक ही दिन आये थे क्योंकि लाहौरके रुपयोंसे गुरुदासपुरके रुपये तेरह चौदः दिन पीछे आये हैं ओर उसकी साक्षीमें एक चिट्ठी स्वामीजीकी और दूसरी लाला वल्लभदासकी है, स्वामीजीकी चिट्ठी तारीख २६ अगस्त सन् १८८० ई० पहिले सम्वत् १९३७ में लिखी जाचुकी है, उसमें मुन्शी इन्द्रमणिको मेरठसे लिखा है कि पंजाबके अढ़ाई सौ या तीनसौ रुपये आपके पास पहुंचे होंगे, आजतक यहां के समासदोंसे दरियाफ्त करेंगेकि रुपये भेजे या नहीं अगर न भेजे होंगे तो हम भिजवाते हैं, चारदिन हुये कि हमने यहां के सभासदोंसे वास्ते भेजने रुपयेके कह दिया है । जबकि चिट्ठी २६ अगस्तकी लिखी है तो २६ से ४ दिन पहिले भावार्थ २२ अगस्तको स्वामीजीने मेरठके समाज सभासदोंसे कह दियाकि पंजाबके रुपये मुन्शी इन्द्रमणिके पास रवाना करदो। इससे जाना गयाकि वे रुपये २२ से पहिले या २२ ही को लाहौरसे आये थे । बस स्वामीजीके कहने मूजब लाला आनन्दलाल मंत्री आर्य्यसमाज मेरठने २७ अगस्तको दोसौ रुपयेके नोट मुन्शीजीके पास रवाना किये और लिखाकि यह लाहौरके चन्द'का रुपया है । फिर इसके पीछे क्या हुआ वह विस्तार सहित ऊपर लिख चुके हैं, और लाला वल्लभदासकी चिट्ठी तारीख ३ सिपटम्बर सन् १८८० ई० में लिखा है कि गुरुदासपुरके चन्द'के इतने रुपये ३१ अगस्त सन् १८८० ई० को हमने स्वामीजीके पास बमुकाम मेरठ भेजे हैं वह आपके पास पहुंचेंगे। यहां से प्रकट है कि गुरुदासपुरके रुपये स्वामीजीके पास मनिआर्डर द्वारा चौथी वा पांचवी सिपटम्बरको आये होंगे इससे दोनोंके मध्य तेरा वा चौदा दिनका अन्तर है, एक दिन नहीं आये, इस लिये स्वामीजीके मिथ्या भाषणमें कुछ शंका नहीं है, अब आर्य्यभाई पक्षपातको त्यागकर न्याय करें कि जिस सूरतमें दोनो स्थानोंके रुपये तेरा चौदा दिनके अन्तरसे आये हैं वो रामशरण दासके मुन्शीकी भूल क्योंकर होसकती है और वह दोनोंको एक साथ क्यों कर जमाकरसकताथा, अब गुप्त नहीं कि लाला वल्लभदासकी उक्त चिट्ठीमें गुरुदासपुरके डेढ़सौ रुपये स्वामीजी के पास भेजने लिखे हैं और यह भी लिखा है कि और भी कोशिश कररहा हूं जो कुछ और होसकेगा किया जावेगा।

क्या आश्चर्य्य है कि इन डेढसौके पीछे अढाई सौ रुपये दूसरी वार स्वामीजी के पास वल्लभदासने भेजेहोंगे, परन्तु लाहौरके रुपये के साथ यहभी जमा न हीं होसके कि इनमें और लाहौर के में तेरा चौदा दिनसे भी अधिक अन्तर होना सम्भव है, इनका आना उनके पीछे ही होसक्ता है, यदि यह मानलिया जायकि लाला वल्लभदासने डेढ सौ के पीछे अढाईसौ दूसरी वार भेजे और यह लाला रामशरणदासके मुन्शीकी भूलमे लाहौरके रुपयोंकी साथ जमा हो गये परन्तु उन डेढ सौ का फिर भी पता न लगा कि गुरुने गड़प किये या वे लेने। देखो इन डेढ सौ रुपयेकी वावत स्वामीजी ने अनेक झूठ बनाये प्रथम यह कि लाला रामशरणदासको लिखकर जवाब मगवाया दूसरा यह कि दोनो स्थानोंके रुपये भूलसे मिलकर जमा होगये तीसरा यहकि लाहौर और गुरुना सपुरके रुपये एक दिन आये चौथा यह कि लाहौरके चार सौ रुपयोंको डेढसौ वतलाया लाहौरके जिन महाशयोंने रुपया भेजा है वे हमारी लिखावटको देखकर भले प्रकार जान जायगे, और स्वामीजीकी सचाईक अच्छी तरह भेदी होवेंगे कौन विश्वास करसकता है कि लाहौरसे जहाँ हजारों शुभचिंतक मुन्शी इन्द्रमणिके रहते हैं और हजारों स्वामीजीके विश्वासी बस्ते हैं वहांसे केवल डेढ सौ रुपया चन्दा होवे, अगर स्वामीजीकेपास इन अढाई सौ के सिवाय कुछ नहीं आया तो छ हजार कहाँ गये जिनकी वावत स्वामीजीने मुन्शी कन्हैयाईलाल अलखधारीसे आगरेमें कहायाकि मुन्शी इन्द्रमणिके मुकदमें में अबतक चन्दः के छः हजार रुपये आये हैं, और मेरठमें एक दुकानपर जमा हैं, लाला रामशरणदास तो अपने पास चौद सौ के लगभग आये हुये स्वीकार करते हैं, छ हजारका शेष भाग किसके घर गया मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारीका पत्र पहिले लिखा जाचुका है, सभाका ढकोसला अढाई वर्ष पीछे घड़ा गया है, इसका खडन प्रथम ही हो चुका है पुन पुनः करनेकी आवश्यकता नहीं है, यदि मान लिया जाय सभा स्थापित हुई भी तो उसके प्रतिकूल करनेवाले और प्रणत्यागी स्वामीजी ही हैं, कि उन्होंने मुकदमें के आरम्भ ही में लाला रामशरणदासको दो सौ रुपये देनेसे रोक दिया और जिस कामके लिये रुपया जमा कियाथा उसमें आरम्भ ही से खर्च करना नहीं चाहा तब मुन्शी इन्द्रमणिने उनकी नेक नीयती प्रकाशित करदी और भारतमित्रादि समाचार पत्रोंमें मुद्रित करादियाकि स्वामीजी ने मेरे मुकदमें के बहानेसे हजारों रुपया इकठा किया और मुकदमें में एक कौड़ी खर्च करनी नहीं चाहते, बस स्वामीजी ने भी मुन्शी जी की निन्दा करनी प्रारम्भकी, आर्य्यभाई न्याय करें कि यदि इस मामलें में

स्वामीजीका कुछ स्वत्व सम्बन्ध नहीं थीं तो उसी समय मुन्शी इन्द्रमणिको च न्द' के द्रव्यका हिसाब देकर पृथक क्योंनहीं होगये । परन्तु पृथक् क्योंकर होते लालचतो लगाहुवाथा, अनेकबार मुन्शी इन्द्रमणिने उनको समझायाकि तुमने चन्द मेरे मुकद्दमेंके बहानेसे लिया है तो उसीमें खर्च करना उचित है और हाईकोर्टके अपीलके लिये मुझको उचित द्रव्य दीजे वरन बदनामी हो गी और सन्यासको कलङ्क लगेगा । परन्तु वह ऐसा कब सुनने वालेथे, तब ला चार मुन्शीजीने भी उनको आदेहोयों लियाकि यदि तुम मुकद्दमें के खर्चमें कुछ नहीं लगाते तो हम चन्द' देने वालोंको आपके गुप्त भेदसे भेदी करते हैं, उस समय गुरु चेलेने गोष्टि करके और अपनी बदनामीसे डरकर छःसौ रुपये हा ईकोर्टके अपीलके वास्ते दिये । यथार्थमें मुन्शी इन्द्रमणिसे स्वामीजीको हिसाब लेनेका अधिकार नहीं है, कि उन्होंने मुन्शीजी की एजटी (मुखत्यारी) स्वीकार करी है, उनके नामसे चन्द लिया और लोगोंको लिखाकि मुन्शीजी के मुक दमें के वास्ते रुपया जमा करके हमारे पास भेजो हम उनको भेजेंगे । बस मु न्शीजी कह सक्ते हैं कि दयानन्द सरस्वती कौन है कि हमसे हिसाब मांगें ब ल्कि मुन्शीजी उनसे हिसाब ले सक्ते हैं, क्योंकि देनेवालोंने चन्दा स्वामीजी के पास इसलिये भेजा है कि वे सर्वत्र मुन्शीजीको देवें, अगर मुन्शीजीने येही कहाकि हमारे ही नाम चन्दः आताहै तो क्या आश्चर्य है, जिन महाशयोंने चन्द' का रुपया स्वामीजीके पास भेजा है उन्होंने मुन्शीजी ही के नामसे रवा ना किया है, यहाँ में अपने वचनके प्रमाणमें कुछ चन्द देने वालोंके पत्र जो मुन्शी इन्द्रमणि के नाम इस विषयमें आये हैं, उनका खुलासा लिखता हूं जि नसे सिद्ध होता है कि चन्दःका द्रव्य मुन्शीजीके वास्ते स्वामीजी और लाला रामशरणदासके पास भेजा गया था ॥

(१) बाबू रत्नचन्द साहिब सैक्रेटरी आर्य्य समाज लाहौर सम्पादक आर्य्य अखबार अपन सख्या ११४ तारीख ३० अगस्त सन् १८८० ई० के पत्रमें लिखते हैं कि कुछ रुपया यहांसे जमा करके मेरठ भेजा गया है और कुछ जमा होरहा है जब बहमी जमा होजावैगा उसी जगह इरसाल कर दिया जावैगा आप आर्य्य समाज मेरठसे रुपया मगालें,

(२) लाला विशनुसहाय साहिब सैक्रेटरी आर्य्य समाज फीरोजपुर अपने २१ सितम्बर सन १८८० ई० के पत्रमें लिखते हैं कि चलते महीनेकी १९ तारीख को एक हुन्डी २२४) रुपये ग्यारहआनाकी आपके मुकद्दमें के ख र्चकी सहायताके लिये स्वामीजी की आज्ञानुसार लाला रामशरणदास साहिब

रईस मेरठके पास भेज चुकाहू आशा है कि वहांसे रुपया आपके पास पहुचेगा इत्यादि० ।

(३) लाला मल्लूमदासजी २ सितम्बर सन् १८८० ई० को गुरुदासपुरसे लिखते हैं कि यहा के समाजके सभासद और कुछ दफ्तरके और अमलेके लोगों पर सब हाल विदित किया गया उन्होंने मुहब्बत के साथ डेढसौ रुपये जो आने चन्द" करके दिये सो हमने बतारीख ३१ अगस्त् सन् १८८० ई० को स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीको मेरठ भेज दिये हैं सो आपके पास पहुचेंगे औरभी कोशिश कररहा हू जो कुछ और होवेगा किया जावेगा गुरुदासपुर एक छोटासा गॉव है।

(४) लाला रामचरण साहिब रईस फर्रुखाबाद २१ अगस्त सन् १८८० ई० को लिखते हैं कि आपके विषयमें चन्दः करनेके लिये अवरंग सभा हुई और सभासदोंकी यह सम्मति हुई कि सौ रुपये भेजने अवश्य चाहियें और पैंतीस रुपयेके अनुमान लाला मदनमोहनलाल की आमद रफ्तमें खर्च हुये हैं वहुभी सभाकोपपर पडेंगे, अब आपको सूचित करता हू कि आप लिखें बराबर उक्त रुपया मनीआर्डर द्वारा भेजदिया जावेगा, औरभी जोकाम हमारे लायक हो और हमसे हो सकेगा उसके करनेमें किसी प्रकारकी कोताही नहोगी।

(५) फिर २७ अगस्तको उक्त लाला रामचरण लिखतेहैं कि आपका पत्र बैरिस्टरके विषय और अन्य लेखों सहित आया बडी खुशी हुई और एक चिट्ठी नागरी आपको भेजीथी इसपत्रमें उसका कुछ हाल नहीं स्यात् कि पहुची होगी, और प्रथम सौ रुपये यहाँकी समाजसे स्वीकार हुयेहैं वह आज्ञा होतो आपकी सेवामें रवाने कियेजावें या मेरठ समाजमें उसके मन्त्रीके लेखानुसार भेजदिये जावें और वहाके समाजसे तीनसौ और लाहोर आदिकी समाजसे डेढ हजार जमा हुयाहै

(६) और उक्त रामचरण का लेखहै कि जो चन्दः यहाँसे सौ रुपये हुवा था स्वामीजीके लेखानुसार लाला रामचरणदासके पास मेरठ भेजदिया गया अब सब रुपया जो कुछ और समाजोंसे हुवाहै सब आपके पास जल्द भेजदिया जावेगा १४ अगस्त सन १८८० ई० *

(७) फिर फर्रुखाबादहीसे १७ सितम्बर को बाबू जगन्नाथप्रसाद रईस लिखते हैं कि आपका ११ अगस्तका लिखा पत्र पाया हाल मालूम हुआ आप

* यह तारीख १४ सितम्बर मालूम होती है भूलसे १४ अगस्त छपगई है

खातिर जमा रखिये खर्चके अनुसार रुपया आपके पास पहुंच जावेगा, समाज फर्रुखाबादका रुपया मेरठ रामशरणदासके पास भेज दिया गया मालूम होताहै कि-और समाजोंका रुपयाभी उनहीकी मारफत आपके पास पहुंचाहोगा, और जो नपहुंचा होगातो अब पहुंच जावेगा, आपको किसी तरहकी तकलीफ नहोगी

(८) मुन्शी जानकीप्रसाद सब पोस्टमास्टर रुड़की अपने १५ सितम्बर सन् १८८० ई० के पत्रमें लिखतेहैं कि आपके मुकदमेंका हाल सुनकर यहांके हिन्दुओं को अत्यन्त खेदहुआ है, जिसका लिखना व्यर्थ है संक्षिप्त वृत्तांत यहहै कि यहांके लोगोंने एक सभा करके कुछ रुपया उक्त मुकदमे की सहायतामें देने को एकत्र कियाहै यदि आज्ञाहोतो भेजदियाजाय, बिनापूछे भेजना इसलिये उचितनहीं समझागयाकि जनाबको बुरा न लगे, और मुकदमेंके हालसे सूचित करतेरहोगे तो दूसरा प्रबन्ध किया जायगा, यहाँके आर्य्यसमाज से सौ रुपये मुन्शी आनन्दलाल मंत्री आर्य्यसमाज मेरठ द्वारा भेजेगयेहैं आशाहै कि आपके पास पहुंचे होंगे पहुंचके समाचार अवश्य लिखियेगा इत्यादि० ॥

इसीप्रकारके अनेकपत्र हमारेपास मौजूदहैं परन्तु स्थानाभावसे दाखल नहीं कियेगये आठही बहुतहैं और स्वामीजीके झूठाकरनेको इतनाही प्रमाण अधिक है और उनके देखनेसे विदित होताहै कि चन्दः मुन्शीजीहीके मुकदमेंके वास्ते कियागयाथा दयानन्दसरस्वतीके खर्चके तथा वेदमतकी रक्षाके लिये नहींथा फिर स्वामीजी क्योंकर उस रुपयेके मालिक बनबैठे इसीकानाम सन्याससहै और इसीकानाम त्यागहै, तत्पश्चात् एक पृष्ठमें जो स्वामीजीने कथा प्र छापीहै वह बिल्कुल झूठीहै हम उसके उत्तरमें समय व्यर्थ व्यतीत करना उचित नहीं समझते झूठेसेबातनहीं, अब आगेके लेखका उत्तर लिख सचझूठका निर्णय करातेहैं, मुरादाबाद जजीमें जितनी मुन्शी इन्द्रमणिने कोशिशकरी उससे मिस्टर हिलसाहिब बैरिस्टर और बाबू नरेन्द्रचन्द्र और बाबू केलनाथ और बाबू रत्नचन्द और लाला माधोदास आदि वकील हाईकोर्ट मेंदीहैं, जिसको विश्वास नहो वह दरियाफ्त करले बल्कि खुद लाला रामशरणदास लाला शादीराम सहित उपस्थितथे। किंतु स्वामीजीतो उलटे जजी मुरादाबादमें भी मुकद्दमेंके बिगाड़ने पर उतारू थे कि आवश्यकतापर दो सौ रुपये नहींदिये। गुप्तखर्च करनेका तर्क स्वामीजीकी बुद्धिका अजीर्णहै, कि सदैव मांगने खाने परही रहे हैं, राजकार्य्यकी खबर उनको नहींहै, जिस सूरतमें साधारण मुकद्दमें गुप्त और प्रकट हजारहा रुपया खर्च होताहै तो इस मुकद्दमें का क्या जिकरहै, खैर स्वामीजी इस बातको तो मानते हैं कि मुन्शी इन्द्रमणिने हाईकोर्ट

में किसी प्रकारके खर्चसे हाथ न हटाया, और स्वामीजी यहाभी विघ्नकारी हुये कि जब रुपयेकी अत्यंत आवश्यकता हुई और लाला हरकृष्णदास साहिब वकील हाईकोर्टने स्वामीजीको बारम्बार लगातार पत्र पठाये कि चन्द्र के रुपयेमें से इतना रुपया शीघ्र भेजो, परन्तु स्वामीजी ऐसे चुप हुये कि किसी चिट्ठीका भी उत्तर नहीं दिया, खैर हाईकोर्टसे जो कुछ हुआ यह उनही की नीयतका फलहै, इसके व्यतिरिक्त यह किसकी नीयतका फल है कि लाला कामता प्रसाद आदि स्वामीजीकी तर्फसे मुन्शी बख्तावरसिंह पर शाहजहानपुरकी अदालतमें नालशीहुये और अपनासा मुहलेकर घरआये।

स्वामीजी सिद्ध करते हैं कि हमनेही गवर्नरजनरलके यहाँसे सौ रुपये दंड दूर कराया, आर्य्यभाई खयाल करें कि स्वामीजीने यह कितना बड़ा झूठ बोलाकि जिसकी बदौलत वे प्रतिष्ठित हाकिमोंके सन्मुख भी यथार्थ रीतिसे सर्वथा झूठे सिद्ध हुये, क्योंकि स्वामीजीको इतना भी माल्म नहीं है कि सौ रुपये क्योंकर छूटे और किस हाकिमने छोड़े। परंतु यह शीघ्रतासे लिख बैठेकि गवर्नर्जेनरल साहिब बहादुरके यहाँसे हमने मुआफ कराये। धन्य महाराज धन्य आपके सन्यासपर सत्य कहना आपके कौन कौनसे इष्ट मित्र गवर्नर्जेनरलसे मिले और मुन्शी इन्द्रमणिकी उन्होंने सिफारसकरी? मुन्शी इन्द्रमणि परतो भांति भांतिके दोष लगायेही थे अब गवर्नर्जेनरल साहिब बहादुर परभी दोष लगावे नहीं डरे, यदि गवर्नर्जेनरल साहिबको यह भेद माल्म हो और वे स्वामीजीके दोषारोपण से ज्ञात होकर अपने अधिकारोंको काममें लावैं तब स्वामीजी को झूठ बोलनेका स्वाद माल्म होय अब स्वामीजी बुद्धिके कानोंसे अज्ञान रूप रुईकी बत्ती निकालकर श्रवणकरलें कि वह सौ रुपये जुर्माना लफटैंन्ट गवर्नर इलाहाबादकी आज्ञासे मुआफ हुआ है, गवर्नर्जेनरल साहिब बहादुर के यहां तो मुकद्दमेकी मिश्ल भेजने तककी भी नौबत न आई, इस सूरतमें यदि स्वामीजीको कुछ हया होतो उनको सिधारैं, यदि स्वामीजी अब भी अपना धर्म सम्भालें तो जितना रुपया मुन्शी इन्द्रमणिके मुकद्दमेके चन्दका दोनो गुरु चेलोंके आधीन है सर्वत्र मुन्शीजीको देदेवें क्योंकि उन्होंने मुन्शीजी के नामसे रुपया जमा किया है, इसलिये उनको यह अधिकार नहीं है कि खुद मालिक बनबैठे, मुन्शी इन्द्रमणिको अपने पास पहुंचे रुपयेके प्रकाशित करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन्होंने किसी दूसरेके नामसे रुपया ग्रहण नहीं किया किंतु अपनेही नामसे लिया और देने वालोंने अपनी खुशीसे उनको दिया, हाँ यदि मुन्शीजी किसी दूसरेके नामसे चन्दः एकत्र करते तो अवश्य उनको भी

दी कौड़ीका हिसाब देना उचित होता इस लिये स्वामीजी और लाला राम शरणदासको उचित है कि मुन्शीजी को हिसाब समझावें और छः हजार का शेष द्रव्य सारा मुन्शीजी को देदें, और रसीद हस्ताक्षरी लेवें जबतक ऐसा नहीं करेंगे इस कलङ्कसे मुक्त नहोंगे क्या इसी ईमान्दारीपर एक लक्ष रुपया उपदेशक मंडलीके बहानेसे निकट बुलाया चाहते हैं, । फिर देखो यह व्यर्थ झूठ बोलते हैं किस दिन मेरठमें सभा स्थापित हुईथी और कौन कौन उसके सभासद नियत हुये थे और किस समय उन्होंने यह सम्मति कीथी कि शेष धनको स्वामीजी ब्याजपर साहूकारको देवेंगे, और लैनदेनकी कोठी खोलेंगे। वाहरी अढाई वर्षकी दिनचर्य्या रुपये डकारने के लिये आपने सभाका ढको सला बनाया क्या सन्यासीका यही धर्म है ? इसके व्यतिरिक्त मेरठके लोग कौन हैं कि चन्द के द्रव्यके विषय सम्मति करके गुरुजीकी गुप्त इच्छा पूरी करें ईमान्दारी तो यह चाहती है कि छ हजारकी बाकी का रुपया मुन्शी इन्द्रमणिके हवाले करें और वे मुसल्मानोंके साथ धार्मिक वादानुवादमें लगावें, क्योंकि देने वालोंने रुपया इसी लिये दिया है, इस विषयमें चन्दः देनेवालोंके पत्र साक्षी और प्रमाण हैं और उनमें से नमूने के तौर पर कुछ ऊपर नकल किये गये यदि अब स्वामीजीकी खातिरसे चन्द देनेवाले भी अपनी पहिली लिखावटसे प्र तिकूल कहने लगें तो ऐसा करना धर्मके भी प्रतिकूल होगा। स्वामीजी कहते हैं कि जबकभी आर्य्योंका अन्य मतवालोंसे झगड़ा होतो इस चन्द के द्रव्यसे खर्च किया जाय यह कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि देने वालोंने रुपया के वल एकही मुकद्दमेके लिये दिया है कि मुन्शी इन्द्रमणिकी मुसल्मानोंसे सहायता कीजाय, यह समझकर नहीं दिया है कि इस रुपयेसे अन्य हिन्दुजनहीको स ताया जाय, इस लिये ईमान्दारीकी यही बातथी कि उसी झगड़ेमें यह द्रव्य लगाते सो आपने प्रथम हीमें एक कौड़ी खर्च करनी नहीं चाही दूसरे मतवा लोंके झगड़ेमें तो क्या लगाओगे, स्यात् दूसरे मतवाले तुम पुराणिक लोगोंको समझते हो क्योंकि वैदिक आर्य्योंके प्रतिकूल केवल पौराणिक ही होसक्ते हैं, इस्से आपका गुप्त विचार यह पाया गयाकि पौराणिक लोगोंके खडनमें यह रुपया खर्च करें परंतु यह धर्म्मके प्रतिकूल है और जिस हडियामें खाना उसी में छिद्रकरना इसीका नाम है, क्योंकि उस रुपयेमें दो तिहाईसे अधिक पौरा णिक लोगोंका है वाहरी ईमान्दारी जिन महाशयोंसे मुन्शी इन्द्रमणिका नाम लेकर रुपया लिया उससे उनहीका खडन करोगे यह सर्वथा अधर्म है, किंतु उचित तो यही है कि जिस कामके लिये लोगोंने रुपये दिया है उसीमें लगाया

जावे बस गुरु और चेलेको उचित है कि छ हजारका शेषधन मुन्शी इन्द्रमणि-को प्रदान करें जिस्से व मुसल्मानोंके साथ वादमें खर्च करें स्वामीजीके व्यर्थ लालचका फल यह हुवाकि जिन मुसल्मानों ने हमारे देवतों और ऋषियोंके विषयमें मनमाने कुवचन भरे लेख पुस्तकादि लिखे हैं उनपर नालिशकरनी रु कगई और "इन्द्रवज्री" के छपनेमें झमेला हुआ, इस लिये हम दृढताके साथ कह सकते हैं कि इस बड़े उप री कार्य्यमें स्वामीजीके लालचनेही विघ्नडाला यदि मुन्शीजीको किसी प्रकारका लालच होता तो स्वामीजी और लाला रा मशरणदाससे उसी समय छ. हजारका दावाकरते क्यों छ' हजारमें से छ' सौ लेकर ही चुप बैठ जाते। परन्तु स्वामीजीका लालच यहाँ तक बढ़ाकि मुन्शीजी के नामसे अपने पास आये हुये द्रव्यको लौटा देनेके बदले उलटा उनसे हिसाब मांगने लगे, अब विद्वानलोग समझ लेवैंकि धर्म्मके प्रतिकूल कार्य्य स्वामीजी ने किया या मुन्शीजीने ? परमात्माका धन्यवाद है कि स्वामी दयानन्द सरस्व ती ने जितने दोष मुन्शी इन्द्रमणिपर लगायेथे वे सब स्वामीजी को ही सिद्ध होते हैं, अब स्वामीजीके लखका यह उत्तर सम्पूर्ण करके आगे सम्पादक "देशहि तैषी" के लेखका उत्तर लिखा जाता है, यद्यपि मिथ्यावादीका कलंक झूठ बो लना ही प्रबल है, परन्तु कभी २ उसके मुखसे भी विना विचारे सत्यबात नि कलही जाती है जिससे उसका ऽसत्यवादी होना स्वतः सिद्ध होजाता है, देखो उसने लिखा है कि जितना रुपया मुन्शी इन्द्रमणिके झगड़े विषय आपके पास आया। इसस स्पष्ट सिद्ध है कि उस सर्वत्र द्रव्यका अधिकारी मुन्शी इ न्द्रमणि है क्योंकि वह रुपया उनकी ही सहायता के लिये एकत्रित किया गया था, फिर किसमुहसे हिसाब मांगा जाता है, स्वामीजीको उचित है कि खुद मु न्शीजीको हिसाब देवैं, क्योंकि उन्होंने मुन्शीजी के नामसे रुपया जमा किया है, और यदि यह मान लिया जायकि स्वामीजी ने अपना बनावटी कल्पित हि साब किसी समाचार पत्रमें मुद्रित भी करादिया तो उससे वह छुटकारा नहीं पासक्ते क्योंकि आश्चर्य्य नहीं कि वह अखबार सम्पूर्ण चन्द' देने वालोंकी द ष्टिमी न पड़ा हो, उसके लेखसे वे भेदी न हुये, बहुधा पत्र ऐसे हैं कि जिनका बहुधा मनुष्य नाम तक नहीं जानते, बस जब कि चन्द देनेवालोंको खबर तक नहो तो वे क्योंकर जान सक्ते हैं कि स्वामीजीके हिसाबमें हमारा रुपया जमा है या नहीं। इस लिये स्वामीजी सत्यवक्ता हुआ चाहें तो मुन्शी इन्द्रमणिको हि साब देवैं कि उनके पास बहुधा चन्द देने वालोंके पत्र मौजूद हैं, जिससे वह स्वामीजीके सचझूठको जानसक्ते हैं, जबतक स्वामीजी यथार्थ हिसाब देकर मु

पथन मुन्शीजीको न लौटादेंगे कलङ्कसे न बचेंगे, व्यर्थ गाल बजाकर या अखबारोंके कागज़ काले करके कलङ्कसे किसी प्रकारभी नहीं छूटसकते, प्यारे सम्पादक "देशहितैषी" तुमने किस आशापर रोजा खोला जो झूठे गवाहबन गये? आर्य्यसमाजमें शामिलहोनेका यहीफल है कि झूठी गवाही देने पर कटिबद्धहो, हे आर्य्यभाईयों प्रथम आपको यह निश्चय करना चाहिये कि मुन्शी इन्द्रमणिने मेरठमें समाजके सन्मुख कोई प्रण किया या नहीं, वादीके कहनेपरही कोई न्यायाधीश न्याय नहीं करता, और यदि मानलियाजावे कि स्वामीजीके सन्मुख मुन्शीजीने प्रणभी कियातो इसमें स्वामीजीकाही अपराध सिद्ध है कि स्वत घरमें बैठकर अपने प्रयोजनका प्रणतो मुन्शीजीसे करालिया, लेकिन चन्दः देनेवालोंको उसके समाचार तक नहींदिये, जबकि स्वामीजीका यो देसे, मामलेमें यह हाल हुवातो जिस समय एकलक्ष रुपया परोपकार मंडलीके लिये जमा करलेंगे तो क्याही कुछ करेंगे, अतएव हमारी यही प्रार्थना है कि जो कोई न्यायवान पुरुष इस हमारे उत्तरको शुद्ध अन्तःकरणसे देखे और विचारेगा वह स्वामीजीकी सत्यसीलता और सन्यास ग्रहणताको उत्तम प्रकार समझलेगा। इति० *

माघ सम्वत् १९३९ में स्वामीजी कृत ऋग्वेद भाष्य अंक ४६।४७ वेदिक यंत्रालय प्रयागमें छपा,

जब उदयपुरमें रहतेहुवे स्वामीजीको अधिक दिनहुवे तो पूर्वको चलनेका बिचार किया और अपना एक स्वीकारपत्र (वसीयतनामा) लिख महाराणाजीके दर्बारमें रजिष्ट्री कराया जिसकी नकल इसप्रकार है।

राजकीयमुद्रा

आज्ञा (राज्ये श्री महद्राजसभा) सख्या २९

आज यह स्वीकारपत्र श्रीमान् श्री १०८ श्री धीरवीर चिरप्रतापी विराजमान राज्ये श्री महद्राजसभाके सन्मुख स्वामीजी श्री दयानन्द सरस्वतीजीने सर्वरीत अगीकार किया अतएव (आज्ञा हुई) कि प्रथम प्रति तो इस स्वीकारपत्रकी स्वामीजी श्री दयानन्द सरस्वतीजीको राज्येश्री महद्राजसभाके हस्ताक्षरी और मुद्रांकित दीजावे, और दूसरी प्रति उक्त सभाके पत्रालयमें रहै और एक २ प्रति इसकी राज यन्त्रालयमें मुद्रित होकर इस स्वीकारपत्रमें लिखे सब

* इस उत्तरके विषयमें जो लिखापढ़ी आर्य्यसमाज मेरठ और जगन्नाथदास के मध्य हुई उसको हम नहीं लिखते क्योंकि इस पुस्तकका संबंध केवल स्वामीजी और उनके लेखों सेही है

समासदोंके पास उनके ज्ञातार्थ और इसके नियमानुसार वरतनेके लिये भेजी जावे, सम्वत् १९३९ फाल्गुण कृष्णा० ९ मंगलवार तदनुसार ता० २७ फरवरी सन् १८८३ ई० (हस्ताक्षर महाराणा सज्जनसिंहस्य) (श्री मेदपाटेश्वर और राज्येश्री महद्राजसभापति) (राजे श्री महद्राजसभाके सभासदोंके हस्ताक्षर) (१) राव तखतसिंह वेदले (२) राव रत्नसिंह पारसौली (३) द० महाराज गज सिंहजी का। (४) द० महाराज रायसिंहजी का (५) ह० मामा वखतावरसिंहस्य (६) द० राणावत उदयसिंह। (७) ह० ठाकुर मनोहरसिंह (८) ह० कविराजा श्यामलदासस्य (९) ह० सही बाला अर्जुनसिंहका) (१०) द० राव पन्नालाल) (११) ह० पुरोहित पद्मनाथस्य (१२) जा० मुकन्दलाल (१३) ह० मोहनलाल पांड्या॥

स्वीकारपत्र

मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती निम्न लिखित नियमानुसार त्रयोविंशति सज्जन आर्य्य पुरुषोंकी सभाको वस्त्र पुस्तक धन और यंत्रालय आदि अपने सर्वस्वका अधिकार देता हूं और उसको परोपकार स्वकार्य्यमें लगानेके लिये अधिष्ठाता करके यह पत्र लिखेदेताहूंकि समयपर कार्य्यकारीहो जो यह सभाकि जिसका नाम परोपकारिणी सभाहै उसके निम्न लिखित त्रयोविंशति सज्जन पुरुष सभासद हैं, उसमेंसे इससभाके सभापति।

(१) श्रीमन्महाराजाधिराज महिमहेंद्रयावदार्य्यकुलदिवाकर महाराणाजी श्री १०८ श्री सज्जनसिंहजी वर्म्मा धीरवीर जी० सी० ऐस० आई० उदयपुराधीश, उदयपुर मेवाड़।

(२) उपसभापति लाला मूलराज एम० ए० एकस्ट्राएसिसटैंट कमिश्नर प्रधान आर्य्यसमाज लाहौर जन्म स्थान लुधियाना,

(३) मंत्री श्रीयुत कविराज श्यामलदासजी उदयपुर राज मेवाड़॥

(४) मंत्री लाला रामशरणदास रईस उपप्रधान आर्य्यसमाज मेरठ।

(५) उपमंत्री पंड्या मोहनलाल विष्णुलालजी निवासी उदयपुर जन्मभूमि मथुरा

और सभासद

(१) श्रीमन् महाराजाधिराज श्री नाहरसिंहजी वर्म्मा शाहपुरा राज मेवाड़॥

(२) श्रीमत् राव तखतसिंहजी वर्म्मा बेदला राजमेवाड़ (३) श्रीमत् राज्य राणा फतहसिंहजी वर्म्मा देलवाड़ा राज मेवाड़ (४) श्रीमत् रावत अर्जुनसिंहजी वर्म्मा आसींद राज मेवाड़ (५) श्रीमत् महाराज श्री गजसिंहजी वर्म्मा उदयपुर मेवाड़ (६) श्रीमत् राव श्री बहादुरसिंहजी वर्म्मा मसूदा जिला अजमेर (७)राव

बहादुर पंडित सुन्दरलाल सुपरैन्टेन्डैंट वर्कशोप और प्रेस अलीगढ़ आगरा (८) राजा जयकृष्णदास सी ऐस आई डिप्टी कलक्टर बिजनौर मुरादाबाद (९) बाबू दुर्गाप्रसाद कोशाध्यक्ष आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद (१०) लाला जगन्नाथप्रसाद फर्रुखाबाद (११) सेठ निर्भयराम प्रधान आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद बिमाऊ राजपूताना (१२) लाला कालीचरण मंत्री आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद, (१३) बाबू छेदीलाल गुमास्ते कमसरियट छावनी मुरार कानपुर (१४) लाला साँईदास मन्त्री आर्य्यसमाज लाहौर (१५) बाबू माधवदास मन्त्री आर्य्यसमाज दानापुर, (१६) रावबहादुर रा० रा० पंडित गोपालराव हरि देशमुख मेम्बर कौंसल गवर्नर बम्बई ॥ और प्रधान आर्य्यसमाज बम्बई पूना (१७) रावबहादुर रा रा महादेव गोविन्द रान्डे जज्ज पूना, (१८) पंडित श्यामजी कृष्ण बर्म्मा प्रोफेसर संस्कृत यूनीवर्स्टी आक्सफोर्ड लेंडन बर्म्बई,

॥ सभा के नियम् ॥

(१) उक्तसभा जैसेकि वर्तमानकाल या आपतकालमें नियमानुसार मेरी और मेरे समस्त पदार्थोंकी रक्षाकरके सर्वहितकारी कार्य्यमें लगाती है वैसे मेरे पश्चात् अर्थात् मेरे मृत्युके पीछे भी लगायाकरें ॥ प्रथम वेद और वेदाङ्गादि शास्त्रोंके प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने पढ़ने पढ़ाने सुनने सुनाने छापने छपाने आदि में ॥

द्वितीय ॥ वेदोक्त धर्मके उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक मंडली नियत करके देशदेशांतर और द्वीप द्वीपांतरमें भजकर सत्यके ग्रहण और असत्य के त्याग कराने आदिमें ।

तृतीय आर्य्यावर्त्तीय अनाथ और दीन मनुष्योंके संरक्षण पोषण और सुशिक्षामें व्ययकरे और करावे ॥

(२) जैसे मेरी विद्यमानतामें यहसभा सबप्रबन्ध करती है वैसेही मेरे पश्चात्भी तीसरे या छटे महीने किसी सभासदको वैदिक यन्त्रालयका हिसाब किताब समझने और परताल्ने के लिये भेजाकरे और वह सभासद जाकर समस्त आयव्यय और संचय आदिकी जांच परतालकरे और उनके तले अपने हस्ताक्षर लिखदे और उस विषयका एक २ पत्र प्रति सभासदके पास भेजे और उसके प्रबन्धमें कुछ हानि लाभ देखे उसकी सूचना अपने भी परामर्श सहित प्रत्येक सभासदके पास लिखभेजे पश्चात् प्रत्येक सभासदको उचित है कि अपनी २ सम्मति सभापतिके पास लिखकर भेज दे और कोई सभासद इस विषयमें आलस्य अथवा अन्यथा व्यवहार न करे । -

(३) इस सभाको उचित है किंतु अत्यावश्यक है कि जैसा यह परम धर्म और पर्मार्थका कार्य्य है, उसको वैसाही उत्साह पुरुषार्थ गंभीरता और उदारतासे करे

(४) मेरे पीछे उक्त त्रयोविंशति आर्यजनोंकी सभा सर्वथा मेरे स्थानापन्न समझीजाय अर्थात् जो अधिकार मुझे अपने सर्वस्वका है वही अधिकार सभाको है, और रहे, यदि उक्त सभासदोंमेंसे कोई इन नियमोंसे विरुद्ध स्वार्थके वशहोकर वा कोई अन्यजन अपना अधिकार जतावे तो वह सर्वथा मिथ्या समझा जाय ॥

(५) जैसे इससभाको अपने सामर्थ्यके अनुसार वर्तमान समयमें मेरी और मेरे समस्त पदार्थोंकी रक्षा और उन्नति करनेका अधिकार है वैसेही मेरे मृतक शरीरके संस्कार करनेकरानेकाभी अधिकारहै, अर्थात् जब मेरी देह छूटे तो न उसको गाड़े न जलमें बहावे न जंगलमें फैंकने दे केवल चन्दनकी चिता बनावें और जो यह संभव न होवे तो दो मनचन्दनचारमन घी पांच सेर कर्पूर अढाई सेर अगर तगर और दश मन काष्ट लेकर वेदानुकूल जैसेकि संस्कार विधिमें लिखाहै वेदी बनाकर तदुक्त वेदमंत्रोंसे होमकर के भस्मकरे, इससे भिन्न कुछभी वेद विरुद्ध क्रिया न करे और जो सभाजन उपस्थित नहों तो जो कोई समय पर उपस्थितहो वही पूर्वोक्त क्रिया करदे और जितना धन उसमें लगे उतना सभासे ले ले और सभा उसको दे दे ॥

(६) अपनी विद्यमानतामें में और मेरे पश्चात् यह सभा चाहे जिस सभासदको पृथक् करके उसका प्रतिनिधि किसी अन्य योग सामाजिक आर्य्य पुरुषको नियत करसकती है परंतु कोई सभासद सभासे तबतक पृथक् न किया जाय जबतक उसके कार्य्यमें अन्यथा व्यवहार न पाया जाय ॥

(७) मेरे सदृश यह सभा सदैव स्वीकारपत्रकी व्याख्या वा उसके नियम और प्रतिज्ञाओं के पालन वा किसी सभासदके पृथक् करने और उसके स्थानमें अन्य सभासदके नियत करने वा मेरे विपत्त और आपत्काल के निवारण करने के उपाय और यत्न में वह उद्योग करे जो समस्त सभासदोंकी सम्मतिसे निश्चय और निर्णय पाया वा पावे, और जो सम्मतिमें परस्पर विरोध होतो बहु पक्षानुसार प्रबन्धकरे, और सभापतिकी सम्मतिको सदैव द्विगुण जाने।

(८) किसी समयभी यह सभा तीन से अधिक सभासदोंको अपराधकी परीक्षा कर पृथक् न करसके जबतक पहले तिनके प्रतिनिधि नियत न करले।

(९) यदि सभामेंसे कोई पुरुष मरजाय वा पूर्वोक्त नियमों और वेदोक्त नियमों और वेदोक्त धर्म्मोंको त्यागकर विरुद्ध चलने लगे तो इस सभाके सभापतिको उचितहै कि सब सभासदोंकी सम्मतिसे पृथक् करके उसके स्थानमें किसी अन्य योग्य वेदोक्त आर्य्य पुरुषको नियत करदे परतु जबतक निश्चय कार्य्यके अनतर नवीन कार्य्यका आरम्भ नहो।

(१०) इस सभाको सर्वथा प्रबन्ध करने और नवीन युक्ति निकालने का अधिकार है पर पूरा २ निश्चय और विश्वास नहोतो पत्रद्वारा समय नियत करके सम्पूर्ण आर्य्यसमाजों से सम्मति ले ले और बहु पक्षानुसार, उचित प्रबंध करे।

(११) प्रबन्ध न्यूनाधिक करना वा स्वीकार वा अस्वीकार करना वा किसी सभासदको पृथक् वा नियत् करना वा आय व्यय और सचयकी जांच पड़ताल करनाआदि लाभ हानि सब सभासदों को वार्षिक वा षट मासिक पत्र द्वारा सभापति छपवाकर विदित करे॥

(१२) इस स्वीकारपत्र सबधी कोई झगड़ा टंटा सामयिक राज्याधिकारियोंकी कचहरीमें निवेदन न किया जाय यह सभा अपने आप न्याय व्यवस्था करले परतु जो अपनी सामर्थ्यसे बाहर होतो राज्यग्रहमें निवेदन करके अपना कार्य्य सिद्ध करले।

(१३) यदि मैं अपने जीतेजी किसी योग्य आर्य्य जनको पारितोषिक अर्थात् पिन्शन देनाचाहूं और उसकी लिखित पढ़त कराके रजिष्ट्री करादूं तो सभाको उचित है कि उसका।माने और दे

(१४) किसी विशेष लाभ उन्नति परोपकार और सर्वहितकारी कार्य्यके वास्ते मुझे और मेरे पीछे सभाको पूर्वोक्त नियमोंके न्यूनाधिक करनेका सर्वथा सदैव अधिकार है, (हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वतीके)

तत्पश्चात् अगलेदिन महाराणाजीने द्वादश शत कलदार रौप्य मुद्रा और एक सन्मान पत्र स्वामीजीको भेटकिया और स्वामीजीके शिष्य रामानन्दको एक शत मुद्रा और एक दुशाला और फीरोजपुरके अनाथालय को ५००) और अनाथों को २००) दिया,

श्री महाराणाजी उदयपुरके दिये हुए सन्मान पत्रकी नकल।

॥ श्रीमदेकलिङ्गेश्वरोजयति।

स्वस्तिश्री सर्वोपकारार्थ कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य्य वर्य श्री ५

श्री मद्दयानन्द सरस्वती यति वर्येषु । इत' महाराणा सज्जनसिंहस्य नतिततय' समुल्लसतुतदतस्तु । आपका अठै सात मास का निवासमू चित अत्यंत आनन्द में रखो ॥ क्योंकि आपकी शिक्षाको प्रकार श्रेष्ठ और उन्नति दायक है, और आपका सयोगसू केही न्यायधर्मादि शारीरक कार्योंमें निस्सन्देह लाभ प्राप्त होयाकी म्हांका सभ्य जनासहित दृढाशाहुई कारणकि शिक्षा और उपदेश वाँ श्रेष्ठ पुरुषांका दृढहोवे है, ज्यो स्वकीय आचरणभी प्रतिकूल नहीं राखे सो यो में यथार्थमिल्यो अब म्हें आपका वियोगको सयोगवो नहींचावाँहाँ परतु आपको शरीर अनेक मनुष्यांके उपकारकहै जीसू अवरोध करणों अनुचित है तथापि पुनरागमन मू आपभी म्हाँका चित्तने शीघ्र अनुमोदित करोगा इत्यलम्। सम्वत् १९३९ फाल्गुण कृ० ५ बुधवार ॥

(हस्ताक्षर महाराणा सज्जन सिंहस्य)

सायकालके समय पीनस तयार हुआ १ मार्च सन् १८८३ ई० बृहस्पति वारको स्वामीजी उदयपुरसे शाहपुराको चलपडे (क्योंकि शाहपुराधीशका बहुत दिनोंसे निमंत्रणथा) तीसरे दिन नीम्बाहेडाके स्टेशनपर पहुचकर रेलमें सवारहो ३ मार्च शनिवारके दिन चितौडमें पहुच राजउदयपुरके नियत किये मकानमें उतरे और तीन रात्रि यहां पूर्णकर ७ मार्चको शाहपुरामें पहुँच और ज्येष्ठ कृष्णा ४ सम्वत् १९४० तक वहाँ बिराजे इस अवसरपर स्वामीजी को एक नवीन वेदान्ती का निम्न लिखित पत्र मिला

ओं सं प्रश्न—श्रीमद्दयाऽऽनन्द स्वामी की सेवामें प्रार्थना श्रीमद्भारतीय प्रजाके अतीव हितकारी हैं, अतएव श्रीमानको परमेश्वर चिरायु करे, श्रीमान १९९९ मतन कों खंडित करते हैं सा परस्पर पक्षपातीय होनेसे खंडनीय हैं, उक्त मतानुसार श्रीमत्स्थापित मतकाभी खण्डन होनेवे । श्रीमानने यह निर्णय कियाहैकि मिथ्याभिमान् स्वार्थ साधनमें तत्पर अन्यायका कारण पापमें प्रवृत्ति चोरी जारी अनृत भाषण पक्षपात किसीका नुक्सान इत्यादि निषिद्ध कर्मोंको छोडना और इनसे विपरीत सद्धर्मानुष्ठान करणों इसप्रकार श्रीमत्के मुखारविन्दुसे समस्त श्रवण किया है परंतु शोककी वार्ता यहहै कि दयानन्द दिग्विजयार्कीय द्वितीय खंड समाजिक प्रकरण प्रमाणाष्टक के सातमें अष्टकमें पृष्ठ १६९ पंक्ति २ या ६ विषै जलसा चितौड में (महाराणा श्रीउदयपुराधीश श्रीमत् दयानद की सेवामें दो वार उपस्थित होतेथे यद्यपि लाटसाहबके आनेसे महाराना साहबको अवकाश कम मिलता था) इतनाही लिखनेसे महाराणा साहबका

दो पक्ष पधारना सिद्ध होजाता परन्तु आप नृगराजके गोदान विषयमें श्लोक फरमाते हैं कि

"यावन्त्यः सिकताभूमें यावन्त्योदिवितारका ॥
यावन्त्यो वर्षधाराश्च तावतीऽस्वदंस्मगा ॥ १ ॥ इति "

तात्पर्य्यछै झूठ बोलने वालेको तृप्ति नहीं होती यह आपका फरमाना यथार्थ है (तथापि उक्त नियम विषय कमर नहीं पड़ने दी) महाराणा साहबने इतिक्षेपः यह क्या आर्य पुरुषोंका समाजहै, नहीं झूठ दम्भादिक दोषनते रहित का नाम आर्य्य है जाको तो लोभी झूठे दाम्भिकोंका समाज कहना चाहिये। इस प्रकार १ जगह झूठके लिखनेसे स्थाली पुलाक न्यायतें सर्वत्र झूठकी सभावना होवेहै, अब विचार करना चाहिये कि श्रीमान् के प्रतिष्ठित आर्य्य गोपालरावजीने अनृत क्यों लिखाहै। क्या श्रीमान् उनकों अधर्म छुड़वानेका सदुपदेश नहींदेते वा स्वयमेव आपके आर्यलोक ग्रंथकर्ता तो अधर्म्माचरणकरें और अन्योंके तांइ धर्म रौचिक वाक्य कहकर निजमतमें लेना और श्रीमान न्यायशील धर्माधर्म्मके निर्णयमें कथनभी करते हैं। पक्षपात रहित न्यायाचरणधर्मः। और पक्षपात सहित न्यायाचरणमधर्म' । अतएव हमको आशाहै कि द० द्वि० स्व० सा० प्र० म० पृ० के सातवें अष्टक पृष्ट १६९ पंक्ति २ वा० ६ विषै पक्षपात रहित सत्यासत्य विचार करेंगे। इति। चैत्र बदि ११ गुरु' सं० १९३८ आपका कृपाभिलाषी साधु अमृतराम नवीन वेदांती। इदानींत निवासी शहर बून्दी ठिकाणा शुक्रेश्वर महादेव कृपापत्र वेगसे चैत्र शुक्ला ११ तक देना।

इसके उत्तरमें स्वामीजीने गोपालरावको यह लिखा।

पंडित गोपालराव हरिजी आनन्दित रहो।

आज एक साधुका पत्र मेरे पास आया वह आपके पास भेजताहूं, साधुका लेख सत्यहै, परन्तु आपने चीतौड़ा सम्बन्धी इतिहासमें न जाने कहांसे क्या सुनसुनाकर लिखदिया उसकाल उस स्थानमें मेरा उदयपुराधीशसे केवल तीन ही वार समागम हुआ आपने प्रतिदिन दोवार होता रहा लिखाहै। आप जानते हैं कि मुझे ऐसे कामोंके परिशोधनका अवकाश नहीं यद्यपि आप सत्य प्रिय और शुद्ध भाव भावित ही हैं और उसी हित चिंतस उपकारक काम कर रहे हैं परन्तु जब आपको मेरा इतिहास ठीक ठीक विदित नहीं तो उसके लिखनेमें कभी साहस मतकरो। क्योंकि थोडासा भी असत्य होजानेसे सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य बिगड़ जाताहै ऐसा निश्चय रक्खो और इस पत्रका उत्तर शीघ्र

भेजो ॥ वैशाख शुक्ला० २ सम्वत् १९४० स्थान शाहपुरा ॥

(दयानन्द सरस्वती)

इधर स्वामीजीने अमृतरामको लिखदियाकि यह भूल गोपालरावकी है हमारी नहीं है और आज हमने उसको लिखभी दिया है तुमको वह उत्तर देगा.

तारीख २८ अप्रेल सन् १८८३ ई० मिती वैशाख कृ० ७ सम्वत् १९४० को ऋग्वेद भाष्य अंक ४८ । ४९ वैदिक यन्त्रालय इलाहाबादसे छपकर प्रकाशित हुआ ।

महाराजा जोधपुरके मनुष्य बुलानेको आये तब तारीख २६ मई सन् १८८३ ई० को शाहपुरासे चलकर २७ मईको अजमेर नगर पधारे । और जो सन्मान पत्र महाराजा शाहपुराने स्वामीजीको भेट किया उसकी नकल निम्न लिखित है,

स्वस्ति श्री सर्वोपकारणार्थ कारुणिक परम हंस परिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी महाराजके चरणारविन्दों में महाराज राजाधिराज शाहपुरेश की बार बार नमस्ते ऽस्तु। वैदिक धर्म उपदेशक मण्डलीमें मेरी ओरसे एक उपदेश रहै जिसके व्ययके वास्ते एक मुद्रा नित्य प्रति अर्थात् मासिक ३०) रौप्य यहांसे निरंतर आजकी तिथिसे प्राप्त होते रहैंगे । सो वैदिक धर्मकी महिमा सुनाकर पाखंडादि खंडन करते रहैं । अपरञ्च यहां आपका विराजना सार्द्धद्वयमासपर्यंत हुआ तथापि आपके सत्य धर्म्मोपदेशके श्रवणसे मेरी आत्मा तृप्त नहुई आशाथी कि आप ग्रीष्मांत अत्रस्थित होते परन्तु जोधपुराधीशों की ओरसे दर्शनोंकी और वेदोक्त धर्म उपदेश ग्रहणकी पुनः सत्याचरण असत्यकात्याग आपके मुखारविन्दसे श्रवण करनेकी अभिलाषा देखके आपने वहां पधारना स्वीकार किया और भवच्छरीरभी क्रोडों मनुष्योंके उपकारार्थ प्रकट हुआहै, यह समझके मेरीभी सम्मति यही हुईकि आपका पधारनाही उचितहै, यही समझके यहाँ विराजने की प्रार्थना नहींकी आशाहै कि कृतकृत्य करनेके निमित पुनरागमन करैंगे । सम्वत् १९४० मिति ज्येष्ट कृष्णा० ५

(हस्ताक्षर महाराजा नाहरसिंहस्य)

स्वामीजी अजमेर शहरमें एकदिन ठहरकर सर्व आर्य्यसमाजियोंसे मिले फिर रेलमें सवारहो पाली गये और पालीसे राजासाहिब जोधपुराधीशकी भेजीहुई सवारियोंमें बैठकर जोधपुर पधारे, भाई फैजउल्लाखाँकी कोठीपर डेरा हुआ, राजा साहिबने ५ मुहर २५) रुपये नकद भेट किये और सेवा करनेको अनेक चाकर नियत करदिये ।

इसी अवसरपर मुरादाबाद आर्य्यसमाजसे एक विज्ञापन सर्वसमाजोंमें भेजागया जिसकी नकल यहहै ।

॥ विज्ञापन॥

महाशय नमस्ते—विदितहोकि श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज और आर्य्यसमाजके नियम विरुद्ध आचरण करने के कारण मुन्शी इन्द्रमणि जी प्रधान और लाला जगन्नाथदास जी पुस्तकाध्यक्ष अपने २ पद और सभासदी इस आर्य्यसमाज से २९ मई सन् १८८३ ई० को अलग कियेगये और मुन्शी दुर्गाचरणजी प्रधान नियत हुए आगे को खत वगैरा मुन्शी क्षेमकरण दास मन्त्रीके नाम ठिकाना मकान साहू स्यामसुन्दरजी रईस मंडी बांस मुरादाबाद भेजे जावें ॥ तारीख ३० मई सन् १८८३ ईस्वी ॥

(हस्ताक्षर क्षेमकरणदास मन्त्री आर्य्यसमाज मुरादाबाद *)

इन्हींदिनों में एक विज्ञापन उर्दू अक्षरोंमें नारायणदास सुदर्शन यन्त्राध्यक्ष मुरादाबादने और एक लेख ३१ मई सन् १८८३ ई० के आर्य्यदर्पण शाहजहांपुरमें लाला जगन्नाथदास मुरादाबाद निवासीने मुद्रित कराया नकल दोनो की इस प्रकार है,

॥ इतलाअ ॥ गुप्त न रहेकि मुन्शी इन्द्रमणि और स्वामी दयानन्द सरस्वती के मध्य बहुधा विषयोंमें धर्मकी बातोंमें प्रतिकूलता चलीआतीथी और सदैव वादानुवाद होता रहताथा और स्वामीजी एक दो विषयमें नित्य मुन्शीजी के वाक्य ग्रहण करते रहे हैं, जैसे प्रथम स्वामीजी जीव और प्रकृति व जक्त आदिको सादि मानते थे और उसीके अनुकूल सत्यार्थ प्रकाश आदि में लिखभी चुके थे परन्तु जिस समय मुन्शी इन्द्रमणिने उनको समझाया तबसे उन्होंने जीव आदिका अनादि होना स्वीकार करके अपनी पहली लिखावट का खंडन करना आरम्भ दिया, इस प्रकार के अनेक विषयहैं जिनमें मुन्शीजी और स्वामीजी की एकता होती चली जातीथी परन्तु अब संसारिक विषयोंमें दोनो महाशयोंका विवाद होकर फूट पड़गई है, और आगेको यह आशा भी नहीं है कि उक्त विषयमें दोनो महाशयोंकी एकता हो इसलिये तारीख १५ मई सन् १८८३ ई० मे सुदर्शन यन्त्रालयमे एक मासिक पत्र नागरी और उर्दू

* यह विज्ञापन सब समाजोंमें भेजा गयाथा ॥

दोनो भाषाओमें बीश २० छब्बीश २६ कागज पर धार्मिक विषयोंके निर्णयमें प्रचलित होगा। और कलेवर २४ पृष्ठसे कम नहोगा, चौथे या पांचवें पत्रसे स्वामी दयानन्द-सरस्वती के साथ उन विषयोंमें वाद स्थापनहोगा जिनकी मुन्शीमी और स्वामीजीमें प्रतिकूलता है, और स्वामीजीकी सम्पूर्ण पुस्तकोंको न्यायदृष्टिसे देखकर यथार्थ आलोचना की जायगी, आर्य्योंको उचितहै कि परमात्माका धन्यवादकरें कि उनके लिये प्रश्नोत्तर करने का अवसर हाथआया अब स्वामीजीको चाहियेकि इसपत्रकी आलोचना पर हर्षकरें या उत्तरलिखें, और उत्तर लिखनेमें कपड़ेकी ओट शिकार खेलना छोड़दें। अपनालेख दूसरों के नामसे छपाना बहुत बुरा है, प्रकटमें अपना नाम मुद्रित कराईये ताकि लोगोंकी दृष्टिमें उसलेखका आदर होय, इस वादानुवादसे प्रयोजन तो इतनाही है कि सत्यकी जड़ हरीहो और ऽसत्यकी जड़ कटे ॥ इति ॥

(प्रकटकर्ता नारायणदास सुदर्शनयन्त्रालयाध्यक्ष)

॥ आर्य्यदर्पण में जगन्नाथदास का लेख ॥

जोकि आर्य्य प्रश्नोत्तरी में प्रश्न ९ के उत्तरमें लिखाहै कि एक परब्रह्म पुरुषोत्तम सच्चिदानन्द हीकी उपासना करनी चाहिये, इसपर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने तर्क कियाहै कि पुरुषोत्तम शब्द वेदका नहीं है, इसलिये निवेदन यह है कि जब स्वामीजी ने पुरुषोत्तम शब्द वेदका नहोने से मुझपर तर्क कियाहै तो लाज़िम आयाकि स्वामीजी अपने पुस्तकोंमें ऐसे शब्द भूलकर भी न लिखें जो वेदोंसे भिन्नहों, इसलिये उनसे प्रश्नकरता हूं कि हे महाराज आपने जो "सत्यार्थ प्रकाश" और "आर्य्याभिविनय" आदि अपनी पुस्तकों में परमेश्वर, परमात्मा अधमोद्धारक, दयालु, दयानिधि, पतितपावन आदि शब्द लिखेहैं वह वेदमें कहांहैं, पंच महा यज्ञ विधि जो खास उपासना की पुस्तक है, उसमें जो आपने इंद्रियस्पर्श और मार्जन के मन्त्र लिखे हैं वह किस वेदमें हैं मनसे ईश्वरकी परिक्रमा करना वेदमें लिखा है या आप ही की आज्ञा है, व बलिवैश्वदेव विधिमें जो जो मन्त्र आपने लिखे हैं वह किस वेदके हैं, आर्योद्देश्यरत्नमाला, में जो आपने आठ प्रमाण लिखे हैं वह वेदहीसे लिखे हैं या पुराने वालोंसे विद्याऽध्येनकी है, "सत्यार्थप्रकाश" पृष्ठ ३०२ व ३०३ में मांस भक्षणकी आज्ञा दी है, और गोमेध यज्ञमें वृषभ और वन्ध्या गौ के हननकी आज्ञा लिखी है इसी प्रकार संस्कार विधिमें मांस खाना लिखा यह वेदमें कहां है ।

विदित होकि इस विषयमें हमारा और स्वामीजी का बहुत बड़ा विरोध है, हमारा कथन यहहै कि किसी यज्ञमें किसी पशुका मारना और मांस खाना वेदकी आज्ञा प्रमाण और उचित नहीं है, यह कितनेक प्रश्न स्वामीजी और उनके अनुयाईयोंकी सेवामें पुनः पुनः भेजकर निवेदन करता हूं कि इनका यथार्थ उत्तर प्रदान करें नहीं तो अपनी भूल स्वीकार करें ॥

(राकिम जगन्नाथ दास)

जोधपुर में नौकर कराने के लिये स्वामीजी ने एक पत्र भाई जवाहिरसिंह सैक्रेटरी आर्य्यसमाज लाहौरको लिखा जिसकी नकल इस प्रकार है।

भाई जवाहिरसिंहजी आनन्दित रहो।

आपका पत्र पाया विशेष आनन्द हुआ, आप रियासत जोधपुर में अवश्य आओ मुझको निश्चय है आपके आने से यहाँ बड़ा आनन्द और उन्नति होगी इत्यादि० इत्यादि० (हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वति जोधपुर)

और भाई जवाहिरसिंह जोधपुर में आनकर एक चाकरी पर लगाये गये तब स्वामीजी ने उनको उपदेश रूप एक पत्र और लिखा जिसकी नकल यह है।

प्रियवर भाई जवाहिरसिंहजी * आनन्दित रहो।

आप जोधपुर आये बड़ी खुशीहुई,

निश्चयहै कि आप अपने कामपर तत्पर रहेंगे और श्रीमान महाराजाधिराज को अति आनन्दित करेंगे और अपने पुरुषार्थ स्वभाविक सद्गुणों और उत्तमकामों से अपनी कीर्तिको बढावेंगे,, इत्यादि० ज्येष्ठ कृष्णा १० सम्वत् १९४०

तारीख १० जून सन् १८८३ ई० मिति आषाढ कृष्णा १० को वैदिक यंत्रालय इलाहाबादसे ऋग्वेद भाष्य अंक ५० । ५१ छपकर प्रकाशित हुआ ॥ ‡

आषाढ शुक्ला०८ सम्वत् १९४० के भारतमित्रपत्रमें एकलेख स्वामी दयानन्द सरस्वतीके प्रतिकूल छपाया जिसका उत्तर स्वामीजी ने इसप्रकार देशहितैषी में छपाया,

श्रीयुत देशहितैषी सम्पादक समीपेषु । महाशय

भारतमित्र सम्वत् १९४० आषाढ सुदी०८ गुरुवारके छपेहुए पत्रमें किसीने वेदपर आक्षेप पत्र छपवाया है उसलेखका अभिप्राय यही विदित होता

* यह वही जवाहिरसिंह है जो अब स्वामी दयानन्द के पूरे शत्रु होगये हैं

‡ इसके अनन्तर भेद स्वामीजीके मरे पीछे प्रकाशित हुआथा ।

है कि वेद ईश्वरकी वाणी और अभ्रान्त नहीं है। परन्तु इस प्रश्नके करने वा लेने प्रश्न मात्रही किया है, अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये कोई विशेष हेतु नहीं लिखा जो किसी वेद वचन पर भ्रांत पन दिखलाता तो उसका उत्तर उसी समय दियाजाता जैसे कोई कहैकि यह एक हजार रुपयोंकी थैली सची नहीं दूसरे ने उससे पूछा क्या मैं तुम्हारे कहने मात्रही से थैलीको झूठी मानस काई जबतक तुम झूठा रुपया इसमेंसे १ भी निकालके सिद्ध नहीं करदेते तब तक थैली को झूठ नहीं मानूंगा। वैसाही मिस्टर ए० ओ० ह्यूम साहिब और जिसने आपके पत्रमें छपाया है इन दोनो महाशयोंका लेखहै यहाँ उनको योगया और है कि किसी एक वा अनेक मंत्रों को अपने अभिप्राय के अर्थसहित वेद अध्याय मंत्र संख्या पूर्वक लिखकर पश्चात् कहते कि वेद ईश्वरकी वाणी और अभ्रांत नहीं है तो प्रत्युत्तर के योग प्रश्न होता अबभी यदि उत्तर जानने की इच्छा होतो इसी प्रकार करें नहीं तो कुछभी नहीं है किंतु इसमें इतनी बाततो समाधान देनेके किसी प्रकार योग्यहै सो यह कि वेदोंमे मत भेद क्यों है अब देखिये यहभी इनकी गोल माल बातहै क्योंकि वेदोंमें किस ठिकाने और किन मंत्रोंमें किस प्रकार के मतभेद हैं, हां विद्याभेद से कथनका भेद होनातो उचित नहीहै, जो व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष वैद्यक. राजविद्या गान शिल्प और पृथ्वीसे लेके परमेश्वर पर्यंतकी अनेक विद्याओंकी मूल विद्या वेदोंमें है इनके संकेत शब्दार्थ और सम्बन्ध भिन्न २ हैं जैसे व्याकरण विद्यासे ज्योतिष विद्यादिके संकेत परिभाषा और पदार्थ विज्ञापन पृथक् २ होतेहैं, वैं से इन सब विद्याओंके वाचक अर्थात् प्रकाश मंत्रभी पृथक् २ अर्थके प्रतिपादक हैं यदि इन्हीको भेद कहते हैं तो प्रश्न कर्ताका कथन असंगत है और जो दूसरे प्रकारके मतभेद मानते हैं तो उनका कथन सर्वथा अशुद्धहै इसलिये प्रश्नकर्ता ओं कों उचितहै कि पूर्वोक्त प्रकारसे चारों वेदोंमेंसे कोई एक मंत्र भी भ्रांतप्रतीतहोवे वह आपके पत्रमें मिस्टर ए० ओ० ह्यूम साहब छपवावें उनका उत्तर भी आपहीके पत्रमें उचित समयमें छपवादियाजायगा और उनको वेदके निर्भ्रांतहोने के जाननेकी पक्की जिज्ञासा होतो मेरी बनाई ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका को देखलेवें यदि उनके पास नहोतो वैदिक यंत्रालय प्रयागसे मंगाकर देखें और जो उनको आर्य्यभाषाका पूरा ज्ञान नहो तो किसी सत्यवक्ता दुभाषिये पुरुषसे सुने इसपर जो उनको शंकाहजाय तो मुझ से समक्ष मिलके जितनी शंकाहों उनसबका यथावत् समाधान करलेवें क्योंकि पत्रोंसे शंका समाधान होनेमें विलम्बहोता और अधिक अवकाशकी भी अपेक्षा है, और मुझको वेदभाष्यके ब

नाने के कामसे अवकाश न मिलनेके कारण विशेष प्रश्नोत्तर करनेका समय नहीं है और जो उन्होंने यह लिखा कि स्वामीजी ईश्वर या ईश्वरकी प्रेरणा युक्त हों तो उनका भाष्य निर्भ्रम होसके० में ईश्वर नहीं किंतु ईश्वरका उपासक हूं परन्तु वेद मनुष्योंके हितार्थ परमात्माने प्रकाशित किये हैं इस अभिप्राय से कि यहांतक मनुष्योंकी विद्या और बुद्धि पहुंच सकेगी और इतने तक कार्य्य मनुष्य करसकेंगे इसलिये यावत् मेरी बुद्धि और विद्याहै तावत् निष्पक्षपात हो कर वेदोंका अर्थ प्रकाशित करताहूं और वह अर्थ सब सज्जनोंके दृष्टिगोचर हु आहै, होताहै और होगाभी यदि कहीं भ्रांत होतो उक्त साहिब प्रकाशित करें, बड़े शोककी बातहै कि आज पर्यंत एकभी दोष वेदभाष्यमें से कोईभी नहीं निकालसका है फिर भी इसका भ्रम दूर नहीं हुआ, ऐसी निर्मूल शंका कोई भी कियाकरे इससे कुछभी हानि नहीं होसकी और सत्यार्थ होनेहीसे वेदोंका निर्भ्रांतत्व यथावत् सिद्धहै, यदि इस मेरे बनाये भाष्यमें मिस्टर ए० ओ० ह्यूम साहिबको भ्रम होतो इसमें भ्रांतमन्त्र किसी मन्त्रके भाष्य द्वारा आपके पत्रमें छपवादेवें मैं उत्तरभी आपहीके पत्र द्वारा दूगा और जो थियोसोफिस्ट के अध्यक्ष ऐसी बातें करें इसमें क्या आश्चर्य्य है क्योंकि अनीश्वरवादी बौद्धमतवाद लम्बी होकर भूत प्रेत और चुटकलों के मानने वाले हैं, बड़े शोककी बातहै कि सर्वथा विद्या सिद्ध परमात्माको न मानकर भूत प्रेत मृतकोंमें फसकर और भोले मनुष्योंको फसा अपनेको सुधारने वाले मानना यह कितनी बड़ी अनुचित बातहै इनको नास्तिकमत जो कि ईश्वरको नमाननाहै वही प्रिय लगता है परन्तु इसमें इतनीही न्यूनताहै कि भूत प्रेतों ने इनको घेरलिया सच्चहै, जो सत्य ईश्वरको छोड़ेंगे वे मिथ्या भ्रमजाल भूत प्रेतों और बन्ध्यापुत्र बल्कुदूर्बो लाल आदि क्यों नफसेंगे, बहुतसे समाचारोंमें छपवाते हैं कि इतने सौ इतने हजार मनुष्यों को मिस्टर एच ए० कर्नेल अल्काट साहिबने रोग रहित किया यदि यह बात होती मुझको क्यों नहीं दिखलाते और मनवाते और मेरे सामने कि जिसको मैं कहूं उसको भी निरोग करदें तो मैं थियोसाफिस्टोंके अध्यक्षको धन्यवाद देऊं, इसमें मुझको निश्चयहै कि जैसे एक थियासाफिस्ट दमके मारे लाहौर में अंगुली कटवाके अगभंग होगया कहीं ऐसीगति मेरे सामने इनकी नहोजावे और करामात कुछभी काम न आवेगी मैं प्रसिद्धीसे कहताहूं कि यदि उनमें कुछभी आलौकिक शक्ति वा योग विद्या होतो मुझको दिखलावें ॥ मैंने जहांतक इनकी लीला सिद्ध और योग्य विषय देखीहै वह माननेके योग्य नहींथी अब क्या नई विद्या कहींसे सीखआये ? मुझको या

यह विषय निकम्मा आडम्बर रूप दीखता है ॥ अलमिति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥ मिती श्रावण बदी ८ सम्वत् १९४० वि० स्थान जोधपुर

(दयानन्द सरस्वती)

चार महीने तक स्वामीजी जोधपुरमें विराजमानरहे, अचानक आश्विन कृष्णा एकादशी को स्वामीजी को श्लेष्मा (जुकाम) की व्याधि उत्पन्न हुई उसके चौथे दिन शाहपुराके निवासी रसोईदारसे दुग्ध पीकर सोगये परन्तु पाचन नहोकर रात्रिभरमें तीन बार वमन हुआ, फिर प्रात समय कुछ दिन चढे (सदैवके नियम विरुद्ध) सूके उठे तो एक वमन और हुआ* फिरतो जल पी पी कर दो तीन वमन स्वतः कर डाले और शीघ्र अग्नि कुंड में धूप डलवा कर कोठी में सुगंध फैलाई पश्चात् उदर शूल उत्पन्न हुआ तब डाक्टर सूरजमल बुलाये गये उन्होंने वमन बन्द करने की औषधि देकर पूछा अब क्या हाल है, तब बोले उदर शूल होरहा है प्यास बन्दकी दवाई मिलनी चाहिये। तदनुसार दवा दीगई परन्तु पेटकादर्द अधिक होता चला तब लाचार १० तारीख सिप्टम्बर को चार बजे राजा साहिब प्रतापसिंहजी के नौकरों ने बड़े डाक्टर अली मर्दीखाँ को बुलाया उन्होंने स्वामीजी के पेटपर पट्टी बांधी प्रथम तारीख अक्टूबर को प्रात समय डाक्टर साहिबने पुनः आनकर गिलास लगाये। २ अक्टोबर को स्वामीजीने डाक्टर साहिबसे जुलाब देनेको कहा उसने ३ अक्टोबर को गोली खिलाई जिस्से ९ बजेतक तो दस्त नहीं आये परन्तु १० बजेसे दस्त आरम्भ होकर रात्रिदिनमें ३० से अधिक दस्त होगये। ४ अक्टोबर को प्रातःकाल फिर डाक्टर लोग आये. स्वामीजीने कहा दस्त बहुत हुये जी घबराताहै, इसरोज बिना जुलाब के ही अनेक दस्त हुए और सायकालको एक दस्त ऐसा कठिन हुवा कि स्वामीजी को मूर्छा होगई तत्पश्चात् तो दस्तके साथही मूर्छा होनेलगी थी ॥

आश्विन शुक्ला ३ सम्वत् १९४० को वैदिक यन्त्रालय प्रयागसे स्वामीजी कृत निघंट पुस्तक छपकर निकला+ ॥

६ अक्टूबरको स्वामीजीने डाक्टरसेकहा अबदस्त बन्दहोनेचाहियें क्योंकि मूर्छा बराबर होतीहै, इस उपरांत मुखमें छाले और सम्पूर्ण शरीरमें फफाले

---

* सदैवतो कुछरात्रि रहते ही सूते उठ जंगली वायु लेने चले जाते थे।

\+ स्वामीजी कृत 'स्वामी नारायण मत खंडन" "वेदान्ति ध्वांति निवारण" यह दो पुस्तक यथायोग्य स्थानपर लिखे नहीं गये कारण यहहै कि इनपर बनायेजानेका समय छपा नहीं है परन्तु यह दोनो पुस्तक सम्वत् १९३२ की बनी हुई मालूम होती हैं

पड़गये हिचकी जम्भाई जारीहुई निकटवर्ती मनुष्योंको शकाहुई यहकैसा गुलावहै, तारीख ७-८-९-१०-११ अक्टूबर इसीप्रकार व्यतीतहुई तब १२ अक्टूबरको अजमेर आर्य्यसमाजके एकसभासदने यहसमाचार अजमेरमें फैलाये तबतो अजमेरसमाजने तारोंद्वारा मेरठ फर्रुखाबाद लाहौर उदयपुरादिक स्थानोंमें कोलाहलमचादिया और अनेकमनुष्योंने स्वामीजीके निकटपहुंच प्रार्थनाकरी यहाँरहना उचितनहीं आबूचलना चाहिये तबस्वामीजी १६ अक्टूबरको आबूचलनेपर उद्यमीहुए, यद्यपि जोधपुरवालोंने चाहाकि ऐसेसमय आपकाजाना हमारी अपकीर्ति और निन्दाकाकारणहै परन्तु जब देखाकि इनका यहाँरहना अब कठिनहै तो राजासाहिबने २०००) रुपया और एकदुशाला भेटकिया अपनीपीनसमेंसवारकराकर विदाकिया और कहाकि आबूमें हमारीकोठीपरही ठहरना तथा रोगशान्तिहोनेपर समाचारदेना, डाक्टर सूर्य्यमल और बहुतसेमनुष्य साथकरादिये मार्गमें स्वामीजीको हुचकी वमन दस्त बराबर जारीरहे और इसीदशामें यह २१ अक्टूबरको सायंकाल आबूमेंआये यहाँ एक लक्ष्मणदासनामी डाक्टरमिले जिनकीदवासे दस्त वमन थँमे और आशाहुईके अबरोग हटजायगा परन्तु डाक्टरसाहिबको उनके अफसरने ठहरनेनहींदिया, लाचारवे चारदिनकी दवाबनाकरदेगये २१ अक्टूबरको जोसमाजीमनुष्य वहाँ उपस्थितथे उन्होंने स्वामीजीकी इच्छानुसार आगये पत्र तार आदिका उत्तर लिख सबकामसमाप्तकिया २६ तारीखको समाजीलोग स्वामीजीको अजमेरमें लाए और डाक्टर लक्ष्मणदासका इलाजकरानेलगे तारीख २३ से लेकर तारीख २९ तककी दवा कुछबुरी नहींथी परन्तु ३० तारीखको अर्द्धरात्रिकेसमय रोगऐसाप्रबलहुआकि डाक्टरकेभी छक्केछूटगये तबइधर उधरसे अनेक डाक्टर बुलायेगये देशदेशान्तरसे तारद्वारा यत्नपूछेगये परंतु कुछगुणकारीनहींहुये और तारीख ३० अक्टूबर सन् १८८३ ईस्वी मिति कार्तिक कृष्णा ३० सम्वत् १९४० को सूर्य्यास्तकेसमय स्वामीजी परलोकसिधारे।

नभA विधिमुखB निधिC इन्दुD सरE दीपमालादिनश्याम ॥
दयानन्द अजमेरमें त्यागो तन अभिराम ॥ १ ॥

अगलेदिन अजमेरके आर्य्यसमाजी मनुष्योंने विमानमें रख अजमेरनगरसे दक्षिणकोणमें एकपहाड़ीकेनीचे मूलसर श्मशानमें दोमनचन्दन १० मन आमकाष्ठ, ४मन घृत, ५सेर कपूर, अढ़ाईसेरचालछड़, आधसेर केशर, २ तोला

Aनभ० Bविधिमुख ४ Cनिधि० Dइन्दु १ Eसर सम्वत् कार्तिक कृष्णा ३०

कस्तूरी आदिसे दग्धकर चिताकेनिकट चौकी पहरेलगादिये ॥

दूसरेदिन अजमेरसमाजने स्वामीजीका हिसाब वस्त्रपुस्तकादि पदार्थ और जो कुछ वेदभाष्य छपनेके लिये तैयारथा पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलालको एक सूची पत्रके अनुसार (जो स्वामीजीकी पुस्तकोंमें मिलाथा) संभालदिया और उपस्थित मनुष्योंने इस फहरिस्त पर हस्ताक्षर करादिये । उदयपुराधीशने जब पंड्या मोहनलाल विष्णुलालको स्वामीजीके पास भेजायह कहदियाथाकि यदि महाराजका शरीर छूटजाय तो किसी प्रकारसे वह चार पांच दिवस रक्खा जाय कि हम उनका अंतिम दर्शन करलें परन्तु उपस्थित मनुष्योंने डाक्टरके चीरफाड़कामयमान यहबात स्वीकार नहींकी और सब शीघ्रता पूर्वक दग्ध किया गया ॥ इति दयानन्द चरित्रः अलम् ॥



स्वामीजीकी विद्यमानतामें निम्न लिखित ७९ आर्य्यसमाज स्थापित हो चुकी थी ॥ पूना (१) बम्बई (२) लाहौर (३) अमृतसर (४) फीरोजपुर (५) रावलपिंडी (६) रुड़की (७) देहरादून (८) सहारनपुर (९) अम्बहटा (१०) बुकड़ (११) मेरठ (१२) मुजफ्फराबाद (१३) बाला समाज रुड़की (१४) कस्व'वीतरौन् (१५) मुजफ्फर नगर (१६) मेरठ (१७) बुलन्द-शहर (१८) चान्दूक जिला बुलन्दशहर (१९) नैनीताल (२०) बिजनौर (२१) नजीबाबाद (२२) मुरादाबाद (२३) बरेली (२४) शाहजहानपुर (२५) बदायूं (२६) चन्दौसी (२७) पीलीभीत (२८) मथुरा (२९) आगरा (३०) मैनपुरी (३१) एटा (३२) फर्रुखाबाद (३३) भोलीपुर जिला फर्रुखाबाद (३४) फतेहगढ़ कम्प (३५)कायम गज (३६) कानपुर (३७) पुराना कानपुर (३८) इलाहाबाद (३९) बनारस (४०) मिर्जापुर (४१) आजम गढ़ (४२) गाजीपुर (४३) लखनऊ (४४) हर्दूई (४५) सीतापुर (४६) फैजाबाद (४७) दानापुर (४८) बांकीपुर (४९) विलास पुर (५०) डिब्रूगढ़ (५१) करनाल (५२) हिसार (५३) रुहतक (५४) लुधियाना (५५) शिमला (५६) कालका (५७) गुरुदासपुर (५८) सिआ-लकोट (५९) जालन्धर (६०) होशियारपुर (६१) गुजरान्वाला (६२) जेहलम (६३) शाहपुरा (६४) गुजरात (६५) पिशावर (६६) सीबी (६७) कसौली (६८) किरांची (६९) सक्खर (७०) शिकारपुर (७१) जयपुर (७२) पावटा (७३) अजमेर (७४) साना (७०) भावलपुर (७३)

रामगढ़ (७७) छावनी मुरार (७८) मुलतान (७०)

स्वामीजी की मृत्युके पश्चात् महो महेन्द्रार्य्य कुल दिवाकर महाराणाजी उदयपुर ने दिसम्बर सन् १८८३ ई० मास पौष सम्वत् १९४० में एक छपा हुआ विज्ञापन इस अभिप्रायसे सम्पूर्ण आर्य्यसमाजों में पठाया कि अपने २ प्रतिनिधि नियत होकर तारीख २७ दिसम्बर सन् १८८३ ई० तक अजमेर में आजावें कि स्वामीजीकी आज्ञानुसार एक परोपकारिणी सभा का अधिवेषण किया जाय।

इस विज्ञापनके पहुंचने पर महाराणाजी उदयपुर (१) लाला मूलराजजी एम ए (२) कवि श्यामलदासजी (३) पंडित मोहनलाल विष्णुलालजी पंड्या (४) मसूदाके महाराज (५) महाराज नाहर सिंहजी के प्रति निधि आदि सम्पूर्ण सभासद और अनेक प्रतिनिधि गण पधारे परन्तु लाला रामशरणदास रईस मेरठ नहीं आये क्योंकि इनकाभी शरीर इसी वर्ष स्वामीजी से दो तीन मास पहिले पूरा हो चुका था।

२८ दिसम्बर सन् १८८३ ई० को सभाका आरम्भ हुआ।

[१] मंत्रीने सभाका कार्य्यारम्भ किया और इस सभा के स्थापित होनेका यथार्थ कारण सब पर विदित कराया।

[२] श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वतीका स्वीकार पत्र पढ़ा गया और जिन सभासदोंने सम्मति स्वरूप अपने हस्ताक्षर उक्त स्वीकार पत्र पर आगे नहीं किये थे उन्होंने इस समय यह कहके प्रकट कियाकि उक्त स्वामीजीने जो धर्म कार्यका भार हम लोगों पर रक्खाहै उसे हम स्वीकार करते हैं, पर जो सभासद विद्यमान नहीं हैं उनके पास स्वीकार पत्रकी प्रति प्रमाण करनेको भेजी जायगी।

[३] कविराज श्यामलदासजीने प्रस्ताव किया और राज राणा फतह सिंहजीने अनुमोदन किया कि मेरठ निवासी लाला रामशरणदासके मरनेसे जो सभासदपद खाली हुआ है उसपर जोधपुरके महाराज प्रतापसिंह जी सी एस आई नियत किये जावें सबकी सम्मतिसे प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

[४] राव बहादुर पंडित सुन्दरलालने प्रस्ताव किया और पंडित मोहनलाल विष्णु लाल पंड्याने अनुमोदन किया कि स्वर्गवासी लाला रामशरण दासजी के स्थानपर मान्यवर राव बहादुर पंडित गोपाल राव हरि देशमुख परोपकारिणी सभाके मंत्री नियत किये जावें सबकी सम्मतिसे प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

[५] एकपत्र इस विषयपर पढा गया कि स्वर्गवासी स्वामीजी ऋग् और यजुर्वेद भाष्य का कौन २ सा भाग समाप्त और असमाप्त छोडगये हैं इससे प्रगट हुआ, कि समग्र यजुर्वेदका भाष्य तो स्वामीजी पूर्ण कर गये हैं परन्तु एक भाग मात्र उसका अबतक मुद्रित हुआ है, और ऋग्वेदका सप्तम मंडल तक भाष्य बना है, सबकी सम्मति से यह स्वीकृत हुआकि पंडित भीमसेन तथा ज्वालादत्त प्रूफके शोधने और संस्कृत भाष्यका हिन्दीमें अनुवाद करने के कार्य्यपर नियत किये जायं। और प्रति व्यक्तिको ४५ पैंतालीस मुद्रा मासिक वेतन मिले वैदिक यन्त्रालय जितना शीघ्र बनसके अजमेर में लाया जाय और वह इन सभासदोंकी सम्हालमें रहै। मसूदेके ठाकुर राव बहादुर सिंहजी। रावबहादुर पंडित सुन्दरलालजी। कविराज श्यामलदासजी। पंडित मोहनलाल विष्णु लाल पंड्या और आर्य्य समाज अजमेरके प्रधान।

[६] जो द्रव्य स्वामीजी छोडगये हैं उसकी यादि पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्याने पढ सुनाई इससे प्रगटहुआकि ४३००) नक़द और १२०००) को शोध किये जानेके लायक लहना रुपये ४०००) के मूल्यका यंत्रालय और विक्रयार्थ पुस्तकें ४८०००) की हैं।

[७] सबकी सम्मतिसे स्वीकार हुआ कि पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या सब पुस्तकें कागज और हिसाब आदिको सम्हाल लें और शोध करें पीछे एक यादि प्रस्तुत करें कि स्वामीजीका क्या लेनादेना है। स्वामीजीके द्रव्यका जमा रखना तथा स्वीकारपत्र लिखित कार्य्यों के निमित्त द्रव्य एकत्र करना निम्न लिखित सभासदों के आधीन है। रावजी श्री बहादुरसिंहजी म सूदा। राज राणा फतहसिंहजी देलवाड़ा। कविराज श्यामलदासजी उदयपुर पंडित मोहनलालजी विष्णुलाल पंड्या उदयपुर। लाला सांईदासजी लाहौर। राव बहादुर गोपाल राव हरि देश मुख बम्बई। राजा जय कृष्णदास सी एस आई बिजनोर। बाबू दुर्गाप्रसादजी फर्रुखाबाद। यह सभा विभाग, श्री मन्महाराजाधिराज मेवाड़ाधिपति तथा जोधपुर के महाराज प्रतापसिंहजी सी एस आई के आज्ञानुसार काम करेगी।

[८] राव बहादुर पंडित महादेव गोविन्द रान्डे ने प्रस्ताव किया और राव बहादुर पंडित सुन्दर लालजीने अनुमोदन कियाकि सर्व आर्य्यसमाजोंका परस्पर तथा परोपकारिणी सभासे भी व्यवहार बढाने के हेतु आर्य्यसमाजोंके प्रतिनिधियोंकी एकसभा निर्माण करनी चाहिये। जबतक यह सभा नहीं बनती तबतक आर्य्यसमाजों के जो २ प्रतिनिधि परोपकारिणी सभा में सभासद हैं

वेही आर्य्यसमाजों के प्रतिनिधि माने जायेंगे । जब प्रतिनिधि सभा स्थापित होजायगी तब परोपकारिणी सभामें जो २ सभासद पद खाली होंगे वह इस प्रतिनिधि सभाके योग सभासदों से इस प्रकार पूर्ण किये जायँगे कि परोपकारिणी सभाके सभासदों में आधे प्रतिनिधि सभाके लोग होंगे । सबकी सम्मतिसे प्रस्ताव स्वीकार हुआ

[९] पंडित श्यामजी कृष्ण वर्म्मा बी ए [आक्सफोर्ड] ने प्रस्ताव किया और लाला साईंदासने अनुमोदन कियाकि सभाके इस वृतान्त की एक एक प्रति सब आर्य्य समाजों को भेजी जावें और उनसे प्रार्थना कीजायकि प्रतिनिधि सभाके लिये सभासद नियत करनेसे तथा और कोई नवीन कार्य्य हो उस्से परोपकारिणी सभाको यथा शक्ति शीघ्र ज्ञात करावें ॥ तारीख २८ दिसम्बर सन् १८८३ ई० [हस्ताक्षर॰ मूलराज एम ए उपसभापति के]

तत्पश्चात् स्वामीजी कृत पुस्तक सन्धि विषय नामक कारकीय सामासिक तद्धित पांचों एकत्रित होकर " अष्टाध्यायी सूत्र " छपकर ज्येष्ट शुक्ला ६ सम्वत् १९४१ को वेदिक यन्त्रालय प्रयागसे निकली और सत्यार्थ प्रकाशांतरगत स्वमत्यव्य प्रकाश, सन् १८८७ ई० में छपा परन्तु स्वामीजी कृत "गोतम अहिल्या की कथा" हमको अनेक यत्न करने परभी हाथ नहीं लगी इस लिये उसकी आलोचना करनेसे वञ्चित रहकर स्वामीजी कृत केवल अन्य ३८ पुस्तकों पर निज बुद्धि अनुसार यथायोग संक्षेप रूप प्रथम भागमें लिखा गया दूसरे भागमें विस्तार सहित लिखा जायगा (ह० जीयालाल)

नामावली उन पुस्तक और समाचार पत्रोंकी जिनसे इस "दयानन्द छल कपट दर्पण" के लिखनेमें सहायता मिली

(१) स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत निम्न लिखित (१) आर्य्यसमाजोंके नियम (२) संस्कार विधि (३) प्रथम बारका सत्यार्थप्रकाश (४) दूसरीबारका (५) तीसरी बारका (६) वेदभाष्य भूमिका (७) ऋग्वेद भाष्य (८) यजुर्वेदभाष्य (९) मेला चान्दापुर (१०) आर्याभिविनय रत्नमाला (११) गोकरुणा निधि (१२) स्वामी नारायण मतखंडन (१३) वेदविरुद्ध मतखण्डन (१४) भ्रमोच्छेदन (१५) शास्त्रार्थकाशी (१६) आर्य्याभिविनय (१७) वेदान्ति ध्वान्ति निवारण (१८) पंच महा यज्ञ विधि (१९) भ्रान्ति निवारण (२०)

सत्यासत्य विवेक(२१) व्यवहार भानु (२२) वाक्य प्रबोध (२३) वर्णोच्चारण (२४) सन्धि विषय (२५) नामिक (२६) कारकीय (२७) सामासिक (२८) स्त्रैणतद्धित (२९) अव्ययार्थ (३०) आख्यातिक(३१) सौवर(३२) पारिभाषिक (३३) धातुपाठ (३४) गणपाठ (३५) उणादिकोष (३६) निघण्टु (३७) अष्टाध्यायी मूल (३८) स्वमतव्य प्रकाश (३९) वेदाङ्ग प्रकाश (४०) अनुभ्रमोच्छेदन।

(२) स्वामीजी के शिष्य पंडित गोपाल शास्त्री फर्रुखाबाद निवासी कृत (४१)दयानन्द दिग्विजय प्रथम भाग (४२) तथा दूसरा भाग (४३) तथा तीसरा भाग।

(३) परम पुज्य जक्त विख्यात हमारे कुलाम्नाय गुरु महाराज श्रीमान पंडित् शिवचन्द्रजी देहल्वीकृत (४४) अमान्धकारमार्तंड (४५) प्रश्नमालिका (४६) मूर्तिपूजा मंडन (४७) पोपलीलाखंडन (४८) धर्म्मदास कृत धर्म्म प्रबोधनी प्रथम भाग (४९) पूज्य महाराज श्री कृत दूसरा भाग।

(४) राजा शिवप्रसाद सी एस आई रईस बनारस कृत (५०)इति हास तिमिर नाशक तृतीय भाग (५१) प्रथम निवेदन (५२)द्वितीय अतिम निवेदन (५३) जैनधोषकी भिन्नता।

(५) श्रीमान् सम्वेगी साधु आत्माराम आनन्द विजयजी कृत (५४) जैन तत्वादर्श (५५) अज्ञान तिमिर भास्कर (५६)जैनविषयकप्रश्नोतर (५७) गप्पदीपिका समीर।

(६) लाला ठाकुरदास श्रावक भामडा गुजरान्वाल निवासी कृत (५८) दयानन्द मुख चपेठिका॥

(७) श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दु रईस बनारस कृत (५९) दूषण मालिका (६०) चरितावली (६१) वाल्मीकीय रामायणका समय॥

[८] पंडित सत्यानन्द अग्नि होत्रि कृत [६२]दयानन्दी वेदोंमें निनाह कारीकी तालीम [६३] पंडित दयानन्द और उनका नया पन्थ [६४] जाति की असलियत [६५] हमारा अपील [६६] दयानन्दका सन्यास [६७] दयानन्दी कल्युगी मजहब [६८] रहस्नासिख।

[९] लाला जगन्नाथ भारती कृत [६९] पोपलीला [७०] धर्म्माधर्म्म परीक्षा [७१] स्वामीजीका कुछ जीवन चरित्र।

[१०] अन्यान्य और पुस्तकें [७२] दयानन्द परीक्षा प्रथम भाग[७३] दूसरा भाग [७४] स्वामी दयानन्द पराजय [७५] जगन्नाथका इल्पमाम

६] सवानह उमरी दयानन्द भाईजवाहरसिंहकृत [७७] लाला हल्पतराय [७८] मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी कृत [७९] तवारीख हिन्द [८०] पुसलान् [८१] जयमाल आर्य्या [८२] दयानन्दलीला [८३] विपवा क [८४] स्वामीजी की दिनचर्य्या [८५] असरार मज़्हब पंथ [८६] े फोविया [८७] सत्य मत आश्रय [८८] आर्य्य तत्वप्रकाश प्रथम ख्यान [८९] दूसरा [९०] तीसरा [९१] चौथा [९२] पांचवाँ [९३] [९४] अबोध निवारण [९५] मंगलदेवपराजय [९६] मूर्ति प्रकाश ७] महाभारत [९८] भगवद्गीता [९९] मद्रास हाईकोर्ट रिपोर्ट [१००] ोग खंडन [१०१] निगम प्रकाश [१०२] आगम प्रकाश [१०३] मनु े [१०४] लोकरावण [१०५] सर्व दर्शन संग्रह [१०६] मूर्तिभूषण ०७] सत्यार्थ प्रकाश समीक्षा (१०८) वेदद्वार प्रकाश (१०९) दयानन्द लोच्छेद (११०) अप्रतिम प्रतिमा (१११) अभेदास्त्र चन्द्रमाँ (११२) नन्द मत खंडन (११३) दयानन्द मत मर्दन (११४) वेदार्थ प्रकाश १५) अज्ञापिका दयानन्द (११६) महा मोह विद्रावण (११७) दयानन्द मूर्ति (११८) दयानन्द कंदुकपार (११९) सद्धर्म दूषणोद्धार (१२०) सत्यार्थ ऋर (१२१) आर्य्यसमाज रहस्य (१२२) शकर दिग्विजयमूल (१२३) विवे- ार (१२४) रत्नसार (१२५) शास्त्रार्थ फीरोजाबाद (१२६) शास्त्रार्थ सहरान (१२७) आर्य्यसमाज मेरठका सूचीपत्र [१२८] जालन्धर पुस्तकालयका पत्र (१२९) अजमेरका (१३०) लाहोरका (१३१) फर्रुखाबादका (१३२) हाबादका, जिन समाचार पत्रोंसे लेख लिया उनकी नामावली (१३३) विलास (१३४) उचित वक्ता (१३५) सार सुधानिधि (१३६) ह पत्रिका (१३७) धर्म्मजीवन (१३८) भारतेन्दु (१३९) आर्य्यावर्त ४०) आर्य्यगजट् (१४१) आर्य्यपत्रिका । (१४२) आर्य्यसमचार (१४३) र्य्य सिद्धान्त (१४४) आर्य्यदर्पण (१४५) आफ्ताब पंजाब (१४६) हितैषी (१४७) भारतमित्र (१४८) अखबार आम (१४९) भारत स्वदेशा क (१५०) शमशेर बहादुर (१५१) ज्ञान प्रदायिनी ॥

ार्य्य समाजोंकी शीघ्रोन्नतिका क्या कारण है ?

इस हमारे आर्य्यवर्त देशमें सरकारी मदर्सोंके प्रचारसे पहिले पद मर्यादा ी ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र मुसल्मान सब अपने अपने बालकों को जब ा पढ़ने के लिये गुरु के पास भेजते थे तो वे बालक अपने २ पितादानाओं

के पास आतेही प्रथम निजजाति भेदानुसार नमस्कार दण्डवत प्रणाम व सलाम बन्दगी का उच्चारण करते थे, तत्पश्चात् उन गुरुजी की आज्ञानुसार (जिनका नाम ऋषि, आचार्य्य, उपाध्याय, पंडित, मिश्र व मौलवी प्रसिद्ध होता था) एक नियत स्थानपर बैठकर विद्याध्ययन करतेथे, तब प्रथमही प्रारम्भ के समय ब्राह्मण, क्षत्री, वा वैश्य के पुत्रको श्री गणेशायनमः। परमात्मायनमः। ॐनमः। शिवायनमः इत्यादि, और जैनीके बालकको ॐनमः सिद्धेभ्यः। गोतमायनमः मुसल्मानके बालको कों मौल्वी लोग बिसमिल्लाह रहमानुलरहीम। उच्चारण कराया करते थे। और विद्यागुरु उससमयके बहुधा विचारे निर्धन पुरुष होतेथे, जो अपने सामान्य स्थानपरही विद्यार्थियोंको पढाया करते थे, अबके मुदर्रिसों की तरह चटक मटकसे रहने और स्वच्छ सुन्दरस्थान पर विद्या पढाने की उनको सामर्थ नहींथी, जैसा कपड़ा उनके घरपर हुआ वैसाही पहन कर टूटे फूटे मकानपर बैठे रहते थे, और जो बालक उनके पास पढने को आता उसको (चाहे कैसेही धनाढ्यका पुत्र क्यों नहो) अपनेंसे नीची बैठकपर बिठाते थे, हाँ जो बालक किसी निर्धनका होता उसके और धनाढ्य के बालकमें अंतर अवश्य करते थे इसका यह प्रभाव होता था कि बालक को प्रथम दिनसे ही अपने धर्म्म कुलाम्नाय के ज्ञानका लाभ होकर यहभी मालूम हो जाताथा कि विद्या धनके होनेसे गुरुजी की निर्धनता भी किसी कार्य्यमें विघ्नकारी नहीं, इस्से सिद्ध हुआकि विद्याधन भी एक परम धन है, और जब उनको नित नित अपने इष्टदेवका नाम स्मरण करना पड़ता था तो उसका भी यही फल होताथा कि शनै शनै उनको निज धर्म्मपर पूरा पूरा विश्वास उत्पन्न हो जाता था, परन्तु जबसे सरकार अंग्रेजी ने मदर्से प्रचलित किये हैं उनके मास्टर लोगोंमें जातिभेदका तो कुछ विचारही नहीं किंतु स्थान शालाका भी अति रमणीय होता है, पुस्तक जो पढाई जाती है उनकी आद्यमें ॐ वा श्री गणेशायनम वा परमात्मायनमः ॐनमः सिद्धेभ्यः वा बिसमिल्लाह रहमानुल रहीम आदि कुछभी नहीं होता, फिर विद्वान विचार करें ऐसे बालकों को कुलाम्नाय धर्म्मकी क्योंकर खबर होसक्ती है, बस जो बालक इस प्रकार विद्या पढते हैं वे साधारण परीक्षा मेंही उत्तीर्ण होकर जब अंग्रेजों के चाल चलनको देखते हैं तो बहुधा उनका मस्तक संसारिक ऊपरी सम्बन्धों से शुद्ध होकर पृथक् होने लगता है और पुराचीन कुलमर्यादाको वे घृणित दृष्टिसे देखते हैं, धर्म्मोपदेश उनको न तो माता पिताकी औरसे मिलता है और न सरकारी पाठशाला कहिये मदर्से में। और यदि घरमें वे कभी कुछ सुनते भी हैं तो केवल इतनाही

सुनते हैं कि चोटी रखना यज्ञोपवित धारण करना हिन्दू मात्रका परम धर्म है चौकेमें बैठकर रसोई खाना चाहिये, किसी मुसल्मान या ईसाईका स्पर्श किया भोजन नहीं खाना चाहिये, उनके हाथका पानी पीनेसे धर्म्म नष्ट होजाता है इसके व्यतिरिक्त कभी भी उनके कानमें कुछ नहीं पड़ता कि पूर्वोक्त रुकावटोंका कारणभी कुछ है या नहीं, और विद्यापढ़नेके समय वह देखते हैं कि चारों ओर से स्वतन्त्रताकी ही भनक कानोंमें पड़ती है, और मनुष्य पूर्वोक्त रुकावटोंसे छूट कर स्वतन्त्र होते चले जारहे हैं, और यह स्वतन्त्रता उनको संसारीक विशेष लाभ उत्पन्न कर रही है, पस ऐसी स्वतन्त्रता को देखकर मन विवश और भा विक स्वतंत्रताका अभिलाषी होता है, इस समय तक इनमें कोई आत्मीक अभिलाषा उत्पन्न नहीं होती और न वह इस और स्वत ध्यान देते हैं कि आत्माभी कोई ध्यान देने या विचारने लायक वस्तु है, बस ऐसे समय उनको एक नये समाजकी आवश्यकता होती है, न कि धर्म्मकी। पुराणी मर्यादा या सभा समाजों को वे घृणा दृष्टिसे देखते हैं, परन्तु इतनी बुद्धि ऐश्वर्य बल या सामर्थ नहीं होवी कि वह प्रचलित सम्पूर्ण मर्यादाओं से निकलकर स्वतन्त्र हो जायें। आर्य्य समाज केवल ऐसेही मनुष्योंके लिये बणाई गई है, और यदि उसके सभासदोंके गुप्त अभिप्रायको देखाजाय तो उनमें बहुधा देशोपकारके प्रेमी दृष्टि पड़ते हैं व्याख्यानके समय आर्य्यसमाज के सभासद गण जातिभेदके बुरा बतलाने में इतना अलापते हैं कि सभाका स्थानभी गूजने लगता है, विधवा विवाह ब्राह्मणोंकी दक्षिणा, विवाहों में व्यर्थ व्यय इत्यादिक विषयों पर अपना इतना वाक्य बल दिखाते हैं कि श्रोताओंकी भी छाती धड़कने लगती है, परन्तु जब तदनुसार बर्ताव करनेका समय निकट आता है तो उक्त वक्ता महाशय ही सबसे पीछे हटे दृष्टि आते हैं, सहस्रों बाल विधवा आर्य्यसमाजियोंके घरों में बैठी हैं, नित प्रति नवीन बालविवाह होते हैं सहस्रों रुपये विवाहों में व्यय किये जाते हैं, परन्तु उस समय वक्ता महाशय निरुद्यमी से हुये चुप बैठे रहते हैं, इतनी सामर्थ नहीं रखते कि निज वचनानुसार स्वत ही कुछ कर दिखलावें इस कर्तव्यसे आर्य्यसमाजने देशका आत्मीक विगाड़ही नहीं किया किंतु उसकी स्वतन्त्रताको भी रोक दिया है, और महात्मा ओंकी ईश्वरी शक्ति के मार्ग रोकने वाले बन गये हैं, यदि विचार दृष्टिसे देखा जाय तो आर्य्यसमाज के सभासद संसारिक प्रचलित मर्यादा * परही चल रहेहैं, परन्तु उनकी इतनी सामर्थ नहीं कि अपने गुप्त भेदका प्रगट रूपमें प्रचार

* विवाह व भाजे न्यूनाधिक ... गुप्त ... है ॥

करसकें, अधिक नहीं तो केवल छूत छातही पर स्वतंत्रता फैलावें। मैंने आर्य समाजके समासदोंको कहते सुना कि छूत छात कोई वस्तु नहीं है, जाति भेद कर्मानुसार है, अर्थात् जो मनुष्य जैसा काम करता है उसी नामसे पुकारा जाता है। यह लोग ऊपरी आडम्बर बनाये रखते हैं और अपने आपको त्यागी समझते हैं, किंतु इनमें कोई २ ऐसेभी हैं जो अभी होटलसे भोजन गटक कर बाहर आवें तो सपथ करने पर उद्यमी और नट जाने पर तैयार रहते हैं। एक दूसरा कारण यह भी मनुष्योंके आर्य्यसमाज में भरती होजानेका है कि हिन्दूलोगोंका वेदोंपर बहुत बड़ा विश्वास है और अधिक कालसे चला आता है, यद्यपि इस समय देखा जावे तो सहस्र मनुष्यों में से कठिनता पूर्वक एक ऐसा मिलेगा जिसने वेदोंका पढ़ना तो जुदा रहा चारों पुस्तकों को आँखों से भी देखा हो अपनी बिरादरीको धोका देनेके लिये और विवाहादि शुभकार्य्योंमें उनके साथी बने रहने के लिये इतना कह देनाही बहुत समझते हैं, कि हमारे धर्म्म ग्रंथ वेद हैं और उन पर ही हमारा विश्वास है इतना कहनेपर बिरादरी के लोग चुप हो जाते हैं, परन्तु जब उन लोगोंसे पूछा जाय कि भाई वेद क्या वस्तु है? उसमें लिखा क्या है? क्या तुमनें उस पुस्तक को कभी देखाभी है? तो इसके अति रिक्त और कुछ उत्तर नहीं देते कि हमारे पुरुषा भी इनको ही माना करते थे हमने सुना है कि वेद सब सत्य विद्याओंके पुस्तक हैं और बहुधा माया चारी यह कहने को भी उद्यमी होते हैं कि हमको इससे क्या प्रयोजन कि वेदोंमें क्या लिखा है, हमको तो सत्य प्रिय है कहींसे मिले समाजमें केवल देशोपकार सत्य शीलताके लिये मिले हैं। यदि आर्य्यसमाजी गण अपना काम देशोपकार करना सत्य शील फैलाना आत्मीक गुणकी व्याख्या आदि यही मुख्य रखते तो किसी को उनपर तर्क करने का अवसर नहीं मिलता, परन्तु खेद है कि इस समाजकी उन्नती से आत्म द्रव्यका कोश बिना रक्षा के लुटा जाता है, हमारे नवीन उत्साही युवा पुरुषों को (जिनपर हमारे देशके सुधारकी आशा निर्भर है) सत्य सतोपादि शुभ गुणोंसे हटाकर सामर्थ वानोंको असमर्थ बनाया जाता है, और वे लोग जाति भेदको बुरा समझकर भी उससे छुटकारा पाने को असमर्थ होते हैं, बस ऐसे मनुष्यों के लिये आर्य्य समाजका होना उनके परम सौभाग्य का फल है यदि यह आर्य्यसमाज न होती तो वे मनुष्य शीघ्रता पूर्वक उन लोगों में जा मिलते जिनके लिये पादरी लोग लाखों रुपये बरबाद करके भी सफलता प्राप्त नहीं करते। बस तात्पर्य्य

इस लिखने का यही है कि आर्य्यसमाजों ने हमारे सहस्रों लिखे पढ़े मुख ज नौं को ईसाई होनेसे बचाया इस लिये हम उसके प्रचारक का धन्यवाद करते हैं, और जो माता पिता अपने बालकों को आत्मीक अभ्यास कुलाम्नाय धर्म्मसे वञ्चित रखकर प्रथम दिवस ही से सरकारी मदर्सोंमें यावनी भाषा पढ़ाते हैं वे अपने सत्य सनातन धर्म्मका नाशकर अतको उसका हानि कारक फल प्राप्त करते हैं ॥

स्वामी दयानद सरस्वतीने क्या क्या किया ?

॥ छप्पेछन्द ॥

वैदिकधर्मनिधार पाप पाखंड बढ़ायो । निन्देमूर्ति पुराण श्राध पलटो मनभावो ॥
विधवाब्याह कराय पुरातन रीति नशाई । वर्णभेद निर्धार नमस्ते करी कराई ॥
तेली चमार कोरी सुई* लघु जातन आरज करो ।
धर्म्म कर्म्म मति पुण्यकी मूलकादि अघ सचरो ॥ १ ॥

स्वामीजी निजरचित पुस्तकों में जो कुछ लिखगये उसका भावार्थ यही है कि शंकराचार्य्यसे आदि लेके सर्व सम्प्रदायिक आचार्य्योंका धर्म्म मिथ्या है, कबीर, दादू, रामस्नेही, गुरुनानक, मुहम्मद, ईशा, मूसा इत्यादि पैगम्बर सबका मत मिथ्या है, सबके ग्रंथ मिथ्या हैं, तीर्थ यात्रा नहीं करना, गंगा, यमुना, पुष्कर, गया, काशी, प्रयाग इत्यादि सब तीर्थ मिथ्या हैं, माता पिता आदि पूर्वजोंका श्राद्ध अर्थात् पिंड प्रदान, तर्पण, पितृ देवताके निमित कुछ दान पुण्य, देवताकी पूजा तथा मूर्ति पूजन विवाहादिकमें, शीतला देवी, कुल देवी, भैरव, गणपति आदिक देवताओंकी, पूजा, एकादशी आदि जितने व्रत उपवास हैं वे सर्व मिथ्या हैं, सूर्य्य, चन्द्र, ग्रहणमें स्नान दान करना मिथ्या है, मुसलमान अंग्रेज इत्यादिकों को हिन्दूकरना अच्छाहै, सब जातिवालोंका एकत्र भोजन करना अच्छा है, आचार विचार चौका पवित्रता जातिभेद सब मिथ्या है, सब जातिकी लड़कीमे विवाह करो एक स्त्रीको ११ ग्यारह पतिकरो, विधवा पृथ्वी पर रहने नहीं पावे, ११ ग्यारह खसम और ४४ चवालीस सन्तान एक स्त्रीके वास्ते धारिये, ब्राह्मण क्षत्रीय वैश्यादिक सब जातिकी स्त्रियोंको ११ खसम करना, पति परदेश जावे तब घरकी स्त्रीके वास्ते एक पुरुषको अपने घर रख जावे, वह पुरुष उसग्रहीमें पुत्रादिक पैदा करता रहे, जब उस स्त्रीका पति आ जावे तब उस दूसरे खसमको घरसे विदा करदेवे, अपनी स्त्रीका और लड़के बच्चोंको ले लेवे, सब जातिवाले वेद पढ़ते रहो, किन्तु महा शूद्र और स्त्री

* मोची या चुड़वा भैनाम।

भी वेद पढे, स्नान, दान, व्रत, तीर्थ श्राद्ध कुछ मत करो, दिया हुआ दान उलटा मांगलो, पंचयज्ञ करो, सन्ध्या सेवन करो अग्निमें होम करो, सोमी स्वामी दयानन्द सरस्वती कहै वैसे करो, साधु ब्राह्मण गुरुको दानमत करो, सन्यासीको द्रव्य विशेष देते रहो, सन्यासो भी और मत का न होना चाहिये, आर्य्य समाजही के सन्यासीको धनदेवे औरकोनहीं, गोदान, अश्वदान, हस्तिदान, अन्नदान इत्यादि कुछभी नकरो, जो कुछ देना होय सो आर्य्यसमाजके वास्ते देवो, पति आपही अपने जीवते जागतेमें अपनी स्त्रीको दूसरे पुरुषके साथ मैथुन करानेकी आज्ञा देवे और पुत्रादिक पैदा करावे, स्त्रीको घरमें रक्खे अपने साम्हने दूसरे पुरुषसे अपनी स्त्रीको मैथुन करानेसे संतान पैदा करनेमें वेदका प्रमाण भी स्वामी दयानन्द सरस्वतीने लिख दियाहै, परतु वह मिथ्या और मनोक्त है, विष्णु, शिव आदि देवताओंकी पूजा नहीं करना, पुराण भगवद्गिता भागवत इत्यादि सब ग्रन्थ मिथ्या हैं, स्वामीजीके मतलबका ग्रन्थ होय उसमें भी उलटा मिथ्या अर्थ करा होय, वह सत्य है, जिस ग्रन्थमें स्वामीजीका मतलब बिगडता होय वह ग्रन्थ स्वामीजी नहीं मानते हैं, और जिस ग्रन्थको स्वामीजी मानते हैं उसी ग्रन्थमें कहीं मूर्ति पूजा तीर्थ श्राद्धव्रतादि विधि निकल आवे तो कहते हैं इस ग्रन्थमें इतना भाग क्षेपकहै, इसको हम नहीं मानते, और सत्यार्थ प्रकाशमें प्रथम तो स्वामीजी लिखते हैं कि वेदमें ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, सम्पूर्ण वेदमें ब्रह्मका निरूपण है, इस वास्ते इन्द्र, वरुण, अग्नि, शिव इत्यादि पदोंका अर्थ ब्रह्मपरत्व लिखा है, इन्द्र वरुणादिक शब्द ब्रह्मके ही नाम हैं, कीसी देवताके नाम नहीं ऐसा लिखते लिखते फिरतो वेदमेंसे अनेक तरहसे ब्रह्मका निरूपण लिख दिया, यहाँ तक लिखाकि वेदमें तार, रेल, जहाज, तोप, बन्दूक इत्यादि सब लिखेहैं, यह स्वामीजी के मतकी बातें जितनी हमने लिखी हैं, यदि स्वामीजी कुछ काल और जीते रहते तो वेदमंत्रोंसे हुन्डी मनीऑर्डर वेल्युपेबिल पुतली घर बर्फकी कल केरोसिन तेल इत्यादिकभी सिद्ध करदेते, और यही नहीं कि एक स्वामीजीने केवल ब्राह्मणों ही को बुरा बतलाया, किंतु सत्यार्थ प्रकाश द्वादश समुल्लासमें जैनी लोगोंको भी मनमानी गाली प्रदानकी हैं, जैसे जैनियोंका मत बहुत पुराना नहीं है, जैसा वे मानते हैं क्योंकि महाभारत और वाल्मीकीय रामायणमें उनका कुछ वर्णन नहीं है, मूर्ति पूजा जैनी लोगोंने अपनी मूर्खतासे चलाई है, उनके ग्रन्थोंमें पुनरुक्त दोष अधिक हैं, इसी लिये वे उनको छिपाय रखते हैं, उनके साधु महाभ्रष्टमलीन होते हैं, स्नान तक नहीं

करते वस्त्र साफ नहीं कराते, दीपक तक नहीं जलाते, दूसरे धर्म्मका कोई विद्वान आवे उसका आदर सत्कार नहीं करते, इनके अनेक माया जाल हैं, इत्यादिक बहुत कुछ मिलकर यह सिद्ध किया कि जैन बौद्ध दोनो एक हैं, परंतु यह लिखना स्वामीजीका म-था झूठ है, जो महाशय पक्षपात छोड़कर पुस्तक "दयानन्द छलकपटदर्पण" को देखेगा वह सत्यासत्यको भले प्रकार जान लेगा ॥ अलम् ॥

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती पर हमारा विचार ॥

निर्दोषेनैव संसारे ईश्वरेणान्तरापुमान् ॥

(१) स्वामी दयानन्द सरस्वती कौन थे ? किस नगर कुल गोत्रमें उनका जन्म हुआ ? इस विषय में जो कुछ हमने लिखा वह दूसरों के आधार से है, जो जो प्रमाण मिले उनसे यही सिद्ध होता है कि अवश्य स्वामीजी ब्राह्मण नहीं थे किंतु कापड़ी ही थे क्योंकि निम्न लिखित इन प्रमाणोंसे पुनः पुन यही सिद्ध होता है ॥ देखो !

(क) स्वामीजीको अपने स्वरूप में परम हंस परि व्रिराजकाचार्य्य कहलाना अभिरुचिया परन्तु हम कहते हैं कि निम्न लिखित कारणों से यह परम हंस नहीं थे।

(१) परम हंसको धन रखना या छूना तक उचित नहीं, वे रखते थे।

(२) परम हंसको मधुकरी भिक्षा ग्रहण करनी उचित है स्वामीजी रसोईदार से भोजन बनवा कर खाते थे।

(३) परम हंस सवारी पर नहीं चढते स्वामीजी चढते थे।

(४) परम हंस केवल शीत निवारण वस्त्र और नंग पांव रहते हैं स्वामीजी रेशमी कलाबतूनी आदि चोगा कोट शाल दुशाले रखते और जूता भी पहना करते थे।

(५) स्वामीजीके शिष्यों में पूर्वोक्त गुण वाला कोई भी परम हंस नहीं था इस लिये स्वामीजी किसी परम हंसके गुरु भी नहीं थे जो परि व्रिराजकाचार्य्य समझे जावें।

(ख) अपने सजातियों के चाल चलन और विरुद्धाचरणकी तो सब कोई बुराई कर सक्ता है परंतु यह कहीं भी देखने वा सुनने में नहीं आया कि ब्राह्मण कुलका जन्मा प्राणी ब्राह्मणों को ही बुरा कहे, स्वामीजी ब्राह्मणों को पोप पाखंडी महापापी आदि नामों से उच्चारण करते थे बस इससे यही सिद्ध होता है कि वे महाराज स्वतः जातिके ब्राह्मण नहीं थे ॥

(ग) अपने पुरुषोंको शकि मरद्द बनाकर नचाना और उसमें धर्म्म मानना यह महा मूर्ख वा स्वार्थी पुरुषों का काम है और कापड़ी लोग मंदिरों में मरद्द के नचाने मना गान मैदम्म करने में बहुत बड़ा पुण्य समझते हैं,

स्वामीजी ने निज पुस्तक " सत्यार्थ प्रकाश " में जहाँ भारत के सम्पूर्ण मत मतान्तरों को वेद विरुद्ध और बुरा बतलाया है वहाँ इस विषय को जान बूझकर छोड़ दिया है। नवीन " सत्यार्थ प्रकाश " पृष्ठ १८७ पंक्ति २२ पर रामलीला और रास मंडल देखने में पुजारी लोगों को बुरा अवश्य कह दिया हम पूछते हैं ? क्या रामलीला में राम लक्ष्मण जानकी जी भी रास मंडल के राधा कृष्ण के सदृश नाचते हैं ? जो रासमंडल और रामलीलाको एकमा समझा ? स्वामीजी अपराध क्षमाहो हमका तो इससे यही सिद्ध होता है कि आपने अपनी बाल लीला याद करके यहाँ रास मंडलकी यथार्थ बुराई नहीं की॥

(घ) प्रमाण के होते हुए तदनुसार स्वीकार करना प्रचलित व्यवहार है इस लिये जब तक पूर्वोक्त लेखों के प्रतिकूल कोई प्रबल प्रमाण न होता वह स्वीकृत नहीं होसक्ता किसी विषयके प्रमाण सहित विद्यमान होते हुये उसके प्रतिकूल कहना उस समय तक व्यर्थ समझा जाता है जब तक कोई प्रबल और दृढ प्रमाण न दिया जाय। इस लिये पूर्वोक्त अनेक प्रमाणोंसे यही सिद्ध है कि स्वामीजी ब्राह्मण नहीं थे॥

(२) बहुधा मनुष्यों का यह भी विश्वास है कि स्वामीजीको ईसाईयों की तर्फ से सहायता मिलती थी और वे गुप्त पणे देसको ईसाई करने पर तत्पर थे। सो यह सर्वथा भूल है स्वामीजीका तो मुख्य उद्देश आर्य्य लोगों की उन्नति करणे का ही था जो खेद है कि पूरा करनेसे पहिले ही मरगये, यद्यपि अनेक मनुष्य ऐसा भी समझ रहे हैं कि स्वामीजी को डाक्टरकी औषधिने मारडाला, इसके सत्यासत्यको तो परमात्मा जाने पर इतना हम अवश्य कहेंगे कि स्वा मीजी ने पूर्ण विद्वान होकर निज धर्म्म विरोधी के हाथसे दवाई ग्रहण करनेमें बहुत बड़ी भूल करी थी। खैर देखो न्याय में कहा है ॥ श्लोक ॥

यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथित मनुष्यै विज्ञान विक्रमयशोभिरभज्य मानम् ॥ तन्नाम जीवित मिह प्रवदन्ति तज्ञा काकोऽपि जीवति चिराय बलिंचभुङ्क्ते ॥ १ ॥

(अर्थ) ज्ञान पराक्रम और यशमें कलङ्क न लगते, जगत् में प्रख्यात् होकर जो क्षण भर भी मनुष्य जीते हैं उसका नाम जीना है, नहीं तो कौवा (कागला) बहुत दिनों तक जीता है, और अपना पेटभी भरता है। तथा। ॥ श्लोक ॥

तत्जन्मतानि कर्माणि तद्या युस तनमनोवचा ये नेह
सर्व भूतानामुपकार प्रजायते ॥ १ ॥

करते वस्त्र साफ नहीं करावे, दीपक तक नहीं जलावे, दूसरे धर्म्मका कोई विद्वान आवे उसका आदर सत्कार नहीं करते, इनके अनेक माया जाल हैं, इत्यादिक बहुत कुछ लिखकर यह सिद्ध किया कि जैन बौद्ध दोनों एक हैं, परन्तु यह लिखना स्वामीजीका स-था झूठ है, जो महाशय पक्षपात छोड़कर पुस्तक "दयानन्द छलकपटदर्पण" को देखेगा वह सत्यासत्यको भले प्रकार जान लेगा ॥ अस्तु ॥

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती पर हमारा विचार ॥

निर्दोषेनैव संसारे ईश्वरेणान्तरापुमान् ॥

(१) स्वामी दयानन्द सरस्वती कौन थे ? किस नगर कुल गोत्रमें उनका जन्म हुआ ? इस विषय में जो कुछ हमने लिखा वह दूसरों के आधार से है, जो जो प्रमाण मिले उनसे यही सिद्ध होता है कि अवश्य स्वामीजी ब्राह्मण नहीं थे किंतु कापड़ी ही थे क्योंकि निम्न लिखित दृढ़ प्रमाणोंसे पुन पुन यही सिद्ध होता है ॥ देखो !

(क) स्वामीजीको अपने स्वरूप में परमहंस परि व्रिराजकाचार्य्य कहलाना अधिक प्रिय था परन्तु हम कहते हैं कि निम्न लिखित कारणों से यह परम हंस नहीं थे।

(१) परम हंसको धन रखना वा छूना तक उचित नहीं वे रखते थे।

(२) परम हंसको मधुकरी भिक्षा ग्रहण करनी उचित है स्वामीजी रसोईदार से भोजन बनवा कर खाते थे।

(३) परम हंस सवारी पर नहीं चढ़ते स्वामीजी चढ़ते थे।

(४) परम हंस केवल शीत निवारण वस्त्र और नंग पॉव रहते हैं स्वामीजी रेशमी कलाबतूनी आदि चोगा कोट शाल दुशाले रखते और जूता भी पहना करते थे।

(५) स्वामीजीके शिष्यों में पूर्वोक्त गुण वाला कोई भी परम हंस नहीं था इस लिये स्वामीजी किसी परम हंसके गुरु भी नहीं थे जो परि व्रिराजकाचार्य्य समझे जावें।

(ख) अपने सजातियों से चाल चलन और शिष्टाचरणकी तो सब कोई पुष्टि कर सकता है परन्तु यह कहीं भी देखने वा सुननेमें नहीं आया कि ब्राह्मण कुलका जन्मा प्राणी ब्राह्मणों को ही बुरा कहे, स्वामीजी ब्राह्मणों को पोप पाखण्डी महास्वार्थी आदि नामों से उच्चारण करते थे बस इससे यही सिद्ध होता है कि वे महाराज स्वतः जातिके ब्राह्मण नहीं थे ॥

(ग) अपने पुत्रोंको स्त्रीके सदृश बनाकर नचाना और उसमें धर्म्म मानना यह महा मूर्ख वा स्वार्थी पुरुषों का काम है और कापड़ी लोग मंदिरों में लड़के नचाने तथा रास मंडल करने में बहुत बड़ा पुण्य समझते हैं,

(७) कुछ वधिक लोगोंने एक महारमणीय स्थान देख (जहाँ के पक्षी गण अत्यन्त भोले हैं) कुछ मिष्ट जल और चारा डाल चारों तर्फ जाल फैला दिया, तब विचारे भूखे प्यासे भोले भाले पक्षी गण निर्भय भये वहाँ चुगने को आये और झुण्डके झुण्ड निज वास बसेरे का तथा और सर्व प्रकार का ध्यान भूल आनन्द पूर्वक किलोल करने लगे तब वधिक लोगों ने अवसर को उत्तम जान जाल खैंच उनके पकड़ने का विचार कियाही था कि किसी नवीन मनुष्य ने शीघ्रता पूर्वक वहाँ पहुचकर पक्षियों के झुण्ड में एक पत्थर फेंक मारा जिस्से कितने ही तो उसी समय प्राण रहित हो गये और कितनेही घायल हो कुछ काल पीछे अच्छे हुये, परन्तु पत्थर फैंकने वालेको अत्यन्त ही बुरा समझे, किंतु जब कुछ समय पीछे वधिक लोगोंका जाल फैलाना उनपर प्रकट हुआ तो मुक्त कंठसे पत्थर फैंकने वालेको धन्यवाद देने लगे ॥

इस लिखने का सारांश यह है कि वह रमणीय स्थान तो यह भारत वर्ष है, इसमें पादरी ईसाई लोगों ने सम्पूर्ण प्रजाको एक रंगमें रंगने और अपने शुद्ध सनातन धर्म्म से च्युत करने के लिये (मिशनस्कूलोंका प्रचार रूपी) जाल फैलाया था और वह समय निकट आगया था कि सबको ईसाई बनावें, बस स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना उपदेश रूपी पत्थर फेंक सबको उस जाल से बचादिया. यह उसका बहुत बड़ा उपकार भारत वासियोंपर हुआ है, और यद्यपि कोई २ मूर्ख पत्थर तले दबकर मरा अथवा घायल हुआ वह केवल वही पुरुष है जो दयानन्द के गूढ आशय को न समझ अपने सत्य सनातन धर्म्मका त्यागी वा द्वेषी होगया परन्तु जो लोग स्वामीजी के मुखसे अपने धर्म्मकी निन्दारूपी पत्थरका शब्द सुण सचेत होगये उनको स्वामीजीका शुद्ध अन्तष्करण से धन्य वाद करना उचित है, और इसी आशय को मुख्य रख हम अच्छी तरह कह सक्ते हैं कि यद्यपि हम स्वामी दयानन्द सरस्वती को कोई ऋषि मुनि देवता वा अवतार नहीं मानते, जैसा कि उनके अनुयायी कहते हैं, तथापि उनके शान्ति होनेका खेद चाहै हम निन्दकही क्यों न समझे जावें, हमें उन अनुयायियों से अधिक है, क्योंकि स्वामीजी के आशयको जैसा हम जान ते हैं उनके अनुयायियों ने नहीं जाना, अब हम सर्व आर्य्यसमाजी भाईयों से सविनय प्रार्थना करते हैं कि मित्रवर जो मनुष्य अपने में दोष और दूसरे में गुण देखता है वही सर्व प्रिय होता है यदि हमसे इस संग्रह में कोई अनुचित शब्द लिखा गया हो तो सज्जन जन क्षमा करेंगे। इति ज्योतिषरत्न पंडित जीयालालजी रचित दयानन्द छलकपट दर्पण प्रथम भागका उत्तरार्द्ध सम्पूर्णम् ॥
